Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

HINDI BHASHA

G. K. V.
HARDWAR

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

va Samaj Foundation Chennai

Domain. Gurukul Kangri Colle

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification-2024

Binding House
J.E.L. Road
JAWALAPUR

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

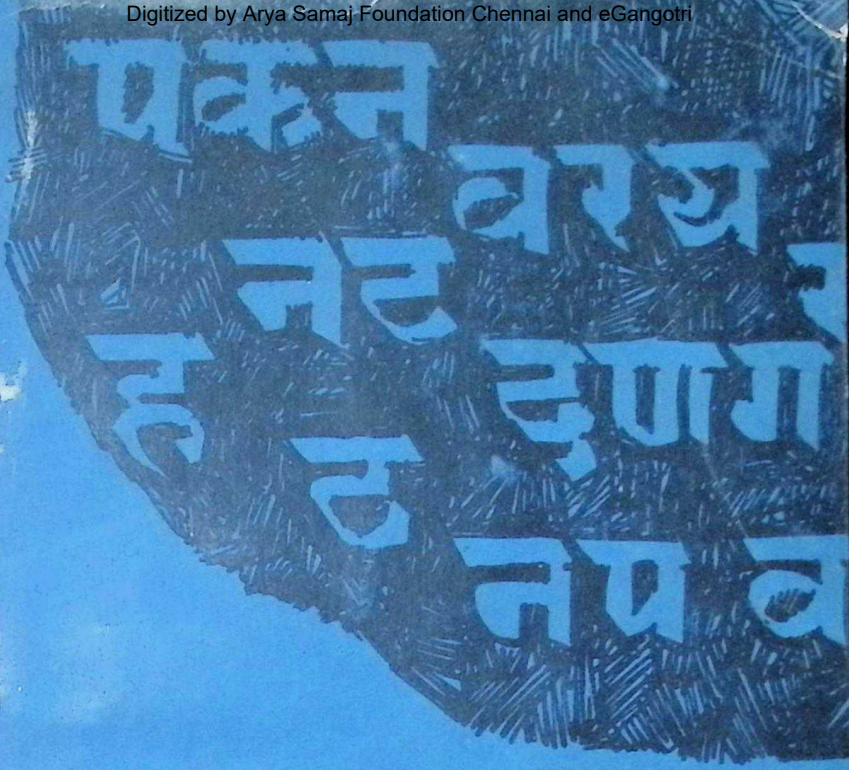

हिन्दीभाषा

डॉ. भोलानाथ तिवारी

किताब महल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
पुस्तकालय

विषय संख्या 60.9
पुस्तक संख्या ओ ४६ हि
आगत पंजिका संख्या प्र० ३

पुस्तक पर किसी प्रकार का निशान लगाना वर्जित है। कृपया १५ दिन से अधिक समय तक पुस्तक अपने पास न रखें। 70146

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

वर्ग संख्या 60.2 आ. सं. 70146
भो ४६ ई ५०३

पुस्तक-वितरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित १५वें दिन तक यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५ पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

13 OCT 1981	24 FEB 1984
V-124/11	
17 AUG 1982	
V-12/2	
23 AUG 1982	
V-12/2	
11 AUG 1983	
402/2	

लाक संख्या १९८४-१९८५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

70146

हिन्दी भाषा

R70.1, K46H
70146

डॉ० भोलानाथ तिवारी

किताब महल, इलाहाबाद
१९८१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम संस्करण : १९६६
द्वितीय संस्करण : १९७२
तृतीय संस्करण : १९७९
चतुर्थ संस्करण : १९८१

मूल्य : १८·०० रु०

R
60.1
Gurukul Kangri Vishwavidyalaya Library
पु० कालय
स्वविद्यालय

प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद।
मुद्रक—किताब महल (हो० डी०) प्रा० लि०, इलाहाबाद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो शब्द

हिंदी भाषा का यह संस्करण पूर्णतः संशोधित तथा विषय की दृष्टि से काफ़ी परिवर्धित है। पुस्तक चार खंडों में विभक्त है। पहला खंड, हिंदी भाषा के परिचय का है, जिसमें भारोपीय से लेकर सतम्, भारत-ईरानी, संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश होते हिंदी के उद्भव तक की कहानी कही गई है। साथ ही हिंदी बोलियों का परिचय भी दिया गया है। दूसरा खंड, हिंदी भाषा के इतिहास का है। इसमें हिंदी ध्वनियों, उपसर्ग-प्रत्यय, हिंदी रूप-रचना, वाक्य-रचना, हिंदी शब्द-भंडार तथा लिपि का ऐतिहासिक विकास है। साथ ही हिंदी भाषा पर अन्य भाषाओं के प्रभाव पर भी प्रकाश डाला गया है। तीसरा खंड, हिंदी संरचना का है, जिसमे ध्वनि, शब्द, रूप तथा वाक्य-स्तर पर हिंदी संरचना पर संक्षेप में विचार किया गया है। चौथा खंड, समस्याओं का है, जिसमें हिंदी भाषा की कुछ समस्याओं को समाधान के साथ लिया गया है।

विश्वास है पुस्तक, हिंदी भाषा के संबंध में अपेक्षित स्तरीय जानकारी के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

—भोलानाथ तिवारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

प्रथम खण्ड—हिन्दी भाषा का परिचय

१. भारोपीय परिवार और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ १–२८

भारोपीय परिवार—मूल स्थान, नाम, ध्वनि, व्याकरण, शब्द-समूह; शाखाएँ—केंतुम्-सतम्, भारत-ईरानी, शब्द-समूह, ईरानी, दरद, भारतीय; भारतीय आर्यभाषा—आर्यों के पूर्ववर्ती भारतीय—नेग्रिटो, ऑस्ट्रिक, किरात, द्रविड़; भारत में आर्यों का आगमन; प्राचीन आर्यभाषा—वैदिक संस्कृत, ध्वनियाँ, स्वराघात, रूप-रचना, समास, शब्द, बोलियाँ; संस्कृत या लौकिक संस्कृत—वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में अन्तर, बोलियाँ; मध्यकालीन आर्यभाषा—प्रथम प्राकृत—पालि—पालि भाषा का प्रदेश, साहित्य, ध्वनियाँ, स्वराघात, व्याकरण, बोलियाँ एवं भाषा-रूप; प्राकृत—प्राकृतों के भेद, शौरसेनी, पैशाची, माहाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी, केकय, टक्क, खस, ब्राचड, प्राकृत भाषाओं की कुछ सामान्य विशेषताएँ; तृतीय प्राकृत—अपभ्रंश, बोलियाँ, अपभ्रंशों की सामान्य विशेषताएँ; अवहट्ठ, अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का उद्भव; आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ—सिंधी, लहँदा, पंजाबी, हिंदी, गुजराती, मराठी, बँगला, असमी, उड़िया; आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण—ध्वनि, रूप-रचना, शब्द-समूह।

२. हिन्दी : क्षेत्र, उपभाषाएं तथा बोलियाँ २९–८१

पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी—अन्तर, ध्वनि, परसर्ग, मूल रूप, कारक-रूप, सर्वनाम, क्रिया-रूप; कौरवी (खड़ीबोली)—'खड़ीबोली' नाम, ध्वनियाँ, व्याकरण, क्रियाविशेषण; ब्रजभाषा—उद्भव और विकास, ध्वनियाँ, परसर्ग, कारक-रूप, सर्वनाम, क्रिया, ब्रजबुलि, पिंगल; हरियाणी—परसर्ग, कारक-रूप, सर्वनाम, क्रिया; बुंदेली—परसर्ग, कारक-रूप, सर्वनाम, क्रिया; ताज़ुज्बेकी; निमाड़ी; अवधी—उत्पत्ति और विकास, ध्वनियाँ तथा व्याकरण; बैसवाड़ी; बघेली; छत्तीसगढ़ी; राजस्थानी; डिंगल; पहाड़ी; कुमायूँनी; पश्चिमी पहाड़ी; बिहारी; भोजपुरी; मगही; मैथिली।

द्वितीय खण्ड—हिन्दी भाषा और लिपि का इतिहास

३. हिन्दी भाषा, उसका उद्भव तथा विकास ८३–१०४

हिन्दी भाषा—खड़ीबोली का विकास, खड़ीबोली के विभिन्न रूप—उर्दू, रेख्ता, रेक्ती, हिन्दुस्तानी, दक्खिनी, हिंदुई, 'हिन्दी' नाम—हिन्दी शब्द का अर्थ, विकास अथवा इतिहास; आदिकाल—ध्वनि, व्याकरण, शब्द-भण्डर, साहित्य में प्रयोग; मध्यकाल—ध्वनि, व्याकरण, शब्द-भण्डार, साहित्य में प्रयोग; आधुनिक काल—ध्वनि, व्याकरण, शब्द-भण्डार, साहित्य में प्रयोग।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. हिन्दी ध्वनियाँ— १०५–१४२

वैदिक ध्वनियाँ, पालि ध्वनियाँ, प्राकृत ध्वनियाँ, अपभ्रंश ध्वनियाँ, हिन्दी ध्वनियाँ—स्वर, हिन्दी स्वरों का वर्गीकरण—मात्रा के आधार पर, जीभ के भाग के आधार पर, हवा के नाक और मुँह के रास्ते निकलने के आधार पर, ओष्ठों की स्थिति के आधार पर, जीभ के उठाने के आधार पर, प्रकृति के आधार पर; व्यंजन, हिन्दी व्यंजनों का वर्गीकरण—स्थान के आधार पर, प्रयत्न के आधार पर, प्राणत्व के आधार पर, घोषत्व के आधार पर; हिन्दी ध्वनियों का औच्चारणिक विवरण; हिन्दी ध्वनियों का विकास : सामान्य नियम—हिन्दी ध्वनियों का विकास, सामान्य नियम; फ़ारसी; अंग्रेज़ी; संस्कृत—क्षतिपूरक दीर्घीकरण का नियम, केन्द्रीकरण का नियम; व्यंजन—मूल व्यंजन, संयुक्त व्यंजन, सम संयुक्त व्यंजन, विषम संयुक्त; त्रिव्यंजन, महाप्राणीकरण, मूर्धन्यीकरण, तालव्यीकरण; हिन्दी ध्वनियों का विकास; फ़ारसी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन—समान ध्वनियाँ, असमान ध्वनियाँ, विशेष परिवर्तन; अंग्रेज़ी ध्वनियों में परिवर्तन—समान ध्वनियाँ; असमान ध्वनियाँ, विशेष परिवर्तन, बलाघात ।

५. उपसर्ग तथा प्रत्यय १४३–१४८

उपसर्ग—तत्सम उपसर्ग, तद्भव उपसर्ग, अंग्रेज़ी उपसर्ग; प्रत्यय—तत्सम प्रत्यय, तद्भव प्रत्यय, देशज प्रत्यय, विदेशी प्रत्यय : फ़ारसी (अरबी), अंग्रेजी प्रत्यय ।

६. संज्ञा १४९–१५५

संज्ञा, लिंग, वचन, कारकीय रूप, परसर्ग ।

७. सर्वनाम १५६–१६४

पुरुषवाचक सर्वनाम, निश्चयवाचक सर्वनाम, प्रश्नवाचक सर्वनाम, सम्बन्धवाचक सर्वनाम, अनिश्चयवाचक सर्वनाम, निजवाचक सर्वनाम ।

८. विशेषण १६५–१७०

विशेषणों में परिवर्तन, विशेषणों के तुलनात्मक रूप; संख्यावाचक विशेषण—पूर्णांक संख्यावाचक विशेषण, अपूर्णांक संख्यावाचक विशेषण, क्रमसंख्यावाचक विशेषण, सार्वनामिक विशेषण, परिमाणवाचक विशेषण, गुणवाचक विशेषण ।

९. क्रिया १७१–१७९

धातु—अकर्मक, सकर्मक, प्रेरणार्थक, नामधातु; कृदन्त—विकारी कृदन्त अविकारी कृदन्त; सहायक क्रिया, काल-रचना—मूल काल, यौगिक काल; वाच्य; संयुक्त क्रिया ।

१०. अव्यय १८०–१८२

क्रियाविशेषण—सार्वनामिक क्रियाविशेषण—कालवाचक, स्थानवाचक, दिशावाचक, रीतिवाचक; अन्य क्रियाविशेषण—समुच्चयबोधक, सम्बन्धबोधक, विस्मयादिबोधक ।

११. शब्द-भण्डार १८३–१८९

तत्सम शब्द, तद्भव शब्द, विदेशी, आगत अथवा गृहीत शब्द; अर्धतत्सम शब्द; संकर शब्द; हिन्दी शब्द-भण्डार पर ऐतिहासिक दृष्टि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२. वाक्य १८९–१९१

पदक्रम, अन्वय, वाक्य-भेद।

१३. हिन्दी भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव १९२–२०१

ध्वनि, उपसर्ग, प्रत्यय, शब्द-समूह, रूप, वाक्य-रचना, फ़ारसी प्रभाव, अंग्रेज़ी प्रभाव, विराम चिह्न, मुहावरे––पश्तो, तुर्की, फ़ारसी, अंग्रेज़ी; लोकोक्ति––संस्कृत, पश्तो, तुर्की, फ़ारसी, अंग्रेज़ी।

१४. देवनागरी लिपि और अंक २०२–२०८

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति और उसका विकास, नागरी लिपि––नाम, नागरी का विकास, वैज्ञानिक लिपि के गुण और देवनागरी, नागरी लिपि में सुधार; नागरी अंक––प्राचीन शैली, नवीन शैली।

तृतीय खण्ड––हिन्दी भाषा की संरचना

१५. ध्वनि-संरचना २०९–२२७

हिन्दी की स्वनिम-व्यवस्था, स्वनिमविज्ञान, स्वनिम के भेदोपभेद; हिन्दी स्वनिम––स्वर स्वनिम, व्यंजन स्वनिम; कुछ विवादास्पद व्यंजन स्वनिम, केन्द्रीय स्वनिम तथा परिधीय स्वनिम, खण्ड्येतर स्वनिम; आक्षरिक संरचना; बलाघात, आक्षरिक बलाघात; अनुतान (सुरलहर); हिन्दी संधियाँ, केवल उच्चारण में प्रयुक्त कुछ प्रमुख हिन्दी संधियाँ, लेखन में प्रयुक्त संधियाँ।

१६. रूप-संरचना २२८–२६५

संज्ञा—संज्ञा के कारकीय रूप, हिन्दी के बहुवचन-प्रत्ययों का रूपमिक विश्लेषण; सर्वनाम––सर्वनाम के कारकीय रूपों की संरचना, हिन्दी सर्वनामों का रूपमिक विश्लेषण; विशेषण; तुलना––हिन्दी की अपनी अयोग्यात्मक पद्धति, संस्कृत की संयोगात्मक पद्धति, फ़ारसी की संयोगात्मक पद्धति; प्रविशेषण; क्रिया; धातु—मूल धातु, यौगिक धातु; मुख्य क्रिया, सहायक क्रिया, यौगिक क्रिया; अकर्मक-सकर्मक; नाम धातु––संज्ञा से, सर्वनाम से, विशेषण से, क्रियाविशेषण से; अकर्मक से सकर्मक तथा सकर्मक से अकर्मक––अकर्मक से सकर्मक बनाने की मुख्य प्रक्रियाएँ, सकर्मक से अकर्मक बनाने की प्रमुख प्रक्रियाएँ; प्रेरणार्थक धातु और क्रिया; प्रेरणार्थक धातु : रूप-रचना के स्तर पर, प्रेरणार्थक क्रिया; वाक्य स्तर पर; हिन्दी धातुएँ––अकर्मक, सकर्मक तथा प्रेरणार्थक की दृष्टि से; कृदन्त—वर्तमानकालिक कृदन्त, भूतकालिक कृदन्त, क्रियार्थक संज्ञा, पूर्वकालिक कृदन्त; सहायक क्रिया—निश्चयार्थ, संभावनार्थ, संदेहार्थ, आज्ञार्थ, संकेतार्थ; वाच्य; प्रयोग—कर्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग, भावे प्रयोग; वाच्य और प्रयोग, पक्ष––अपूर्ण पक्ष, पूर्ण पक्ष, क्रियापद-रचना, वृत्तिक क्रिया, संयुक्त क्रिया, नामिक क्रिया, यौगिक क्रिया; अव्यय; क्रिया-विशेषण; क्रियाविशेषणों में परिवर्तन, सम्बन्धसूचक, समुच्चयबोधक––समानाधिकरण, व्यधिकरण, विस्मयादिबोधक।

१७. वाक्य-संरचना २६६–२७४

उद्देश्य-विधेय, पदबन्ध––संज्ञा पदबन्ध, सर्वनाम पदबन्ध, विशेषण पदबन्ध, क्रिया पदबन्ध, क्रियाविशेषण पदबन्ध, सम्बन्धबोधक पदबन्ध, समुच्चयबोधक पदबन्ध, विस्मयादिबोधक पदबन्ध; वाक्य के प्रकार––रचना के आधार पर—सरल वाक्य, उपवाक्य, मिश्र वाक्य, संयुक्त वाक्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८. शब्द-रचना २७५–२८७

उपसर्ग--तत्सम उपसर्ग, तद्भव उपसर्ग, विदेशी उपसर्ग; प्रत्यय; समास—अव्ययीभाव, तत्पुरुष, द्वन्द्व, बहुव्रीहि; समास में ध्वनि-परिवर्तन; भाव-वाचक संज्ञाओं की रचना, विशेषणों की रचना, क्रियाविशेषणों की रचना।

चतुर्थ खण्ड—हिन्दी-भाषा की समस्याएँ

१९. हिन्दी वर्तनी २९१–३०६

हिन्दी वर्तनी की समस्या, मिलाना-अलगाना—कारक-चिह्न, समस्त पदयोजक चिह्न, हिन्दी वर्तनी की अशुद्धियों के कारण—शुद्ध उच्चारण के ज्ञान का अभाव, नागरी लिपि और उसके प्रयोग-विषयक समुचित जानकारी का अभाव, परम्परागत वर्तनी के ज्ञान का अभाव, संधि एवं शब्द-रचना के नियमों की जानकारी न होना; व्याकरणिक रूपों का ज्ञान न होना, सर्वस्वीकृत रूप का अभाव, लिपि की अस्पष्टता, अंग्रेज़ी वर्तनी का प्रभाव, पंचम नासिक्य व्यंजन और अनुस्वार का प्रयोग; लेखन में अंकों का प्रयोग; मूलतः अशुद्ध किन्तु अब शुद्ध माने गए रूप; कुछ अंग्रेज़ी शब्दों की वर्तनी।

२०. हिन्दी भाषा का मानकीकरण ३०७–३१०

चयन, प्रसार, प्रयोग, स्वीकृति।

२१. हिन्दी की शैलियाँ और परिवर्त ३११–३२०

२२. प्रयोजनमूलक हिन्दी ३२१–३२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम खण्ड

हिन्दी भाषा का परिचय

१—भारोपीय परिवार और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएं
२—हिन्दी : क्षेत्र, उपभाषाएं तथा बोलियां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १

भारोपीय परिवार और आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ

भारोपीय परिवार

संसार में कुल लगभग तीन हज़ार भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें बहुत-सी भाषाएँ पारिवारिक रूप में आपस में सम्बद्ध हैं, अर्थात् वे मूलतः किसी एक भाषा से ही निकली हैं। ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द-समूह का तुलनात्मक अध्ययन-विश्लेषण करके तथा भौगोलिक निकटता का विचार करके विद्वानों ने भाषाओं के पारिवारिक संबंधों का पता लगाया है। इस समय संसार में मुख्यतः कुल लगभग बारह-तेरह परिवार हैं—द्रविड़, चीनी, सेमेटिक, हेमेटिक, आग्नेय, यूराल-अल्टाइक, बांटू, अमरीकी (रेड इंडियन), काकेशस, सूडानी, बुशमैन, जापानी-कोरियाई तथा भारोपीय। हिन्दी का सम्बन्ध भारोपीय परिवार से ही है, अतः उसे यहाँ लिया जा रहा है।

यह परिवार मुख्यतः भारत तथा यूरोप और उसके आसपास फैला हुआ है, अतः इसे भारत-यूरोपीय या संक्षेप में भारोपीय कहते हैं।

मूल स्थान—इस परिवार की भाषाओं के बोलने वाले मूलतः कहाँ के थे, इस बात को लेकर बड़ा विवाद है। कुछ लोग इन्हें मूलतः भारत का मानते हैं, तो कुछ मध्य एशिया का; कुछ लोग यूरोप का, तो कुछ लोग यूरोप-एशिया की सीमा पर किसी स्थान का। आजकल सर्वाधिक मान्य मत ब्रान्देश्ताइन का है, जिनके अनुसार इन लोगों का मूल स्थान यूराल पर्वत के दक्षिण-पूर्व में स्थित किरगीज का मैदान था। इस निष्कर्ष तक पहुँचने में ब्रान्देश्ताइन ने अन्य अनेक शास्त्रों और विज्ञानों के अतिरिक्त भाषाविज्ञान, मुख्यतः ऐतिहासिक अर्थविज्ञान, से सहायता ली थी।

नाम—इस परिवार को समय-समय पर 'इंडो-जर्मनिक', 'इंडो-केल्टिक', 'आर्य' आदि कई नामों से अभिहित किया गया है, किन्तु अब 'भारोपीय' (इंडो-यूरोपियन) नाम ही विशेष रूप से चलता है।

यों हित्ती भाषा के पता चलने तथा उस पर खोज होने के उपरान्त सामान्य मान्यता कुछ यह है कि मूलतः यह परिवार 'भारत-हित्ती' था, जिसकी दो शाखाओं ('मूल एनाटोलियन' तथा 'भारोपीय') में एक 'भारोपीय' थी।

ध्वनि—स्वर : अतिह्रस्व : अ

ह्रस्व : अ, इ, उ, ऋ, ऌ, एँ, ओँ, नृँ, मृँ
दीर्घ : आ, ई, ऊ, कृ, ऌ, ए, ओ, न, म
व्यंजन : स्पर्श : कंठ्य तालव्य : कृ, ख, ग, घ, ङ (य-युक्त)
कंठ्य जिह्वामूलीय : क, ख, ग, घ, ङ
कंठोष्ठ्य : क, ख, ग, घ, ङ (व-युक्त)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दंत्य : त, थ, द, ध, न
ओष्ठ्य : प, फ, ब, भ, म

कंपनजात : तालव्य : र
पार्श्विक : दंत्य : ल
ऊष्म : दंत्य : स, ज़

संदिग्ध ध्वनियाँ

संघर्षी : ह़, ह, थ़, द़, ख़, ग़, झ़

व्याकरण—(क) मूल भारोपीय भाषा का व्याकरण अत्यन्त जटिल था। रूप बहुत अधिक थे। अपवादों की संख्या बहुत अधिक थी। (ख) संज्ञा के रूप आठ थे जो प्रत्ययों एवं अपश्रुति की सहायता से बनते थे। (ग) लिंग तीन थे—पुल्लिग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग। उस समय तक प्रत्यय पूर्णतः लिंगानुसार अलग अलग न थे। एक ही प्रत्ययांत शब्द विभिन्न लिंगों में आते थे। (घ) वचन तीन थे—एक, द्वि, बहु। प्रारम्भ में द्विवचन का प्रयोग युगलवाची शब्दों तक ही सीमित था। बाद में उसका परवर्ती प्रयोग विकसित हुआ। (ङ) दस उँगलियों से गणना आरम्भ करने के कारण संख्याओं की दाशमलविक प्रणाली थी। आरम्भ में १० तक, फिर १०० तक और फिर १००० तक की गणना का विकास हुआ। (च) क्रिया में तीन वचन (एक, द्वि, बहु), तीन पुरुष, दो पद (आत्मने, परस्मै) थे। काल एवं क्रियार्थ (mood) का बोध नहीं था। अविकसित मस्तिष्क के लिए इसकी आवश्यकता भी नहीं थी। वाच्य केवल एक था—कर्तृवाच्य। कर्मवाच्य का विकास बहुत बाद में हुआ है। प्रेरणार्थक (causative), पौनःपुन्यार्थक (frequentative), तथा इच्छार्थक (desiderative) भी, स्पष्टतः, काफ़ी बाद में विकसित हुए। उत्तरावस्था में पाँच क्रियार्थ (mood)—निश्चयार्थ (indicative), आज्ञार्थ (imperative), सम्भावनार्थ (subjunctive), आदरार्थ आज्ञार्थ (optative), तथा विध्यर्थ (injunctive) एवं चार काल—वर्तमान या लट् (present), अनद्यतन भूत या लङ् (imperfect), अनिर्दिष्ट भूत या लुङ् (aorist), तथा परोक्ष भूत या लिट् (perfect) विकसित हो गए थे। इस प्रकार शुद्ध काल की दृष्टि से भारोपीय में केवल वर्तमान एवं भूत ही थे। भविष्य की स्वतन्त्र सत्ता नहीं थी। उसके लिए सम्भावनार्थ (subjunctive) का ही प्रयोग होता था। (छ) क्रिया की विशेषता दर्शित करने के लिए स्वतन्त्र शब्दों का प्रयोग होता था। ये ही आगे चलकर उपसर्ग हो गए। संस्कृत के प्र, परा आदि २१ उपसर्ग इन्हीं के वंशज हैं। कहना न होगा कि इन शब्दों की स्वतन्त्र सत्ता वैदिक काल तक मिलती है। वे क्रिया से पूर्व या बाद में आ सकते हैं, या कोई दूसरा शब्द भी उनके एवं क्रिया के बीच आ सकता है। बहुत बाद में ये नियमतः धातु के पूर्व जोड़े जाने लगे। (ज) आज अव्यय कहे जाने वाले शब्द भी, मूल भारोपीय में थे, यद्यपि उनमें अव्ययता नहीं थी, अर्थात् उनके रूप में परिवर्तन होते थे। बाद में ये अपरिवर्तनशील या अव्यय बन गए।

शब्द-समूह—भारोपीय भाषा के अपने शब्द तो थे ही, इसने अन्य भाषाओं से भी अनेक शब्द लिये, जैसे सुमेरी भाषा से 'गुद' (>अं० cow, सं० गौ, हिं० गाय) तथा 'उरुदु' (>सं० लौह, हिं० लोहा) तथा अक्कादी से 'पिलक्कु' (>सं० परशु) आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाखाएँ : कॅंतुम्-सतम्—भारोपीय परिवार की भाषाओं को 'सतम्' एवं 'कॅंतुम्' दो वर्गों में रखते हैं। पहले-पहल अस्कोली ने १८७० ई० में विद्वानों के समक्ष यह विचार रखा कि मूल भारोपीय भाषा के कण्ठ-तालव्य 'क्' (अथवा 'क्यू') का परवर्ती भाषाओं में विकास दो दिशाओं में हुआ। कुछ में तो यह 'क्' हो गया और कुछ में ऊष्म (श्, स् आदि)। इसी आधार पर बान ब्रैंडके ने इस परिवार के 'सतम्' (जिनमें 'स', 'श' आदि हैं) तथा 'कॅंतुम्' (जिनमें 'क' है) दो वर्ग बनाए। यह अन्तर 'सौ' के लिए प्रयुक्त शब्दों में बहुत स्पष्ट है, अतः लैटिन से 'सौ' का वाचक 'कॅंतुम्' एवं अवेस्ता से 'सौ' का वाचक 'सतम्' लेकर इन दोनों का नामकरण किया गया। भारोपीय क्यम्तोम् (k̂mtom) का विकास इन भाषाओं में—

सतम् वर्ग	कॅंतुम् वर्ग
अवेस्ता सतम्	लैटिन कॅंतुम्
संस्कृत शतम्	ग्रीक हेक्तोन
फ़ारसी सद	पुरानी आयरिश केत्
लिथुआनियन शितस्	
रूसी स्तो	तोखारियन कन्ध
बल्गेरियन सुतो	इतालवी कॅंतो

इस प्रकार हुआ है। इस तरह सतम् में जहाँ स् या श् है, कॅंतुम् में 'क्'। कंठ-तालव्य ग, घ में भी कुछ इस प्रकार की प्रवृत्ति है। इन दो के अतिरिक्त एक और भी अन्तर है। मूल भारोपीय का कंठोष्ठ्य कवर्ग (क्व्, ग्व् आदि) कॅंतुम् में कई भाषाओं में प्रायः सुरक्षित है, किन्तु सतम् में उसका ओष्ठत्व समाप्त हो गया है; जैसे मूल भारोपीय kwo का लैटिन quo, गोथिक ख्वस्, हित्ती क्विश्, किन्तु सं० कः, रूसी क्तो, लिथु० कस् इत्यादि।

कॅंतुम् में तोखारियन, केल्टिक, जर्मनिक, इटैलिक, ग्रीक तथा इलीरियन आती हैं तो सतम् में अल्बानियन, आर्मीनियन, बाल्टो-स्लाविक, थ्रेसो-फ्रीजियन तथा भारत-ईरानी।

भारत-ईरानी—भारोपीय की इस दिशा शाखा को 'आर्यशाखा' भी कहते हैं। भारतीय आर्य तो अपने को आर्य कहते ही थे, ईरानी भी अपने को इसी नाम से पुकारते थे। इसका अवेस्ता-रूप 'अइर्य' (airya) है। इस प्रसंग में यह भी उल्लेख्य है कि इसी शब्द के सम्बन्ध कारक के बहुवचन रूप 'अइर्यन' (airyana) से पहलवी में 'एरान' (eran) होता 'ईरान' शब्द (सं० आर्याणाम्) विकसित हुआ है। अतः 'आर्य' नाम 'भारत-ईरानी' के लिए बहुत उपयुक्त है।

अपने मूल स्थान से चलकर भारत-ईरानी लोग ओक्सस-घाटी के पास आए और वहाँ से फिर उनका एक वर्ग ईरान चला गया, दूसरा कश्मीर तथा आसपास एवं तीसरा भारत। भारत-ईरानी शाखा के बारे में तीन प्रकार के मत हैं। स्टेन-कोनोव इसकी केवल भारतीय और ईरानी, दो शाखाएँ मानते हैं, और दरद को ईरानी के ही अन्तर्गत रखते हैं। दूसरी ओर ज़ूल ब्लाक तथा कुछ अन्य विद्वान् भी इसकी दो ही शाखाएँ मानते हैं, किन्तु दरद को भारतीय शाखा में स्थान देते हैं। तीसरा मत ग्रियर्सन का है जो भारत-ईरानी की तीन शाखाएं मानते हैं—भारतीय,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईरानी, दरद। इसमें कोई संदेह नहीं कि दरद में अनेक बातें ईरानी के समान हैं, तथा अनेक अन्य बातें भारतीय के समान हैं, किन्तु कुछ बातें ऐसी भी हैं जो दोनों से अलग हैं। ऐसी स्थिति में उसे एक अलग शाखा मानना ही अधिक समीचीन है। इस प्रकार भारत-ईरानी या आर्यशाखा की तीन उपशाखाएँ हैं—ईरानी, दरद तथा भारतीय आर्यभाषा।

शब्द-समूह—परम्परागत शब्द-समूह के अतिरिक्त, भारत-ईरानी भाषियों ने उन संस्कृतियों से भी शब्द लिये, जिनके सम्पर्क में वे आए। उदाहरणार्थ, असीरियन से उन्होंने 'असुर' तथा 'मन' शब्द लिये। यही 'असुर' शब्द संस्कृत में 'असुर' रूप में मिलता है, जिसमें से भ्रामक व्युत्पत्ति के कारण 'अ' निकालकर देववाची 'सुर' शब्द बना लिया गया। 'मन' (४० सेर) शब्द भी मूलतः असीरी ही है। यह वैदिक संस्कृत में 'मना' रूप में आया है। सामी भाषाओं में यह 'मन' या 'मिनह्' रूप में मिलता है। फ़िनो-उग्रिक लोगों के सम्पर्क में आने पर एक ओर तो भारत-ईरानियों ने उन्हें 'सत' (१००), असुर, वज्र, वराह आदि शब्द दिए तो दूसरी ओर उन्होंने फ़िनो-उग्रिक से कफ, कूप (कुआँ), शलाका, एक (१) आदि शब्द लिए।

तो जैसा कि ऊपर संकेत किया गया, भारत-ईरानी की तीन शाखाएं हुईं—(क) **ईरानी**—जिसमें प्राचीन फ़ारसी, अवेस्ता, पहलवी, फ़ारसी आदि आती हैं। (ख) **दरद**—जिसमें कश्मीरी, शिणा, चित्राली आदि आती हैं। (ग) **भारतीय**—जिसमें भारत की आर्यभाषाएं आती हैं, जिन पर आगे विस्तार से विचार किया जायगा।

भारतीय आर्यभाषा

भारत में आर्यों के आने के बाद से उनकी भारतीय आर्यभाषा का इतिहास शुरू होता है। इस प्रसंग में सबसे पहले उन लोगों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी अपेक्षित है, जो आर्यों के आने के पूर्व भारत में आ चुके थे।

आर्यों के पूर्ववर्ती भारतीय

आर्यों के आने के पूर्व भारत में कौन-कौन-सी जातियां रहती थीं, यह प्रश्न भी प्रस्तुत प्रसंग में विचारणीय है, क्योंकि उनकी भाषाओं ने हमारी भाषिक धारा को विभिन्न स्तरों पर अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। विभिन्न क्षेत्रों में अधुनातम शोधों से यह बात प्रायः सिद्ध हो चुकी है कि किसी भी ऐसी जाति का पता अब तक नहीं चला है जिसे मूलतः भारत-भूमि का निवासी माना जा सके। यहाँ की छोटी-बड़ी प्रायः सभी जातियाँ, समय-समय पर बाहर से ही आईं, जिनमें से प्रमुख चार हैं—

(क) **नेग्रिटो**—यह प्राचीनतम जाति है जिसका भारत-भूमि पर पता चलता है। नेग्रिटो मूलतः अफ्रीका के निवासी थे और ये दक्षिणी अरब, ईरान होते भारत आए थे। प्रारम्भ में ये लोग प्रायः पूरे भारत में फैल गए थे, फिर इनसे से कुछ असम, बरमा होते अंदमान जा पहुँचे। इस समय फ़िलीपीन के नेग्रिटो, दक्षिणी बलूचिस्तान के कुछ लोगों, दक्षिण भारत की तमिलभाषी पनियर, कदिर, कुरुम्बा, इरुला आदि छोटी-मोटी जातियों, असम के मंगोली किरातों, तथा अंदमान के पाँच-छः सौ व्यक्तियों (जो अब तक अपनी भाषा का प्रयोग करते हैं) के रूप में ही इनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवशेष हैं। पीपल की पूजा तथा धनुष-बाण का प्रयोग भारतीय संस्कृति को इनकी देन है। इनकी भाषा का कोई विशेष अवशेष, प्रभाव रूप में, भारतीय भाषाओं में नहीं रह गया है। आधुनिक भारतीय भाषाओं में 'बाद' या 'बादुड़' ही एक ऐसा शब्द है जो इनका माना जाता है। यह बँगला में 'बादुड़' तथा पुरानी बँगला में 'बादुड़ी' है। बिहारी 'चमदड़िया', 'गादुर', हि० 'चमगादड़', पंजा० 'चमगिद्दड़' भी अंशतः उसी से सम्बद्ध हैं।

(ख) ऑस्ट्रिक--नेग्रिटो लोगों के बाद आस्ट्रिक आए। पहले लोगों का यह विचार था कि ये लोग दक्षिणी चीन तथा उत्तरी हिन्दचीन के निवासी थे तथा असम के रास्ते भारत में आए थे, किन्तु अब इनका मूल स्थान भूमध्यसागर माना जाता है। ये ईराक, ईरान होते भारत आए तथा इंडोनेशिया होते आस्ट्रेलिया पहुँच गए। वहाँ अब भी ये लोग हैं। भारत की कोल, मुण्डा, खासी, मोनख्मेर, निकोबारी आदि भाषाएँ इन्हीं की हैं। पान, सुपारी, धान, लौकी, बैंगन, हल्दी, केला, अदरक, हाथी को पालतू बनाना, कुत्ता, सुअर, मुर्गी पालना, नारियल, कपास तथा उससे कपड़े बनाना, सिंदूर, २० पर आधारित गिनती (कोड़ी शब्द इन्हीं का है) एवं पुनर्जन्मवाद भारतीय संस्कृति को इनकी देन है। ऑस्ट्रिक भाषाओं ने भारतीय आर्यभाषाओं, विशेषतः पूर्वी भारत की भाषाओं को कई रूपों में प्रभावित किया है। कार्पास, कदली, बाण, ताम्बूल, पिनाक, गंगा, लिंग, कम्बल आदि अनेक शब्द मूलतः ऑस्ट्रिकों से ही हमें मिले हैं। अनुकरणात्मक शब्द बनाने की परम्परा भी कदाचित् इन्हीं से भारतीय भाषाओं में आई है।

(ग) किरात--ऑस्ट्रिक लोगों के बाद किरात भारत में आए। ये लोग मूलतः याङ्त्सी-क्यांग नदी के मुहाने के पास के रहने वाले आदिमंगोल थे। इन्हीं की एक शाखा चीनी सभ्यता एवं संस्कृति की निर्माता बनी। इनकी एक शाखा भारत आई और उत्तरी पहाड़ी भागों, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य भारत, बिहार, आसाम, बंगाल एवं उड़ीसा में फैल गई। यजुर्वेद तक में इनका उल्लेख मिलता है, जिससे पता चलता है कि ये लोग काफ़ी पहले आ चुके थे। अब ये लोग केवल हिमाचल प्रदेश, नेपाल, भूटान, आसाम, मनीपुर तथा उत्तरी बंगाल में हैं। इनकी प्रमुख भाषाएँ मेइथेइ, कचिन, नगा, गारो, बोड़ो, लोलो, कुकीचिन, लेप्चा, तथा नेवारी आदि हैं। भारत में आने पर ये लोग भाषा तथा संस्कृति के क्षेत्र में ऑस्ट्रिकों से प्रभावित हुए, तथा बाद में इन लोगों ने द्रविड़ों तथा आर्यों को प्रभावित किया। भारतीय तन्त्रशास्त्र इनसे प्रभावित माना जाता है। खोखा (मछली का जाल; हिन्दी, पंजाबी का खोखा भी यही है, लकड़ी का छोटा घर या बक्स), फेटा (झुकाव; हिन्दी फेंटा (धोती का) भी यही है) आदि शब्द इन्हीं के हैं।

(घ) द्रविड़--भारत में आनेवाली तीसरी जाति द्रविड़ों की थी। इसके मूल स्थान के सम्बन्ध में विवाद है। सभी बातों पर ध्यान देते हुए मेरे विचार में इनका मूल स्थान अफ्रीका है। वहाँ से ये लोग भूमध्यसागर आए, और फिर ईरान, अफ़गानिस्तान से लेकर पूर्वी भारत (आसाम, बंगाल) तक फैल गए। कभी लोगों का विचार था कि केवल हड़प्पा-मोहनजोदड़ो, अर्थात् उत्तरी-पश्चिमी भारत में ही इनका केन्द्र था, किन्तु इधर लोथल (गुजरात), उरिव्लना (मेरठ) तथा कालिबाँगन आदि में इनके अवशेष, पूर्वी भारत में भी अनेक स्थानों के नामों में इनके भाषिक तत्त्व,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा इनकी भाषाओं का अनेक क्षेत्रों में मिलना, इनके प्रायः पूरे उत्तर भारत में फैले होने के प्रमाण हैं। आज तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम के अतिरिक्त तुलु, कोडगु, कोलमी, टोडा, गोंड (मध्य भारत), खन्द (उड़ीसा), ओरावें (बिहार आदि), ब्राहुई (बलूचिस्तान) तथा माल्तो (राजमहल की पहाड़ियाँ) आदि इनके बृहत् भाषा-क्षेत्र के अवशेष हैं। संस्कृत साहित्य में द्रविड़ों को 'दास', 'दस्यु' तथा 'शूद्र' नामों से पुकारा गया है। आरम्भ में ये नाम जातिवाची थे, किन्तु बाद में इनमें अर्थापकर्ष हो गया और ये गुलाम, डाकू तथा अछूत आदि के वाचक हो गये। हिन्दू-धर्म के शिव-पार्वती, देवी, हनुमान, कार्तिकेय, गरुड़, मृत्यु के बाद का पिंडदान-संस्कार आदि मूलतः द्रविड़ ही हैं। भाषा के क्षेत्र में आर्यभाषाओं पर द्रविड़-प्रभाव पर्याप्त है। इस प्रभाव को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—ध्वनि, व्याकरण, शब्द। ध्वनियों के क्षेत्र में इनकी सबसे बड़ी देन भारत में आने के बाद आर्यभाषा में टवर्ग का विकास है। व्याकरणिक क्षेत्र में संयुक्त क्रियाओं (ये प्रयोग संस्कृत से पालि में, पालि से प्राकृत में तथा प्राकृत से अपभ्रंश में और अपभ्रंश से आधुनिक भाषाओं में बढ़ते गए हैं) का अत्यधिक प्रयोग, परसर्गों का प्रयोग तथा तुलनात्मक विशेषण में अपादान परसर्ग का प्रयोग आदि द्रविड़ भाषाओं के ही प्रभाव हैं। पूर्वकालिक क्रियाओं का अधिक प्रयोग मूलतः ऑस्ट्रिकों की देन है, किन्तु यह प्रभाव आधुनिक आर्यभाषाओं में प्रमुखतः द्रविड़ माध्यम से ही आया जान पड़ता है। द्रविड़ से भारतीय आर्यभाषाओं में बहुत से शब्द आए हैं। उदाहरणार्थ, अणु, कला, गण, नाना (अनेक), पुष्प, बीज, रात्रि, सायं, तंडुल, मर्कट, शव, श्रेष्ठिन् (सेठ), झड़ी (वर्षा की), झगड़ा, सीप, खूंटा, आदि। प्रतिध्वन्यात्मक शब्द (घोड़ा-वोड़ा, किताब-सिताब, चाय-शाय आदि) भी द्रविड़ों की देन हैं।

भारत में आर्यों का आगमन

भारतीय आर्य, ईरानियों एवं दरद लोगों से अलग होकर १५०० ई०पू० के आसपास पश्चिमी एवं पश्चिमोत्तर सीमा से भारत में प्रविष्ट हुए। इस प्रसंग में एक प्रश्न उठाया गया है कि वे एक बार में ही आ गए या कई बार में। हार्नले का कहना था कि वे दो बार आए। पूर्ववर्ती आर्य मध्यदेश में आ बसे थे। बाद में आनेवाले आर्यों ने आकर उनका स्थान ले लिया और पूर्वागतों को उत्तर, दक्षिण, पश्चिम, पूरब ढकेल दिया। इसके अनुसार पूर्ववर्ती आर्य भौगोलिक दृष्टि से 'बाहरी' हो गए तथा परवर्ती आर्य 'भीतरी'। हार्नले का यह विचार था कि परवर्ती आर्य ही वैदिक संस्कृति के निर्माता थे। प्रायः हार्नले के इस सिद्धान्त के साथ ग़लती से ग्रियर्सन का नाम जोड़ दिया गया है, और दोनों को मिलाकर इसे हार्नले-ग्रियर्सन का 'दो आक्रमणों वाला सिद्धान्त' (Two Invasion Theory) कहा गया है। ग्रियर्सन ने इसका स्पष्ट शब्दों में विरोध (लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ़ इण्डिया, खण्ड १, भाग १, पृष्ठ ११६) करते हुए कहा है कि अलग-अलग आक्रमणों की कल्पना मैं अनावश्यक मानता हूँ। हाँ, ग्रियर्सन ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष अवश्य निकाला था कि भाषाओं के 'भीतरी' और 'बाहरी' दो वर्ग बनते हैं। उनका कहना था कि बाहरी शाखा की भाषाएँ अनेक भाषिक बातों में भीतरी शाखा से अलग हैं। इस प्रसंग में उन्होंने यह भी संकेत किया है कि बाहरी शाखा, जिन बातों में भीतरी से अलग है, उन्हीं में वह दरद भाषाओं के समीप है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका आशय यह है कि बाहर की शाखा तथा दरद लोगों के मूलतः एक वर्ग के होने की सम्भावना है।

भारत में आर्यभाषा का प्रारम्भ १५०० ई०पू० के आसपास से होता है। तब से आज तक, भारतीय आर्यभाषा की आयु साढ़े तीन हजार वर्षों की हो चुकी है। भाषिक विशेषताओं के आधार पर भारतीय आर्यभाषा की इस लम्बी आयु को तीन कालों में बाँटा गया है--

(१) प्राचीन आर्यभाषा (प्राभाआ) १५०० ई०पू०—५०० ई०पू०

(२) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (मभाआ) ५०० ई०पू०--१००० ई०

(३) आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (आभाआ) १००० ई०—अब तक

प्राचीन आर्यभाषा

आर्य जब भारत में आए, उस समय उनकी भाषा तत्कालीन ईरानी भाषा से कदाचित् अलग नहीं थी। किन्तु जैसे-जैसे यहाँ के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रभाव, विशेषतः आर्येतर लोगों से मिश्रण के कारण, पड़ने लगे, भाषा परिवर्तित होने लगी। इस प्रकार वह अपनी भगिनी-भाषा ईरानी से कई बातों में अलग हो गई। भारतीय आर्यभाषा का प्राचीनतम रूप वैदिक संहिताओं में मिलता है। इसमें रूपाधिक्य है, नियमितता की अपेक्षाकृत कमी है और अनेक प्राचीन शब्द हैं जो बाद में नहीं मिलते। वैदिक संहिताओं का काल मोटे रूप में १२०० ई०पू० से ९०० ई०पू० के लगभग है। यों वैदिक संहिताओं की भाषा में भी एकरूपता नहीं है। कुछ की भाषा बहुत पूर्ववर्ती है, तो कुछ की परवर्ती। उदाहरणार्थ, अकेले ऋग्वेद में ही प्रथम और दसवें मण्डलों की भाषा तो बाद की है, और शेष की पुरानी। यही पुरानी भाषा अवेस्ता के अपेक्षाकृत निकट है। अन्य संहिताएँ (यजुः, साम, अथर्व) और बाद की हैं। वैदिक संहिताओं की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा से कुछ भिन्न हैं, क्योंकि यह काव्य-भाषा है। उस समय तक आर्यों का केन्द्र सप्तसिन्धु या आधुनिक पंजाब था, यद्यपि पूर्व में वे बहुत आगे तक पहुँच गए थे। ब्राह्मणों-उपनिषदों की भाषा कुछ अपवादों को छोड़कर संहिताओं के बाद की है। इसमें उतनी जटिलता एवं रूपाधिक्य नहीं है। इनके गद्यभाग की भाषा तत्कालीन बोलचाल की भाषा के बहुत निकट है। इस समय तक आर्यों का केन्द्र मध्यदेश हो चुका था, यद्यपि इधर की भाषा उत्तरी जितनी शुद्ध नहीं थी। इस भाषा का काल ९०० ई०पू० से बाद का है। भाषा का और विकसित रूप सूत्रों में मिलता है। इसका काल ७०० ई०पू० से बाद का है। यह संस्कृत पाणिनीय संस्कृत के काफ़ी पास पहुँच गई है, यद्यपि उसमें पाणिनीय संस्कृत की एकरूपता नहीं है। इसी काल के अन्त में, लगभग ५वीं सदी में, पाणिनि ने अपने व्याकरण में, उदीच्य में प्रयुक्त संस्कृत के रूप से, अपेक्षाकृत अधिक परिनिष्ठित एवं पण्डितों में मान्य रूप को नियमबद्ध किया, जो सदा-सर्वदा के लिए लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत का सर्वमान्य आदर्श बन गया। पाणिनि की रचना के बाद बोलचाल की भाषा पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, आधुनिक भाषाओं के रूप में विकास करती आज तक आई है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु संस्कृत में साहित्य-रचना भी इसके समानान्तर ही होती चली आ रही है, जो मूलतः पाणिनीय संस्कृत होने पर भी हर युग की बोलचाल की भाषा का अनेक दृष्टियों से कुछ प्रभाव लिये हुए है, और यही कारण है कि बोलचाल की भाषा न होने पर भी, उस साहित्यिक संस्कृत में भी विकास होता आया है। भाषा के जानकारों से यह बात छिपी नहीं है कि रामायण-महाभारत की भाषा पाणिनि के बाद की है। पुराने पुराणों की भाषा और भी परवर्ती है। फिर कालिदास से होते क्लैसिकल संस्कृत, हितोपदेश तक तथा और आगे तक आई है। इस प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के **वैदिक** और **लौकिक संस्कृत** दो रूप मिलते हैं।

वैदिक संस्कृत (१५०० ई०पू० से ८०० ई०पू० तक)

संस्कृत का यह रूप वैदिक संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों तथा प्राचीन उपनिषदों आदि में मिलता है। यों इन सभी में भाषा का कोई एक सुनिश्चित रूप नहीं है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, वैदिक साहित्य में इस भाषा का विकास होता दिखाई पड़ता है, फिर भी कुछ ध्वन्यात्मक एवं व्याकरणिक बातें ऐसी हैं जिनको वैदिक की सामान्य विशेषताएँ माना जा सकता है। तत्कालीन बोलचाल की भाषा इसके समीप रही होगी, किन्तु इसका यह आशय नहीं कि बोलचाल की भाषा के सभी रूप इसमें सुरक्षित हैं।

ध्वनियाँ—**मूल स्वर** : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ; **संयुक्त स्वर** : ए, ऐ, ओ, औ; **व्यंजन** : क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, स, श, ष, ह, ळ, ळ्ह। विसर्ग, जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय ह के उपस्वनिम थे। अ, व, य आदि कई अन्य के भी कई उपस्वनिम थे। ळ, ळ्ह मूर्धन्य पार्श्विक प्रतिवेष्ठित थे। **स्वराघात**—मूल भारोपीय भाषा में स्वराघात बहुत महत्त्वपूर्ण था। आरम्भ में वह बलात्मक था जिसके कारण मात्रिक अपश्रुति विकसित हुई, किन्तु बाद में वह संगीतात्मक हो गया जिसने गुणिक अपश्रुति को जन्म दिया। इस भाषा-परिवार के विघटन के समय स्वराघात केवल उदात्त तथा स्वरित था। भारत-ईरानी स्थिति में अनुदात्त भी विकसित हो गया। इस प्रकार वैदिक संस्कृत को परम्परागत रूप से अनुदात्त, उदात्त एवं स्वरित तीन प्रकार के स्वराघात (संगीतात्मक) प्राप्त हुए थे। स्वराघात का इतना अधिक महत्त्व था कि सभी संहिताओं, कुछ ब्राह्मणों एवं आरण्यकों तथा बृहदारण्यक आदि कुछ उपनिषदों की पाण्डुलिपि स्वराघात-चिह्नित मिलती है और बिना स्वराघात के वैदिक छन्दों को पढ़ना अशुद्ध माना जाता है। स्वराघात के कारण शब्द का अर्थ भी बदल जाता था। 'इन्द्रशत्रु' वाला प्रसिद्ध उदाहरण सर्वविदित है : **इन्द्र/शत्रुः**=जिसका शत्रु इन्द्र है (बहुव्रीहि), **इन्द्र शत्रु**=इन्द्र का शत्रु (तत्पुरुष)। शब्द आदि के अर्थ जानने में स्वराघात का कितना महत्त्व था, यह वेंकट माधव के 'अंधकारे दीपिकाभिर्गच्छन्न स्खलति क्वचित्। एवं स्वरैः प्रणीतानां भवन्त्यर्थाः स्फुटा इव' (अर्थात् जैसे अन्धकार में दीपकों की सहायता से चलता हुआ कहीं ठोकर नहीं खाता, इसी प्रकार स्वरों (स्वराघात) की सहायता से किए गए अर्थ स्फुट, अर्थात् संदेहशून्य होते हैं) कथन से स्पष्ट है। स्वराघात में परिवर्तन से कभी-कभी लिंग में भी परिवर्तन हो जाता था। टर्नर के अनुसार, वैदिक संस्कृत में संगीतात्मक एवं बलात्मक दोनों ही स्वराघात था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप-रचना—वैदिक भाषा में लिंग तीन थे : पुल्लिग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग। वचन भी तीन थे : एक०, द्वि०, बहु०। कारक-विभक्तियाँ आठ थीं : कर्ता, सम्बोधन, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण। विशेषणों के रूप भी संज्ञा की तरह ही चलते थे। मूल भारोपीय में सर्वनाम के मूल या प्रातिपदिक बहुत अधिक थे। विभिन्न बोलियों में कदाचित् विभिन्न मूलों के रूप चलते थे। पहले सभी मूलों से सभी रूप बनते थे, किन्तु बाद में मिश्रण हुआ और अनेक मूलों के अनेक रूप लुप्त हो गए। परिणाम यह हुआ कि मूलतः विभिन्न मूलों से बने रूप एक ही मूल के रूप माने जाने लगे। वैदिक भाषा में उत्तम पुरुष में ही यद्यपि प्राचीन पंडितों ने 'अस्मद्' को सभी रूपों का मूल माना है, किन्तु यदि ध्यान से देखा जाय तो **अह-** (अहम्), **म-**(माम्, मया, मम, मयि), **आव-**(आवम्, आवाम्, वाम्, आवयोः), **वय-**(वयं), **अस्म-**(अस्माभिः, अस्मभ्यम्, अस्मे आदि), इन पाँच मूलों पर आधारित रूप हैं। मध्यम आदि अन्य सर्वनामों में भी एकाधिक मूल हैं। वैदिक भाषा में धातुओं के रूप आत्मने तथा परस्मै, दो पदों में चलते थे। कुछ धातुएँ आत्मनेपदी, कुछ परस्मैपदी एवं कुछ उभयपदी थीं। आत्मनेपदी रूपों का प्रयोग केवल अपने लिए होता था तथा परस्मै का दूसरों के लिए। क्रियारूप तीनों वचनों (एक, द्वि, बहु) एवं तीनों पुरुषों (उत्तम, मध्यम, अन्य) में होते थे। काल तथा क्रियार्थ मिलाकर क्रिया के कुल ११ प्रकार के रूपों का प्रयोग मिलता है : लट्, लङ्, लिट्, लुङ्, लुट्, निश्चयार्थ, सम्भावनार्थ (लेट्), विध्यर्थ, आदरार्थ आज्ञार्थ, तथा आज्ञार्थ (लोट्)। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में लेट् का प्रयोग बहुत मिलता है, किन्तु धीरे-धीरे इसका प्रयोग कम होता गया और अन्त में लौकिक संस्कृत में पूर्णतः समाप्त हो गया। वैदिक में भविष्य के रूप बहुत कम हैं। उसके स्थान पर प्रायः सम्भावनार्थ या निश्चयार्थ का प्रयोग मिलता है।

समास—समास-रचना की प्रवृत्ति मूल भारोपीय एवं भारत-ईरानी में थी। वहीं से यह परम्परा वैदिक संस्कृत में आई। वैदिक समस्तपद प्रायः दो शब्दों के ही मिलते हैं। इससे अधिक शब्दों के समास अत्यन्त विरल हैं। जहाँ तक समास के रूपों का प्रश्न है, वैदिक में केवल तत्पुरुष, कर्मधारय, बहुव्रीहि एवं द्वन्द्व, ये चार ही समास मिलते हैं। लौकिक संस्कृत के शेष दो समास बाद में विकसित हुए हैं।

शब्द—वैदिक भाषा में शब्दों की दृष्टि से दो बातें उल्लेख्य हैं। एक तो यह कि अनेक तथाकथित तद्भव या मूल शब्द से विकसित शब्द प्रयुक्त होने लगे। वेद में 'इह' (यहाँ) इसी प्रकार का है। इसका मूल शब्द *इध है। पालि 'इधें' और अवेस्ता 'इद' इसी बात के प्रमाण हैं कि महाप्राण व्यंजन के स्थान पर 'ह' के विकास से 'इध' से ही 'इह' बना है। कट (मूल शब्द कृत), एकादश (मूल एकदश) भी इसी प्रकार के शब्द हैं। 'विंशति' भी मूलतः 'द्विंशति' रहा होगा, यद्यपि यह विकार भारत में आने के पहले ही आ चुका था। शब्दों की दृष्टि से दूसरी विशेषता यह है कि उस काल में ही भाषा में अनेक आर्येतर शब्दों का आगमन होने लगा था। उदाहरण के लिए, वैदिक भाषा में अणु, अरणि, कपि, काल, गण, नाना, पुष्कर, पुष्प, मयूर, अटवी, तंडुल, मर्कट आदि शब्द एक ओर यदि द्रविड़ से आए हैं, तो द्वार, कंबल, बाण, कोसल (स्थानवाची नाम), अंग (स्थानवाची नाम) आदि ऑस्ट्रिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलियाँ—ब्राह्मण ग्रन्थों से इस बात का पता चलता है कि वैदिक काल में प्राचीन आर्यभाषा के कम-से-कम तीन रूप—या तीन बोलियाँ—अवश्य थे : पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी। पहला अफ़गानिस्तान से लेकर पंजाब तक था, दूसरा पंजाब से मध्य उत्तर प्रदेश तक, तथा तीसरा उसके पूर्व। यदि र्-ल् ध्वनियों को ही आधार मानें तो कह सकते हैं कि पश्चिमोत्तरी बोली र्-प्रधान थी, मध्यवर्ती में र्-ल् दोनों थे, और पूर्वी ल्-प्रधान थी। ऋग्वेद में पश्चिमोत्तरी बोली का ही प्रतिनिधित्व हुआ है। पश्चिमोत्तरी बोली में स्थानीय प्रभाव प्रायः बहुत कम पड़ा था, क्योंकि स्थानीय आर्येतर जातियाँ कुछ अपवादों को छोड़कर वहाँ से भाग कर दक्षिण तथा पूरब चली गई थीं। इसी कारण पश्चिमोत्तरी बोली को आदर्श माना गया। उसे उस समय 'उदीच्य' कहते थे। कौशीतकि ब्राह्मण (७-६) में आता है : तस्मादुदीच्यां प्रज्ञाततरा वागुद्यते। उदञ्च उ एव यन्ति वाचं शिक्षितुम्। यो वा तत आगच्छति, तस्य वा शुश्रूषन्त इति। अर्थात्...उत्तर में अधिक विज्ञता से, या प्रामाणिक भाषा बोली जाती है। उत्तर दिशा में ही बोलना सीखने जाते हैं। जो वहाँ से आता है, उससे सुनना चाहते हैं।

संस्कृत या लौकिक संस्कृत (८०० ई०पू० से ५०० ई०पू० तक)

भाषा के अर्थ में 'संस्कृत' (संस्कार की गई, शिष्ट या अप्रकृत) शब्द का प्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण में मिलता है। वैदिक काल में भाषा के तीन भौगोलिक रूपों—उत्तरी, मध्यदेशी, पूर्वी—का उल्लेख किया जा चुका है। लौकिक संस्कृत का मूल आधार इनमें उत्तरी बोली थी, क्योंकि वही प्रामाणिक मानी जाती थी। यों पाणिनि ने अन्यों के भी कुछ रूप आदि लिये हैं और उन्हें वैकल्पिक कहा है। इस प्रकार मध्यदेशी तथा पूर्वी का भी संस्कृत पर कुछ प्रभाव है। लौकिक या क्लैसिकल संस्कृत साहित्यिक भाषा है। अतः जिस प्रकार हिन्दी में जयशंकर प्रसाद की गद्य या पद्य-भाषा को बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते, उसी प्रकार संस्कृत को भी बोलचाल की भाषा नहीं कह सकते। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार प्रसाद जी की भाषा का आधार मानक खड़ीबोली हिन्दी है जो बोलचाल की भाषा है, उसी प्रकार पाणिनीय संस्कृत भी तत्कालीन पण्डित-समाज की बोलचाल की भाषा पर ही आधारित है। पाणिनि द्वारा उसके लिए 'भाषा' (भाष्=बोलना) शब्द का प्रयोग, सूत्र 'प्रत्यभिवादेऽशूद्रे' (दूर से बुलाने में 'प्लुत' के प्रयोग) का उनके द्वारा उल्लेख, बोलचाल के कारण विकसित संस्कृत को व्याकरण की परिधि में बाँधने के लिए कात्यायन द्वारा वार्तिकों की रचना, ये बातें यह सिद्ध करती हैं कि संस्कृत कभी बोलचाल की भाषा अवश्य थी। अतः हार्नले, वेबर तथा ग्रियर्सन आदि पश्चिमी विद्वानों का यह कथन कि संस्कृत बोलचाल की भाषा नहीं थी, निराधार है।

ऊपर वैदिक भाषा की प्रमुख विशेषताएँ उल्लिखित हैं। लौकिक संस्कृत उससे मूलतः बहुत अधिक भिन्न नहीं है। इसीलिए इसकी सभी विशेषताओं को विस्तार से अलग गिनाने की आवश्यकता नहीं। यहाँ केवल **वैदिक और लौकिक संस्कृत** में **अन्तरों** का ही उल्लेख किया जा रहा है : (१) वैदिक भाषा का, लौकिक की तरह मानकीकरण (standardization) नहीं हुआ था, इसी कारण लौकिक, जिस रूप में एकरूप एवं साहित्यिक है, वैदिक नहीं है। (२) वैदिक में जहाँ मानकीकरण एवं नियमन न होने से रूप की जटिलताएँ हैं, अनेकरूपताओं एवं अपवादों का आधिक्य है, लौकिक में वे या तो हैं ही नहीं, या हैं भी तो वैदिक की तुलना में बहुत ही कम।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) वैदिक में 'लृ' 'ॠ' 'ऋ' के उच्चारण स्वरवत् होते थे। संस्कृत में आकर ये कदाचित् 'लि', 'रि', 'री' जैसे उच्चरित होने लगी थीं। (४) ऐ, औ के उच्चारण वैदिक में आइ, आउ थे, किन्तु लौकिक संस्कृत में ये 'अइ', 'अउ' हो गए। (५) ए, ओ का उच्चारण वैदिक में 'अइ', 'अउ' था, अर्थात् ये संयुक्त स्वर थे, किन्तु संस्कृत में ये मूल स्वर हो गए। (६) लेखन में ळ, ळ्ह अक्षर समाप्त हो गए, और इनके स्थान पर ड, ढ प्रयुक्त होने लगे। (७) कई ध्वनियों के उच्चारण-स्थान में अन्तर आ गया। उदाहरणार्थ, प्रातिशाख्यों से पता ललता है कि वैदिक तवर्ग ल्, स् दंतमूलीय थे, किन्तु संस्कृत में (लृतुलसानांदन्ताः) ये दंत्य हो गए। (८) वैदिक में संगीतात्मक स्वराघात था। इसके विरुद्ध लौकिक संस्कृत में संगीतात्मक स्वराघात के स्थान पर कदाचित् बलात्मक स्वराघात विकसित हो गया। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बलात्मक स्वराघात के बीज यहीं मिलने लगते हैं। (९) क्रियारूपों में कुछ प्रमुख अन्तर ये हैं : (क) वैदिक में लकारों में विशेष प्रतिबन्ध नहीं है। लुङ्, लङ्, लिट् में परोक्षादि का भेद नहीं है। यहाँ तक कि कभी-कभी इनका कालेतर प्रयोग भी मिलता है। किंतु संस्कृत में ऐसा नहीं है। वैदिक का लेट् लौकिक में नहीं है, यद्यपि उसके उत्तम पुरुष के तीन रूप लौकिक के लोट् में आ गए हैं। वैदिक में लङ्, लुङ्, लृङ् में भूतकरण (augment) अ- नहीं मिलता, यद्यपि लौकिक में यह आवश्यक है। (ङ) वैदिक में लिट् वर्तमान के अर्थ में था, किन्तु लौकिक में वह परोक्ष भूत के लिए आता है। (१०) समासों में सबसे बड़ा अन्तर तो यह आया कि वैदिक में बहुत बड़े-बड़े समास बनाने की प्रवृत्ति नहीं थी, क्योंकि उस भाषा में कृत्रिमता नहीं है, किन्तु संस्कृत में कृत्रिमता के विकास के कारण बड़े-बड़े समस्तपद भी बनने लगे। ऐसे ही वैदिक में केवल चार समासों—तत्पुरुष, कर्मधारय, बहुव्रीहि, द्वन्द्व—का ही प्रयोग प्रायः मिलता है, किन्तु लौकिक में द्विगु और अव्ययीभाव भी प्रयुक्त होते हैं। (११) मूल भारोपीय भाषा में उपसर्ग वाक्य में कहीं भी आ सकता था, क्रिया के साथ आना उसके लिए आवश्यक नहीं था। वैदिक में भी यह स्वच्छन्दता पर्याप्त मात्रा में मिलती है। जैसे 'यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् मिनीमसि द्यविद्यवि'। यहाँ 'प्र' उपसर्ग 'मिनीमसि' से सम्बन्धित है। किन्तु इन दोनों के बीच तीन शब्द आए हैं। लौकिक संस्कृत में उपसर्ग की यह स्वच्छन्दता नहीं मिलती। (१२) वैदिक में विजातीय शब्द आए थे—विशेषतः द्रविड़ एवं ऑस्ट्रिक से, किन्तु लौकिक संस्कृत में उनकी संख्या बहुत बढ़ गई (मेरे अनुसार २ हजार के लगभग)। **द्रविड़ शब्द**—संस्कृत में द्रविड़ से एक हज़ार से ऊपर शब्द आए हैं। कुछ उदाहरण ये हैं : कीर (तोता), कुक्कुट (मुर्ग़), कुक्कुर (कुत्ता), घुण (घुन), नक्र (घड़ियाल), मर्कट (बन्दर), मीन (मछली), अर्क (मन्दार), कानन (जंगल)। **ऑस्ट्रिक शब्द**—संस्कृत में ऑस्ट्रिक के भी सौ से ऊपर शब्द हैं। कुछ उदाहरण हैं : ताम्बूल, शृंगार, आकुल, आपीड (मुकुट), कबरी (बाल), कुविन्द (जुलाहा), तथा खिकिर (लोमड़ी), आदि। **यूनानी शब्द**—यवन, यवनिका, द्रम्म (दाम), होडा (होड़ा), त्रिकोण, सुरंग, क्रमेल (ऊँट), कंगु (एक अनाज), कस्तीर (राँगा), आदि। **रोमन शब्द**—दीनार। **अरबी शब्द**—रमल, इक्कवाल (ज्योतिष में सौभाग्य), इत्थशाल (ज्योतिष में तीसरा योग), ईसराफ (ज्योतिष में चौथा योग), वोल्लाह (विशेष रंग का घोड़ा)। **ईरानी शब्द**—हिन्दू, बारबाण, ताजिक (ईरानी व्यक्ति), मिहिर (सूर्य), बादाम (मेवा विशेष), बालिश (तकिया), खोल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(खर्बूज) तथा निःशाण (जलूस), आदि। **तुर्की शब्द**—तुरुष्क, खच्चर। **चीनी शब्द**—संस्कृत में कुछ शब्द चीनी से भी आए हैं, यद्यपि उनकी संख्या अधिक नहीं है : चीन (चीनांशुक, चीनचोलक) तथा मसार (एक रत्न)।

बोलियाँ—वैदिक भाषा के प्रसंग में पश्चिमोत्तरी (या पश्चिमी या उत्तरी), मध्यदेशी (या मध्यवर्ती) तथा पूर्वी, इन तीन बोलियों का उल्लेख किया जा चुका है। मेरा अनुमान है कि संस्कृत-काल में आर्यभाषा-भाषी प्रदेश में कदाचित् एक दक्षिणी रूप भी जन्म ले चुका था।

मध्यकालीन आर्यभाषा (५०० ई०पू० से १००० ई० तक)

यह संकेत किया जा चुका है कि प्राचीन भारतीय आर्यभाषा-काल में जनभाषा पर आधारित 'वैदिक' एवं 'लौकिक संस्कृत' भाषा के ये दो रूप साहित्य में प्रयुक्त हुए। दूसरे रूप—लौकिक संस्कृत—को पाणिनि ने अपने व्याकरण में जकड़कर उसे सदा-सर्वदा के लिए एक स्थायी रूप दे दिया, किन्तु जनभाषा भला इस बन्धन को कहाँ मानती ? वह अबाध गति से परिवर्तित होती रही, बढ़ती रही। इस जनभाषा के मध्यकालीन रूप को ही 'मध्यकालीन आर्यभाषा' की संज्ञा दी गई है। इसका काल मोटे रूप से ५०० ई०पू० से १००० ई० तक का, अर्थात् डेढ़ हज़ार वर्षों का है। मध्यकालीन आर्यभाषा को **प्राकृत** भी कहा गया है। 'प्राकृत' शब्द के सम्बन्ध में दो मत हैं :(क) कुछ लोग इसकी व्युत्पत्ति **'प्राक्+कृत'** अर्थात् '(संस्कृत से) पहले की बनी हुई' या 'पहले की की हुई' मानते हैं। दूसरे शब्दों में **प्राकृत** 'नैसर्गिक' 'प्रकृत या अकृत्रिम' भाषा है, और इसके विपरीत **संस्कृत** कृत्रिम या संस्कार की हुई भाषा है। नमि साधु ने 'काव्यालंकार' की टीका में लिखा है : **'प्राकृतेति, सकल-जगज्जन्तूनां व्याकरणादिभिरनाहतसंस्कारः सहजो वचन-व्यापारः प्रकृतिः प्रकृति तत्र भवः सेव वा प्राकृतम्'**। इस रूप में **प्राकृत** पुरानी भाषा है, और **संस्कृत** उसका संस्कार करके बनाई हुई बाद की भाषा। ग्रियर्सन ने इसी को **प्राइमरी प्राकृत** कहा है। इसका अर्थ यह है कि इस अर्थ में 'प्राकृत' शब्द का प्रयोग उस जनभाषा के लिए है, जो वैदिक एवं संस्कृत-काल में जनभाषा थी और जिसका कुछ परिनिष्ठित एवं पंडितों द्वारा मान्य रूप वैदिक है, एवं परवर्ती काल में जिसका सुसंस्कृत साहित्यिक रूप 'संस्कृत' है। अर्थात् वह वैदिक की भी जननी है, और उसी का कुछ परवर्ती रूप संस्कृत की जननी है। (ख) दूसरे लोग **प्राकृत** की उत्पत्ति और ढंग से करते हैं। जैसे—**प्रकृतिः संस्कृतं तत्र भव प्राकृतमुच्यते**—मार्कण्डेय (प्रकृति या मूल संस्कृत है, उससे जन्मी भाषा को प्राकृत कहते हैं)। **प्रकृतिः संस्कृतम्। तत्र भवं तदागतं वा प्राकृतम्**—हेमचन्द्र (प्रकृति या मूल संस्कृत है, और संस्कृत से जो आई है, प्राकृत है)। ये (क, ख) मत एक-दूसरे के विरोधी हैं। वस्तुतः अपने-अपने स्थान पर ये दोनों ही मत ठीक हैं। यदि हम उस जनभाषा को प्राकृत कहते हैं जिसका परिनिष्ठित साहित्यिक रूप संस्कृत है, दूसरे शब्दों में जिससे संस्कृत उत्पन्न है तो पहला मत ठीक है, अर्थात् प्राकृत संस्कृत की जननी है, किन्तु यदि हम संस्कृत-कालीन जनभाषा को भी संस्कृत ही कहें—जो मूलतः वही था, केवल संस्कृत साहित्यिक भाषा थी और वह जनभाषा—तो दूसरा मत सही है, क्योंकि ५०० ई०पू० से १००० ई० तक बोली जानेवाली प्राकृत भाषा उसी का विकसित रूप है, अर्थात् उसी से निकली है। अब प्रायः इस दूसरी भाषा को प्राकृत कहते हैं, अतः इसे, अर्थात् प्राकृत को हम 'संस्कृत से उत्पन्न' मान सकते हैं। हाँ, यह बात ध्यान में रखने की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि यह प्राकृत भाषा वैदिक या लौकिक संस्कृत से उद्भूत नहीं है, अपितु तत्कालीन जनभाषा से उद्भूत है या उसका विकसित रूप है। इन १५०० वर्षों की प्राकृत भाषा को तीन कालों में विभाजित किया गया है: (१) प्रथम प्राकृत (५०० ई०पू० से १ ई० तक)। (२) द्वितीय प्राकृत (१ ई० से ५०० ई० तक) (३) तृतीय प्राकृत (५०० ई० से १००० ई० तक)।

प्रथम प्राकृत—इसमें पालि तथा अभिलेखी प्राकृत आती हैं।

पालि

पालि बौद्ध धर्म (विशेषतः दक्षिणी बौद्धों) की भाषा है। मोटे रूप से इसका काल ५वीं सदी ई०पू० से पहली सदी तक है। **'पालि' नाम**—'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में बहुत मतभेद है। 'पालि' शब्द के पुराने प्रयोग 'भाषा' के अर्थ में नहीं मिलते। इसका प्राचीनतम प्रयोग ४थी सदी में लंका में लिखित ग्रन्थ 'दीपबंस' में हुआ है। वहाँ इसका अर्थ 'बुद्धवचन' है। बाद में प्रसिद्ध आचार्य बुद्धघोष ने भी इसका प्रयोग लगभग इसी अर्थ में किया है। तब से लेकर काफ़ी बाद तक 'पालि' शब्द का प्रयोग पालि साहित्य में हुआ है, किन्तु कभी भी भाषा के अर्थ में नहीं। भाषा के अर्थ में वहाँ मगध भाषा, मागधी, मागधिक भाषा आदि का प्रयोग हुआ है। सिंहल के लोग इसे अब भी मागधी कहते हैं। भाषा के अर्थ में 'पालि' का प्रयोग अत्याधुनिक है और यूरोप के लोगों द्वारा हुआ है। यहाँ कुछ प्रमुख मतों का उल्लेख किया जा रहा है। 'पालि' शब्द की व्युत्पत्ति श्री विधुशेखर भट्टाचार्य के अनुसार संस्कृत 'पंक्ति' (>पन्ति>पत्ति>पट्ठि>पल्लि>पालि) से है। एक मत के अनुसार वैदिक और संस्कृत आदि की तुलना में यह 'पल्लि' या 'गाँव' की भाषा थी और 'पालि' शब्द 'पल्लि' का ही विकास है, अर्थात् इसका अर्थ है 'गाँव की भाषा'। भण्डारकर तथा वाकरनागल के अनुसार 'पालि' शब्द 'प्राकृत' (>पाकट>पाअड>पाअल>पालि) का ही विकसित रूप है। वस्तुतः ये ध्वन्त्यात्मक विकास बहुत तर्कसम्मत नहीं हैं। कोसाम्बी नामक बौद्ध विद्वान् के अनुसार, इसका सम्बन्ध 'पाल्' अर्थात् 'रक्षा करना' से है। इसने बुद्ध के उपदेशों को सुरक्षित रक्खा है, इसीलिए यह नाम पड़ा है 'पा पालेति रक्खतीति' रूप में भी कुछ लोगों ने 'पा' में 'लि' प्रत्यय लगाकर इसकी व्युत्पत्ति दी है। अर्थात् यह अर्थों की रक्षा करती है, अतः पालि है। किंतु यह भी कल्पना की दौड़ मात्र है। डॉ० मैक्सवेलेसर ने 'पालि' को 'पाटलि' (पाटलिपुत्र की भाषा) से व्युत्पन्न माना है। किन्तु जैसा कि हम आगे देखेंगे, पालि वहाँ की भाषा नहीं थी। सबसे प्रामाणिक व्युत्पत्ति भिक्षु जगदीश कश्यप द्वारा दी गई है। प्रायः बहुत से भारतीय विद्वान् इससे सहमत हैं। इनके अनुसार 'पालि' का सम्बन्ध 'परियाय' (सं० पर्याय) से है। 'धम्मपरियाय' या 'परियाय' का प्रयोग प्राचीन बौद्ध साहित्य में बुद्ध के उपदेश के लिए मिलता है। इनकी विकास-परम्परा परियाय>पलियाय>पालियाय>पालि है।

'पालि' भाषा का प्रदेश—यह प्रश्न कम विवादास्पद नहीं है कि पालि मूलतः किस प्रदेश की भाषा थी। इस प्रश्न पर प्रायः दो दर्जन विद्वानों ने विचार किया है। श्रीलंका के बौद्धों तथा चाइल्डर्स आदि की यह धारणा है कि यह मगध की बोली थी। किन्तु भाषा की विवेचना करने पर यह बात अशुद्ध ठहरती है। ध्वनि और व्याकरण की दृष्टि से इसका मागधी से साम्य नहीं है। वेस्टरगार्ड तथा स्टेनकोनो आदि पालि को उज्जयिनी या विंध्यप्रदेश की बोली पर आधारित मानते हैं। ग्रियर्सन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने इसे मागधी माना था, यद्यपि इस पर पैशाची का भी प्रभाव स्वीकार किया था। ओल्डेनबर्ग ने पालि को कलिंग की भाषा कहा था। रीज़ डैविड्ज़ ने इसे कोसल की बोली कहा है। ल्यूडर्ज पालि को पुरानी अर्धमागधी से संबद्ध मानते थे। इन मतों से एक बात स्पष्ट है कि पालि में विभिन्न प्रदेशों की बोलियों के तत्त्व हैं, इसी कारण विभिन्न लोगों ने इसे विभिन्न स्थानों से संबद्ध किया है। वस्तुतः अपने मूल में पालि मध्यप्रदेश की भाषा है। यों उस समय वह पूरे भारत में एक अंतःप्रांतीय भाषा-जैसी थी, इसी कारण उसमें अनेक प्रादेशिक बोलियों, विशेषतः बुद्ध की अपनी भाषा होने से मागधी के भी कुछ तत्त्व मिल गए। इस प्रकार अपने मूल रूप में पालि को शौरसेनी प्राकृत का पूर्वरूप मान सकते हैं।

साहित्य—पालि साहित्य का सम्बन्ध प्रमुखतः भगवान् बुद्ध से है, यों कोष, छन्दशास्त्र तथा व्याकरण की भी कुछ पुस्तकें लिखी गई हैं। परम्परागत रूप से पालि साहित्य को पिटक और अनुपिटक दो वर्गों में बाँटते हैं, जिनमें जातक (जिसे ग्रंथ न कहकर ग्रंथ-समूह कहना उचित है), धम्मपद, मिलिन्दपञ्हों, बुद्धघोष की अट्ठकथा, तथा महावंश आदि प्रमुख हैं। पालि साहित्य का रचना-काल ४८३ ई०पू० से लेकर आधुनिक काल तक लगभग ढाई हज़ार वर्षों में फला हुआ है।

ध्वनियाँ—पालि के प्रसिद्ध वैयाकरण कच्चायन के अनुसार पालि में ४१ ध्वनियाँ थीं—**'अक्खरापादयो एकचत्तालीसं'**। दूसरे प्रसिद्ध वैयाकरण मोग्गलान के अनुसार ४३ ध्वनियाँ थीं—**'अआदयो तितालिस वण्णा'**। ध्वनि-विषयक इसकी मुख्य बातें हैं : (१) स्वरों में ह्रस्व ऍ, ओ दो नए विकसित हो गये। (२) ऋ, ॠ, ऌ स्वर पूर्णतः समाप्त हो गये। ऐ, औ स्वर नहीं रहे। (४) व्यंजनों में, वैदिक की तरह ही, पालि में भी ळ, ळ्ह ध्वनियाँ थीं। (५) विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय भी नहीं रहे। (६) वैदिक तथा संस्कृत में श्, ष्, स् तीन थे। पालि में तीनों के स्थान में स् हो गया। (७) अनुस्वार पालि में स्वतन्त्र ध्वनि है, जिसे पालि वैयाकरण ने **निग्गहीत** नाम से अभिहित किया है। (८) ध्वनि-परिवर्तन की दृष्टि से **घोषीकरण** (माकन्दिय > मागन्दिय, उताहो > उदाहु), **अघोषीकरण** (यह प्रवृत्ति अधिक नहीं है। जो है, उसका कारण संभवतः पैशाची प्रभाव है : मृदंग > मुतिंग, परिघ > परिख, अगुरु > अकलु, कुसीद > कुसीत, छगल > छकल), **महाप्राणीकरण** (सुकुमार > सुखुमाल, परशु > फरसु, कील > खील, पल > फल), **समीकरण** (यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है : चत्वर > चच्चर, निम्न > निन्न, सर्व > सब्ब, मार्ग > मग्ग, धर्म > धम्म, कर्म > कम्म, जीर्ण > जिण्ण), **र्-ल् का आपसी परिवर्तन** (तरुण > तलुण, किल > किर), **महाप्राण** का ह हो जाना (भवति > होति, लघु > लहु, रुधिर > रुहिर) आदि की प्रवृत्ति मिलती है।

स्वराघात—पालि में स्वराघात की स्थिति विवादास्पद है। टर्नर के अनुसार, पालि में वैदिकी की भाँति ही संगीतात्मक एवं बलात्मक, दोनों स्वराघात था। ग्रियर्सन पालि में केवल बलात्मक स्वराघात मानते हैं। ज़ूल ब्लाक को पालि में किसी भी स्वराघात के होने के बारे में सन्देह है। मेरे विचार में पालि में मुख्यतः बलात्मक स्वराघात ही था, यद्यपि संगीतात्मक के भी कुछ अवशेष रहने की सम्भावना है।

व्याकरण—पालि भाषा, व्याकरणिक दृष्टि से, वैदिक संस्कृत की भाँति ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वच्छंद एवं विविध रूपोंवाली है। किन्तु साथ ही वैदिक या संस्कृत की तुलना में उसमें पर्याप्त सरलीकरण भी हुआ है। यह सरलीकरण उच्चारण में समीकरण आदि के रूप में तो हुआ ही है, साथ ही सादृश्य के आधार पर विकास के कारण व्याकरण के क्षेत्र में भी हुआ है। (१) व्यंजनांत प्रातिपदिक प्रायः नहीं हैं। अंत्य व्यंजन-लोप के सामान्य नियम के कारण या तो अंत्य व्यंजन लुप्त हो गये हैं (**विद्युत** >**विज्जु**) या अंत्य स्वरागम के कारण शब्द स्वरांत (**शरत्—सरद**) हो गए हैं। (२) सादृश्य के कारण भिन्न-भिन्न स्वरांत शब्दों के बहुत से रूप भी समान हो गए हैं। इस दिशा में अकारांत शब्दों ने अपने प्रयोग-बाहुल्य के कारण अन्यों को प्रभावित किया है। उदाहरणार्थ, इकारांत (**अग्गि**), उकारांत (**भिक्खु**) के सम्प्रदान एवं सम्बन्ध के रूप अकारांत के समान (**अग्गिस्स, भिक्खुस्स**) मिलते हैं। (३) लिंग तीन हैं। यों अपने बहुप्रयोग के कारण पुल्लिग ने नपुंसकलिंग को प्रभावित किया है : जैसे '**सुखं**' के लिए '**सुखो**'।(४) द्वे, उभो जैसे दो-एक रूपों को छोड़कर पालि में द्विवचन नहीं है। (५) वैदिक की तरह रूपाधिक्य भी पालि में है। उदाहरणार्थ, धर्म का सं० में सप्तमी एक० में केवल '**धर्मे**' होगा, किन्तु पालि में **धम्मे** के अतिरिक्त **धम्मस्मि** तथा **धम्मम्हि** भी हैं। (६) पालि सर्वनाम प्रायः पूर्ववर्ती सर्वनाम रूपों के ही ध्वनि-नियमों के अनुकूल विकसित हैं। इनमें एक ही अन्तर है, और वह मामूली नहीं है कि वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में, सारे के सारे मध्यम पुरुष बहुवचन के रूप 'य' से शुरू होते हैं, किन्तु पालि में सारे के सारे 'त' से शुरू होते हैं। जैसे युष्मे—तुम्हें, युष्माकम्—तुम्हाकं, आदि। (७) क्रियारूपों में ३ पुरुष तथा २ वचन (द्वि नहीं है) हैं। पद केवल परस्मै है। आत्मने कुछ अपवादों को छोड़कर नहीं है। धातुओं के दसों गण हैं, यद्यपि संस्कृत की तुलना में कुछ मिश्रण हो गया है। एक ही धातु के कुछ रूप एक गण के समान हैं तो कुछ दूसरे के। इससे पता चलता है कि जन-मस्तिष्क में गणों की सत्ता धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी।

बोलियाँ एवं भाषा-रूप—पालि-काल में आर्यभाषी भारत में वे ही चार बोलियाँ थीं, जिनका उल्लेख लौकिक संस्कृत के प्रसंग में किया जा चुका है—पश्चिमोत्तरी दक्षिणी, मध्यवर्ती तथा पूर्वी। हाँ, संस्कृत-काल की तुलना में उनके अंतर कुछ और उभर आए थे।

प्रथम प्राकृत के अन्तर्गत पालि के अतिरिक्त **अभिलेखी प्राकृत** भी आती है। इसके अधिकांश लेख शिला पर हैं, अतः इसकी एक संज्ञा **शिलालेखी प्राकृत** भी है। इसकी सामग्री है—(१) अशोकी अभिलेख, (२) अशोकेतर अभिलेख। अशोकी अभिलेखों से ३री सदी ई०पू० में एवं अशोकेतर से ई०पू० की अंतिम तीन सदियों में भाषा की स्थिति तथा स्वरूप का पता चलता है। साथ ही यह भी पता चलता है कि उस काल में मानक भाषा की कम-से-कम चार बोलियाँ थीं—पश्चिमोत्तरी, दक्षिणी-पश्चिमी, मध्यपूर्वी, पूर्वी।

प्राकृत (१ ई०—५०० ई०)

मध्यकालीन आर्यभाषा के प्रारम्भ में पीछे 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार किया गया है। ऐसा अनुमान लगता है कि जनभाषा का संस्कार करके जब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे 'संस्कृत' संज्ञा से विभूषित किया गया तो वह जनभाषा, जो उसकी तुलना में असंस्कृत थी, और पण्डितों में प्रचलित इस भाषा के विरुद्ध, जो 'प्रकृत' या सामान्य लोगों में बोली जाती थी, सहज ही, 'प्राकृत' नाम की अधिकारिणी बन बैठी। 'प्राकृत' शब्द के दो अर्थ हैं। पहले अर्थ में यह ५वीं सदी ई०पू० से १००० ई० तक की भाषा है, जिसमें **प्रथम प्राकृत** में 'पालि' और 'अभिलेखी प्राकृत' हैं; **द्वितीय प्राकृत** में भारत एवं भारत के बाहर प्रयुक्त विभिन्न धार्मिक, साहित्यिक और अन्य प्राकृतें हैं; **तृतीय प्राकृत** में अपभ्रंश (एवं तथाकथित अवहट्ठ) आती हैं। दूसरे, केवल **द्वितीय प्राकृत** के लिए भी प्राकृत नाम का प्रयोग होता है। यहाँ, 'प्राकृत' शब्द इसी दूसरे अर्थ में ही प्रयुक्त किया जा रहा है।

प्राकृतों के भेद

प्राकृतों के धर्म, प्रदेश, प्रयोग, लेखन-आधार आदि के आधार पर कई भेद किए गए हैं, जिनमें मुख्य शौरसैनी, पैशाची, माहाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी, केकय, टक्क, ब्राचड, खस आदि हैं। आगे इन पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

शौरसेनी—यह प्राकृत मूलतः मथुरा या शूरसेन के आसपास की बोली थी। इसका विकास वहाँ की पालिकालीन स्थानीय बोली से हुआ था। मध्यदेश की भाषा होने के कारण इसे कुछ लोग संस्कृत की भाँति उस काल की मानक भाषा मानते हैं। मध्यदेश संस्कृत का केन्द्र था, इसी कारण शौरसेनी उससे बहुत प्रभावित है। इस प्रभाव के कारण शौरसेनी में अपेक्षाकृत प्राचीनता है तथा यह कुछ कृत्रिम है। संस्कृत नाटकों की गद्य की भाषा शौरसेनी ही है। कर्पूरमंजरी का गद्य इसी में है। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष के नाटकों में मिलता है। जैनों (दिगम्बर सम्प्रदाय) ने अपने साम्प्रदायिक ग्रन्थों के लेखन में भी इसका प्रयोग किया है। शौरसेनी में तत्सम शब्द अपेक्षाकृत अधिक हैं। शौरसेनी की प्रमुख विशेषताएँ ये हैं: (१) असंयुक्त तथा दो स्वरों के बीच में आनेवाला सं० त् इसमें द् हो गया है और थ् ध् (गच्छति > गच्छदि, कथय > कधीहि)। (२) क्ष् का विकास सामान्यतः क्ख् में हुआ है (इक्षु > इक्खु, कुक्षि > कुक्खि)। यह उल्लेख्य है कि माहाराष्ट्री में यह च्छ् (इक्षु > उच्छु) हो जाता है। (३) ऋ का विकास इ है: (गृद्ध > गिद्ध)। (४) संयुक्त व्यंजनों के सरलीकरण की प्रवृत्ति है, किन्तु अर्द्धमागधी या माहाराष्ट्री आदि से कम (कर्तुम > कादुं, उत्सव > उस्सव > ऊसव)। यह भी उल्लेख्य है कि ऐसी स्थिति में क्षतिपूरक दीर्घीकरण (अ > आ, उ > ऊ) की प्रवृत्ति भी है। (५) आदरार्थ आज्ञा के रूप माहाराष्ट्री एवं अर्द्धमागधी की भाँति—एज्ज लगाकर (वट्टेज्ज) नहीं बनते। वे संस्कृत के अनुसार हैं: सं० (*वर्तेत > वट्टे)। (६) केवल परस्मैपद का प्रयोग मिलता है, आत्मनेपद का प्रायः नहीं। (७) रूपों की दृष्टि से यह कुछ बातों में संस्कृत की ओर झुकी है, जो मध्यदेश में रहने का प्रभाव है, किन्तु साथ ही, माहाराष्ट्री का भी इससे काफ़ी साम्य है।

पैशाची—महाभारत में 'पिशाच' जाति का उल्लेख है। ये उत्तर-पश्चिम में कश्मीर के पास रहते थे। ग्रियर्सन पैशाची को वहीं की 'दरद' से प्रभावित भाषा मानते हैं। हार्नले इसे द्रविड़ों द्वारा प्रयुक्त प्राकृत मानते हैं। पुरुषोत्तम देव ने अपने प्राकृतानुशासन में संस्कृत और शौरसेनी का इसे विकृत रूप माना है। इस प्रकार इसको लेकर काफ़ी विवाद है। पैशाची में साहित्य नहीं के बराबर है। यों ऐसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुमान लगाने के आधार हैं कि कभी इसमें काफ़ी साहित्य था। गुणाढ्य का बृहत् कथा-संग्रह 'बृहत्कथा' मूलतः इसी में था। इसके अब केवल दो संस्कृत रूपांतर ही--बृहत्कथामंजरी, कथासरित्सागर--शेष हैं। हम्मीरमर्दन तथा कुछ अन्य नाटकों में कुछ पात्रों ने इसका प्रयोग किया है। इसकी मुख्य विशेषता है: दो स्वरों के बीच में आने वाले स्पर्श वर्गों के तीसरे और चौथे घोष व्यंजनों का क्रमशः पहला और दूसरा अर्थात् अघोष हो जाना: गगन > गकन, मेघ :> मेखो, दामोदर > तामोतर, राजा > राचा। किसी भी भाषा में अघोषीकरण के कुछ उदाहरण तो मिलते हैं, किन्तु ऐसी सामान्य प्रवृत्ति नहीं मिलती।

माहाराष्ट्री--इस प्राकृत का मूल स्थान महाराष्ट्र है। जूल ब्लाक ने मराठी का विकास इसी के बोलचाल के रूप से माना है। कुछ लोग इसे केवल महाराष्ट्र तक सीमित न मानकर महाराष्ट्र, अर्थात् पूरे भारत की भाषा मानने के पक्ष में हैं। कुछ लोग इसे काव्य की कृत्रिम भाषा मानते रहे हैं। माहाराष्ट्री प्राकृत साहित्य की दृष्टि से बहुत धनी है। यह काव्य-भाषा रही है। गाहा सत्तसई (हाल), रावणवहो (रावरसेन) तथा वज्जालग्ग (जयवल्लभ) इसकी अमर कृतियाँ हैं। माहाराष्ट्री की कुछ प्रमुख विशेषताएं ये हैं: (१) इसमें दो स्वरों के बीच आनेवाले अल्पप्राण स्पर्श (क्, त्, प द्, ग्, आदि प्रायः लुप्त हो गए हैं (प्राकृत > पाउअ, गच्छति > गच्छइ)। (२) उसी स्थिति में महाप्राण स्पर्श (ख्, थ्, फ्, घ्, घ्) का केवल 'ह' रह गया है (क्रोधः > कोहो, कथयति > कहेइ, मुख > मुह)। (३) ऊष्म ध्वनियों (स, श) का प्रायः 'ह' हो गया है (तस्य > ताह, पाषाण > पाहाण)।

अर्धमागधी--अर्धमागधी का क्षेत्र मागधी और शौरसेनी के बीच में है, अर्थात् यह प्राचीन कोसल के आसपास की भाषा है। इसमें मागधी की प्रवृत्तियाँ पर्याप्त मात्रा में (तथा कुछ शौरसेनी की) मिलती हैं। इसीलिए इसका नाम अर्धमागधी है। इसका प्रयोग प्रमुखतः जैन साहित्य में हुआ है। इसकी कुछ मुख्य विशेषताएं हैं: (१) ष्, श् के स्थान पर प्रायः स् (श्रावक > सावग, वर्ष > वास) का प्रयोग। (२) अनेक स्थलों पर दंत्य ध्वनियों का मूर्धन्य हो जाना (स्थित--ठिय, कृत्वा--कट्टु)। यह प्रवृत्ति अन्य प्राकृतों की तुलना में इसमें अधिक है। (३) चवर्ग के स्थान पर कहीं-कहीं तवर्ग मिलता है (चिकित्सा--तेइच्छा)। (४) जहाँ कुछ अन्य प्राकृतों में स्वरों के बीच स्पर्श का लोप मिलता है, वहाँ इसमें 'य' श्रुति मिलती है (सागर > सायर, स्थित > ठिय)। (५ गद्य और पद्य की भाषा के रूपों में अन्तर है। सं० -अः (प्रथमा एकवचन) के स्थान पर प्रायः गद्य में मागधी की तरह 'ए' का प्रयोग हुआ है, और प्रायः पद्य में शौरसेनी के समान 'ओ' का।

मागधी--मागधी का मूल आधार मगध के आसपास की भाषा है। लास्सन माहाराष्ट्री एवं मागधी को एक मानते थे। कुछ लोग इसका सम्बन्ध महाराष्ट्र से मानते हैं। मागधी में कोई स्वतन्त्र रचना नहीं मिलती। संस्कृत नाटकों में निम्न श्रेणी के पात्र इसका प्रयोग करते हैं। इसका प्राचीनतम रूप अश्वघोष में मिलता है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं: (१) इसमें स्, ष् के स्थान पर 'श्' मिलता है (सप्त > शत्त, पुरुष > पुलिश)। (२) इसमें 'र' का सर्वत्र 'ल' हो जाता है (राजा > लाजा)। (३) प्रथमा एकवचन में संस्कृत -अः के स्थान पर यहाँ -ए मिलता है (देवः > देवे, सः > शे)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केकय—इसका क्षेत्र प्राचीन केकय प्रदेश था, जहाँ आज लहँदा (पाकिस्तान में) बोली जाती है। इसकी विशेषताओं के संबंध में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है।

टक्क—इस प्राकृत का क्षेत्र वह है जो मूलतः पंजाबी का क्षेत्र है, अर्थात् भारत का पंजाब तथा पाकिस्तान के पंजाब प्रांत का कुछ भाग। इसके सम्बन्ध में भी कुछ विशेष ज्ञात नहीं है।

खस—इस नाम की प्राकृत का कहीं उल्लेख नहीं है, किन्तु सुनीतिकुमार चटर्जी तथा कुछ अन्य लोग हिमाचल प्रदेश, गढ़वाल, कुमायूँ तथा नेपाल में बोली जाने वाली पहाड़ी बोलियों का विकास 'खस' अपभ्रंश से मानते हैं। यदि वहाँ कोई खस अपभ्रंश थी तो उसकी पूर्वजा प्राकृत को 'खस प्राकृत' कहा जा सकता है। यों मेरे विचार में इस क्षेत्र में शौरसेनी प्राकृत का ही एक उत्तरी रूप था, जो कुछ स्थानीय विशेषताओं में ही परिनिष्ठित शौरसेनी से भिन्न था। ग्रियर्सन का यह मानना कि पहाड़ी भाषाएँ राजस्थानी का विस्थापित रूप हैं, मेरी उपर्युक्त मान्यता का समर्थन करता है।

व्राचड—व्राचड अपभ्रंश की पूर्वजा प्राकृत के लिए इस नाम का प्रयोग किया जा रहा है। इसका क्षेत्र प्राचीन सिंध-क्षेत्र था। कल्पितनामा इस प्राकृत के विषय में कुछ विशेष ज्ञात नहीं है।

प्राकृत भाषाओं की कुछ सामान्य विशेषताएँ

(१) ध्वनि की दृष्टि से प्राकृत भाषाएँ पालि के पर्याप्त निकट हैं। इनमें भी पालि की तरह ह्रस्व ए और ओ और ळ, ळ्ह का प्रयोग चलता रहा। ऐ, औ, ऋ, ऌ का प्रयोग नहीं हुआ। ऋ का प्रयोग लिखने में तो हुआ, किन्तु भाषा में यह ध्वनि थी नहीं। (२) ऊष्मों में पालि में केवल 'स्' का प्रयोग था। प्राकृत में पश्चिमोत्तरी क्षेत्र में श्, ष्, स् तीनों ही कुछ काल तक थे। मागधी में केवल 'श्' है। अन्य बहुतों में पालि की तरह प्रायः केवल 'स्' (जैसे अर्धमागधी में) मिलता है, और कुछ में श्, ष् (पैशाची)। (३) प्राकृतों में न' का विकास प्रायः 'ण' रूप में हुआ है। (४) ध्वनियों के विकास के कुछ विशेष रूप भी इस काल में दिखाई पड़ते हैं, यद्यपि वे सार्वभौम न होकर प्रायः क्षेत्रीय अधिक हैं: (क) स्वरमध्यग-अघोष अल्पप्राण स्पर्श का घोष (मूकः>मूगो, लेष्टु>लेड्डु), (ख) स्वरमध्यग घोष और अघोष अल्पप्राण स्पर्श का लोप (सागर>साअर), (ग) महाप्राण>ह (भवति> होत्ति, मुख>मुह, कथा>कहा)। (५) प्राकृतों में व्यंजनान्त शब्द प्रायः नहीं हैं। (६) द्विवचन के रूपों का प्रयोग (संज्ञा, क्रिया आदि में) प्राकृतों में नहीं मिलता। 'नीय' प्राकृत अपवाद है जिसमें कुछ द्विवचन के रूप हैं। (७) वैदिकी और संस्कृत संयोगात्मक भाषाएँ थीं। पालि में भी यह विशेषता सुरक्षित है, किन्तु प्राकृत-काल में भाषा अयोगात्मकता या वियोगात्मकता की ओर तेजी से बढ़ने लगी।

तृतीय प्राकृत

जैसा कि पीछे कहा गया है, तृतीय प्राकृत में अपभ्रंश भाषा आती है।

अपभ्रंश (५०० ई० से १००० ई०)

अपभ्रंश का अर्थ है 'गिरा हुआ', 'बिगड़ा हुआ'। प्राकृत की तुलना में भी जिस भाषा में ध्वन्यात्मक तथा व्याकरणिक परिवर्तन हो गया था, उसे पंडितों ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अपभ्रंश' या 'अवहट्ट' ('अपभ्रष्ट') नाम से अभिहित किया। अपभ्रंश प्राकृत तथा आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी है। कुछ थोड़े से लोगों की धारणा यह है कि अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी नहीं है, अपितु वह भी प्राकृतकालीन ही एक क्षेत्रीय भाषा है, या एक प्राकृत है। किन्तु ऐसी संभावना है नहीं। अपभ्रंश प्राकृत और आधुनिक भाषाओं के बीच की कड़ी है, तथा हर आधुनिक भारतीय आर्यभाषा का जन्म किसी-न-किसी अपभ्रंश से हुआ है। भाषा के अर्थ में अपभ्रंश' नाम का प्रयोग छठी सदी से मिलने लगता है।

बोलियाँ—यों तो 'प्राकृत-सर्वस्व' ग्रंथ में अपभ्रंश के २७ भेद स्वीकार किए गए हैं, किन्तु मुख्य अपभ्रंश केकय, टक्क, व्राचड, शौरसेनी, माहाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी मानी जा सकती हैं, जिनके स्थान वे ही थे जिनका उल्लेख पीछे प्राकृतों के प्रसंग में हो चुका है। डॉ० चटर्जी ने खस नाम की एक अपभ्रंश की भी कल्पना की है जिसका स्थान पर्वतीय क्षेत्रों में माना है। यों याकोबी ने अपभ्रंश के चार भेद, तगारे ने तीन भेद तथा नामवर सिंह ने दो भेद किए हैं, किन्तु ये भेद साहित्य में प्रयुक्त भाषा के आधार पर किए गए हैं। प्राकृतों और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की कड़ी के रूप में अपभ्रंश के ६-७ भेद मानने ही पड़ेंगे।

अपभ्रंशों की सामान्य विशेषताएँ

(१) 'अ' का पूर्वी तथा पश्चिमी अपभ्रंशों में संवृत-विवृत का भेद था। (२) ऋ का लिखने में प्रयोग था, किन्तु उसका उच्चारण 'रि' होता था। (३) श् का प्रचार केवल मागधी (सम्भवतः पूर्वी मागधी) में था। (४) ल् माहाराष्ट्री में तो था ही, साथ ही उड़ीसा में बोली जाने वाली मागधी एवं गुजरात, राजस्थान, बाँगड़ू, पहाड़ी में बोली जाने वाली शौरसेनी में भी था। ळ्ह भी कहीं-कहीं था। (५) स्वरों का अनुनासिक रूप (ऋ का नहीं) प्रयुक्त होने लगा था। (६) संगीतात्मक स्वराघात समाप्त हो चुका था। बलात्मक स्वराघात विकसित हो चुका था। (७) अपभ्रंश एक उकार-बहुला भाषा थी। यों तो 'ललितविस्तर' तथा 'प्राकृत धम्मपद' आदि ग्रन्थों में भी यह प्रवृत्ति मिलती है, किन्तु वहाँ यह प्रवृत्ति अपने बीज रूप में है। अपभ्रंश में यह बहुत अधिक है, जहाँ से यह ब्रजभाषा या अवधी आदि को मिली है (जैसे एक्कु, कारणु, पियासु, अगु, मूलु और जगु आदि)। (८) ध्वनि-परिवर्तन की दृष्टि से जो प्रवृत्तियाँ (लोप, आगम, विपर्यय, महाप्राण का ह आदि) पालि में शुरू होकर प्राकृत में विकसित हुई थीं, उन्हीं का यहाँ आकर और विकास हो गया। (९) य का ज, म का वँ, व का ब; ष्ण का न्ह, क्ष का क्ख या च्छ, आदि रूपों में ध्वनि-विकास की बहुत-सी अन्य प्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं। (१०) (विशेषतः परवर्ती अपभ्रंश में) समीकरण के कारण उत्पन्न द्वित्व में एक व्यंजन बच गया है, और पूर्ववर्ती स्वर में क्षतिपूरक दीर्घीकरण हो गया (सं० तस्य, प्रा० तस्स, अप० तासु)। (११) भाषा काफ़ी वियोगात्मक हो गई। (१२) नपुंसकलिंग समाप्त हो गया। (१३) रूपों की संख्या कम हो गई। उदाहरण के लिए, संस्कृत में एक संज्ञा के कारकीय रूप लगभग २० होते थे, अब ५-६ ही रह गए।

अवहट्ठ—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी तथा कई अन्य विद्वानों ने अपभ्रंश और आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच की कड़ी को 'अवहट्ठ' कहा है। मेरे विचार में ऐसी मान्यता निराधार है। मूलतः संस्कृत से भ्रष्ट हुई भाषा को 'अपभ्रंश'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और 'अपभ्रष्ट' कहा गया। 'अपभ्रंश' शब्द का विकास 'अवहंस' रूप में हुआ तो 'अपभ्रष्ट' का 'अवहट्ठ' रूप में और इन दोनों ही नामों का प्रयोग उस भाषा के लिए होता रहा। वास्तविकता यह है कि इस दृष्टि से एकरूपता नहीं मिलती। अद्दहमाण (१२वीं सदी) ने 'अवहट्ठ' कहा, ज्योतिरेश्वर ठाकुर (१४वीं सदी) ने 'अवहठ' कहा, दामोदर पंडित (१२वीं सदी) ने 'अपभ्रंश' कहा, विद्यापति (१४वीं सदी) ने 'अवहट्ठ' कहा तो रविकर (१६वीं सदी) ने इसे एक स्थान पर 'अपभ्रंश' कहा तो दूसरे स्थान पर 'अपभ्रष्ट'। इस तरह 'अपभ्रंश' और 'अवहट्ठ' मेरे विचार में एक ही भाषा के दो नाम हैं।

अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का उद्भव—आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का उद्भव विभिन्न क्षेत्रीय अपभ्रंशों से हुआ, जिसे इस प्रकार दिखाया जा सकता है—

अपभ्रंश		आधुनिक भाषाएँ तथा उपभाषाएँ
शौरसेनी	.....	पश्चिमी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती
केकय	.....	लहँदा
टक्क	.....	पंजाबी
व्राचड	.....	सिंधी
माहाराष्ट्री	.....	मराठी
मागधी	.....	बिहारी, बंगाली, उड़िया, असमिया
अर्धमागधी	.....	पूर्वी हिंदी

इस प्रकार हिन्दी भाषा का उद्भव अपभ्रंश के शौरसेनी, मागधी तथा अर्धमागधी रूपों से हुआ है।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ (१००० से अब तक)

लगभग १००० ई० के आसपास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से उपर्युक्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास हुआ। आधुनिक भाषाओं में भारतीय साहित्य-रचना तो ११०० ई० में या उसके भी बाद शुरू हुई, किन्तु उनका जन्म १००० ई० के आसपास हो चुका था। वस्तुतः कोई भी भाषा जन्म लेते ही साहित्य की भाषा नहीं बनती। पैदा होने के सौ-डेढ़ सौ वर्ष बाद स्वीकृति मिलने तथा उसका स्वरूप कुछ निश्चित होने पर ही लोग उसे साहित्य-रचना के लिए अपनाते हैं। यहाँ सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का परिचय दिया जा रहा है।

सिंधी—'सिंधी' शब्द का संबंध सं० सिंधु से है। सिंधु नदी के कारण ही सिंध प्रदेश 'सिंध' कहलाया और वहाँ की भाषा 'सिंधी' कहलाई। सिंधी के अधिकांश बोलने वाले पाकिस्तान के सिंध प्रांत में हैं, किन्तु कुछ भारत में भी हैं जो मुख्यतः बम्बई, अजमेर तथा दिल्ली आदि में हैं। इसके बोलने वालों की ठीक संख्या अज्ञात है। सिंधी का विकास व्राचड प्राकृत से विकसित व्राचड अपभ्रंश से हुआ है। सिंधी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलने वाले मुख्यत: मुसलमान रहे हैं, इसी कारण सिंधी के शब्द-भंडार में अन्य कई आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की तुलना में अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्दों का आधिक्य है, फिर भी संस्कृत तद्भव शब्दों की संख्या पूरे शब्द-भंडार का लगभग ७५ प्रतिशत है। सिंधी भाषा में ग, ज, ड, ब विशेष प्रकार की अंतर्मुखी ध्वनियाँ हैं। सिंधी की मुख्य बोलियाँ ५-६ हैं : बिचौली, सिराइकी, थरेली, लासी, लाड़ी तथा कच्छी। सिंधी भाषा की लिपि फ़ारसी लिपि के आधार पर बनी हुई है। भारतीय सिंधियों में कुछ लोग फ़ारसी पर आधारित सिंधी लिपि तथा कुछ लोग देवनागरी लिपि का प्रयोग करते हैं। पहले सिंधी के लिए कहीं-कहीं गुरुमुखी का भी प्रयोग होता था। सिंधी में प्राचीन साहित्य तो कम है, किन्तु आधुनिक साहित्य अच्छा है।

लहँदा—'लहँदा' का शाब्दिक अर्थ है 'पश्चिम'। पश्चिमी पंजाब में बोली जाने के कारण इसे 'लहँदा' अथवा 'लहँदी' कहते हैं। यह मुख्यत: पाकिस्तान में पंजाब प्रांत में बोली जाती है। यों भारत में भी इसके कुछ बोलने वाले रहते हैं। १९६१ की जनगणना के अनुसार पाकिस्तान में इसके बोलने वालों की संख्या १ करोड़ २२ लाख थी। इसका विकास केकय प्राकृत से विकसित केकय अपभ्रंश से मूलत: हुआ है। यों इस पर व्राचड, पैशाची (पश्चिमोत्तर प्रदेश के आर्येतर लोगों की भाषा) तथा टक्क का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इसके शब्द-भंडार में फ़ारसी-अरबी शब्द काफ़ी हैं, क्योंकि इसके बोलने वाले अधिकांश मुसलमान हैं। पहले इसके लेखन में इसकी अपनी लिपि लंडा भी प्रयुक्त होती थी, अब फ़ारसी का भी प्रयोग होता है। इसकी मुख्य बोलियाँ जटकी, मुल्तानी, जांगली आदि हैं। इसमें साहित्य नहीं के बराबर है।

पंजाबी—'पंजाब' फ़ारसी शब्द है जिसका अर्थ है 'पाँच नदियों का देश'। मुख्यत: पंजाब में बोली जाने के कारण इसका नाम पंजाबी है। पंजाबी के कुछ बोलने वाले पाकिस्तान में तथा अधिकांश भारत में हैं। १९६१ की जनगणना के अनुसार भारत में पंजाबियों की संख्या दो करोड़ तीन लाख थी। इसका विकास टक्क प्राकृत से विकसित टक्क अपभ्रंश से माना जाता है, किन्तु साथ ही इस पर केकय, शौरसेनी तथा पैशाची (कुछ) का प्रभाव रहा है। इनमें सबसे अधिक प्रभाव शौरसेनी का है। पंजाबी की अपनी पुरानी लिपि लंडा थी जिसे देवनागरी की सहायता से सुधार कर गुरु अंगद ने गुरुमुखी लिपि बनाई है। अब पंजाबी गुरुमुखी लिपि में ही लिखी जाती है। पंजाबी में घ, झ, ढ, ध, भ का उच्चारण कुछ क्ह, च्ह, ट्ह, त्ह, प्ह जैसा होता है। इसकी मुख्य बोलियाँ माझी, डोगरी (अब इसे प्राय: भाषा की स्थिति प्राप्त हो गई है), दोआबी, राठी आदि हैं। पंजाबी में आधुनिक साहित्य तो पर्याप्त मात्रा में है, किन्तु प्राचीन साहित्य बहुत थोड़ा है।

हिंदी—'हिंदी' का मूल अर्थ 'हिंद (सं० सिंधु > फ़ा० हिंदु > हिंद) का' है। इसीलिए हिंद की केंद्रीय भाषा के लिए इस नाम का प्रयोग हो रहा है। हिंदी के अंतर्गत पाँच उपभाषाएँ या बोली-वर्ग हैं : **पश्चिमी हिंदी** (खड़ीबोली, हरियाणी, ब्रज, बुंदेली, कनौजी का समूह); **पूर्वी हिंदी** (अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी का समूह), **राजस्थानी** (उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी राजस्थानी का समूह); **पहाड़ी** (पश्चिमी तथा मध्यवर्ती पहाड़ी का समूह); **बिहारी** (भोजपुरी, मगही, मैथिली का समूह)। १९६१ की जनगणना के अनुसार हिंदी भाषा तथा उसके विभिन्न रूप बोलने वालों की संख्या २२ करोड़ ५२ लाख थी। इनमें पश्चिमी हिंदी का विकास शौरसेनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृत से विकसित शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है। वस्तुतः अपने-अपने काल की राष्ट्रभाषा परिनिष्ठित संस्कृत, परिनिष्ठित पालि, परिनिष्ठित अपभ्रंश इसी क्षेत्र की भाषाएँ थीं। उसी परम्परा में आज इस क्षेत्र की हिंदी राष्ट्र-भाषा है। 'पूर्वी हिंदी' अर्धमागधी अपभ्रंश (अर्धमागधी प्राकृत से विकसित, जिसमें कुछ अंश शौरसेनी का तथा अधिकांश मागधी का था) से तथा 'राजस्थानी' शौरसेनी अपभ्रंश के उस रूप से जो राजस्थान में प्रचलित था (इसे **उपनागर** अपभ्रंश भी कहते हैं; इसका सम्बन्ध शौरसेनी प्राकृत से है), विकसित है। पहाड़ी के बारे में विवाद है। डॉ० चटर्जी इसे खस अपभ्रंश से जोड़ते हैं। मेरे विचार में शौरसेनी प्राकृत से विकसित शौरसेनी अपभ्रंश के उस रूप से इसका विकास हुआ जो पहाड़ी प्रदेश में बोली जाती थी। साथ ही इस पर ऐतिहासिक कारणों से राजस्थानी तथा पश्चिमी हिंदी का भी प्रभाव पड़ा है। यों इस क्षेत्र में खस जाति के लोग भी रहे हैं, अतः उनका प्रभाव भी है। बिहारी का विकास मागधी अपभ्रंश से हुआ है, किंतु इस पर पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी तथा पहले शौरसेनी का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। आगे इनके बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है।

गुजराती—'गुजरात' नाम का सम्बन्ध 'गुर्जर' जाति से है : गुर्जर+त्रा > गज्जरत्ता > गुजरात। गुजरात की भाषा गुजराती है। १९६१ की जनगणना के अनुसार गुजराती के बोलने वाले लगभग २ करोड़ ३ लाख थे। तेसितोरी के अनुसार प्रारम्भ में गुजराती तथा राजस्थानी एक ही भाषा के दो स्थानीय रूप थे। इस प्रकार इसका सम्बन्ध शौरसेनी प्राकृत तथा शौरसेनी अपभ्रंश के उस रूप से है जो गुजरात में बोला जाता था। उस प्राकृत तथा अपभ्रंश को कुछ लोगों ने अलग नाम 'लाटी प्राकृत' और 'नागर अपभ्रंश' दिया है। गुजराती की लिपि अपनी है जिसमें शिरोरेखा नहीं होती। गुजराती साहित्य की दृष्टि से पर्याप्त संपन्न भाषा है। इसकी मुख्य बोलियाँ काठियावाड़ी, पट्टनी, सुरती आदि हैं।

मराठी—महाराष्ट्र की भाषा मराठी का नाम सं० शब्द 'माहाराष्ट्रीय' से विकसित है। १९६१ की जनगणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ३ करोड़ ३३ लाख थी। इसका विकास माहाराष्ट्री प्राकृत से विकसित माहाराष्ट्री अपभ्रंश से हुआ है। इसकी लिपि देवनागरी है किंतु कुछ लोग मोड़ी का भी प्रयोग करते हैं। इसकी मुख्य बोलियाँ कोंकणी (इसे अब लोग भाषा मानने लगे हैं), नागपुरी, कोष्टी, माहारी आदि हैं। मराठी साहित्य बहुत संपन्न है।

बँगला—संस्कृत शब्द वंग+आल (प्रत्यय) से बँगला बना है, और वहाँ की भाषा बंगाली अथवा बँगला है। अब बंगाली पश्चिमी बंगाल (भारत) तथा बाँगलादेश में बोली जाती है। १९६१ की गणना के अनुसार भारत में ३ करोड़ ३८ लाख बंगलाभाषी थे तो पाकिस्तान (अब बाँगलादेश में) २ करोड़ ६२ लाख। अर्थात्, कुल लगभग ६ करोड़। बंगला का सम्बन्ध मागधी प्राकृत से विकसित मागधी अपभ्रंश (जिसे गौड़ी अपभ्रंश भी कहते हैं) से है। इसकी मुख्य बोलियाँ पश्चिमी, दक्षिणी-पश्चिमी, उत्तरी, राजबंगशी, पूर्वी आदि हैं। बंगला की अपनी लिपि है। बंगाली साहित्य बहुत ही सम्पन्न है।

असमी—आसाम की भाषा असमी अथवा असमिया १९६१ की जनगणना के अनुसार लगभग ३ करोड़ ३९ लाख लोगों द्वारा बोली जाती है। इसका सम्बन्ध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मागधी प्राकृत से उत्पन्न मागधी अपभ्रंश के उत्तरी-पूर्वी रूप से है। यों इस पर प्राचीन बँगला का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। असमी की अपनी लिपि है जो बंगला से बहुत मिलती-जुलती है। इसकी मुख्य बोली विश्नुपुरिया है। असमी में पर्याप्त साहित्य है।

उड़िया—उड़ीसा की भाषा उड़िया है। उड़ीसा का सम्बन्ध 'ओड्र' शब्द से है जो मूलतः द्रविड़ शब्द 'ओड' से निकला है। १९६१ की जनगणना के अनुसार इसके बोलने वाले लगभग १ करोड़ ५७ लाख थे। उड़िया मागधी प्राकृत से विकसित मागधी अपभ्रंश के दक्षिणी-पूर्वी रूप से निकली है। उड़िया भाषा बँगला से बहुत मिलती-जुलती है, किन्तु इसकी लिपि उससे सर्वथा भिन्न है जो ब्राह्मी की उत्तरी शैली से विकसित है, किंतु साथ ही तेलुगु लिपि से प्रभावित है। उड़िया की मुख्य बोलियाँ गंजामी, संभलपुरी, भत्री आदि हैं।

सिंहली तथा **जिप्सी** भी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में आती हैं, किंतु वे भारत में नहीं हैं, अतः उनका परिचय नहीं दिया जा रहा है। **नेपाली** (पहाड़ी का तीसरा रूप 'पूर्वी पहाड़ी') भी इसी में है, किंतु उसके कुछ ही बोलने वाले भारत में हैं। मुख्य क्षेत्र नेपाल है। ग्रियर्सन ने **खानदेशी** (खानदेश में बोली जाने वाली) तथा **भीली** (राजस्थान की सीमा पर बोली जाने वाली) को भी अलग स्थान दिया था, किंतु अब इन्हें अलग भाषाएँ नहीं माना जाता।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण

उपर्युक्त आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के वर्गीकरण पर विभिन्न लोगों (हार्नले, वेबर, ग्रियर्सन, चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा, भोलानाथ तिवारी आदि) द्वारा विभिन्न रूपों में विचार किया गया है। यहाँ कुछ प्रमुख का उल्लेख किया जा रहा है—

(अ) इस प्रसंग में प्रथम नाम हार्नले का लिया जा सकता है। उन्होंने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को ४ वर्गों में रखा है: (क) पूर्वी गौडियन—पूर्वी हिंदी (इसी में बिहारी भी है), बंगला, असमी, उड़िया। (ख) पश्चिमी गौडियन—पश्चिमी हिंदी (राजस्थानी भी), गुजराती, सिंधी, पंजाबी। (ग) उत्तरी गौडियन—गढ़वाली, नेपाली, आदि पहाड़ी। (घ) दक्षिणी गौडियन—मराठी।

(आ) हार्नले ने भारतीय आर्यभाषाओं के अध्ययन के आधार पर पिछली सदी में यह सिद्धांत रखा था कि भारत में आर्य कम-से-कम दो बार आये। पहले आर्य आधुनिक पंजाब में आकर बसे थे। कुछ दिन बाद दूसरे आर्यों का हमला हुआ। जैसे कहीं कील ठोकने पर कील छेद बनाकर बैठ जाती है, और उस बने छेद के स्थान पर जो चीज़ रहती है, चारों ओर चली जाती है, उसी प्रकार नवागत आर्य उत्तर से आकर प्राचीन आर्यों के स्थान पर जम गये और पूर्वागत पूरब, दक्षिण, और पश्चिम में फैल गए। इस प्रकार नवागत आर्य भीतरी कहे जा सकते हैं और पूर्वागत बाहरी। इस भीतरी और बाहरी को ग्रियर्सन ने अंशतः स्वीकार किया और इसी आधार पर उन्होंने अपना पहला वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इसमें ३ वर्ग हैं: (१) बाहरी उपशाखा, (क) पश्चिमोत्तरी समुदाय (लहँदा, सिंधी), (ख) दक्षिणी समुदाय (मराठी), (ग) पूर्वी समुदाय (उड़िया, बंगाली, असमी, बिहारी। (२) मध्यवर्गी उपशाखा—(घ) मध्यवर्ती समुदाय (पूर्वी हिन्दी)। (३) भीतरी उप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाखा--(ङ) केंद्रीय समुदाय (पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी, गुजराती, भीली खानदेशी[२]), (च) पहाड़ी समुदाय (पूर्वी, मध्यवर्ती, पश्चिमी)। बाद में ग्रियर्सन ने एक नया वर्गीकरण सामने रखा जो इस प्रकार है : (क) मध्यदेशी--(पश्चिमी हिन्दी), (ख) अन्तर्वर्ती--(I) पश्चिमी हिन्दी से विशेष घनिष्ठता वाली पंजाबी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी (पूर्वी, पश्चिमी, मध्य), (II) बहिरंग से सम्बद्ध (पूर्वी हिन्दी), (ग) बहिरंग भाषाएं--(१) पश्मिोत्तरी (लहँदा, सिन्धी), (२) दक्षिणी (मराठी), (३) पूर्वी (बिहारी, उड़िया, बंगाली, असमी)।

ग्रियर्सन का वर्गीकरण ध्वनि, व्याकरण या रूप तथा शब्द-समूह इन तीन बातों पर आधारित है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने इन तीनों की ही आलोचना की है। उन्हीं के आधार पर ग्रियर्सन के कुछ प्रमुख आधार संक्षिप्त आलोचना के साथ यहाँ दिये जा रहे हैं।

ध्वनि—ग्रियर्सन के वर्गीकरण के ध्वन्यात्मक आधार लगभग पंद्रह हैं जिनमें केवल प्रमुख चार-पाँच लिये जा रहे हैं : (क) ग्रियर्सन के अनुसार 'र' का 'ल' या 'ड़' के लिए प्रयोग केवल बाहरी भाषाओं में मिलता है, किन्तु यथार्थतः ऐसी बात नहीं है। अवधी, ब्रज, खड़ीबोली आदि में भी यह प्रवृत्ति मिलती है, जैसे बर (बल), गर (गला), जर (जल), वीरा (बीड़ा), भीर (भीड़) आदि। (ख) ग्रियर्सन के अनुसार बाहरी भाषाओं में 'द' का परिवर्तन 'ड' में हो जाता है। वस्तुतः यह बात भीतरी में भी मिलती है। हिन्दी में डीठि (दृष्टि), ड्योढ़ी (देहली), डेढ़ (द्वयर्द्ध), डाभ (दर्भ), डाढ़ा (दग्ध), डंडा (दंड), डोली (दोलिका), डोरा (दोरक), डँसना (दंश) आदि देखे जा सकते हैं। (ग) ग्रियर्सन का कहना है कि 'म्ब' ध्वनि का विकास बाहरी भाषाओं में 'म' रूप में हुआ है तथा भीतरी में 'ब' रूप में, किन्तु इसके विरोधी उदाहरण भी मिलते हैं। पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र में 'जम्बुक' का 'जामुन' या 'निम्ब' का 'नीम' मिलता है। दूसरी ओर बँगला में 'निम्बूक' का 'लेबू' या 'नेबू' मिलता है। (घ) ऊष्म ध्वनियों को लेकर ग्रियर्सन का कहना है कि भीतरी में इनका उच्चारण अधिक दबाकर किया जाता है और वह 'स' रूप में होता है, किन्तु बाहरी में यह श, ख या ह रूप में मिलता है। बंगाल तथा महाराष्ट्र के कुछ भागों में निर्बल होकर यह 'श' हो गया है। पूर्वी बंगाल और असम में और भी निर्बल होकर 'ख' हो गया है और बँगला तथा पश्चिमोत्तर में 'ह' हो गया है। जहाँ तक स्वरों के बीच में 'स' के 'ह' हो जाने का सम्बन्ध है, वह बाहरी के साथ भीतरी भाषाओं में भी पाया जाता है। सं० एक-सप्तति, पं० हिन्दी इकहत्तर, सं० द्वादश, पं० हि० बारह, सं० करिष्यति, हि० करिहइ। साथ ही बाहरी में 'स' भी कहीं-कहीं है, जैसे लहँदा करेसी (करेगी)। 'ख' वाला विकास बड़ा सीमित है और मात्र पूर्वक्षेत्रीय है। उसके आधार पर धुर पूर्व और पश्चिम की भाषाएँ एक वर्ग में नहीं रखी जा सकतीं। 'श' वाली विशेषता बँगला आदि में मागधी प्राकृत से चली आ रही है और वह प्रायः निर्बन्ध है। मराठी में वह बाद का विकास है और सापेक्ष है (इ, ई, ए, य, आदि तालव्य ध्वनियों के प्रभाव से)। इस रूप में तो भीतरी की गुजराती में भी यह विकास है, जैसे करशे (करिष्यति)। इस प्रकार यह भी भेदक तत्त्व नहीं है। (ङ) महाप्राण ध्वनियों का अल्पप्राण हो जाना भी ग्रियर्सन के अनुसार बाहरी

१, २. ये दोनों राजस्थानी-गुजराती के रूप हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषाओं में है, भीतरी में नहीं। हिंन्दी में भगिनी का बहिन, प्राकृत कल्पित रूप इंठा (सं० इष्टक) का ईंट, प्राकृत कल्पित रूप ऊंठ (सं० उष्ट्र) का ऊँट इसके विरोध में जाते हैं।

व्याकरण या रूप-रचना--ग्रियर्सन ने इस प्रसंग में पाँच-छः रूप-विषयक आधारों का उल्लेख किया है जिनमें से तीन यहाँ लिये जा रहे हैं। (क) ग्रियर्सन 'ई' स्त्री प्रत्यय के आधार पर बाहरी वर्ग की पश्चिमी और पूर्वी भाषाओं को एक वर्ग की सिद्ध करना चाहते हैं, किन्तु वस्तुतः यह तर्क तब ठीक माना जाता जब भीतरी वर्ग में यह बात न मिलती। हिन्दी में इस प्रत्यय का प्रयोग क्रिया (गाती, दौड़ी), परसर्ग (की,), संज्ञा (लड़की, बेटी), विशेषण (बड़ी, छोटी) आदि कई वर्ग के शब्दों में खूब होता है, अतः इसे इस प्रकार के वर्गीकरण का आधार नहीं मान सकते। (ख) भाषा संयोगात्मक से वियोगात्मक होती है और कुछ विद्वानों के अनुसार वियोगात्मक से फिर संयोगात्मक। ग्रियर्सन का कहना है कि संयोगात्मक भाषा संस्कृत से चलकर आधुनिक भाषाएँ (कारक रूप में) वियोगात्मक हो गई हैं, किन्तु आधुनिक में भी बाहरी भाषाएं विकास में एक कदम और आगे बढ़कर संयोगात्मक हो रही हैं। जैसे हिन्दी 'राम की किताब', बंगाली 'रामेर बोई'। ग्रियर्सन का यह भी कहना है कि भीतरी में यदि कुछ संयोगात्मक रूप मिलते भी हैं तो वे प्राचीन के अवशेष मात्र हैं, अर्थात् प्रवृत्ति नहीं है, अपवाद है। इस प्रकार बाहरी-भीतरी भाषाओं में यह एक काफ़ी बड़ा अन्तर है। किन्तु ग्रियर्सन का यह अन्तर भी कसौटी पर खरा नहीं उतरता। जैसा कि डॉ० चटर्जी ने दिखाया है, तुलनात्मक ढंग से जब हम बाहरी और भीतरी के कारक-रूपों का अध्ययन करते हैं तो देखते हैं कि संयोगात्मक रूपों का प्रयोग भीतरी में बाहरी से कम नहीं है, अतः इस बात को भी भेदक तत्त्व नहीं माना जा सकता। ब्रजःपूतहिं (कर्म), मनहिं, भौनहिं (अधिकरण)। (ग) ग्रियर्सन विशेषणात्मक प्रत्यय 'ल' को केवल बाहरी भाषाओं की विशेषता मानते हैं, यद्यपि भीतरी में भी यह पर्याप्त है, जैसे रँगीला, हठीला, भड़कीला, चमकीला, गठीला, खर्चीला, आदि।

शब्द-समूह--इसके आधार पर भी ग्रियर्सन बाहरी भाषाओं में साम्य मानते हैं, किन्तु विस्तार से देखने पर यह बात भी ठीक नहीं उतरती। मराठी-बंगाली-सिन्धी में बंगाली हिंदी से अधिक साम्य नहीं है। इस प्रकार ग्रियर्सन जिन बातों के आधार पर बाहरी-भीतरी वर्गीकरण को स्थापित करना चाहते थे, वे बहुत संपुष्ट नहीं हैं।

(इ) डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी का वर्गीकरण इस प्रकार है : (क) उदीच्य (सिंधी, लहँदा, पंजाबी), (ख) प्रतीच्य (गुजराती, राजस्थानी), (ग) मध्यदेशीय (पश्चिमी हिंदी), (घ) प्राच्य (पूर्वी हिंदी, बिहारी, उड़िया, असमिया, बंगाली), (ङ) दाक्षिणात्य (मराठी)। डॉ० चटर्जी पहाड़ी को राजस्थानी का प्रायः रूपांतर-सा मानते हैं। इसीलिए उसे यहाँ अलग स्थान नहीं दिया है।

(ई) डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने चटर्जी के वर्गीकरण के आधार पर ही अपना वर्गीकरण दिया है : (क) उदीच्य (सिंधी, लहँदा, पंजाबी), (ख) प्रतीच्य (गुजराती), (ग) मध्यदेशीय (राजस्थानी, पं० हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, बिहारी), (घ) प्राच्य (उड़िया, आसामी, बंगाली), (ङ) दाक्षिणात्य (मराठी)। इस वर्गीकरण में हिन्दी के प्रमुख चारों रूपों को मध्यदेशीय माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उ) श्री सीताराम चतुर्वेदी ने संबंधसूचक परसर्ग के आधार पर का (हिंदी, पहाड़ी, जयपुरी, भोजपुरी), दा (पंजाबी, लहँदा), जो (सिन्धी, कच्छी), नो (गुजराती), एर (बंगाली, उड़िया, आसामी) वर्ग बनाये हैं। यथार्थतः यह कोई वर्गीकरण नहीं है। ऐसे तो 'ल', 'र' या 'स', 'श' ध्वनियों के आधार पर भी वर्ग बनाये जा सकते हैं।

(ऊ) वस्तुतः वर्गीकरण का आशय यह है कि उसके आधार पर भाषाओं की मूलभूत विशेषताएँ स्पष्ट हो जायँ। उपर्युक्त किसी भी वर्गीकरण में यह बात नहीं है, ऐसी स्थिति में वे बहुत सार्थक नहीं हैं। इनके आधार पर कोई भाषा-वैज्ञानिक निर्णय नहीं निकाला जा सकता। इससे अच्छा तो है कि इनकी अलग-अलग प्रवृत्तियों का ही अध्ययन कर लिया जाय, या यदि वर्गीकरण ज़रूरी ही समझा जाय तो दो बातें कही जा सकती हैं : (१) प्रवृत्तियों के आधार पर इन भाषाओं में इतना वैभिन्न्य है कि सभी बातों का ठीक तरह से विचार करते हुए वर्गीकरण हो ही नहीं सकता। (२) हाँ, उत्पत्ति या सम्बद्ध अपभ्रंशों के आधार पर इनके वर्ग अवश्य बनाये जा सकते हैं। किंतु यह ध्यान रहे कि इस प्रकार के वर्गों में ध्वनि या गठन संबंधी साम्य बहुत कम दृष्टियों से मिल सकता है। यों उत्पत्ति भी अपने आप में महत्त्वपूर्ण है, अतः इसे बिल्कुल निरर्थक नहीं कहा जा सकता। इस वर्गीकरण का रूप मेरे अपने विचार से यह हो सकता है : १. मध्यवर्ती वर्ग (पश्चिमी हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, पहाड़ी); २. पूर्वीय वर्ग (बिहारी, बंगाली, आसामी, उड़िया); ३. मध्यपूर्वीय वर्ग (पूर्वी हिन्दी); ४. माहाराष्ट्री (मराठी), ५. पश्चिमोत्तरी वर्ग (सिंधी, लहँदा, पंजाबी)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय २

हिन्दी : क्षेत्र, उपभाषाएँ तथा बोलियाँ

हिन्दी भाषा का क्षेत्र हिमालय प्रदेश, पंजाब के कुछ भाग, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा बिहार में है, जिसे हिंदी (भाषी) प्रदेश कहते हैं। इस पूरे क्षेत्र में हिंदी के पाँच **बोली-वर्ग या उपभाषाएँ** हैं, जिसके अंतर्गत मुख्यतः १९ बोलियाँ हैं—

भाषा	उपभाषाएँ (अथवा बोली-वर्ग)	बोलियाँ
हिंदी	१. पश्चिमी हिंदी[1] ...	१. कौरवी (खड़ीबोली) २. ब्रजभाषा ३. हरियाणी ४. बुन्देली ५. कन्नौजी
	२. पूर्वी हिंदी ...	१. अवधी २. बघेली ३. छत्तीसगढ़ी
	३. राजस्थानी ...	१ पश्चिमी राजस्थानी (मारवाड़ी) २. पूर्वी राजस्थानी (जयपुरी) ३. उत्तरी राजस्थानी (मेवाती) ४. दक्षिणी राजस्थानी (मालवी)
	४. पहाड़ी ...	१. पश्चिमी पहाड़ी २. मध्यवर्ती पहाड़ी (कुमायूँनी-गड़वाली)
	५. बिहारी ...	१. भोजपुरी २. मगही ३. मैथिली

इस तरह हिन्दी के अन्तर्गत ये सत्रह बोलियाँ मानी जाती हैं। मैं ताजुज्बेकी तथा निमाड़ी मिलाकर उन्नीस मानता हूँ। आगे सबका संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है, किन्तु इसके पूर्व पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी को लिया जा रहा है।

---

१. सामान्यतः इसमें यही पाँच बोलियाँ मानी जाती हैं, किंतु मैं पश्चिमी हिंदी में ताजुज्बेकी तथा निमाड़ी को भी मानता हूँ। उस तरह मेरे अनुसार पश्चिमी हिंदी में सात बोलियाँ हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पश्चिमी हिन्दी और पूर्वी हिन्दी

ये नाम ग्रियर्सन के रखे हुए हैं। वे केवल आठ बोलियों को ही भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से हिंदी के अंतर्गत मानते थे। इसीलिए 'हिंदी' शब्द का प्रयोग केवल 'पश्चिमी हिंदी' तथा 'पूर्वी हिंदी' के नाम में ही उन्होंने किया, अन्य नामों (पहाड़ी, राजस्थानी, बिहारी) में नहीं। उनके अनुसार हिंदी की आठ बोलियाँ हैं। पश्चिमी हिंदी में खड़ीबोली, हरियाणी, ब्रज, बुंदेली, कनौजी; पूर्वी हिन्दी में अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी। मैं पूर्वी हिन्दी में तो तीन ही, किन्तु पश्चिमी में सात बोलियों (उपर्युक्त के अतिरिक्त निमाड़ी और ताजुज्बेकी) को रखने के पक्ष में हूँ।

पश्चिमी और पूर्वी हिन्दी में अन्तर—इन दोनों का अन्तर मूलतः इन दोनों की भौगोलिक स्थिति तथा इन दोनों के इतिहास पर आधारित है। भौगोलिक दृष्टि से 'पश्चिमी हिन्दी' पंजाबी, राजस्थानी, पहाड़ी, पूर्वी हिन्दी तथा मराठी भाषाओं के बीच में है, अतः उसमें इन भाषाओं की कुछ बातें न्यूनाधिक रूप में पायी जाती हैं। दूसरी ओर 'पूर्वी हिन्दी' पहाड़ी, बिहारी, उड़िया, मराठी तथा पश्चिमी हिन्दी के बीच में है, अतः उसमें इनकी विशेषताएं अंशतः समाहित हैं। दूसरी ओर, पश्चिमी हिन्दी शौरसेनी अपभ्रंश से उद्भूत है, अतः उसे उक्त अपभ्रंश की परम्पराएँ मिली हैं; तथा पूर्वी हिन्दी अर्धमागधी से विकसित हुई है, अतः उसमें पूर्वी शौरसेनी तथा पश्चिमी मागधी की विशेषताएं मिल गई हैं। इन दोनों के मुख्य अन्तर निम्नांकित हैं—.

(क) **ध्वनि**—(१) ध्वनि की दृष्टि से दोनों में सबसे बड़ा अन्तर 'अ' के उच्चारण में है। बंगला आदि पूर्वी भाषाओं में 'अ' का उच्चारण 'ओ' के बहुत समीप होता है, अर्थात् संवृत तथा वृत्तमुखी होता है, किन्तु जैसे-जैसे हम पश्चिम की ओर बढ़ते हैं, ओष्ठों की यह वृत्तता एवं संवृतता समाप्त होती जाती है और विवृतता एवं ओष्ठ-अवृत्तता बढ़ती जाती है। इसका आशय यह हुआ कि पश्चिमी हिन्दी का 'अ' अधिक विवृत है, जबकि पूर्वी हिन्दी का उसकी तुलना में संवृत है; साथ ही पूर्वी हिन्दी के 'अ' में पश्चिमी हिन्दी की तुलना में कुछ ओष्ठ-वृत्तता है। (२) पश्चिमी हिन्दी में ह्रस्व इ तथा उ का उच्चारण दीर्घ ई, ऊ के अधिक निकट है, जबकि पूर्वी हिन्दी में भोजपुरी आदि की तरह इ, उ इतने अधिक ह्रस्व हैं कि पश्चिमी हिन्दी वालों को वे प्रायः 'अ' जैसे सुनाई पड़ते हैं। इसी प्रकार पूर्वी हिन्दी-भाषी जब पश्चिमी हिन्दी वालों से इ, उ सुनता है तो उसे ऐसा लगता है कि इनका उच्चारण दीर्घ ई, ऊ हो रहा है (विशेषत' अंत्य स्थिति में)। (३) पूर्वी हिन्दी में दो स्वर एकसाथ प्रायः आते हैं, किन्तु पश्चिमी हिन्दी में अपेक्षाकृत कम आते हैं: पश्चिमी हिन्दी दो, कौन, और, बैल, ऐसा, भैंस, द्वार; पूर्वी हिन्दी दुइ, कउन, अउर, बइल, अइसा, भईंस, दुवार आदि। (४) पूर्वी हिन्दी के अधिकांश क्षेत्रों में ऋ का उच्चारण 'रि' होता है, किन्तु पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र में कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः इसका उच्चारण 'र्' होता है: कृपा-क्रिपा-क्रपा, हृदय-ह्रिदय-ह्रदय। (५) पश्चिमी हिन्दी में ऐ, औ संयुक्त स्वर हैं, किन्तु अब धीरे-धीरे वे मूल स्वर होते जा रहे हैं। उदाहरण के लिए, दिल्ली की बोली में अधिकांश लोगों के उच्चारण में ऐ, औ संयुक्त स्वर न होकर मूल स्वर हो गए हैं। ये अब क्रमशः 'अग्र अर्धविवृत' तथा 'पश्च अर्धविवृत' स्वर हैं। किन्तु पूर्वी हिन्दी में ये, मूल स्वर तो बिलकुल ही नहीं हैं। कभी-कभी संयुक्त स्वर के रूप में आते हैं, और प्रायः स्वर-संयोग के रूप में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरणतः ऊपर के उदाहरणों में (कौन, ऐसा, बैल, और आदि) पश्चिमी हिन्दी में अब धीरे-धीरे ऐ, औ के स्थान पर ए, ओ (मूल स्वर) उच्चरित होते जा रहे हैं, किन्तु पूर्वी में ये प्रायः अइ, अउ रूप में उच्चरित होते हैं, और केवल कभी-कभी ऐ, औ रूप में, किन्तु मूल स्वर रूप में कभी भी नहीं। (६) पश्चिमी हिन्दी में शब्दों के आदि में य-, व- आते हैं, किन्तु उन स्थानों पर पूर्वी हिन्दी में प्रायः इ-, उ- हो जाते हैं : पश्चिमी हिन्दी यह, वह, यहाँ, वहाँ—पूर्वी हिन्दी इ, ऊ, इहाँ, उहाँ। इसी तरह या-, वा- के स्थान पर ए-, ओ- मिलता है : पश्चिमी हिन्दी यामें, वामें, पूर्वी हिन्दी एमें, ओमें आदि। (७) पश्चिमी हिन्दी की कौरवी, बाँगरू तथा निमाड़ी में ळ ध्वनि भी है, किन्तु पूर्वी हिन्दी की किसी भी बोली में यह नहीं है। (८) पश्चिमी हिन्दी में अनेक शब्दों में जहाँ 'ल्' आता है, वहाँ पूर्वी हिन्दी तथा भोजपुरी आदि में 'र्' आता है। हालाँकि सस्कृत-प्राकृत काल में पूर्वी में 'ल्' तथा पश्चिमी में 'र्' हो जाने की प्रवृत्ति थी। पश्चिमी हिन्दी हल्, गला, हल्दी, जल् (जलना), गाली; पूर्वी हिन्दी हर्, गर, हर्दी, जंर् (जलन), गारी।

(ख) परसर्ग—पश्चिमी हिन्दी तथा पूर्वी हिन्दी के परसर्गों में निम्नलिखित अन्तर हैं—

पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी
कर्ता—ने, नैं, नै, नें, न	×
कर्म, सम्प्रदान—को, कौ, कू, कूँ, कु, कुँ, ख, क	काँ, का, के, कहँ, को
करण, अपादान—से, सी, सूँ, तैं, ते, सैं, सें, सों	से ते, सेनी, ले, सन, तें
सम्बन्ध—का, के, की, कौ, को	केर, क, कर, कां, के, की
अधिकरण—में, मैं, पर, पै, पे माँहि	महँ, माँ, मैं, पर

परसर्गों में सबसे भेदक अन्तर कर्ता कारक में है। पश्चिमी हिन्दी में 'ने', 'न' या 'नैं' आदि आते हैं, किन्तु पूर्वी हिन्दी में इनके स्थान पर कोई भी परसर्ग नहीं आता। वस्तुतः पूर्वी भाषाओं में यह नहीं आता, यह केवल पश्चिमी भाषाओं की विशेषता है। पूर्वी-पश्चिमी हिन्दी के उदाहरण हैं—बाँगरू : उसने मार्‌या, खड़ीबोली (बोली) : उसने मारा, ब्रज : वाने मार्‌यौ, कनौजी : उइँ न मारो, बुन्देली : ऊ ने मारो, नीमाड़ी : उन न मार्‌यो, किन्तु अवधी : ऊ मारिस, बघेली : वो मारिस या मारलिसि, छत्तीसगढ़ी : वो मारिस।

अन्य अन्तर सामान्य हैं। जैसे पश्चिमी हिन्दी में सम्बन्ध में -र्- वाले रूप नहीं हैं, किन्तु पूर्वी हिन्दी में हैं। इसी प्रकार करण-अपादान सेनी, सन पश्चिमी में नहीं हैं।

(ग) मूल रूप—पश्चिमी हिन्दी में मूल रूप एक ही होता है, किन्तु पूर्वी हिन्दी में अनेक शब्दों के '-वा' युक्त दीर्घ रूप, तथा '-वना' वाला दीर्घतर रूप भी होते हैं। जैसे पश्चिमी हिन्दी घोड़ा, पूर्वी हिन्दी घोड़, घोड़ा; दीर्घ रूप घोड़वा; दीर्घतर घोड़वना; या पश्चिमी हिन्दी लड़का, पूर्वी हिन्दी लरिका, दीर्घ रूप लरिकवा, दीर्घतर रूप लरिकवना आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) **कारक-रूप**—कारक-रूपों में सर्वाधिक भेदक अन्तर यह है कि पश्चिमी में आकारान्त पुल्लिग का एकवचन विकारी रूप अधिकांश बोलियों में प्रायः एकारान्त (लड़के, घोड़े) होता है, किन्तु पूर्वी में वह आकारान्त ही (लड़का ~ लइका ~ लरिका, घोड़ा) बना रहता है। विभिन्न प्रकार के अन्य रूपों की रचना में भी कुछ अन्तर है, किन्तु वे बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

(ङ) **सर्वनाम**—सर्वनाम के भी काफ़ी रूपों में दोनों में अन्तर है। कुछ उदाहरण हैं—

पश्चिमी हिन्दी	पूर्वी हिन्दी	
मैं, में, हौ, हऊँ	मइँ, में (पूर्वी में हौं नहीं है)	
मेरा, मेरो, तेरा, तेरो, मारो	मोर, तोर	(-ए-,-आ-के स्थान पर-ओ-;
हमारा, हमारो,म्हारा,म्हारो	हमार्	पश्चिमी स्वरांत
तुम्हारा, तुम्हारो, तिहारो	तुम्हार, तोहार	पूर्वी व्यंजनांत)
उस	उइ, उओ ('स' वाले रूप पूर्वी में नहीं हैं)	

(च) **क्रिया-रूप**—इस दृष्टि से दोनों में बहुत अधिक अन्तर है। कुछ प्रमुख बातें यहाँ दी जा रही हैं : (१) **क्रियार्थक संज्ञा**—पश्चिमी हिन्दी में प्रायः -न-, -ण- वाले रूप चलते हैं : चलना चलनो, चलणा; हाँ ब्रज में -बो (चलबो) वाले रूप भी चलते हैं, किन्तु पूर्वी हिन्दी में -न-, -ण- रूप बिलकुल नहीं चलते, केवल -ब (चलब, देखब) वाले रूप चलते हैं। (२) **भविष्यकाल**—पश्चिमी हिन्दी में प्रायः -ग- वाले रूप प्रयुक्त होते हैं : चलेगा, चलैगा, चलैगो, होगा, होयगो; किन्तु पूर्वी हिन्दी में -ग- वाले रूप कभी नहीं आते। चली, चलिहै, देखी, देखिहै, होइ आदि आते हैं। (३) **सहायक क्रिया**—सहायक क्रियाओं में प्रमुख अन्तर बाट- एवं थ-की दृष्टि से है। पश्चिमी हिन्दी में वर्तमान काल में केवल 'ह' वाले (निमाड़ी -ज अपवाद है) रूप आते हैं। जैसे है, हैं, हूँ, हौं, हो; किन्तु पूर्वी में कुछ 'ह' वाले रूपों (है, हैं, हौं) के अतिरिक्त बाट- वाले रूप भी आते हैं : बाटै, बाटैं, बाटे, बाटौं, बाटो आदि। पश्चिमी हिन्दी में बाट- वाले रूप नहीं मिलते। भूतकाल में पश्चिमी हिन्दी में 'थ' या 'ह', 'हत' वाले रूप बनते हैं : हिन्दी, कौरवी था, थे, थी, थीं; निमाड़ी थी, था; या ब्रज हो, हे, ही, हीं, हतो, हते, हती, हतीं आदि; किन्तु पूर्वी हिन्दी में प्रायः केवल रह- वाले रूप ही चलते हैं : अवधी रहौं, रहै, रहन, रहौ, रहैं, रहन या छत्तीसगढ़ी रहे, रह्यउ, रहिस, रहिन आदि। (४) **भूतकाल**—पश्चिमी हिन्दी का भूतकाल संस्कृत के भूतकालिक कृदन्त के कर्मवाच्य के रूप से विकसित है : सं० मारितः > शौरसेनी प्रा० मारिदो > ब्रज मार्‌यौ, कनौजी मार्‌यो, निमाड़ी मार्‌यो, बुन्देली मारो, पंजाबी मारिआ, बाँगड़ मार्‌या, हि० मारा। पूर्वी हिन्दी के रूप इनसे ही सम्बद्ध हैं, किन्तु उनके अन्त्य प्रत्यय पूर्वी भाषाओं (भोजपुरी आदि) के हैं। जैसे मारेउँ, मारिस या मारेस। इनमें -उँ, -स भोजपुरी आदि के मरलों, मरलस के -ओं, -स से सम्बन्धित हैं। इस प्रकार शौरसेनी और मागधी प्रदेश के बीच में स्थित होने के अनुरूप ही पूर्वी हिन्दी के ये रूप दोनों पर आधारित हैं।

कौरवी (खड़ीबोली)

'खड़ीबोली' नाम का प्रयोग दो अर्थों में होता है : एक तो 'मानक हिन्दी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिए जिसकी तीन शैलियाँ 'हिन्दी', 'उर्दू' और 'हिन्दुस्तानी' हैं; और दूसरे, उस लोकबोली के लिए जो दिल्ली-मेरठ में तथा आसपास बोली जाती है। यहाँ 'खड़ी-बोली' नाम का प्रयोग इस दूसरे अर्थ में ही किया जा रहा है। इस अर्थ में 'कौरवी' नाम का भी प्रयोग होता है। यह क्षेत्र पुराना 'कुरु' जनपद है, इसी आधार पर राहुल सांकृत्यायन ने इस बोली को 'कौरवी' नाम दिया था। यों, अच्छा हो कि 'खड़ीबोली' तो मानक हिन्दी को कहा जाय, और 'कौरवी' इस बोली को।

'खड़ीबोली' नाम—यह नाम कैसे पड़ा, विवाद का विषय है। मुख्य मत निम्नांकित हैं—(१) 'खड़ी' मूलतः 'खरी' है, और इसका अर्थ है 'शुद्ध'। लोगों ने इस बोली का साहित्य में प्रयोग करते समय जब अरबी-फ़ारसी शब्दों को निकाल कर इसे शुद्ध रूप में प्रयुक्त करने का यत्न किया तो इसे 'खरी बोली' कहा गया, जो बाद में 'खड़ीबोली' हो गया। (२) 'खड़ी' का अर्थ है जो 'खड़ी हो' अर्थात् 'पड़ी' का उलटा। पुरानी ब्रज, अवधी आदि 'पड़ी बोलियाँ' थीं, अर्थात् आधुनिक काल की मानक भाषा नहीं बन सकीं। इसके विपरीत यह बोली आवश्यकता के अनुरूप खड़ी हो गई, अतः खड़ीबोली कहलाई। चटर्जी यही मानते थे। (३) कामताप्रसाद गुरु आदि के अनुसार 'खड़ी' का अर्थ है 'कर्कश'। यह बोली ब्रज की तुलना में कर्कश है, अतः यह नाम पड़ा। (४) ब्रज ओकारांतता-प्रधान है तो खड़ी-बोली आकारांतता-प्रधान। किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार 'आकारांतता' की 'खड़ी' पाई ने ही इसे यह नाम दिया है। (५) बेली ने 'खड़ी' का अर्थ 'प्रचलित' या 'चलती' माना, अर्थात् जो ब्रज आदि को पीछे छोड़ प्रचलित हो गई। (६) गिलक्रिस्ट ने 'खड़ी' का अर्थ 'मानक' (standard) या 'परिनिष्ठित' किया है। (७) अब्दुल हक 'खड़ी' का अर्थ 'गँवारू' मानते हैं। इनमें कौन-सा मत ठीक है, और कौन-सा नहीं ठीक है, सनिश्चय कहना कठिन है। यों पुराने प्रयोगों से पहले मत को समर्थन मिलता है। असंभव नहीं कि इसके साहित्य में प्रयुक्त रूप को अपने 'खरेपन' के कारण 'खरा' कहा गया हो और उसके आधार पर उसकी मुख्य आधार बोली को 'खड़ी'।

एक प्रश्न उठता है कि 'खड़ीबोली' अब तो भाषा है, इसे 'बोली' क्यों कहते हैं? वस्तुतः मूलतः दिल्ली-मेरठ की बोली को ही 'खड़ीबोली' कहा गया। बाद में इसका तथा कुछ और बोलियों का आधार लेती हुई जो भाषा सामने आई, वह भी इसी नाम से पुकारी जाने लगी। इस तरह 'भाषा' हो जाने पर भी मूल नाम (खड़ीबोली) से यह छुटकारा नहीं पा सकी।

भाषा के रूप में खड़ीबोली का मूल आधार क्या है, इसका उत्तर आगे बोलियों के परिचय के बाद दिया जायगा।

खड़ीबोली (कौरवी) का विकास शौरसेनी अपभ्रंश के उत्तरी रूप से हुआ है तथा इसका क्षेत्र देहरादून का मैदानी भाग, सहारनपुर, मुजफ़्फ़रनगर, मेरठ, दिल्ली नगर, गाज़ियाबाद, बिजनौर, रामपुर और मुरादाबाद हैं। इसमें लोक-साहित्य पर्याप्त मात्रा में मिलता है जिसमें पवाड़े मुख्य रूप से उल्लेख्य हैं।

ध्वनियाँ—इसकी ध्वनि-विषयक मुख्य विशेषताएँ ये हैं—(क) ऐ, औ का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल स्वर होना; (ख) हिन्दी के अपने शब्दों में ऑ ध्वनि (जैसे ऑप, गॉय); (ग) य्ह (य्हाँ-यहाँ), व्ह (व्हाँ-वहाँ), ण्ह (ण्हाण-नहान), र्ह (र्हेतड़-बुरा) आदि महाप्राण व्यंजन; (घ) अनेक शब्दों में 'न' के स्थान पर 'ण' (माणुस-मनुष्य); (ङ) 'ल' के स्थान पर ळ (जंगळ, बाळक); (च) दीर्घ स्वर के बाद द्वित और संयुक्त व्यंजन (बेट्टा, बाप्पू, पूच्छा, सोच्चा); स्पष्ट ही ऐसी स्थिति में दीर्घ स्वर कुछ ह्रस्वोन्मुख हो जाता है। कौरवी में बलाघात हिन्दी की अन्य बोलियों की तुलना में तेज़ होता है, जिसके परिणामस्वरूप आदि ह्रस्व स्वर प्रायः लुप्त हो जाता है : क्यासी (इक्यासी), कट्ठा (इकट्ठा)।

व्याकरण—हरियानी और पंजाबी की तरह कौरवी में स्त्री प्रत्यय 'इन' के स्थान पर 'अन' (मालन, साँपन) है। परसर्ग हैं : कर्ता—शून्य, नै, णै, नैं; कर्म-संप्रदान—कूँ, नूँ, ने; करण-अपादान—से, सू, सैं, तें, सेतीं; सम्बन्ध—का, के, की; अधि० में, पै, प, पर। कारकीय रूप मानक हिन्दी जैसे ही हैं। अंतर बहु० विकारी रूपों में है, जहाँ ऊँ (मरदूँ, बेट्टूँ), अन (बेटिअन) भी प्रयुक्त होते हैं। बेटियें, लड़कियें जैसे रूप भी आते हैं। सर्वनाम के मुख्य रूप हैं—मैं, में, मुज, हम; मजे, मेरा, म्हारा, हमारा; तू, तम, तमें, तेरा, थारा, तुम्हारा; ऊ, ओ, ओह; वे, वैं; उस, विस; उन, विन, विसे, विनें, विस्का, बिन्का; यू, यो, यह; ये, यैं; इस, इन, इस्का, इन्का; जो, जोण, जिस, जिन, जिस्का, जिन्का, कोण, कूण; किस, किन, किण, किस्का, किन्का; कोई; किसी; किनी, कुच्छ। सहायक क्रिया वर्तमान में मानक हिन्दी की तरह (हूँ, हैं, हो, है) है। भूत में एक० में था, हा, ता तथा बहु० में थे, हे, ते। 'है' के स्थान पर हरियानी में बहुप्रचलित 'सै' भी कुछ स्थानों पर मिलता है। भविष्य के रूप हैं : हुँगा, हुङा, होंगे, होङे, होगा, आदि। वर्तमानकालिक कृदंत खात्ता, जात्ता तथा भूतकालिक रिह्या, उठ्या आदि हैं। 'मारता हूँ' के स्थान पर 'मारूँ', 'मारते हैं' के स्थान पर 'मारैं'; 'मारता था' के स्थान पर 'मारूँ था'; 'मारते थे' के स्थान पर 'मारैं थे'; 'जा रहा हूँ' के स्थान पर 'जा र्‌या' आदि भी चलते हैं। 'है' के स्थान पर 'हैगा' का भी प्रयोग होता है।

क्रियाविशेषण—अब, इब; इभी (अभी), इब जा, इब जाँ (अभी); कद, कब; जब, जिब; तब, तौ; परसौं, तरसौं; जिनौ, किनौ, उनौ, इनौ, य्हाँ, व्हाँ, झाँ, जाँ, काँ, जैसे, जुक्कर (जैसे), कुक्कुर (कैसे), कैसै, ऐसै, तैसै, वैसै, उक्कतर (वैसे), इदर, उदर, जिदर, विदर, किदर, इंगे, उंगे, जिंगे, किंगे, अर (और), हर (और), हौर (और), होर (और)। 'नहीं' के स्थान पर 'नईं', 'नी' या 'ने' का प्रयोग होता है। जैसे 'मन्ने नईं खाया' या 'मैं नी गया' आदि। अवधी आदि की तरह 'हर' का प्रयोग इत्यादि के अर्थ में यहाँ भी चलता है। जैसे 'आज रामलखन हर आंगे।'

कौरवी की मुख्य उपबोलियाँ पश्चिमी कौरवी, पूर्वी कौरवी, पहाड़ताली तथा बिजनौरी हैं। कौरवी का शुद्ध रूप बिजनौरी को माना जाता है।

ब्रजभाषा

'ब्रज' का पुराना अर्थ 'पशुओं' या 'गौओं का समूह' या 'चरागाह' आदि है। पशुपालन के प्राधान्य के कारण यह क्षेत्र कदाचित् ब्रज कहलाया और इसी आधार पर इसकी बोली ब्रजभाषा अथवा ब्रजी कही जाती है। इसका विकास शौरसेनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से हुआ है। ब्रजभाषा मथुरा, आगरा, अलीगढ़, धौलपुर, मैनपुरी, एटा, बदायूँ, बरेली तथा आसपास के क्षेत्रों में बोली जाती है। इसकी मुख्य उपबोलियाँ भुक्सा, अंतर्वेदी, भरतपुरी, डांगी, माथुरी आदि हैं। साहित्य और लोक-साहित्य दोनों ही दृष्टियों से ब्रजभाषा बहुत सम्पन्न है। हिन्दी प्रदेश के बाहर भी भारत के अनेक क्षेत्रों में ब्रजभाषा में साहित्य-रचना होती रही है। सूरदास, तुलसीदास, नंददास, रहीम, रसखान, बिहारी, देव, रत्नाकर आदि इसके प्रमुख कवि हैं। खड़ीबोली की आकारांतता के स्थान पर ओकारांतता (आयो, भलो, दूजो, करेगो, बड़ो) तथा व्यंजनांत के स्थान पर उकारांत (सबु, मालु), नैं (ने), कूं (को), सों (से), पै (पर) आदि इसकी कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं। एक प्रश्न यह उठता है कि यह 'बोली' होकर भी 'भाषा' क्यों कही गई। वस्तुतः मध्ययुग में यह साहित्यिक भाषा थी तथा हिन्दी प्रदेश के बाहर पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र आदि में भी इसमें रचनाएँ होती थीं। इसीलिए इसके साथ 'भाषा' शब्द जुड़ गया और वह आज भी इसके नाम का अंग है।

ब्रजभाषा का उद्भव और विकास—ब्रजभाषा का सम्बन्ध, जैसा कि पीछे कहा गया, शौरसेनी अपभ्रंश के मध्यवर्ती रूप से है। इसका जन्म १००० ई० के आसपास माना जा सकता है। ब्रजभाषा का इतिहास या विकास तीन कालों में विभाजित किया जा सकता है—आदिकाल (प्रारम्भ से १५२५); मध्यकाल (१५२५—१८००); आधुनिक काल (१८००—अब तक)। आदिकालीन ब्रजभाषा, जैसा कि स्वाभाविक है, अपभ्रंश से बहुत प्रभावित है तथा उसके सभी रूपों का समुचित विकास नहीं हुआ है। हेमचन्द्र के व्याकरण में जो उदाहरण हैं, उनकी भाषा में ब्रजभाषा का पूर्वरूप सुरक्षित है। ब्रजभाषा की -हिं (कर्म, करण, सम्प्रदान, अधिकरण) विभक्ति, इसमें -हि (अंगहि—करण कारक) रूप में मिलती है। सम्बन्ध परसर्ग उसमें 'केरउ' रूप में हैं, तथा अधिकरण परसर्ग मन्झे, मन्झहे रूप में। इन्हीं से ब्रज को, के, की एवं माँझ, माँहि का विकास हुआ है। ब्रज पैं, पर हेमचन्द में 'उप्परि' रूप में है। सर्वनाम में भी यही स्थिति है। 'हौं', 'हउँ' रूप में, 'मैं', 'मइँ' रूप में, 'वो', 'ओइ' रूप में तथा 'तू', 'तव', 'तो' रूप में हैं। 'अइसो' आदि सार्वनामिक विशेषण भी हैं। जाणिउँ (ब्रज जान्यौ), दिण्णी (ब्रज दीन्ही), गोवइ (ब्रज गोवैं) आदि क्रियारूप हैं। सन्देशरासक, प्राकृतपैंगलम् आदि संधिकालीन रचनाओं में भी ब्रज के रूप हैं। लगभग १३५० ई० से ब्रज का अधिक स्पष्ट रूप मिलने लगता है। इस दृष्टि से अग्रवाल कवि का प्रद्युम्नचरित (१३५४ ई०); विष्णुदास (१५वीं सदी पूर्वार्द्ध) की महाभारतकथा, रुक्मिणीमंगल, स्वर्गारोहण, स्नेहलीला; मानिक की बैतालपचीसी (१४८९ ई०), छिताईवार्ता; थेघनाथ की गीताभाषा (१५०० ई०) आदि प्रमुख हैं। इस काल के प्राप्त ब्रजरूप निम्नांकित हैं : **परसर्ग**—नैं; कहुँ, कौ, को, कूँ; सौं, सम, तैं, ते; कौ, को, के, की, कउ; माँझि, माँहि; में, मंहि, मन्झि। **सर्वनाम**—हउँ, हौं; मइँ, मो, मोहि, मोरो, मोरी, मेरे; तुम, तुम्हारे; सो; ताको; वहइ, वै, उन; जो; को, कौण; आपणे, आपनो, अपनी। **क्रिया**—हौं, भये, भई, हो, ह्वै हैं, आदि। **अव्यय**—अब, तब, जब, तिहाँ, कहाँ, आगे, भीतर आदि। मध्यकालीन ब्रजभाषा सूर, नन्द, नरोत्तमदास, नाभादास, केशवदास, रसखान, सेनापति, बिहारी, भूषण, देव, घनानन्द आदि में सुरक्षित है। इस काल की ब्रज का रूप परिनिष्ठित हो गया है। शब्द-समूह की दृष्टि से, इस काल की ब्रजभाषा में अरबी-फ़ारसी-तुर्की के काफ़ी शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ गए हैं। अन्तिम काल में लल्लूलाल, भारतेन्दु, रत्नाकर, कविरत्न आदि प्रमुख हैं। इस काल की साहित्यिक ब्रज पर खड़ीबोली का कुछ प्रभाव है। शब्द-समूह में आधुनिक ब्रज में अंग्रेज़ी के अनेक शब्द आ गए हैं।

ध्वनियाँ—ब्रजभाषा में १२ स्वर-ध्वनियों का प्रयोग होता है : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऐं, ए, ओं, ओ, ऐ, औ। इनमें 'अ' का उदासीन रूप भी प्रयुक्त होता है। यह प्रायः शब्दान्त में आता है : बहुअ, बढ़अ। ए तथा ओ के ह्रस्व रूप भी प्रयुक्त होते हैं। इ, उ के जपित या फुसफुसाहटवाले रूप भी प्रयोग में आते हैं : राति, ब्यारइ; हालु, दिनु। ऐ, औ संयुक्त स्वर हैं। इनका उच्चारण प्रायः अएँ, अओं जैसा होता है। कभी-कभी ये अइ, अउ जैसे भी उच्चरित होते हैं, और कभी-कभी मूलस्वर (अर्धविवृत अग्र स्वर तथा अर्धविवृत पश्च स्वर) के रूप में भी इनका उच्चारण सुनाई पड़ता है। ऐसा उच्चारण नई पीढ़ी में ही अधिक सुनाई पड़ता है। उदासीन तथा जपित स्वरों के अतिरिक्त सभी स्वर अनुनासिक रूप में भी आते हैं : फँसत, आँगन, नाहिं, गईं, कुँवर, ऊँट, नाँएँ, सेंदुर, मोंको, पराँउँठों, नैंकु, क्यौं। 'ऋ' का प्रयोग लेखन में है, किन्तु उच्चारण में यह 'र' या 'रि' है। ब्रजभाषा के व्यंजन ये हैं : क्, ख्, ग्, घ्, च्, छ्, ज्, झ्, ट्, ठ्, ड्, ढ्, त्, थ्, द्, ध्, प्, फ्, ब्, भ्, ङ्, ञ्, ण्, न्, म्, न्ह, म्ह, ड़्, ढ़्, र्, र्ह, ल्, ल्ह, व्, य्, स्, ह्। इनमें ञ् तथा ण् का शुद्ध उच्चारण विवादास्पद है। ञ् का उच्चारण प्रायः यँ सा तथा ण् का ड़ँ जैसा होता है। ह का लोप (साहूकार>साउकार, बारह>बारा, बहू>बऊ), क् का च् (क्यों>च्यौं, चौं), ड़ का र् (घोड़ा>घोरा, थोड़ा>थोरो, साड़ी>सारी, कीड़>कीरी), न् का ल् (नम्बरदार>लम्बरदार), ल् का न् (जल्दी>जन्दी, बाल्टी>बान्टी), र् का ल् (रज्जु>लेजु, जरूरत>जरूलत), ल् का र् (बादल>बादर, ताला>तारा, भोली>भोरी), समीकरण (बादशाह>बास्सा, मरता>मत्ता), विपर्यय (गरुड़>गड़ुर, इन्साफ़>निसाफ़) तथा महाप्राणीकरण (गाड़ी>गाढ़ी) आदि ध्वनि-परिवर्तन की कुछ उल्लेख्य प्रवृत्तियाँ हैं।

परसर्ग : कर्ता—ने, नें, नै, नैं, न्

कर्म-सम्प्रदान—कु, कुं, कूँ, कू, कों, को, कौं, की, ऐ, ए, इ, ई, ईं

करण-अपादान—ते, तें, तैं, सू, सूँ, सौं, सों, से, सैं, तैं, सें

सम्बन्ध—को, की (पुल्लिग एक० अविकारी), कि, की (स्त्रीलिंग) के (पुल्लिग विकारी, बहु०)

अधिकरण—में, मैं, महँ, माँहि, माहीं, महि, म, प, पै, पे

में ते, में से, के काजे, के बीच में, के तें, के मारे आदि संयुक्त परसर्ग हैं।

कारक-रूप :	एक०	बहु०
पुल्लिग : अविकारी रूप	आम्, आमु	आम्, आँमु
विकारी रूप	आम्, आमु	आमन्, आमनु, आमौं, आमनि
अविकारी रूप	काँटा, काँटो, काँटी	काँटे, काँटन्, काँटान्, काँटैं
विकारी रूप	काँटे, काँटा, काँटैं	काँटन्, काँटनि, काँटों, काँटे, काँटीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्त्रीलिंग : अविकारी रूप—किताब् — किताबें, किताबन्, किताबैं
विकारी रूप— " — किताबन्, किताबन्, किताबों
अविकारी रूप—रोटी — रोटिन्, रोटीन्, रोटियनि,
विकारी रूप—रोटी — " " रोटियन्, रोटियों, रोटियाँ

सर्वनाम : उत्तम पुरुष : एक०
अविकारी रूप—मैं, में, हौं, हों, हूं
विकारी रूप—मों, मो, मोहि, मुहि, मुज्, मोय्
कर्म-सम्प्रदान—मोहि, मोहिं, मुहि, मोय्, मोए, मोइ, मो, मोकी, मोएँ, मोकौं, मुजकों
करण-अपादान—मोसों, मोतें, मोहितें
सम्बन्ध—मेर्‌यो, मेरो, मेरो, –री, –रे
अधिकरण—मो पै, मो मैं, मो परि, मोहि पै

बहु०
हम्
हम्, हमन्, हमनि, हमीं
हमैं, हमहिं, हमकी, हमनकी
हमनकौं, हमनिकों
हमसौं, हमतैं, हमनसौं
हमारो, हमारी, –री, –रे, हमार्‌यो
हमन पै, हमनि मैं, हम परि, हमौं पै

मध्यम पुरुष : एक०
अविकारी रूप—तू, तूं, तैं, तें, ते
विकारी रूप—तो, तुज, तोहि, तुहि
कर्म-सम्प्रदान—तोहि, तुहि, तोए, तोय तोहिं, ताए, तोइ, तो",
करण-अपादान—तोसों, तोहितें
सम्बन्ध—तेरो, तेर्‌यो, तेरो, –री, –रे
अधिकरण—तो पै, तो परि, तोहि मैं

बहु०
तुम
तुम, तुम्हीं, तुमन, तुमनि, तुमी
तुम्हैं, तुमैं, तुमहिं
तुमसौं, तुमतैं, तुमन सौं
तुम्हारो, तुम्हार्‌यो, तुमारो तिहारो, तिहार्‌यो, –री, –रे
तुमन पै, तुम्हीं परि, तुमी पै

अन्य पुरुष : एक०
निश्चयवाचक : अविकारी—बू, बु, बुअ, बो, बौ, गु, वो, ऊ, वह, वुह (दूरवर्ती)
स्त्रीलिंग—बा, ग्वा, वा
विकारी रूप—बा, ग्वा, वा, विस, वाहि
कर्म-सम्प्रदान—बाए, वाए, ग्वाए, विसे वाहि, वाय, वाकौ, विसकौ
करण-अपादान—वासों, बातें, विसतें
सम्बन्ध—विसका, –के, –की
अधिकरण—वामैं, वापै, विसपरि

बहु०
वे, बैं, ग्वे, वे, वैं
उन, ग्विन, विन, बिन, ग्वनु विन्हौं, उनि, उन्हों
उनैं, बिनैं, ग्वनैं, उन्हैं, विन्हैं
उनकौ, विनकौ
उनसों, उनतें
बिनका, –के, –की
उनमैं, विन, पै, ग्वनुपरि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	एक०	बहु०
निश्चयवाचक (निकटवर्ती)		
अविकारी	ये, यह्, यिह, इ, ई, यु, यो, यि, जु, जै, जि, जे, गि, जिअ, गिअ	ये, यै, ए, जे, गे
	स्त्रीलिंग—या, जा, गि, गु	
विकारी	इस, या, याहि, जा, ग्या	इनि, इन, इन्हौं, जिन, गिन
सम्प्रदान (विशेष)	याहि, याए, याय, इसे, जाए	इन्हैं, इहैं, इनैं, जिनैं
सम्बन्ध	याका, जाका, –की, –के	इनको, –की, –के
सम्बन्धवाचक	एक०	बहु०
अविकारी	जो, जौ, जौन	जे, जो, जौ
विकारी	जा, जिस, जाहि	जिन्, जिनि, जिन्हौं
सम्प्रदान (विशेष)	जाय, जाए, जाहि, जिहि, जिसे	जिनैं, जिन्हैं
सम्बन्ध	जाको, जाका, –के –की, जासु	जिनको, –का, –के, –की
नित्य-सम्बन्धी	एक०	बहु०
अविकारी	सो, सौ, तौन	सो, ते
विकारी	ता, तिस्, ताहि	तिन, तिनि, तिन्हौं
कर्म-सम्प्रदान (विशेष)	ताए, ताहि, ताय, तिसे	तिनैं, तिन्हैं, तिन्है
सम्बन्ध	ताको, –के, –की, तासु ताका	तिनको, –के, –की, तिनका
प्रश्नवाचक (प्राणिवाचक)	एक०	बहु०
अविकारी	को, कौ, कौन	को, कौ, कौन
विकारी	किस, का, काहि, कौन	किन, किनि, किन्हौं, का, कौन
कर्म-सम्प्रदान (विशेष)	काहि, काए, काय, किसे, कौनैं	किन्हैं, किनैं, कौनैं
सम्बन्ध	कासु, काको, –के, –की, कौनकी	किनको, –के, –की, –किनका
प्रश्नवाचक (अप्राणिवाचक)	एक०	बहु०
अविकारी	का, कहा	का, कहा
विकारी	काहे, काए	काहे, काए

(शेष प्राणिवाचक की तरह)

	एक०	बहु०
अनिश्चयवाचक (प्राणिवाचक)		
अविकारी	कोइ, कोई, कोय, कोऊ	कोई, कोऊ, काऊ
विकारी	काऊ, काहू	किनऊँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिश्चयवाचक (अप्राणिवाचक) **एक०** **बहु०**

कछू, कछु कछुक

निजवाचक **एक०** **बहु०**

अविकारी—आप, आपु आप, आपु
विकारी—अपुनैं, आपुनैं अपुनैं, आपुनैं
सम्बन्ध—अपनो, –ने, –नी अपनो, –ने, –नी
आपनो, –ने, –नी आपनो, –ने, –नी

आदरवाचक

आप, आपु; रावरो, रावरे, राउरे, रावरी (ये परवर्ती रूप अवधी के माध्यम से भोजपुरी में आए हैं)।

सार्वनामिक विशेषण

ऐसो, वैसो (उइसो भी), जैसो, कैसो, तैसो; इत्तो (एतो, इतो भी), उत्तो (ओतो, उतो भी), जित्तो (जेतो, जितो भी), तित्तो (तेतो, तितो भी), कित्तो (केतो); इतनौ, उतनौ, जितनौ, तितनौ, कितनौ; इतने, उतने, जितने (जितेक भी), कितने (कितेक भी), तितने (तितेक भी)।

कृदन्त : (१) **वर्तमानकालिक** :–त् (जात्, माँजत्, खात्, चल्त); (२) **भूतकालिक** : –औ अथवा –यौ (पुल्लिग, चलौ, चल्यौ), –ई, –ईं (स्त्रीलिंग एक० चली, बहु० चलीं), –ए (बहु० चले); (३) **पूर्वकालिक कृदन्त** : –इ (देखि, सुनि) –इ कै (जाइ कै, आइ कै, लिखि कै); (४) **क्रियार्थक संज्ञा** : –नो, –इबो; विकृत रूप –ने, –इबे (होनो, करिबो, चलिबो, बैठिबो; चलने, करिबे, चलिबे); (५) **पूर्णक्रियाद्योतक** : –ए (मूँदे, बाँधे, दबाए); (६) **अपूर्णक्रियाद्योतक** : –ते (चलते, करते); (७) **कर्तृवाचक** : –न्बारौ, स्त्री –न्बारी (देखनबारौ, चलनबारी)।

सहायक तथा अस्तित्ववाचक क्रिया : 'होनो' के रूप :—

(१) **वर्तमान निश्चयार्थ** (दोनों लिंग)

	एक०	**बहु०**
उ० पु०	हूँ, ऊँ, ओं, हों, हौं, औं	हैं, ऐं
म० पु०	है, ऐ	हो, ओ, हौ, औ
अ० पु०	है, ऐ	हैं, ऐं

(२) **भूत निश्चयार्थ** **पुल्लिग**

	एक०	**बहु०**
तीनों पुरुष—	हो, ओ, औ, हौ, हुतो	हुते, उते, हुतै, उतै
	हुतौ, हतो, हतौ, अतौ	हे, हते, हतुए, ए
	(रह्यौ, रह्यो, भयौ, भयो, भो, भौ भी)	(भए, रहे भी)

स्त्रीलिंग

तीनों पुरुष—	ही, ई, हतौ, अती	हीं, ईं, हतीं, हुतीं
	हुती, उती (भई, रही भी)	उतीं (भईं, रहीं भी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) भविष्य निश्चयार्थ

पुल्लिंग

	एक०	बहु०
उ० पु०	होंगो, हुंगो, होऊँगी, ह्वँ हों, बोंगो	होयेंगे, ह्वँ हैं, हेंगे, होंगे, हुंगो
म० पु०	हैगो, होयगो, ह्वँ है, होइहै	ह्वँ हो, होउगे, हैंगे, होयगे
ब० पु०	ह्वँ है, होइहै, होयगो, हैगो, होगो	ह्वँ हैं, होंगे, होइहैं, होंहिगे, हुंगे, होंयगे

स्त्रीलिंग

	एक०	बहु०
उ० पु०	ह्वँ हीं, होंगी, हुंगी	ह्वँ हैं, होयेंगी, हैंगी, होंगी, हुंगी
म० पु०	ह्वँ है, हैगी, होगी, होयगी, ह्वँ गी	ह्वँ ही, होउगी, हैंगी, होंगी, होयगी
ब० पु०	ह्वँ है, हैगी, होगी होयगी, ह्वँ गी	ह्वँ हीं, हैंगी, होंगी, होयगीं, होईगी, हुंगी

यह उल्लेख्य है कि भविष्य के लिए ब्रजभाषा में दो प्रत्ययों का प्रयोग होता है : –ग –, –ह– ।

क्रियाविशेषण : कालवाचक—अब, अबै; तब, तबै; जब, जबै; कब, कबै; आज, आजु; कल, काल, काल्लि; परसौं, परौं; तरसौं, तरौं। स्थानवाचक—यौं, इहाँ, हियाँ, ह्याँ, हियन, हतै, जाँ, न्याँ, म्वाँ; वाँ, हुआँ, हुअन, हुआन, उतै, बितै, बितै, बाँ, माँ, म्हाँ, ह्वाँ, ताँ, तहाँ, तितै, जाँ, जहाँ, काँ, कहाँ, कितै। दिशावाचक—इत, उत, कित, तित।

इस प्रसंग में 'ब्रजबुलि' तथा 'पिंगल' का उल्लेख भी अनावश्यक न होगा।

ब्रजबुलि—'ब्रजबुलि' बँगला का एक कृत्रिम रूप है जिसे भ्रमवश लोग कभी-कभी ब्रजभाषा समझ बैठते हैं। इसमें, १५-१६वीं सदी में, गोविन्ददास तथा ज्ञानदास आदि कवियों द्वारा तथा आधुनिक काल में रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा कृष्ण-भक्ति-विषयक काव्य रचा गया। आसाम तथा उड़ीसा में भी इसमें कुछ साहित्य-रचना हुई है। कृष्ण का सम्बन्ध ब्रज से होने के कारण ही, कदाचित् इसे लोगों ने 'ब्रजबुलि' संज्ञा दे दी। यों व्याकरण तथा शब्द-समूह की दृष्टि से ब्रजबुलि में बँगला तथा मैथिली के अतिरिक्त ब्रज आदि पश्चिमी हिन्दी के रूपों (यद्यपि अपेक्षाकृत कम) का भी मिश्रण है। 'ब्रजबुलि' शब्द का प्रथम प्रयोग बंगाली कवि ईश्वरचन्द्र गुप्त (१९वीं सदी) द्वारा हुआ है।

पिंगल—यह 'ब्रजभाषा का एक अन्य नाम है।' 'पिंगल' एक प्राचीन मुनि कहे जाते हैं जो छन्दशास्त्र के आदि आचार्य थे। उन्हीं के नाम पर छन्दशास्त्र को 'पिंगल' या 'पिंगलशास्त्र' कहने की परम्परा चली। पिंगल या पिंगलशास्त्र का सम्बन्ध कविता से है, और राजस्थान में 'डिंगल' के अतिरिक्त 'ब्रजभाषा' का भी काव्य-भाषा के रूप में प्रयोग होता रहा है, अतएव वहाँ डिंगल के रूप-साम्य पर 'ब्रजभाषा' को 'पिंगल' कहा गया, यों कदाचित् इसके पूर्व अपभ्रंश या शौरसेनी अपभ्रंश के लिए पिंगल का प्रयोग राजस्थान में आरम्भ हुआ। बाद में अन्यत्र भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह नाम प्रयुक्त होता रहा है। पिंगल को 'नागभाषा' भी कहा गया है। 'प्राकृत-पैंगलम्' की एक टीका में पिंगल का प्रयोग परवर्ती अपभ्रंश के लिए हुआ है।

हरियाणी

'हरियाणा' शब्द की व्युत्पत्ति विवादास्पद है। 'हरि+यान' (कृष्ण का यान इधर से ही द्वारका गया था), 'हरि+अरण्य' (हरा वन), 'हरिण+अरण्य' (हिरनों का जंगल) तथा 'अहीर+आना' (राजपूताना, तिलंगाना की तरह) आदि कई मत दिए गए हैं, किन्तु कोई भी सर्वमान्य नहीं है। यों अंतिम की संभावना अधिक है। हरियाणी का विकास उत्तरी शौरसेनी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से हुआ है। खड़ी-बोली, अहीरवाटी, मारवाड़ी, पंजाबी से घिरी इस बोली को कुछ लोग खड़ीबोली का पंजाबी से प्रभावित रूप मानते हैं। इसका क्षेत्र मोटे रूप से हरियाणा, पंजाब का कुछ भाग तथा दिल्ली का देहाती भाग है। इसकी मुख्य बोलियाँ जाटू तथा बाँगरू हैं। कुछ लोग 'बाँगरू' नाम का प्रयोग 'हरियाणी' के लिए करते हैं। हरियाणी में केवल लोक-साहित्य है जिसका कुछ अंश प्रकाशित हो भी चुका है। अनेक स्थानों पर ल का ळ (काळा, माळा), एक व्यंजन के स्थान पर द्वित्व (बाब्बू, भीत्तर, गाड्डी), न का ण (होणा), ड़ का ड (बड़ा, पेड), सहायक क्रिया हूँ, है, हैं, हो के स्थान पर सूँ, सैं, सैं, सो; को के स्थान पर ने (राम ने जाना है) आदि इसकी कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं।

परसर्ग : कर्ता—ने, नैं, नै, नैं, न्नैं

कर्म-सम्प्रदान—ने, नैं, नै, नैं, न्नैं, ते, तै, ती, कै, रै

करण-अपादान—तैं, ते, ती, तैं, घोरे ते, सिते (करण), कानीती (अपादान)

सम्बन्ध—का, के, कै, की

अधिकरण—में, मैं, म्हाँ, महँ, म्हँ, पे, पै, पअ, -आँ

कारक-रूप	एक०	बहु०
अविकारी	छोरा (लड़का), पिलूरा (पिल्ला)	छोरे, पिलूरे
विकारी	छोरे, पिलूरे	छोर्याँ, पिलूर्याँ
अविकारी	घर्, खेत्, लोग्	घर्, खेत्, लोग्
विकारी	" " "	घराँ, खेत्ताँ, खेताँ, लोग्गाँ, लोगाँ

यहाँ केवल विकारी बहु० में -आँ जोड़ा गया है। ऊकारान्त एवं ईकारान्त में भी ऐसा ही होता है। बाब्बू—बाब्बुआँ, माळी—माळियाँ। -यों, -ओं का भी प्रयोग होता है: माळियों।

अविकारी	किताब्	किताब्
विकारी	"	किताबाँ, किताब्बाँ
अविकारी	बिलाई (बिल्ली), छोरी	बिलाई, बिलाइयाँ, छोरी
विकारी	" " छोरी	बिलाइयाँ, छोर्याँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वनाम : पुरुषवाचक : उत्तमपुरुष

कर्ता : अपरसर्ग	मैं, में, मैं	हम्, हाम्
: सपरसर्ग	मन्नैं, मन्नै, मन्ने, मैने	हमने, म्हानै, म्हाने
कर्म-सम्प्रदान	मन्ने, मन्नैं, मन्नै, मनैं	हमने, ", "
करण-अपादान	मत्तै, मेरे तै, मत्ते, मेरे धोरे ते	म्हारे तै, हमते, म्हारे धोरे ते
सम्बन्ध	मेरा, मरा	म्हाँरा, म्हरा
अधिकरण	मेरै म्हाँ, -पै, मेरै मैं	म्हारै म्हाँ, -पै

मध्यम पुरुष

कर्ता : अपरसर्ग	तु, तुं, तूं, थूं, तौं, तैं, तो, तों	तम्, तम्ह्, थम्
: सपरसर्ग	तन्नै, तैने, तन्नै, तन्ने, तन्नें	तम्ने, थमने, थाने, थानै, तुमाने
कर्म-सम्प्रदान	तन्नैं, तन्नै, तन्ने	थानै, थाने, थमनैं, तम्हनैं, तुम्ने
करण-अपादान	तत्तैं, तेरे तै, तेरे ते, तेरे धोरे ते, तत्ते, तेरे तैं	थारै तै, थम तै, तम त, तम्ह तै, थारे ते, थारे धोरे ते, तुम ते, थारे तैं, तम्ह तैं
सम्बन्ध	तेरा, तरा	थारा, तरा
अधिकरण	तेरे म्हाँ, -पै " मैं	थारे म्हाँ, -मैं, -पै थारै म्हाँ, -मैं, -पै

अन्य पुरुष : निश्चयात्मक (दूरवर्ती)

कर्ता : अपरसर्ग	ओ, वो, ओह्; अउँह्, वा, वाह् (स्त्री)	वे, वै, वैह्, वैं
: सपरसर्ग	उसने, उन्नैं, ऊन्हैं, ओने, ओन्नें	उन्नैं, उन्ह्ने, उनने
कर्म-सम्प्रदान	उसनै, उसतै, ऊहनैं, उसने	" " "
करण-अपादान	उसतै, उसते, उस धोरे ते, ऊँहतैं, ऊहतै	उन्हतै, उनतै, उनते, उन धोरे ते, उन्हतैं
सम्बन्ध	ऊँहका, उस्का	उन्हका, उन्का

निश्चयवाचक (निकटवर्ती)

कर्ता : अपरसर्ग	यो (पु०), या (स्त्री०), (मुंडका गाँव में तथा	ये, य्हे, यैं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	कई अन्य स्थानों में दोनों लिंगों में 'यो' प्रयुक्त होता है), योह् (पु०), याह् (स्त्री०), यउँह, योहु, यु	
: सपरवर्ग	ईहनैं, ईंने, इसने	इनने, इह्नैं, इननैं
कर्म-सम्प्रदान	,, ,, ,,	,, ,, ,,
करण-अपादान	इसतैं, ईंते, ईहतैं ईं धोरे ते	इन्हतैं, इनते, इन धोरे ते इन्हतैं
सम्बन्ध	ईंहका, इस्का, ईका	इन्हका, इनका
अधिकरण	ईंह, मैं, -पै	इन्हमैं, -पै

सम्बन्धवाचक

कर्ता : अपरसर्ग	जो, जौण	जो
: सपरसर्ग	जीहिंनैं, जिसने, जींने	जिन्हनैं, जिन्ने
कर्म-सम्प्रदान	जीहिंनैं, जिसने, जीहिंनै	जिन्हनैं, जिनते
करण-अपादान	जीहिंतैं, जींते जिस्ते, जीहतैं	जिन्हतैं, जिनने जिन्हतैं
सम्बन्ध	जींह्का, जींका, जिस्का	जिन्हका, जिन्का
अधिकरण	जींह मैं, -पै जीं मैं, -पै जिस्में, जिस्पे	जिन्हमैं, -पै जिनमैं, -पै

(नित्य-सम्बन्धी (correlative) में 'सो' का प्रयोग बहुत कम होता है। उसके स्थान पर ओ, ओह् आदि अन्य पुरुष के रूप अधिक आते हैं।)

प्रश्नवाचक

(कौन)	अविकारी	कौंण्, कूंण, कूण	कौंण, कूंण, कूण
	विकारी	किस, के, कीं	किन, कीं
		कीह्	किन्ह
(क्या)	अविकारी	के, क्यों	के, केके
	विकारी	कीह् किस्, कीं	किन्, कीं, किन्ह

'कुछ' के लिए 'कुछ' या 'थोड़ा'।

अनिश्चयवाचक (कोई) अविकारी रूप कोई, कोइ, कोए, कोय
विकारी रूप किस्से, किसै, कीहैं

कुछ के लिए 'कुछ' ही आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिया : सहायक तथा अस्तित्ववाचक क्रिया—

वर्तमान	एक०	बहु०
	सूँ, सौं, हूँ	सैं, सें, सौं, हैं
	सै, से, है	सो, हो
	सैं, से, है	सैं, सें, हैं

'ह' वाले रूप बहुत कम प्रयुक्त होते हैं।

भूत		
	था	थे
	था	थे
	था	थे

क्रियारूप : सामान्य वर्तमान (मैं चलता हूँ)—

मैं चाल्लूं सूँ	हम् चाल्लौं सौं
	हम् चाल्लैं सैं
तूं (तैं) चाल्लै सै	त (थ) म् चाल्लो सो
वो चाल्लै सै	वे (वैं) चाल्लैं सैं

इसमें कभी-कभी बिना सहायक क्रिया के भी प्रयोग मिलते हैं। जैसे—

मारूँ, मारौं	मारैं, मारों, मारें
मारै, मारे	मारो
मारै, मारे	मारें, मारें

कभी-कभी ये रूप बिलकुल हिन्दी के अनुरूप भी सुने जाते हैं : मैं चलदा सूँ=मैं चलता हूँ, हम चलदे सैं=हम चलते हैं। इनमें 'द्' के स्थान पर 'त्' भी कुछ क्षेत्रों में मिलता है।

क्रिया-विशेषण—यहाँ—अठै, आड़ै, हाड़ै, याड़ै, इत, अड़ै, हुड़ै, उरै। वहाँ—ओठै, उड़ै, उत, हुड़ै, उठै। जहाँ—झाँ, जठै, जड़ै, जित। कहाँ—केठै, कड़ै, कित। इधर—उरैनै, आड़ैनै, इंघानै, इंघैनै, इंघेनै, इत्होड़। उधर—उड़ैनै, उंघानै, उंघैनै, उंघेनै, उठैनै, परेनै, परैनै, उत्होड़। जिधर—जड़ै, जिंघानै, जिंघेनै, जित्होड़। किधर—किंघैनै, कठैनै, किंघानै, कितै, कितहोड़। अब—ईब्, इब्। जब—जिब्, जिद, जद। कब—किब, कद। जहाँ···वहाँ—जड़ै···उड़ै। आज, काल्ह, क्हाल, परसूँ, पहले दिन (चौथे दिन), तरले दिन, (पाँचवें दिन)। इस साल—ईंह साल, ईवकेनै। पिछले साल—पुरकै साल (कुछ क्षेत्रों में भूत एवं भावी दोनों वर्षों के लिए)। पुरारकै साल (पिछले-से-पिछले साल), आग्गेनै (अगले साल, आगे की ओर)। उप्पर, नीच्चै, तळै (नीचे), आग्गैनै, आग्गै, पाच्छै, पाच्छैनै, पीच्छै, साम्हीं (सामने), आम्हीं-साम्हीं (आमने-सामने)।

बुंदेली

बुंदेले राजपूतों के कारण मध्यप्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की सीमा के झाँसी, छतरपुर, सागर आदि तथा आसपास के भागों को बुन्देलखंड कहते हैं। वहीं की बोली बुन्देली या बुन्देलखंडी है। इसका क्षेत्र झाँसी, जालौन, हमीरपुर, ग्वालियर, भूपाल, ओरछा,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सागर, नृसिंहपुर, सिवनी, होशंगाबाद तथा आसपास के क्षेत्र हैं। बुन्देली का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। बुन्देली में लोक-साहित्य काफ़ी है जिसमें इसुरी के फाग बड़े प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि हिन्दी प्रदेश की प्रसिद्ध लोकगाथा 'आल्हा' जिसे हिन्दी साहित्य में भी स्थान मिला है, मूलतः बुन्देली की एक उपबोली बनाफरी में लिखा गया था। इसकी अन्य उपबोलियाँ राठौरी, लोधांती आदि हैं। ब्रज के ऐ और औ का ए, ओ (ओर, जेसो), अंत्य अल्पप्राणीकरण (भूक, हात्, दूद, जीब), स का छ (सीढ़ी—छीढ़ी), च का स (साँचे—साँसे), कर्म-सम्प्रदान में 'को' के स्थान पर खों, खाँ, खँ तथा 'के लिए' के स्थान पर 'के लाने' का प्रयोग, क्रियार्थक संज्ञा में 'न' तथा 'ब' वाले दोनों रूप (मारब, मारन) इसकी कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं।

परसर्ग : कर्ता—नैं, नें, ने, न्हैं
कर्म-सम्प्रदान—कौं, खों, खाँ, खँ, कुं, कों
करण-अपादान—सैं, सें, से, सों
संबंध—कौ, की, के, खौ, खी, खे, खैं
अधिकरण—पै, मैं, में, पे, फै, म्हैं, लौ

संयुक्त परसर्ग भी प्रयुक्त होते हैं। के लानैं (के लिए). खें लानैं (के लिए), के खातिर, के साथ, के संगै। करण कारक में -न विभक्ति (भूखन मरो=भूख से मरा) का प्रयोग भी मिलता है। 'न्हैं,' 'खौ,' 'खी', 'खे,' 'खैं,' तथा 'म्हैं' प्रायः सर्वनामों के साथ आते हैं।

कारक रूप : व्यंजनांत पुल्लिग

	एक०	बहु०
अविकारी	साँप्	साँप्
विकारी	साँप्	साँपन्

आकारान्त (घुड़वा, पड़वा, कुत्ता), ईकारान्त (माली, धोबी), ऊकारांत (डाँकू) तथा एकारांत (चौबे, दुबे) शब्दों के रूप भी इसी प्रकार चलते हैं।

ओकारान्त पुल्लिग

अविकारी	घोरो	घोरे
विकारी	घोरे	घोरन्

'घोरन्' के स्थान पर 'घोरेन्' भी मिलता है। औकारांत संज्ञाओं (तारी, पेड़ी) के रूप भी प्रायः इसी प्रकार चलते हैं।

व्यंजनांत स्त्रीलिंग—

अविकारी	रात	रातैं
विकारी	रात	रातन्

-इन अंत्य स्त्रीलिंग शब्दों (सुनारिन, लुहारिन, मालिन) के रूप भी ऐसे ही चलते हैं। अन्य सभी स्त्रीलिंग शब्दों के रूप प्रायः निम्नांकित रूप में चलते हैं—

अविकारी	कुरती	कुरतीं
विकारी	कुरती	कुरतिन, कुरतियन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक संज्ञाओं के तीन रूप उपलब्ध हैं—

ह्रस्व (short)	दीर्घ (long)	अतिरिक्त दीघ (Redundant)
लड्डू	लड़ुवा	लड़ुववा
कहार	कहरा	कहरवा
चमार	चमरा	चमरवा

सर्वनाम

पुरुषवाचक : उत्तम पुरुष	एक०	बहु०
अविकारी	में, मैं, हम	हम, हम लोग
विकारी	मो	हम, हम लोगन
सम्बन्ध	मोरो (-रे,-री)	हमारो (रे,-री)
	मोओ (-ये, -ई)	हमाओ (-ए,-ई)
	मेरो, मोनो, मोको	हमको

मध्यम पुरुष

अविकारी	तू, तूँ, तें, तैं, तुम	तुम, तुम लोग
विकारी	तो	तुम, तुम लोगन
सम्बन्ध	तोरो (-रे,-री)	तुमारो (-रे,-री)
	तोओ (-ए,-ई)	तुमाओ (-ए,-ई)
	तेरो, तोको, तोनो	तुमको

अन्य पुरुष : निश्चयवाचक

(दूरवर्ती)	अविकारी	बौ, बो (पुल्लिग), बा (स्त्री०), ऊँ, ओ, वो, बे, बै, वे	
	विकारी	ऊ, ऊँ, बा (स्त्री०)	बिन, उन
	सम्बन्ध	ऊको, (-के,-की)	उनको (-के,-की)
		बाको (-के,-की), ओको	

निश्चयवाची (निकटवर्ती)

अविकारी	जो (पु०), जा (स्त्री०), यौ, ए	जे, ये
विकारी	ई, इ	इन, ए, ऐ

सहायक तथा अस्तित्ववाचक क्रिया : वर्तमान (मैं हूँ)—इसके तीन रूप हैं :

(१)	उत्तम पुरुष	हौं, औं, हों, ओं	हैं, ऐं, हें, एं
	मध्यम पुरुष	है, ऐ, हे, ए	हो, ओ, हौ, औ
	अन्य पुरुष	है, ऐ	हैं, ऐं
(२)	उत्तम पुरुष	आँव्, आँउँ	आँय्
	मध्यम पुरुष	आय्	आव्
	अन्य पुरुष	आय्	आँय्
(३)	उत्तम पुरुष	आँहौं	आँहैं
	मध्यम पुरुष	आहै	आहौ
	अन्य पुरुष	आहै	आँहैं

१ एवं २ के प्रयोग में कुछ अन्तर है। प्रथम का प्रयोग प्राय: संयुक्त क्रिया में सहायक क्रिया के रूप में होता है, जैसे 'मैं खात् हौं' (मैं खाता हूं)। दूसरे का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग प्राय: निश्चय का बोध कराने के लिए होता है। जैसे 'में काछी आँउ' (मैं काछी हूँ, कोई और नहीं)। तीसरे वर्ग की सहायक क्रियाओं का प्रयोग प्रश्न या उसके उत्तर के लिए होता है। जैसे 'तैं को आहै ?' 'में आँहौं ठाकुर'।

भूत निश्चयार्थ (मैं था, आदि)

	पुल्लिग		स्त्रीलिंग	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
उ० पु०	हतो, तो	हते, ते	हती, ती	हतीं, तीं
म० पु०	हतो, तो	हते, ते	हती, ती	हतीं, तीं
अ० पु०	हतो, तो	हते, ते	हती, ती	हतीं, तीं

भविष्य निश्चयार्थ (मैं हूँगा या होऊँगा आदि)

	पुल्लिग		स्त्रीलिंग	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
उ० पु०	हुहौं, होउँगो	हुहैं, होयेंगे	हुहौं, होउँगी	हुहैं, होयेंगी
म० पु०	हुहै, होउगो	हुहैं, होउगे	हुहै, होउगी	हुहौ, होउँगी
अ० पु०	हुहै, होउगो	हुहैं, होयेंगे	हुहै, होउगी	हुहैं, होयेंगी

क्रियाविशेषण यहाँ—याँ, याँईं, इतै; वहाँ—वाँ, वाईं, उतै, उतइ, माँ; जहाँ—ज्याँ, जाँ, ज्याँईं, जितै, जितइ; तहाँ—ताँ, त्याँ, त्याँईं, तितै, तितइ; कहाँ—काँ, क्याँ, क्याँईं, कितै, कितइ (हिन्दी रूप यहाँ, वहाँ, जहाँ, तहाँ, कहाँ भी प्रयुक्त होते हैं)। इताँयँ (इस ओर), उताँयँ (उस ओर), आँगैं, आँगूं, पाछैं, पाछूं, ऐंगर (पास)। अबइ, जबइ, , तबइ, कबइ, आझईं (आज ही), कल्ल (कल), काल (कल), परौं (परसों), अथऐं (शाम को), सकारैं (सवेरे), दुफाईं (दोपहर को), आसौं (इस वर्ष) औ, और, भी, फिन (फिर), पै (लेकिन)।

कनौजी

'कनौज' (संस्कृत कान्यकुब्ज) इस बोली का केन्द्र है, अत: इसका नाम 'कनौजी' पड़ा है। यह इटावा, फरूखाबाद, शाहजहाँपुर, कानपुर, हरदोई, पीलीभीत आदि में बोली जाती है। कनौजी शोरसेनी अपभ्रंश से निकली है। यह ब्रजभाषा के इतनी अधिक समान है कि कुछ लोग इसे ब्रजभाषा की ही उपबोली मानते हैं। कनौजी में केवल लोक-साहित्य मिलता है जिसमें से कुछ अंश प्रकाशित भी हो चुका है। उकारांतता (खातु, घरु, सबु), ओकारांतता (हमारो या हमाओ), स्वार्थ प्रत्यय -इया (जिमिया, छोकरिया) तथा -वा (बेटवा, बचवा), औ का अउ (कउन), बहुवचन के लिए ह वार (हम ह्वार, हम-लोग) आदि इसकी कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं।

परसर्ग : कर्ता—ने, नैं
कर्म-संप्रदान—कौ, को, काँ, कउ
करण-अपादान—से, सेती, सन्, ते, सैं
संबंध—को, के, की, कर
अधि०—मैं, में, माँ, महँ, महिआँ

कारक-रूप : कनौजी में एकवचन में आकारांत शब्द विकारी रूप में प्राय: एकारांत (घोड़े) हो जाते हैं, अन्य सभी शब्द अपरिवर्तित रहते हैं। बहुवचन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविकारी रूप में आकारांत का एकारांत हो जाता है, किन्तु शेष अपरिवर्तित रहते हैं। विकृत रूप में 'अन' या 'न' जुड़ता है : बातन, घोड़न, बापुन।

सर्वनाम : पुरुषवाचक	एक०	बहु०
उत्तम पुरुष : अविकारी	मैं, मइँ, हम्	हम्, हमु
विकारी	मो	हम्, हमु
कर्म-संप्रदान (विशेष)	मोहि, मोइ	हमें, हमैं, हमहिं
सम्बन्ध	मेरो, -रे, -री, मेयो	हमारो, -रे, -री, हमाओ
	मोरो, -रे, -री, मोइ	हमरो, -रे, -री, हमाइ
मध्यम पुरुष : अविकारी	तू, तूँ, तैं, तुइ	तुम्, तुम्ह
विकारी	तो	तुम्
कर्म-संप्रदान (विशेष)	तोहि	तुम्हें, तुम्हैं, तुमैं, तुमहिं
सम्बन्ध	तेरो, -रे, -री, तेयो	तुम्हारो, तुमारो, -री, -रे
	तोरो, -रे, -री, तोइ	तुमरो, तुमाइ
निश्चयवाचक : अविकारी (दूरवर्ती)	वहु, वुहि, उहि, वो, बौ, बहु, वउ, उओ, ऊ	वे, वैं, वे, वै
विकारी	उहि, वहि, वा, बा	उन्, उन्हों, उनों
कर्म-संप्रदान (विशेष)	उसे, उसैं	उन्हें, उन्हैं, उनैं
सम्बन्ध	उहिको, वाको, -की, -के	उनको, -की, -के
निश्चयवाचक : अविकारी (निकटवर्ती)	यहु, इहु, यिहु, जहु, यी, जौ, जू, जउ, इया, इओं	ये, यैं, जइ
विकारी	यहि, इहि, या, जा, ईं, एहि, जाहि, ज्याहि	इन्, इन्हों
कर्म-संप्रदान (विशेष)	इसे, इसैं, जाय	इन्हें, इन्हैं, इनैं, याहि, जाहि
सम्बन्ध	याको, यहिको, -की, -के	इनको, -की, -के

क्रिया : सहायक तथा अस्तित्ववाचक क्रिया :

वर्तमान	एक०	बहु०
उ० पु०	हूँ, हौं, हउँ, हौं	हैं, हैइँ, हैंगे, हंइँगे
म० पु०	है, हैगो	हो, होगे, ही, हउ
अ० पु०	है, हैगो	हैं, हैंगे, हंइ, हंइँ, हंइँगे

	पुल्लिंग		स्त्रीलिंग	
भूतकाल :	एक०	बहु०	एक०	बहु०
उ० पु०	थो, हतो, रहो, रहउँ	थे, हते, रहें, रहइँ	थी, हती, रही	थीं, हतीं रहीं
म० पु०	" " रहे, रहइ	" " रहो, रहउ	" " " "	" "
अ० पु०	" " " "	" " रहें, रहइँ	" " " "	" "

भविष्य :	एक०	बहु०
उ० पु०	हुइहौं, हुइहों, हुइहउँ, हैहूँ	हुइहैं, हुइहइँ, हुइहें
म० पु०	हुइहैं, हुइहे, हुइहइ	हुइहो, हुइहौ, हुइहउ
अ० पु०	" " "	हुइहैं, हुइहइँ, हुइहें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(भविष्य के -ग- वाले रूप कनौजी के अपने नहीं हैं, यद्यपि ब्रज के प्रभाव से कुछ स्थानों पर प्रयुक्त होते हैं।)

ताजुज्बेकी

सोवियत संघ में ताजिकिस्तान तथा उज्बेकिस्तान की सीमा पर हिसार, शहरेनव, रेगार, सुर्ची आदि में बोली जाने वाली इस हिन्दी बोली का यह नाम मेरा दिया हुआ है। (विस्तार के लिए देखिए मेरी पुस्तक 'ताजुज्बेकी')। मैंने इस पर जो काम किया है, उससे पता चलता है कि इसके बोलने वाले दिल्ली के आसपास से, १३वीं सदी के लगभग चलकर पंजाब, अफ़ग़ानिस्तान होते, उस क्षेत्र में पहुँचे जहाँ आज हैं। प्रवास-यात्रा में इनकी भाषा पंजाबी तथा अफ़गानी से भी प्रभावित हुई, किन्तु वह अब भी स्पष्ट रूप से हिन्दी बोली है। यों शब्द-भण्डार के क्षेत्र में ताजिक, उज़बेक तथा रूसी ने इसे प्रभावित किया है। मूलतः यह बोली ब्रज, हरियानी तथा राजस्थानी के बीच की मालूम होती है। इस बोली के मुख्य परसर्ग हैं: कर्ता—ने; कर्म—त, ते, को; करण—ते, से, चे, नल; संप्र०—ति, को; अपा०—ते, से, चे; संबंध—का, कि, के, क, तो, ति, ते; अधि०—में, मो, पर, परे। सर्वनाम के रूप हैं: मे, मि, हम, मिंज (मैंने), हमन (हमने), मत (मुझे), हमत (हमें), मुरो (मेरा), मिरि (मेरी); तु, तम, तुरो, तिरि; ओ, उ, उस, उन; या, ए, इस, इन, जु, जिस, जिन, कों, किस, किन, आदि। वर्तमान की सहायक क्रिया है: छूं (हूँ), छ (हैं), छे (है), छो (हो)। क्रियाविशेषण—इंगा (यहाँ), उंगा (वहाँ), किगा (कहाँ), कद (कब), जबे (जब), अबे (अब)।

निमाड़ी

मध्यप्रदेश के निमाड़-क्षेत्र में यह बोली जाती है। इसके नाम के सम्बन्ध में कई मत हैं: (क) फ़ा० शब्द नीम (आधा) से इसका सम्बन्ध है। नर्मदा नदी का आधा भाग इस प्रदेश में पड़ता है; (ख) 'नीम' के पेड़ ज्यादा होने से यह 'निमाड़' (नीमवाड़=नीमवाला) कहलाया; (ग) 'नीवार' नामक जंगली चावल यहाँ बहुत होता है, अतः यह नाम पड़ा है। ग्रियर्सन ने इसे राजस्थानी बोली कहा था। डॉ० चटर्जी ने ग्रियर्सन का विरोध किया। उनके अनुसार यह राजस्थानी बोली नहीं है। मेरे विचार में यह राजस्थानी की बोली न होकर पश्चिमी हिन्दी की बोली है, क्योंकि यह राजस्थानी की तुलना में बुंदेली तथा ब्रज के निकट है। निमाड़ी में साहित्य-रचना भी हुई है। निमाड़ी के परसर्ग हैं: कर्ता—न; कर्म—ख, क; करण—सी, स; संबंध—को, का, की; अधि०—म, पर। सर्वनाम हैं—हऊं (मैं), हम, मन (मैंने), हमन (हमने), म्हारा, हमारा; तू, तुम, तुख (तुझको), तुमक (तुमको), थारा, तुम्हारा; ऊ, वा, ऊन, वोन; ई, इन; जे, जिन; ते, तिन। निमाड़ी के क्रियारूप कुछ विचित्र हैं। 'है' के लिए 'ज' (चलूं=चलता हूँ) तथा 'था' के लिए 'थो' (चल्यो थो=चला था)।

अवधी

इस बोली का केन्द्र अयोध्या है। 'अयोध्या' शब्द का ही विकसित रूप 'अवध' है, जिससे 'अवधी' शब्द बना है। अवधी का क्षेत्र लखनऊ, इलाहाबाद, फतेहपुर, मिर्जापुर (अंशतः), उन्नाव, रायबरेली, सीतापुर, फैजाबाद, गोंडा, बस्ती, बहराइच, सुल्तान-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुर, प्रतापगढ़, बाराबंकी आदि हैं। अवधी में साहित्य तथा लोक-साहित्य दोनों ही पर्याप्त मात्रा में हैं। इसके प्रसिद्ध कवि मुल्ला दाऊद, कुतुबन, जायसी, तुलसीदास, उसमान, तथा सबलसिंह आदि हैं। ऐ, औ का अइ, अउ या अए, अओ उच्चारण, संज्ञा के तीन रूप (घोर, घोरवा, घोरौना), स्वार्थे वा का व्यापक प्रयोग (भोलवा, मोरवा), 'ह' (सईस--सहीस, इच्छा--हिच्छा) या 'र' (पसंद-परसन्द, वियोग--विरोग) का आगम, कुछ में महाप्राणीकरण (पुनः-फुन, पेड़-फेड़), व का ब (विद्यार्थी, बिद्यालय), 'मौसा' के लिए 'मौसिया', व्यंजनांतता (घोड़ा--घोर, होत, होब, करत, बड़, खोट, नीक) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं। इसकी मुख्य बोलियाँ बैसवाड़ी, मिर्जापुरी तथा बनौधी हैं।

अवधी की उत्पत्ति और उसका विकास--अवधी के पश्चिम में स्थित कनौजी, ब्रज आदि बोलियाँ शौरसेनी से उद्भूत हैं, तथा पूर्व की भोजपुरी आदि मागधी से। इसी आधार पर ग्रियर्सन नें अवधी या पूर्वी हिन्दी को शौरसेनी एवं मागधी के बीच की अर्धमागधी से उत्पन्न माना था। बाबूराम सक्सेना ने अपने प्रबन्ध 'अवधी का विकास' में ग्रियर्सन से असहमति प्रकट की है, और यह कहा है कि "अर्धमागधी का जो रूप जैन ग्रंथों में उपलब्ध है, उसकी तुलना में अवधी पालि से अधिक समानताएँ रखती है।" वस्तुतः अर्धमागधी का जो रूप जैन ग्रंथों में है, वह मूल अर्धमागधी का प्रतिनिधित्व नहीं करता। ये ग्रन्थ बाद के पुनःसम्पादित हैं। अतः मेरे विचार में पूर्वी हिन्दी या अवधी, अर्द्धमागधी से उद्भूत भी है, तो उस अर्धमागधी से जो अवधी के पूर्व इस क्षेत्र में प्रयुक्त होती थी, न कि उससे जो जैन ग्रन्थों में सुरक्षित है। यों इसे 'कौसली' से उद्भूत कहना कदाचित् अधिक समीचीन है, जैसा कि आगे स्पष्ट किया गया है। 'अवधी' की उत्पत्ति अन्य भारतीय भाषाओं की तरह ही १००० या ११०० ई० के आसपास हुई। देशी भाषा के रूप में कोसली का उल्लेख ८वीं सदी के ग्रंथ कुवलयमाला में मिलता है। प्रश्न उठता है कि 'कोसली' क्या है? इतिहास के अध्येता इस बात से परिचित हैं कि कोसल राज्य भारत के प्राचीनतम राज्यों में माना जाता है। इसके 'उत्तर कोसल' (अयोध्या के आसपास) तथा 'दक्षिण कोसल' (रीवाँ, जबलपुर के आसपास) दो भाग थे। पूरे कोसल को 'महाकोसल' कहते थे। इस प्रकार कोसल राज्य में प्रायः अवधी, बघेली एवं छत्तीसगढ़ी का क्षेत्र आता है। यों कोसल ठीक इतना ही था या कम-अधिक, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। इस तरह कोसली, लगभग 'पूर्वी हिन्दी' है, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से 'कोसली' एवं 'पूर्वी हिन्दी' को एक मानना भी बहुत उचित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि पूर्वी हिन्दी की सत्ता १००० के बाद से है, जब कि 'कोसली' का उल्लेख, उसके पूर्व की भाषा के लिए है। इस प्रकार 'कोसली' को 'पूर्वी हिन्दी' का पूर्व रूप माना जा सकता है। इस प्रसंग में मेरा एक सुझाव है। 'कोसली' नाम कल्पित नहीं है, क्योंकि उसका प्रयोग 'कुवलयमाला' में है। साथ ही इसका क्षेत्र प्रायः वही है जो पूर्वी हिन्दी का है। ऐसी स्थिति में क्यों न पूर्वी हिन्दी के पूर्व रूप (अपभ्रंश, अवहट्ठ) के लिए 'कोसली' को स्वीकार कर लिया जाय, अर्थात् अर्धमागधी के स्थान पर कोसली से इसकी उत्पत्ति मानी जाय। यहाँ विस्तार से विषय को उठाना सम्भव नहीं है, किन्तु इतना संकेत किया जा सकता है कि यदि विस्तार से देखा जाय तो अर्धमागधी, जिस रूप में ग्रंथों (विशेषतः जैन) में प्राप्त है, उसके आधार पर उसके स्थान का निर्धारण, बहुत सरल नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसा लगता है कि इस प्रश्न पर विचार करते समय लोगों का ध्यान भाषा के स्वरूप से अधिक उसके नाम पर था। अस्तु,

अवधी के विकास को तीन कालों में विभक्त किया जा सकता है: (१) प्रारम्भ से १४०० तक; (२) १४०० से १७०० तक; (३) १७०० से अब तक। अवधी के प्राचीनतम रूपों के बीज हमें पहली सदी से भी पूर्व मिलने लगते हैं। पहली सदी से २०० वर्ष पूर्व एवं २०० वर्ष बाद के बीच के पिपरहवा, सोहगौरा, सारनाथ, रुम्मनदेई एवं खैरागढ़ के अभिलेख इस दृष्टि से उल्लेख्य हैं। इनमें विशेष महत्त्व सोहगौरा का है। यद्यपि यह कहना गलत होगा कि इनमें केवल अवधी-प्रवृत्तियाँ ही हैं। साहित्यिक प्राकृतों के काल में ये बीज अंकुरित हुए और अपभ्रंश के परवर्ती काल में उनमें पर्याप्त विकास हो गया। प्राकृतपैंगलम् के छंद मोटे रूप से ९वीं से १४वीं सदी तक के हैं, राउलवेल ११वीं की, उक्ति-व्यक्तिप्रकरण १२वीं का, एवं कीर्तिलता १४वीं की, यद्यपि इन सभी में जो भाषारूप हैं, वे इतने परवर्ती न होकर काफ़ी पहले के हैं। साहित्य में भाषा का प्रयोग, समाज में प्रयोग के बहुत बाद में होता है। तथाकथित अवहट्ठ की उपर्युक्त सभी रचनाओं एवं हेमचन्द्र में उदयोन्मुखी अवधी के रूप झाँक रहे हैं। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं। केरअ>केरा, केर (जसु **केरअ** हुंकारउएँ--हेमचन्द्र; काहू **केर** बिकाइ--जायसी); मज्झे>मज्झ> माँह>महँ (जीवहिं **मज्झे** एझ--हेम०; तेन्हु **माँझ** का कालिदास--उक्तिव्यक्ति०; युवराजन्हि **माँझ** पवित्र--कीर्तिलता; **माँझ** गंदिर जनु लाग आकासा--जायसी; रामप्रताप प्रगट एहि **माँही**--तुलसी; सरग आइ धरती **महँ** छावा--जायसी); तण>तन>तइँ>तें>ते, थैं भी (केहि **तणेण**--हेमचन्द्र; पिय **तन** चितइ भौंह करि बाँकी—मानस; राम **ते** अधिक राम कर दासा--मानस; पाऊँ **थैं** पंगुल भया--कबीर); हउँ>हौं (विआलि को **हउँ** मागिहउँ--उक्तिव्यक्ति०; देखि एक कौतुक **हौं** रहा--जायसी); तुम्हे>तुम्ह (अम्हतौ **तुम्हे**--उक्तिव्यक्ति०; की **तुम्ह** हरि दासन मह कोऊ--तुलसी); कवण>कवन (**कवण** काजे--उक्तिव्यक्ति०; कारन **कवन** भरत बन जाहीं--तुलसी); करवौं>करउँ (हौं **करवौं**--उक्तिव्यक्ति०; करउँ कथा हरिपद धरि सीसा--तुलसी), इत्यादि।

१४०० ई० तक अवधी का निर्माण-काल या आदिकाल माना जा सकता है। उसके बाद १७०० ई० तक इसका मध्यकाल है। मध्यकालीन अवधी का रूप मुल्लादाऊद की 'लोरकहा' या 'चन्दायन' (१३७० ई०), लालचदास के 'हरिचरित' (१५०० ई० के बाद), सूरजदास के रामजन्म (५वीं सदी अन्तिम चरण), ईश्वरदास की 'सत्यवती कथा' (१५०१ ई०) तथा 'दुर्गारोहणी', इशरदास के 'भरतमिलाप' (१६वीं सदी, प्रथम दशक), ईश्वरदास के 'अंगदपैज' (१६वीं सदी, प्रथम दशक), कुतुबन की मृगावती (१५०३ ई०), तथा जायसी, आलम, रिज्कुल्ला, तुलसीदास, उसमान, चतुर्भुजदास, लालदास, एवं नारायणदास आदि की रचनाओं में सुरक्षित है। यों ३०० वर्षों के इस बड़े काल में, जैसा कि स्वाभाविक है, भाषा की एकरूपता नहीं है। कुतुबन तथा उनके पूर्व की भाषा के काल को पूर्व मध्यकाल तथा जायसी एवं उनके बाद की भाषा को उत्तर मध्यकाल में रख सकते हैं। कुतुबन एवं जायसी की रचनाओं में कहने को तो लगभग ३० वर्ष का अन्तर है, किन्तु उनकी भाषा स्पष्टतः दो स्तरों की है। कुतुबन में पुरानी अवधी है, तो जायसी में बाद की। यदि पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल की अवधी की तुलना करें तो देखेंगे कि कुछ बातें पूर्व में यदि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत मिलती हैं, तो उत्तर में वे कम हो गई हैं; तथा आधुनिक काल में नहीं मिलतीं, या समाप्तप्राय हैं। उदाहरण के लिए, तेन-तेन्ह और तिन-तिन्ह ले सकते हैं। स्पष्ट ही परवर्ती युग्म पूर्ववर्ती का विकास है। पूर्ववर्ती पूर्व मध्यकाल में अधिक प्रयुक्त हुआ है, तो उत्तर में कम और अब प्रायः बिल्कुल नहीं। इसके विरुद्ध तिन-तिन्ह पूर्व मध्य में कम, उत्तर मध्य में अधिक और अब बहुत अधिक प्रयोग में है। भव-भा के बारे में भी यही बात है। 'भव' का ही विकास 'भा' में हुआ है। 'भव' पूर्व मध्य में बहुत मिलता है, उत्तर में कम और अब प्रायः नहीं। दूसरी ओर 'भा' पूर्व में कम, उत्तर में अपेक्षाकृत अधिक, और अब बहुत अधिक मिलता है। शब्द-समूह में भी बहुत परिवर्तन हुआ है। 'अछ' धातु का पूर्व-मध्य में बहुत अधिक प्रयोग है। इसके प्रायः सभी या अधिकांश रूप [आछहिं (=हैं), आछत (=है) आदि] मिलते हैं। किन्तु, उत्तर मध्य में इसका प्रयोग बहुत कम हो गया है। जायसी में 'आछैं', 'आछत' इन दो रूपों में यह क्रिया कुल केवल चार बार आई है। तुलसी में यह धातु केवल 'अछत' शब्द-रूप में ही एक-दो बार प्रयुक्त है। अब इसका प्रयोग प्रायः समाप्त हो गया है। भोजपुरी में 'अछत' रूप में यह मात्र एक शब्द के रूप में बच गई है। इस प्रकार के और भी अनेक शब्द हैं।

१७०० ई० के बाद की अवधी छेमकरन के कृष्णचरितामृत (१८वीं सदी मध्य), शिवरामकृत भक्ति जयमाल (१७३०), कासिमशाह का हंस जवाहर (१७३६), नूर मुहम्मद की इन्द्रावती (१७४३), शेख निसार की यूसुफ जुलेखा (१८९०), भवानी शंकर की बैतालपचीसी (१८१४), अलीशाह की प्रेमचिनगारी (१८४५) तथा ख्वाजा अहमद की नूरजहाँ (१९०५) आदि पचासों पुस्तकों में सुरक्षित है। आधुनिक काल के प्रसिद्ध अवधी ग्रंथों में कृष्णायन भी है। अवधी एक जीवित भाषा है, और आज भी विकास के पथ पर है। उसमें आज भी परिवर्तन हो रहे है। शब्द-समूह का उल्लेख ऊपर किया गया है। यदि अवधी के पूरे विकास पर ध्यान दें तो स्पष्ट हुए बिना न रहेगा कि मध्य काल में अरबी-फ़ारसी के शब्द इसमें आ गए तो आधुनिक में अंग्रेजी के शब्द आए हैं। इधर बोलचाल की अवधी खड़ीबोली से प्रभावित हुई है।

ध्वनियाँ तथा व्याकरण

ध्वनियाँ—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, य्, र्, ल्, व् ,स्, ह्, ड़्, ढ़्, न्ह्, म्ह्, ल्ह्, र्ह्। ए, ओ के ह्रस्व एवं दीर्घ दोनों ही रूप हैं। इ, उ, ए के जपित रूप (गीलि, साँपु, काहेसे) भी मिलते हैं। सभी स्वरों के अनुनासिक रूप भी प्रयुक्त होते हैं। प्राचीन स्, श, ष् तीनों ही के स्थान पर अवधी में 'स' ही मिलता है: सर्प>साँप, श्वास>साँस, षोडश>सोरह। 'ऋ' के स्थान पर 'रि' आता है—ऋषि>रिसि। हिन्दी की अन्य बोलियों की भाँति ही अवधी में भी 'ह' का आगम (सईस>सहीस, इच्छा>हिच्छा), महाप्राणीकरण (पुनः>फुन, पेड़>फेड़), अकारण अनुनासिकता (श्वास>साँस, हिस्सा>हिंस्सा, सर्प>साँप); घोषीकरण (भक्त>भगत, शाक>साग, कंकण>कँगना), समीकरण (सबका<सप्का, सात दिन>साद्दिन, हिरन>हिन्ना आदि) की प्रवृत्ति है। भोजपुरी आदि की भाँति अवधी में 'ल' के स्थान 'र' हो (अनादि) जाता है: अंजलि<अँजुरी, मूसल>मूसर, फल>फर, आलस्य>आरसु, हल>हर आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा—अवधी में सामान्यतः अनेक संज्ञा शब्दों के तीन रूप होते हैं : सामान्य, दीर्घ, दीर्घतर। जैसे घोड़ा, घोड़वा, घोड़उना; कुत्ता, कुतवा, कुतउना। यह उल्लेख्य है कि इन तीन रूपों की प्रवृत्ति पूर्वी अवधी में अपेक्षाकृत अधिक है। दीर्घ रूप का प्रयोग हेयार्थ या अधिक परिचय होने पर ही किया जाता है। कुछ शब्द दो रूपवाले भी हैं : नद्दी-नदिया, नाऊ-नउवा। कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जो केवल दीर्घ रूप में ही प्रयुक्त होते हैं : डिबिया, बिलइया।

परसर्ग

कर्ता	×
कर्म-सम्प्रदान	क, का, कां, कह्यां, कहँ, काहु, कु, कुं, के, कहुँ, कउँ, को, कइ।
सम्प्रदान	कह्यां, बाड़े।
करण-अपादान	से, सेनी, सेन, संती, सन, सि, सु, ते, तें, तइं, सों, सनु, सउँ, लग, सेती, सेतीं, भइ, सेने, हुत, तेने, भे, वे।
सम्बन्ध	केर, कर, के, केरा, केरि, केरी, केरे, कइ, कैं, को, का, की, कि, क, करि।
अधिकरण	माँ, में, मं, महँ, माहिं, माँझ, मुंह, मुहु, मझारी, पर, प, मइहाँ, मइहँन, परिहाँ।

कारक-रूप	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	घोड़वा, चोरवा	घोड़वे, घोड़वने, घोड़वन्, चोरवइ
विकारी	,, ,,	घोड़वन्, चोरवन्
अविकारी	नोकर्, बात्, रोटी	नोकर्, बातइ, रोटी
विकारी	,, ,, ,,	नोकरन्, बातन्, रोटिन्

सर्वनाम : पुरुषवाचक

उत्तम पुरुष	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	मैं, में, मइ, मइँ, हौं	हम्, हमन, हम्मन, हम सब
विकारी	मो, म्वहि, मोहिं, मोहि, महिं, मइ	हम, हमहिं, हमइँ
सम्बन्ध	मोर, मोरे, मोरि, म्वार	हमार, हमरे, हमारि

मध्यम पुरुष

अविकारी	तू, तूं, तैं, तुँइ, तुइँ, तइँ, तुइ, तोइ, तँयँ, त्वइ	तुम, तुम्ह, तूं, तू सब
	एकवचन	बहुवचन
विकारी	तों, तुइ, तौहि, तोहिं, तुहि, तोइ	तुम, तुमरे, तुम्ह, तोहरे, तुमहिं, तुम्हहिं
सम्बन्ध	तोर, तोहार, तोरे, तोरि, तोहारि, त्वार	तुमार, तुम्हार, तुमर, तोंहार, तोहरे, तुमरे, तुमारे, तुमरी, तुमारि, तुम्हारि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविकारी	ऊ, ढेकनवा, फुलनवा, ओ, वह, वहु, वा (स्त्री०)	ऊ, ओ, ओसब, फुलाने, ढेकाने, उइ, वइ, वेइ, उन्ह, उन, ऊ सब, ऊ पंच
विकारी	ओ, ओह, ओहि, ओकर, उइ, वा, वहि, वइ, उहि	ओन्, उन्, उन्ह, वन, ओन्ह
सम्बन्ध	ओकर, -ए, -इ, वहिकर, -ए, -इ	ओनकर, ओनकरे, -रि, उन्हकर, -ए, -इ

निश्चयवाचक (निकटवर्ती)

अविकारी	इउ, ई, यु, इह, ईह, एह, येहु, एहु यह, यहु, या (स्त्री०), यइ	इन, ए, ये, येइ, ई, ई पंच.
विकारी	ए, एह, एहि, या, ई	इन, इन्ह, इन्हि, इन्हहिं, ई, एन, एन्ह
सम्बन्ध	एकर, एकरे, -रि	इनकर, इन्हकर, एन्हकर, -रे, -रि

सहायक तथा अस्तित्ववाचक क्रिया—अवधी के प्राचीन साहित्य में सहायक क्रिया का प्रयोग कम ही हुआ है। प्राचीन अवधी की सहायक क्रियाएँ ये हैं : **अह-वाली**—अहउँ, अहउ, अहइ, अहहि, आहि, अहहिं, आँहइ। **ह-वाली**—हउँ, हहिं, हहु, हसि, हइ। **अछ्-वाली**—आछँ, आछत। ये रूप वर्तमान के थे। भूत के रूप हैं : **भ्-वाली**—भा, भइ, भइँ, भइँ, भए, भयेउ, भयेउँ, भएन, भइँन, भइल (पूर्वी प्रभाव)। **रह्-वाली**—रहा, रहे, रही। **अह्-वाली**—अहा, अहे, अही। **ह-वाली**—हत, हते, हता, हतें, हुत। भविष्य : होब, होबइ, होयउँ, होइहि, होइहिं। आधुनिक अवधी में अछ्-वाली सहायक क्रियाएँ बिलकुल नहीं हैं। अन्य ये हैं :

वर्तमान

एकवचन	बहुवचन
हउँ, हँव्, अहेउँ, बाटउँ	हन्, होइ, अही, अहन्, हइँ, बाटेन्
हइ, हस, हवइ, अहसि, हसि, अहउ, बाटइ	हउ, हवओ, अहा, अहउ, बा
हइ, हवइ, आय्, अहइ, अइ, बाटइ	हइँ, हवइँ, अहीं, आहीं, अहयँ, अहिन्, अहें, बाटँय

भूत

एकवचन	बहुवचन
रहउँ, हता (स्त्री० हती),	रहन्, हते (स्त्री० हती), रहिन् रहवाँ
रहइ, " हती, रहिसि, रहिस्, रह्या	रहउ " " " रह्या
रहइ, " " रहा (स्त्री० रही)	रहइँ " " " रहिन्, रहेन्

भविष्य

होइहौं	होइबा, होइब् होइबइ, होब्, होबइ
होई, होइहइ	होइहउ, होब्या, होबो
होई, होए	होइहइँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज्ञा

हो, रहु होउ, रहउ, रहा

भविष्य आज्ञार्थ

होए, होइस, रहे, रहिस् होएउ, होया, रहेउ, रह्या।

क्रिया-विशेषण : यहाँ—इहँ, इहाँ, एठियाँ, एठियन्, हियाँ, इआँ, ईहाँ, ईआँ, इहवाँ; **वहाँ**—उहाँ, ऊहाँ, ओठियाँ, ओठियन, हुआँ, उहवाँ; **जहाँ**—जहँ, जहाँ जेठियाँ, जेठियन, जहवाँ; **तहाँ**—तहँ, तहाँ, तहवाँ, तेठियाँ, तेठियन्; **कहाँ**—कहँ, कहाँ, कहवाँ, केठियाँ, केठियन्; **इधर**—अइसी, एहकी; **उधर**—ओहकी, वइसी; **जिधर**—जेहकी, जइसी; **किधर**—केहकी, कइसी; **अब**—अब, अब्बय, अभय्, ईजून; **तब**—तब, तब्बय, तभय् ऊजून; **कब**—कब, कब्बय, कभय्। **जब**—जब, जब्बय, जभय। आजु, काल्हि, परउँ (=परसों); **फिर**—फिर, फिन, फिनु, पुन, फुन। अइसेन, अइसन, अस, अइसे; वस, वइसे, वइसेन, ओइसन; जस, जइसे, जइसेन, जइसन; तस, तइसे, तइसेन, तइसन; कस, कइसे, कइसेन, कइसन।

बैसवाड़ी

'बैसवाड़ी' नाम का प्रयोग एकाधिक अर्थों में हुआ है। केलॉग ने जिसे 'पुरानी बैसवाड़ी' (Old Baiswari) कहा है, वह वस्तुतः 'पुरानी अवधी' ही है। इसीलिए वे (या बीम्स भी) तुलसी की भाषा को 'पुरानी बैसवाड़ी' कहते हैं। कुछ लोगों ने 'बैसवाड़ी' के अन्तर्गत 'अवधी' और 'बघेली' दोनों को रखा है। इस प्रकार एक प्रयोग में यह 'अवधी' का समानार्थी है, तो दूसरे में उससे भी व्यापक। किन्तु अब यह नाम, उपर्युक्त दोनों के, किसी भी अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता। 'बैसवाड़ी' अब अवधी की एक उपबोली मानी जाती है, जो उन्नाव एवं रायबरेली जिलों के बीच के क्षेत्र में बोली जाती है। 'बैस राजपूतों' के प्राधान्य के कारण, इस प्रदेश को 'बैसवाड़ा' कहते हैं। 'बैसवाड़ा' क्षेत्र में उन्नाव और रायबरेली के बीच के रायबरेली, बछरावाँ, डलमउ, खिरों, सरोनी, मोरावाँ, पुरवा, पनहन, पाटन, मगड़ायर, घाटमपुर, भगवन्तपुर, बिहार और डोंड़ियाखेरा आदि १४-१५ परगने आते हैं। इसे 'बैसवाड़ी अवधी' भी कहते हैं। लोगों का कहना है कि 'बैसवाड़ी', अवधी के अन्य रूपों की तुलना में कुछ कर्णकटु है। 'बैसवाड़ी' का साहित्य में प्रयोग नहीं हुआ है। इसके आधुनिक कवियों में चन्द्रभूषण द्विवेदी 'रमई काका' प्रसिद्ध हैं। उनकी प्रमुख पुस्तकें 'बौछार', 'फुहार' एवं 'रतौंधी' आदि हैं। 'बराती' भी इसके अच्छे साहित्यकार हैं।

बघेली

बघेले राजपूतों के आधार पर रीवाँ तथा आसपास का क्षेत्र बघेलखंड कहलाता है और वहाँ की बोली को बघेलखंडी या बघेली कहते हैं। बघेली का उद्भव अर्धमागधी अपभ्रंश के ही एक क्षेत्रीय रूप से हुआ है। यद्यपि जनमत इसे अलग बोली मानता है, किन्तु भाषावैज्ञानिक स्तर पर यह अवधी की ही उपबोली ज्ञात होती है और इसे दक्षिणी अवधी कह सकते हैं। इसका क्षेत्र रीवाँ, नागोद, शहडोल, सतना, मैहर तथा आसपास का क्षेत्र है। कुछ अपवादों को छोड़कर बघेली में केवल लोक-साहित्य है। सर्वनामों में मुझे के स्थान पर म्वाँ, मोही, तुझे के स्थान पर त्वाँ, तोही, विशेषण में -हा प्रत्यय (नीकहा), घोड़ा का घ्वाड़, मोर का म्वार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पेट का प्याट, देत का घात, आदि इसकी कुछ विशेषताएं हैं। इसकी मुख्य बोलियाँ तिरहारी, जुड़ार, गहोरा आदि हैं।

परसर्ग

कर्ता—×

कर्म-संप्र०—क, का, ला, बर, कहँ, कइहाँ, कइ, काहे

करण-अपा०—ले, ते, तन, से, तार

संबंध—केर, कर, (पु०) के, (विकारी) के; (स्त्री०) की, (विकारी) की

अधिकरण—माँ, म, पर

कारक-रूप

घ्वाड़, घर, गदेली (लड़की), किताब्	घ्वाड़ें, घ्वाड़ईं, घरें, गदेली, किताव्
" " " किताब्	घ्वाड़न्, घरन्, गदेलिनि, किताबन्, किताव्

सर्वनाम : पुरुषवाचक :

उत्तम पुरुष :	एक०	बहु०
अविकारी	मंय, मंयं, मह	हम्ह
विकारी	म्वहि, म्वाँ, म्वारे, म्वा	हम्ह, हम्हारे
संबंध	म्वार्	हम्हार्, हमार्

कुछ अन्य रूप—कर्म-संप्रदान—एक० म्वहि, म्वहिका, म्वहिकहँ, म्वाका, म्वाकहँ। करण-अपादान—एक० म्वहिसे, म्वहितन, म्वासे, म्वातन। अधिकरण—एक० म्वारे म; बहु० हम्ह म, हम्ह माँ, हमारे पर।

मध्यम पुरुष : अविकारी	तंय, तंयं,	तुम्ह
विकारी	त्वहि, त्वाँ, त्वारे	तुम्ह, तुम्हारे
संबंध	त्वार	तुम्हार्, तुमार्

कुछ अन्य रूप—कर्म-संप्रदान—एक० त्वाँ कंहँ, त्वहि कहँ; बहु० तुम्ह कंहँ। करण-अपादान—एक० त्वाँतन, त्वहितन; बहु० तुम्ह सन। अधिकरण—एक० त्वहिम, त्वारेम; बहु० तुम्हारे म, तुमारे म, तुमारे पर। आदरार्थ में 'आप' के लिए 'अपने' आता है।

अन्य पुरुष : निश्चयवाचक (दूरवर्ती) :

अविकारी	वह	उन्ह, यो, उन
विकारी	वहि	उन, उन्ह
संबंध	वहिकर्	उन्कर्

कुछ अन्य रूप—कर्म-संप्रदान—एक० वहि कंहँ; बहु० उन्ह कंहँ। अधिकरण—एक० वहिमं, बहु० उन्माँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चयवाचक (निकटवर्ती) :

अविकारी	या, य	ए, एन्ह, एंन्ह
विकारी	यहि, या, ऐ	यन, यन्ह, एन्ह
संबंध	यहिकर, एकर	यनकर, यन्हकर्

क्रियारूप—सहायक तथा अस्तित्ववाची क्रिया :

वर्तमान काल—	हूँ, आँ	हूँ, हइं
	है	हौ, हउ, अहेन्
	है, आ	हैं, हइं, अहेन्, अहें, बाँ
भूत काल—	रहेउँ, रएउँ, रहये, रहा; भयों	रहेन्; तें; भयेन्
	रहा, रहे; ते; भयेस्	रहेन्; तें; भयेन्
	रहा; ते, तो, ता; भा	रहेन्, तें; भयेन्
भविष्य—	होव्येउँ	होव, होवँ, होवइ
	होइहेस	होवा
	होई	होंइहैं, होइहैं

क्रिया-विशेषण—(यहाँ आदि) इहंवाँ, उहंवाँ, जहंवाँ, कहंवाँ; (इधर आदि) एहै कैत, एहै कयोत, एहै कैती, एहै मुंह, ओहौ कैत, ओहौ कयोत, ओहौ कैती, ओहौ मुंह; जेहै कैत, जेहै कयोत, जेहै कैती, जेहै मुंह; तेहै कैत, तेहै कयोत, तेहै कैती, तेहै मुंह; केहै कैत, केहै कयोत, केहै कैती, केहै मुंह।

छत्तीसगढ़ी

मुख्य क्षेत्र छत्तीसगढ़ होने के कारण इसका नाम छत्तीसगढ़ी पड़ा है। अर्धमागधी अपभ्रंश के दक्षिणी रूप से इसका विकास हुआ है। इसका क्षेत्र सरगुजा, कोरिया, बिलासपुर, रायगढ़, खैरागढ़, रायपुर, दुर्ग, नन्दगाँव, काँकेर आदि है। छत्तीसगढ़ी में भी केवल लोक-साहित्य है। छत्तीसगढ़ी की मुख्य उपबोलियाँ सुरगुजिया, सदरी, बैगानी, बिझवाली आदि हैं। उड़िया तथा मराठी की सीमा पर की छत्तीसगढ़ी में 'ऋ' का उच्चारण 'रु' किया जाता है। कुछ शब्दों में महाप्राणीकरण (इलाका—इलाखा), अघोषीकरण (बन्दगी—बन्दकी, शराब—शराप, खराब—खराप), स का छ तथा छ का स (सीता—छीता, छेना—सेना) आदि इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

परसर्ग

कर्ता—×
कर्म—का, ला, ल (रामल=राम को, मो ला=मुझे)
करण—ले (तलवार ले मारिस), से
सम्प्रदान—का, ला, बर, खातिर, खातर
अपादान—ले, से
सम्बन्ध—के (दोनों लिंग, दोनों वचन)
अधिकरण—माँ, में, ऊपर
सम्बोधन—ए, ओ, ये, वो, गा, बगा, अबो, कस, रे, बी (पूर्वसर्ग)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारक रूप—टूरा (लड़का)

	एकवचन	बहुवचन
कर्ता	टूरा	टूरा मन
कर्म	" का,-ला, -ल	" मन का,-मन ला, -ल
करण	" ले,-से	" " ले-मन से
संप्र०	" का,-ला	" " का,-मन ला
अपा०	" ले,-से	" " ले,-मन से
सम्बन्ध	" के	" " के
अधिकरण	" माँ,-में,-ऊपर	" " माँ,-मन, -में
सम्बोधन	ऐ टूरा	ए टूरा मन

अवधी-भोजपुरी आदि की भाँति छत्तीसगढ़ी में भी बहुत से संज्ञा शब्दों के तीन रूप मिलते हैं :

ह्रस्व (Short)	दीर्घ (long)	अतिरिक्त दीर्घ (Redundant)
घोड़ा	घोड़वा	घोड़वना
टूरा (लड़का)	टुरवा	टुरवना
टूरी (लड़की)	टुरिया	टुरवनी

इन रूपों में दूसरा कुछ हेयार्थी है तथा तीसरा अधिक।

निश्चयार्थक शब्द—जिस प्रकार अंग्रेजी में द (the) का प्रयोग निश्चयार्थ का बोध कराने के लिए होता है, ठीक उसी प्रकार छत्तीसगढ़ी में 'हर' शब्द का प्रयोग होता है। जैसे 'लइका' (= लड़का) का अर्थ है कोई भी लड़का, किन्तु 'लइका-हर' का अर्थ है, कोई खास लड़का।

सर्वनाम : पुरुषवाचक : उत्तम पुरुष :

	एकवचन	बहुवचन
अविकारी रूप	में, मैं	हम्, हम्मन् (हम्+मन्), हमन्
विकारी रूप	मो, मोर्	हम्, हमार्
सम्बन्ध	मोर्	हमार्, हमर्

	एकवचन	बहुवचन
मध्यम पुरुष : अविकारी रूप	ते, तैं, तूं	तुम्, तुम्-मन् (तुम्मन्)
	तुंह	तूमन्
विकारी रूप	तो, तोर्	तुम्ह्, तुहँ, तुम्हार्
सम्बन्ध	तोर्	तुम्हार्, तुंहर, तूंहर्

मध्यम पुरुष (आदरार्थ)

अविकारी रूप	तु, तुह्, तूं, तुंह्	तुह्-मन्, तूं
विकारी रूप	तुह्, तुहार्, तुहँ	तुह्-मन्, तूं
सम्बन्ध	तुंहार्, तुंहर्, तुहार्	तुहार्-मन्, तुंहर्-मन्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यपुरुष : निश्चयवाचक (दूरवर्ती)

अविकारी रूप	वो, ओ	उन्, वो-मन्, ओ-मन्, उमन्, उनमन्
विकारी रूप	वो, ओ, ओकर्, वोकर्	उन्, उन्ह्
सम्बन्ध	ओकर्,ओके, वोकर, वोके	उन्कर्, उन्हकर

निश्चयवाचक (निकटवर्ती)

अविकारी रूप	ये, -ए, इया	इन्, येमन्, एमन्
विकारी रूप	ये, ए, येकर्	इन्, इन्ह्
सम्बन्ध	येकर्, एकर्, येके, एके	इन्ह्कर्, इनकर् इन्ह्के, इनके

सहायक तथा अस्तित्ववाची क्रिया—छत्तीसगढ़ी में प्रमुखतः दो सहायक तथा अस्तित्ववाची क्रियाओं का प्रयोग होता है। 'हव्' (हो) का वर्तमान काल के लिए, तथा 'रह्' का भूतकाल के लिए। 'हव्' के वर्तमान के रूप :

अशिष्ट (मैं हूँ आदि)

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	हवउँ, हवौं	हवन्
म० पु०	हवस्	हवौ
अ० पु०	हवै	हवैं

शिष्ट (मैं हूँ आदि)

उ० पु०	हौं, औं, आँव	हन्
म० पु०	हस्	हौ
अ० पु०	है, ऐ, अय्	हैं, ऐं, अंय्

'रह' के भूतकाल के रूप (मैं था आदि)

उ० पु०	रहेंव्, रह्यौं	रहेन्
म० पु०	रहे, रहेस्, रहस्	रहेव्, रहेउ
अ० पु०	रहय्, रहै, रहिस्	रहिन्, रहैं, रहयं

क्रियाविशेषण—इहाँ, उहाँ, जहाँ, जिहाँ, तहाँ, तिहाँ, कहाँ, कहूँ; ओती (उधर), जेती (जिधर), तेती (तिधर), केती (किधर); ऐसन, वैसन, जैसन, तैसन, कैसन; अतका (इतना), ओतका (उतना), जतका (जितना), ततका (तितना), कतका (कितना); अभिच (अभी ही। अव्ययों में जोर देने के लिए च, चे, ए, एच या एचे जोड़ने का नियम है), आगू (आगे), पाछू (पीछे), लेखे (लिए), सामूं (सामने), अउ या अउर (और), भलुक (बल्कि), तो (तब), के (कि), कि (या)।

राजस्थानी

'राजस्थानी' राजस्थान के भाषारूपों के लिए, ग्रियर्सन द्वारा प्रयुक्त, एक सामूहिक नाम है। 'राजस्थानी' का अर्थ है 'राजस्थान का'। पूरे राजस्थान या राजपूताना के लिए प्राचीन काल में किसी एक नाम का प्रयोग नहीं मिलता। या तो अलग-अलग राज्यों के लिए अलग-अलग नाम थे, या फिर इस पूरे क्षेत्र के कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्डों के लिए नाम थे। जैसे—इसके उत्तरी भाग का नाम 'जांगल' मिलता है, तो पश्चिमी भाग का नाम 'त्रवणी' आदि। सभी (अंग्रेज़ी शासन में इनकी संख्या २१ थी) राज्यों को मिलाकर एक प्रान्त के रूप में नामकरण का प्रथम श्रेय टॉमस को है। इसने १८०० ई० में इसके लिए 'राजपूताना' शब्द का प्रयोग किया। 'राजस्थान' शब्द का प्रयोग यों तो प्राचीन है। संस्कृत में, शिलालेखों में 'राजस्थानीय' शब्द 'गवर्नर' के अर्थ में आता है जिसका अर्थ यह है कि 'राजस्थान' शब्द भी अप्रयुक्त नहीं कहा जा सकता। मध्ययुग में 'राज-स्थान' या 'राजधानी' के अर्थ में 'राजस्थान' का प्रयोग सत्रहवीं सदी के प्रथम चरण से ही ('नैणसी की ख्यात' आदि में) मिलने लगता है। किन्तु इस प्रान्त के लिए इसका प्रथम लिखित प्रयोग कदाचित् कर्नल टॉड के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'एनल्ज ऐण्ड ऐण्टिक्विटीज़ ऑव राजस्थान' में ही (१८२९ ई० में) मिलता है। यों, यह टॉड का मौलिक प्रयास नहीं था। 'राजथान' या 'रायथाण' रूप में यह नाम प्रायः राजस्थान के लिए वहाँ की जनता में पहले से चल रहा था। जैसा कि ग्रियर्सन ने संकेत भी किया है, उन्होंने टॉड के आधार पर ही यहाँ की भाषा या यहाँ की भाषाओं एवं बोलियों को सामूहिक रूप से 'राजस्थानी' कहा।

राजस्थान की भाषा, या वहाँ की बोलियों की अपनी कुछ स्वतन्त्र विशेषताएँ बहुत पहले से विकसित हो गई थीं। इसी के कारण 'मरु' के रूप में इसका उल्लेख आधुनिक भारतीय भाषाओं के अस्तित्व में आने के पहले से हो रहा है। आठवीं सदी में लिखित उद्योतनसूरि के अपभ्रंश ग्रन्थ 'कुवलयमाला' में १८ देशभाषाओं का नाम आता है। उसमें एक 'मरु' भी है : 'अप्पा तुप्पा भणिरे अह पेच्छइ मारुए तत्तो'। पन्द्रहवीं सदी के बाद के अनेक ग्रन्थों में राजस्थानी को '**मरुभाषा**' ('बेलि क्रिसन रुक्मिणी री' के गोपालकृत ब्रजभाषानुवाद में), '**मारुभाषा**' (मौडजी-कृत 'पाबू-प्रकाश' में), '**मरुबानी**' (सूर्यमलकृत 'वंशभास्कर' में), '**मरुदेशीया**' (सूर्यमलकृत 'वंशभास्कर' में), तथा '**मरुभूम भाषा**' (मंछकृत 'रघुनाथ रूपक' में) आदि कहा गया है। 'राजस्थानी' के अन्तर्गत मानी जाने वाली अनेक बोलियों के नाम भी आधुनिक युग से पूर्व ही मिलने लगते हैं। उदाहरणार्थ, 'कुवलयमाला' में ही 'मालव' (मालवी) नाम आता है। 'आईने अकबरी' में अबुलफ़ज़ल 'मारवार' (मारवाड़ी) का नाम लेते हैं। 'नौबोली छंद' (१७वीं सदी) नामक रचना में जैसलमेरी; 'आठदेसरी गूजरी' (१८वीं सदी) नामक रचना में मेवाती, मारवाड़ी, ढूंढाहड़ी, तथा कुछ अन्य में इसी प्रकार हाड़ौती, मेवाड़ी आदि के भी नाम आए हैं। कैरे (W. Carey) ने १९वीं सदी के प्रथम चरण में भाषा-सर्वेक्षण करवाया था, जिसमें बीकानेरी, मारवाड़ी, उदयपुरी, हाड़ौती, मालवी के नाम आए हैं। कुछ लोग राजस्थानी के लिए 'डिंगल' या 'मारवाड़ी' नाम का भी प्रयोग करते हैं, किन्तु यथार्थतः ये दोनों ही नाम राजस्थानी के न होकर उसके एक रूप या एक सीमित क्षेत्र की बोली के हैं। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार राजस्थानी बोलने वालों की संख्या डेढ़ करोड़ से कुछ ऊपर थी।

राजस्थानी भाषाभाषी क्षेत्र सिन्धी, लहँदा, पंजाबी, बांगरू, ब्रजभाषा, बुन्देली, मराठी तथा गुजराती भाषाभाषी क्षेत्रों के बीच में गुड़गाँव, अलवर, भरतपुर, जयपुर, बूंदी, कोटा, भोपाल, इन्दौर, खानदेश, बरार, उदयपुर, जैसलमेर, पूर्वी सिन्ध, जोधपुर, बीकानेर आदि तक (कुछ में अंशतः और कुछ में पूर्णतः) फैला हुआ है। बम्बई, कलकत्ता, कश्मीर, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु आदि में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी राजस्थानीभाषी हैं। ग्रियर्सन ने **'भीली'** को राजस्थानी के अन्तर्गत नहीं रखा था, किन्तु वस्तुतः इसे राजस्थानी के अन्तर्गत माना जाना चाहिए। इसी प्रकार **'सौराष्ट्री'** भी राजस्थानी का ही एक रूप है।

डॉ० ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों को पाँच वर्गों में रखा था—(१) **पश्चिमी राजस्थानी**—इसका क्षेत्र जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर तथा उदयपुर आदि है। इस वर्ग की प्रमुख बोली **मारवाड़ी**, तथा प्रमुख उपबोलियाँ **ढटकी, थली, बीकानेरी, बागड़ी, शेखावटी, मेवाड़ी, खैराड़ी, सिरोही, गोड़वाड़ी** तथा **देवड़ावाटी**, आदि हैं। (२) **उत्तरी-पूर्वी राजस्थानी**—इसका क्षेत्र अलवर, भरतपुर तथा दिल्ली के दक्षिण गुड़गाँव के आसपास है। इसकी बोलियाँ **अहीरवाटी** तथा **मेवाती** हैं। राजस्थानी का यह रूप पश्चिमी हिन्दी से बहुत प्रभावित है। (३) **मध्य-पूर्वीय राजस्थानी**—इसका क्षेत्र जयपुर, कोटा तथा बूंदी है। इसकी प्रमुख बोलियाँ **ढूंढाड़ी** या **जयपुरी, किशनगढ़ी, अजमेरी** आदि हैं। उपबोलियाँ हैं : **तोरावाटी, राजावटी, चौरासी** तथा **नागरचाल**, आदि। (४) **दक्षिण-पूर्वी राजस्थानी**—इसका क्षेत्र मालवा के आसपास है। इसकी प्रमुख बोली **'मालवी'** है। (५) **दक्षिणी राजस्थानी**—इसका क्षेत्र नीमाड़ के आसपास है। इसकी प्रमुख बोली **'नीमाड़ी'** है।

डॉ० चटर्जी इस वर्गीकरण से सहमत नहीं हैं। वे ग्रियर्सन के वर्ग १ तथा ३ को ही राजस्थानी कहना समीचीन समझते हैं, और इन्हें क्रम से **पश्चिमी** और **पूर्वी** दो वर्गों में रखने के पक्ष में हैं। अहीरवाटी, मेवाती, मालवी तथा नीमाड़ी आदि को पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत रखा जाए या राजस्थानी, के इस सम्बन्ध में वे निश्चित नहीं हैं।

ग्रियर्सन और चटर्जी के मतों, एवं इन बोलियों के व्याकरण को दृष्टि में रखते हुए मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि ग्रियर्सन का पाँचवाँ वर्ग जिसमें **नीमाड़ी** आती है, निश्चिततः राजस्थानी नहीं, अपितु पश्चिमी हिन्दी वर्ग का है। शेष को इन चार वर्गों में रखा जा सकता है—

पश्चिमी राजस्थानी—राजस्थानी का यह रूप पश्चिमी राजस्थान, अर्थात् जोधपुर, अजमेर, मेवाड़, सिरोही, जैसेलमेर, बीकानेर आदि में बोला जाता है। इसे **मारवाड़ी** भी कहते हैं। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से इसका विकास हुआ है। मारवाड़ी में साहित्य तथा लोक-साहित्य दोनों ही पर्याप्त मात्रा में है। मीराँबाई के पद इसी में लिखे गए हैं। मेरवाड़ी, ढुंढारी, मेवाड़ी, सिरोही आदि इसकी उपबोलियाँ हैं। पश्चिमी राजस्थानी में घ और स दो क्लिक ध्वनियाँ हैं। से का सूं या ऊँ, में का माँय, का, की, के का नो, नी, ने आदि इसकी कुछ मुख्य विशेषताएँ हैं।

उत्तरी राजस्थानी—उत्तरी राजस्थान में इसका क्षेत्र अलवर, गुड़गाँव, भरतपुर तथा आसपास है। इसे **मेवाती** भी कहते हैं। मेवाती का नाम 'मेव' जाति के इलाके मेवात के नाम पर पड़ा है। इसकी एक मिश्रित बोली अहीरवाटी है जो गुड़गाँव, दिल्ली तथा करनाल के पश्चिमी क्षेत्रों में बोली जाती है। अन्य बोलियाँ राठी, नहेर, कठर, गुजरी आदि हैं। इस पर हरियाणी का बहुत प्रभाव है। कर्ता-कर्म में नैं, कर्म-संप्र० सों, कैं, करण-अपादान सैं, तैं, इसको, उसको आदि के अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐंको, वैंको, बैंको, कैंहको, आदि कुछ विशेषताएँ हैं। मेवाती में केवल लोक-साहित्य है। उत्तरी राजस्थानी का उद्भव शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से हुआ है।

पूर्वी राजस्थानी—राजस्थान के पूर्वी भाग में जयपुर, अजमेर, किशनगढ़ आदि में यह बोली जाती है। इसकी प्रतिनिधि बोली जयपुरी है जिसका केन्द्र जयपुर है। जयपुरी को ढुंढाणी भी कहते हैं, क्योंकि इस क्षेत्र का पुराना नाम ढूंढाण है। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रुप से विकसित इस बोली में केवल लोक-साहित्य है। तोरावाटी, काठंड़ा, चौरासी आदि इसकी मुख्य उपबोलियाँ हैं। इसकी कुछ विशेषताएं अधिकरण में मालै, मैंने के लिये गनै और मूंनै, पूर्ण कृदंत दीनू, लीनू आदि हैं।

दक्षिणी राजस्थानी—इन्दौर, उज्जैन, देवास, रतलाम, भोपाल, होशंगाबाद में तथा आसपास इसका क्षेत्र है। इसकी प्रतिनिधि बोली मालवी है जिसका मुख्य क्षेत्र मालवा है। शौरसेनी अपभ्रंश के उपनागर रूप से विकसित इस बोली में कुछ साहित्य तथा पर्याप्त लोक-साहित्य है। सोंडवाड़ी, राँगड़ी, पाटवी, रतलामी आदि इसकी कुछ मुख्य उपबोलियाँ हैं। कर्म परसर्ग खे, रे; करण-अपा, ती, मारे; संप्र० दे, सारू; संबंध थाको, थाका, थाकी इसकी कुछ विशेषताएँ हैं।

डिंगल

राजस्थानी की प्रमुख बोली 'मारवाड़ी' का यह साहित्यिक रूप। कुछ लोग डिंगल को मारवाड़ी से भिन्न चारणों की एक अलग भाषा बतलाते हैं, किन्तु ऐसा मानना निराधार है। डिंगल को **भाटभाषा** भी कहा गया है। मारवाड़ी के साहित्यिक रूप का नाम डिंगल क्यों पड़ा, इस प्रश्न पर बहुत मत-वैभिन्न्य है: (१) डॉ० श्यामसुन्दर दास के अनुसार, पिंगल के सादृश्य पर यह एक गढ़ा हुआ शब्द है। (२) तेस्सितोरी के अनुसार 'डिंगल का अर्थ है 'अनियमित' या 'गँवारू'। साहित्य के क्षेत्र में ब्रज की तुलना में गँवारू होने के कारण यह नाम पड़ा। (३) हरप्रसाद शास्त्री 'डगर' से 'डिंगल' बना मानते हैं। 'डगर' का अर्थ है 'जांगल देश की भाषा'। (४) गजराज ओझा के अनुसार 'ड'-प्रधान भाषा होने से 'पिंगल' के सादृश्य पर 'प' के स्थान पर 'ड' रखकर 'डिंगल' शब्द टवर्ग या ड-प्रधान भाषा के लिये बनाया गया। (५) पुरुषोत्तमदास स्वामी के अनुसार डिम+गळ से डिंगल बना है। डिम' अर्थात् डमरू की ध्वनि या रणचन्डी की ध्वनि। 'गळ =गला या ध्वनि, अर्थत् वीरस की ध्वनि वाली भाषा। (६) किशोर सिंह के अनुसार 'डी' धातु का अर्थ है 'उड़ना'। ऊँचे स्वर से पढ़े जाने से, डिंगल उड़ने वाली भाषा है। (७) उदयराज के अनुसार डग=पाँखें,+ल=लिये हुए; या डग=लम्बा क़दम या तेज़ चाल+ल=लिये हुए। अर्थात् 'डिंगल' स्वतन्त्र या तेज़ चलने वाली भाया है। (८) जगदीशसिंह गहलोत के अनुसार डींग+गळ (अर्थात् ऊँची बोली) से डिंगल है। (९) बद्रीपसाद के अनुसार डिंगीय डीघी (=ऊँची) + गळ (=बात, स्वर) से डिंगल है। (१०) मोतीलाल मेनारिया के अनुसार 'डिंगल' [डींग (=अतिरंजनापूर्ण)+ल] से 'डिंगल' बना है। (११) गणपतिचन्द्र के अनुसार राजस्थान के किसी छोटे भाग का नाम प्राचीन काल में 'डगल' था। उसी आधार पर वहाँ की भाषा 'डिंगल' कहलाई। (१२) चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के अनुसार डिंगल यदृच्छात्मक अनुकरण-शब्द है। (१३) नरोत्तमदास स्वामी के अनुसार कुशललाल रचित 'पिंगल शिरोमणि' (रचना-काल १६०० के आस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पास) में उडिंगल नागराज का एक छन्द-शास्त्रकार के रूप में उल्लेख मिलता है। जैसे 'पिंगल' से पिंगल' का नाम पड़ा है, उसी प्रकार 'उडिंगल' से 'उडिंगल'। 'उडिंगल' ही बाद में 'डिंगल' हो गया। (१४) डॉ० सुकमार सेन तथा विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार संस्कृत शब्द डिंगर (=गँवारू, निम्न) से इसका सम्बन्ध है। अर्थात् मूलतः डिंगल गँवारू लोगों की भाषा थी। वस्तुतः इनमें कोई भी मत युक्तियुक्त नहीं है। कुछ सम्भावना नरोत्तम स्वामी के मत की ही हो सकती है। कुछ ग्रन्थों में डिंगल का पुराना नाम 'उडिंगल' मिलता भी है। डिंगल नाम बहुत पुराना नहीं है। इसका प्रथम प्रयोग डिंगल के प्रसिद्ध कवि बाँकीदास की पुस्तक 'कुकवि बत्तीसी' (र० का० सन् १८१४ ई०) में मिलता है। साहित्य में डिंगल का प्रयोग १३वीं सदी के मध्य से लेकर आज तक मिलता है। डॉ० तेस्सितोरी ने 'डिंगल' के प्राचीन और अर्वाचीन दो भेद किए हैं। १७वीं सदी के मध्य तक की भाषा को प्राचीन और उसके बाद की भाषा को अर्वाचीन माना है। डिंगल के प्रसिद्ध कवि नरपति नाल्ह, ईसरदास, पृथ्वीराज, करणीदीन, बाँकीदास, सूरजमल तथा बालाबख्श आदि हैं।

पहाड़ी

पहाड़ी भागों में बोली जाने के कारण यह नाम पड़ा है। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार 'पहाड़ी' बोलने वालों की संख्या २१ लाख से कुछ ऊपर थी। 'पहाड़ी' हिमाचल प्रदेश में भद्रवाह के उत्तर-पश्चिम से लेकर नैपाल के पूर्वी भाग तक फैली हुई है। इसके अन्तर्गत तीन प्रधान रूप हैं—**पश्चिमी पहाड़ी, मध्यवर्ती पहाड़ी** तथा **पूर्वी पहाड़ी** और फिर इन तीनों में कुछ भाषाएं तथा बोलियाँ आदि हैं, जैसे 'नैपाली', 'कुमायूंनी' तथा 'गढ़वाली' आदि। पहाड़ी की बोलियों में साहित्यिक महत्त्व केवल 'नैपाली' तथा कुछ 'कुमायूंनी' का ही है। अन्यों में लोक-साहित्य ही है। 'पहाड़ी' के लिए प्रमुखतः नागरी लिपि का प्रयोग होता है तथा गौण रूप से टाक्री, फ़ारसी, कोची तथा सिरमौरी का। अब फ़ारसी लिपि का प्रचार कम होता जा रहा है।

पहाड़ी बोलियों का मूलाधार डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी पैशाची, दरद या खस अपभ्रंश मानते हैं। उनके अनुसार बाद में, मध्यकाल में ये बोलियाँ नागर या सौराष्ट्र अपभ्रंश से बहुत अधिक प्रभावित हो गईं। किन्तु मेरे विचार में इनका सम्बन्ध शौरसेनी अपभ्रंश से अपेक्षाकृत अधिक ज्ञात होता है। पूर्वी पहाड़ी में 'नैपाली' आती है। यहाँ, केवल हिन्दी प्रदेश की बोलियों पर विचार कर रहे हैं, अतः केवल मध्यवर्ती एवं पश्चिमी पहाड़ी पर ही विचार किया जायेगा। पूर्वी पहाड़ी या नैपाली पर अत्यन्त संक्षेप में पीछे विचार किया जा चुका है।

मध्यवर्ती पहाड़ी—पहाड़ी भाषा-क्षेत्र के मध्य भाग में बोले जाने के कारण इसे **माध्यमिक, केन्द्रीय** या **मध्य पहाड़ी** कहते हैं। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार, इसके बोलने वालों की संख्या लगभग १,१०७,६१२ थी। यह कुमायूं तथा गढ़वाल में दक्षिण-पूर्व में बरमदेव से लेकर उत्तर-पश्चिम में चकराता के उत्तर स्थित प्रदेश तक बोली जाती है। इसकी प्रमुख बोलियाँ दो हैं—**कुमायूंनी** तथा **'गढ़वाली'**। 'माध्यमिक पहाड़ी' पर 'राजस्थानी' का राजनीतिक कारणों से बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। 'माध्यमिक पहाड़ी' में कुछ साहित्य केवल 'कुमायूंनी में ही है।

कुमायूंनी—इसका प्रमुख क्षेत्र कुमायूं होने के कारण इसे कुमायूंनी कहते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। 'कुमार्यू' शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से दी गई है। अधिक मान्य मत के अनुसार इसका सम्बन्ध संस्कृत शब्द 'कूर्माचल' या 'कूर्मान्चल' से है। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार 'कुमार्यूंनी' बोलने वालों की संख्या लगभग ४,३६,७८८ थी। यह कुमार्यू कमिश्नरी के नैनीताल (उत्तरी भाग), अलमोड़ा, पिथौरागढ़, चमोली तथा उत्तरकाशी ज़िलों में बोली जाती है। भाषाओं और बोलियों की दृष्टि से यह गढ़वाली, तिब्बती, नैपाली तथा पश्चिमी हिन्दी से घिरी है। 'कुमार्यूंनी' की उपबोलियाँ तथा स्थानीय रूप, बहुत से विकसित हो गये हैं जिनमें प्रधान खसपरजिया, कुमयाँ या कुमैयाँ, फल्दकोटिया, पछाईं, चौगरखिया, गंगोला, दानपुरिया, सीराली, सोरियाली अस्कोटी, जोहारी, रउचोभैंसी तथा भोटिआ हैं। 'कुमार्यूंनी' पर 'राजस्थानी' का इतना अधिक प्रभाव है कि यह उसका एक रूप-सा ज्ञात होती है। 'कुमार्यूंनी' में पुराना साहित्य तो नहीं है, किन्तु इधर लगभग ढेढ़ सौ वर्षों से साहित्य-रचना हुई है। यहाँ के पुराने साहित्यिकों में गुमानी पन्त, कृष्णदत्त पाँडे, सिवदत्त सत्ती आदि प्रधान हैं। इसकी लिपि नागरी है।

परसर्ग : कर्ता—ले, ल
कर्म—कन, कैं, कणि, कै, हुणि
करण—ले, ल
संप्रदान—कन, कहैं, कणि, कै, हुणि
अपादान—ऐ, हे, वटे, वै, है, यैं, यै, ले
सम्बन्ध—को, का, की, क्, आ,-अ, -ए
अधिकरण—पर, में, मैं, मों, लों (तक)

संज्ञा-रूप—हिन्दी के आकारांत शब्द पिथौरागढ़ की ओर की कुमार्यूंनी में ओकारांत हैं (घोड़ो, बच्छो, चेलो), किन्तु रानीखेत की ओर अवधी की भाँति प्रायः व्यंजनांत (घ्वड़, बाछड़, च्यल्=लड़का)।

कारक-रूप

पुल्लिंग	एक०	बहु०
अविकारी	वल्द (बैल), चेलो (लड़का), राजा, जोगी, भालू, रिच्छु (रीछ)	वल्द, च्याला, राजा जोगी, भालू, रिच्छु
विकारी	वल्द, च्याला, राजा, जोगी, भालू, रिच्छु	वल्दन, वल्दों, च्यालन, राजन, जोगिन, जोगियों, भालून्, रिच्छुन्, रिच्छुओं

स्त्रीलिंग	एकवचन	बहुवचन
अविकारी	चेली, किताब्	चेली, चेलियाँ, किताब
विकारी	चेली, किताब	चेलियन, चेलियों किताबन, किताबों

इस प्रकार बहु० विकारी में प्रायः -अन् या -न् जोड़ते हैं। हिन्दी के प्रभाव-स्वरूप अब -ओं भी असामान्य नहीं रह गया है—प्रमुखतः रानीखेत की ओर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वनाम : पुरुषवाचक

उत्तमपुरुष

कर्ता-अपरसर्ग	में, मैं	हम, हेम लोग, हम लोगोन
,, -सपरसर्ग	में ले, मैं ले	हमन ले, हम ले, हमूल, हेमिन ले, हमुनलें
कर्म-संप्रदान	मैंकणो, मेंहुणि, मैंकणि	हमनकणी, हमनहुणि
करण-अपादान	मेंहै, मेथैं, मैंहै, मैंथैं	हमनहै, हमनथैं
सम्बन्ध	मेरो, म्योरो, म्यर	हमरो
अधिकरण	मैंमां, मेंमां	हमन मां

मध्यमपुरुष

कर्ता-अपरसर्ग	तू, तु	तुम, तुमिलोग
”-सपरसर्ग	त्वीले, त्वैले	तुमोंले, तुमनले, तुमले, तुमनलै, तुमूल
कर्म-संप्रदान	त्वैकणो, त्वैहुणि, त्वेकणि, त्वीकणि	तुमन, तुमकणी, तुमहुणि, तुमनकणी, तुमनहुणि
करण-अपादान	त्वैहै, त्वैथैं, त्वेहै, त्वेथैं त्वीहै, त्वीथैं	तुमहै, तुमथैं, तुमनहै, तुमनथैं
सम्बन्ध	तेरो, त्योरो, त्यारो	तुमारो, तुमरो
अधिकरण	त्वै में, त्वे में, त्वी में	तुममें, तुमनमें

अन्यपुरुष : निश्चयवाचक (दूरवर्ती)

कर्ता-अपरसर्ग	वी, उ	वूं, वे, ऊँ, वी, उँ
” -सपरसर्ग	वीले, विले, वील	उननले, उनूले, उनले
कर्म-संप्रदान	वीकणी, विकणी, उ, वी, उइ, वीकणि, उइकणि	उननकणी, उनूकणी, उनोकणी, उनकणी
करण-अपादान	उहै, उथैं, उइहै, उइथैं, वीथैं, वीहै	उनथैं, उनहै, उननथैं, उननहै
सम्बन्ध	वीको, उइको, उको	उनरो
अधिकरण	उमें, उइमें, वीमें	उनमें, उननमें

निश्चयवाचक (निकटवर्ती)

कर्ता-अपरसर्ग	यो, ये, य, यॅ, यऽ	ये, यों, यौं
” -सपरसर्ग	येले, एले	युनूले, इनूले, इनोले, इनुले, इनले, इननले, इनूल
कर्म-संप्रदान	येकणी, एकणी, येकणि, यो, ये, यैंकणि	युनूकणी, इनूकणी, इनोकणी, इनकणी, इननकणी
करण-अपादान	येथैं, यैथैं, येहै, यैंहै	इनथैं, इनहै, इननथैं, इननहै
सम्बन्ध	येको	इनरो
अधिकरण	येमें, यैंमें	इनमें, इननमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रिया : सहायक तथा अस्तित्ववाचक क्रिया

वर्तमान :	छूं, छुं	छूं
	छै, छे	छो, छा
	छ, छय, छे	छन्
भूतकाल :	छियूं, छ्यूं	छियाँ, छ्याँ
	छिये, छी	छिया
	छियो, छी	छिय, छिन

क्रियाविशेषण—**यहाँ**—इतकैं, याँ; **वहाँ**—उतकैं, वाँ; **जहाँ**—जाँ, जितकैं; **कहाँ**—काँ, कितकैं; **अब**—अब, अयल; **जब**—जब; **तब**—तब; **कब**—को बखत, कब; **आज**—आज; **कल**—भोल, भोलैंकि, भोअ (आनेवाला); बेली, बेइ (बीता हुआ); **परसों**—पोर्हुं, परवेइ, पोरखि, पोरु; **नरसों**—नेरखि; **पाँचवें दिन**—अनेरखि; **अभी**—अल्लैं; **कभी**—कथली, कभैं; **जभी**—जथली, जभैं; **नीचे**—तल्ली, तली, तैलि, तल्ले; **ऊपर**—मलि, मल्ली, माँथ; **पास**—दगड़; **दूर**—दूर; **आगे**—अघिलकैं, आघिल; **पीछे**—पछिन, पछिलकैं।

गढ़वाली

इस बोली का क्षेत्र प्रधान रूप से गढ़वाल में होने के कारण यह नाम पड़ा है। पहले इस क्षेत्र के नाम केदारखंड, उत्तराखंड आदि थे। यहाँ बहुत से गढ़ों के कारण, मध्ययुग में लोग इसे 'गढ़वाल' कहने लगे। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या ६,७०,८२४ के लगभग थी। यह गढ़वाल तथा उसके आसपास टेहरी, अलमोड़ा, देहरादून (उत्तरी भाग), सहारनपुर (उत्तरी भाग), बिजनौर (उत्तरी भाग) तथा मुरादाबाद (उत्तरी भाग) आदि के कुछ भागों में बोली जाती है। गढ़वाली की बहुत-सी उपबोलियाँ विकसित हो गई हैं, जिनमें प्रमुख **श्रीनगरिया, राठी, लोहब्या, बधानी, दसौलया, माँझ-कुमैया, नगपुरिया, सलानी** तथा **टेहरी** हैं। 'श्रीनगरिया' 'गढ़वाली' का परिनिष्ठित रूप है। गढ़वाली में साहित्य प्रायः नहीं के बराबर है, किन्तु लोक-साहित्य प्रचुर मात्रा में है। इसके लिए नागरी लिपि का प्रयोग होता है।

परसर्ग

कर्ता—न, नअ, ने, ल

कर्म-संप्रदान—क, कअ, कूं, कू, कौं, कैं, तैं, तईं, सैं, छनी, सणी, सिणी, हणी, खुणी, सिणीं, छनैं, अ

करण-अपादान—सि, सी, मान, न, से, ल, ऐइ, आउ, आऊ, ती, बिटे, बटि, ते, न्

सम्बन्ध—को (पु०), कु (पु०), की (स्त्री), का (बहु०), र्, रा, री, औअ

अधिकरण—मा, माँ, मुं, मथे, मंजे, मंग, मि, म्, हिं, हि, पर, उब्बो, इ, तलक, तनैं, मथे।

कारक-रूप : नौना=लड़का

	एक०	बहु०
अपरसर्ग कर्ता	नौनो, नौनु	नौना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सपरसर्ग कर्ता	नौनान्	नौनौंन्, नौनूंन्
कर्म-सम्प्रदान	नौना क, नौना सणि, नौना कू	नौनौंक, नौनूंक, नौनौं सणि
करण	नौना सि, नौनान्, नौना ते.	नौंनौं सि, नौनूं ते, नौनूं न
अपादान	नौना ते, नौना सि	नौनौं सि, नौनाते
सम्बन्ध	नौना को, नौना कु	नौनौं को, नौनूं कू, नौनौं कू
अधिकरण	नौना माँ, -पर	नौनौं या नौनूं माँ, -पर

सर्वनाम : पुरुषवाचक

उत्तमपुरुष	**एकवचन**	**बहुवचन**
कर्ता—(१) अपरसर्ग	मैं, मइँ, मंइँ, मी, मि, आऊँ, मु, मुई	हम, हम्
(२) सपरसर्ग	मैंने, मैंन	हमने, हमुंने, हमून, हमन
कर्म-सम्प्रदान	मैं, मैं सणि, मैंक, मैंतैं, मैंकु, मैंकैं, आऊंक, मींक, मींतैं	हमुं, हमसणि, हमुंसणि, हमूतैं, हमूकैं, हमूक
करण-अपादान	मैंतें, मैंसि, मैंसि, मैंमान, मींसि	हमतें, हमुंतें, हमुमान, हमुसि
सम्बन्ध	मेरो, मेरु, मेरा (बहु०) मेरी, म्यारो, -रा, -री	हमारो, हमारु, हमारा (बहु०), -री
अधिकरण	मैंमां, मैंपर, मींमा, मींपर	हममां, हमपर, हमुंमां, हमुंपर

मध्यमपुरुष

कर्ता—(१) अपरसर्ग	तू, तुइन, तिन, ताऊँ	तुम्, तुमन, तुम
(२) सपरसर्ग	तोईन, त्वैन, त्वेन, तीन	तुमन, तुमुंन, तुमून
कर्म-सम्प्रदान	तोई, तोईकू, तोईसणि, त्वैक, त्वैकैं, त्वैतैं, त्वैकु, तोइक, ताऊँक	तुमुं, तुमुसणि, तुमुंसणि, तुमूतैं, तुमूकैं, तुमूक
करण-अपादान	तोईते, त्वैसि, त्वैमान, त्वेसि	तुमते, तुमुंते, तुमसि, तुमुमान
सम्बन्ध	तेरो, तेरु, तेरा (बहु०), -री	तुमारो, तुमारू, तुमारा (बहु०), -री
अधिकरण	तोई मां, त्वैमां, त्वेमां	तुममां, तुमुंमां

अन्यपुरुष : निश्चयवाचक (दूरवर्ती)

कर्ता—(१) अपरसर्ग	वह, वु, ओ, वो, वा (स्त्री), ऊ	वे, से, वु, ओ, वां, ऊ
(२) सपरसर्ग	वेन, वैन, वैनअ	ऊंन, वून
कर्म-सम्प्रदान	वे, वेसणि, वैंक, वैंकु, वैंकैं वैंतें	ऊं, ऊं सणि, वूंतैं, वूंकैं, वूंक, ऊँक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करण-अपादान	वैंसि, वैमान	वूंसि, वूंमान, ऊंसि, ऊंमान
सम्बन्ध	वेको, वैंको, वैंकु, वैंकू, वैंका (बहु०)	ऊँको, वूंको, वूंकू, वूंका (बहु०)
अधिकरण	वैंमां	वूंमां, ऊँमां
निश्चयवाचक (निकटवर्ती)		
कर्ता—(१) अपरसर्ग	यो, या (स्त्री०), यु	ये, यो, इ, ई
(२) सपरसर्ग	एइन, एन, येन	यूंन
कर्म-सम्प्रदान	एइ, एइ सणि, येक, यैंक, यींक, येतैं, यैंतैं, यीतैं	यूं, यूं सणि, यूंक
करण-अपादान	येतैं, यैंतैं, येसि, ईंतैं, ईंसि यौंसि, यींसि	यूंसि
सम्बन्ध	एको, येको, ईंको, -कौ, -कु, -कू, -का, एश्को	यूंको, यूंकू, -का, -कु
अधिकरण	येमां, यैंमां, यीमां, येपर, यैंपर, यींपर	यूंमा, यूंपर

क्रिया : सहायक तथा अस्तित्ववाचक :

वर्तमान :	छौं, छऊँ	छवाऊँ, छौं, छवां, छौं
	छई, छैं, छइ	छैं, छयां, छौं, छा, छयाई
	छ	छन
भूत :	छौ, छयो, छो, थयो, थौ, थो	छा, छया, छवां, छों, था
	छयो, छौ, छो, थै	छा, छया, था
	छयो, छौ, थौ	छा, छया, थान

क्रिया-विशेषण : अब—अ, अब, अबेर; जब—ज, जब, जबेर, जदि, जैअ; कब—क, कब, कबेर, कदि, कैअ; तब—त, तब, तबेर, तदि, तैअ, वैअ; यहाँ—यख, यत्थ, यथ, इथैं, यअ; वहाँ—वख, वत्थ, वथ, वथैं, वअ; तहाँ—तख, तत्थ, तथ, तथैं, तअ; कहाँ—कख, कत्थ, कथ, कथैं, कअ; जहाँ—जख, जत्थ, जथ, जथैं, जअ; इधर—यथैं, यथईं, यनैं; उधर—वथैं, वथईं, उनैं; जिधर—जथैं, जथईं, जनैं; किधर—कथैं, कथईं, कनैं। आज, काल्ह, नेड़ (निकट), आग्गे, पिछाड़ी, भैंर (बाहर), भित्र (भीतर), आदि।

पश्चिमी पहाड़ी

यह 'पहाड़ी' की पश्चिमी बोलियों का एक सामूहिक नाम है। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ८,५३,४६८ थी। इसका भौगोलिक विस्तार पंजाब के उत्तरी-पूर्वी पहाड़ी भाग में भद्रवाह, चंबा, मंडी, शिमला, चकराता और लाहुल-स्पिति आदि में तथा इनके आस-पास है। पश्चिमी पहाड़ी की प्रमुख बोलियाँ **जौनसारी, सिरमौरी, बघाटी, चमेआली,** तथा **क्योंठली** हैं। इनके अतिरिक्त **सतलुज वर्ग की बोलियाँ** (बाहरी सिराजी,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णोदोची), कुलू वर्ग की बोलियाँ (कुलुई, भीतरी सिराजी), मंडी वर्ग की बोलियाँ (मंडेआली, मंडेआली पहाड़ी, सुकेती) तथा भद्रवाह वर्ग की बोलियाँ (पाडरी, भलेसी, भद्रवाही) भी इसी के अंतर्गत आती हैं। ग्रियर्सन ने तो उल्लेख नहीं किया है, किन्तु 'लोहुली' और 'हमीरपुरी' का भी, मेरे विचार में स्वतन्त्र उपबोली के रूप में उल्लेख किया जा सकता है। लोक-साहित्य इन बोलियों में पर्याप्त मात्रा में है। इस क्षेत्र में 'टाकरी' लिपि तथा उसके विभिन्न रूपों का पर्याप्त प्रचार रहा है, किन्तु अब देवनागरी का प्रचार बढ़ता जा रहा है। टाकरी लिपि का प्रचार केवल दुकानदारों आदि में बही-खाता आदि लिखने तक ही अब सीमित है। कुछ लोग उर्दू लिपि का भी प्रयोग करते हैं, यद्यपि अब उनकी संख्या घट रही है।

बिहारी

हिन्दी प्रदेश की वह उपभाषा प्रमुखतः बिहार में बोली जाती है। बिहार की तीनों बोलियों का एक वर्ग बना कर उन्हें 'बिहारी' नाम देने का श्रेय ग्रियर्सन को है। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार बिहारी भाषाओं के क्षेत्र में उसके बोलने वालों की संख्या लगभग ३६,२३९,९६७ थी तथा क्षेत्र से बाहर लगभग ९४०,८१५। इसका भौगोलिक विस्तार उत्तर में नैपाल की सीमा के आसपास से लेकर दक्षिण में छोटा नागपुर तक तथा पश्चिम में बस्ती, जौनपुर, बनारस और मिर्जापुर से लेकर पूर्व में माल्दह और दिनाजपुर तक है। इस प्रकार प्रमुखतः यह पूरे बिहार और उत्तर प्रदेश के बलिया, गाज़ीपुर, पूर्वी फैज़ाबाद, पूर्वी जौनपुर, आज़मगढ़, बनारस, देवरिया, गोरखपुर आदि ज़िलों में बोली जाती है।

बिहारी को 'पूर्वी बिहारी' और 'पश्चिमी बिहारी' दो भागों में बाँटा जा सकता है। पूर्वी बिहारी के अन्तर्गत 'मैथिली' और 'मगही' दो बोलियाँ हैं, तथा पश्चिमी बिहारी में केवल एक 'भोजपुरी'। ग्रियर्सन के अनुसार 'मगही' 'मैथिली' से इतनी मिलती-जुलती है कि उसे 'मैथिली' की एक उपबोली माना जा सकता है। डॉ० चटर्जी इन तीनों बोलियों को एक वर्ग में रखने के पक्ष में नहीं हैं। उनके अनुसार भोजपुरी शेष दो (मैथिली, मगही) से इतनी भिन्न है कि उसे इन दोनों के साथ रखना समीचीन नहीं कहा जा सकता।

बिहारी की बोलियों में साहित्य-रचना प्रमुखतः केवल मैथिली में हुई है। बिहारी की उत्पत्ति पश्चिमी मागधी अपभ्रंश से है। बिहारी के क्षेत्र में लिखने के लिए प्रमुखतः नागरी, कैथी, मैथिली, महाजनी तथा गौणतः बँगला (बंगाल-बिहार की सीमा पर) एवं उड़िया (उड़ीसा-बिहार की सीमा पर) लिपियों का प्रयोग होता है।

भोजपुरी

हिन्दी प्रदेश की उपभाषा 'बिहारी' की इस बोली का नाम 'भोजपुर' (ज़िला शाहाबाद का एक परगना) नाम के एक छोटे से कस्बे के आधार पर पड़ा है, यद्यपि यह दूर-दूर तक बोली जाती है। प्राचीन काल में भोजपुर इसी नाम के राज्य की राजधानी होने के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध था। भाषा के अर्थ में 'भोजपुरी' शब्द का प्रथम प्रयोग १७८९ का मिलता है। यह प्रयोग रेमंड के 'शेर मुताखरीन' के अनुवाद की भूमिका में है। भोजपुरी को 'पूरबी' भी कहते हैं। 'पूरबी' नाम सापेक्षिक होने के कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ा अनिश्चित-सा है। इसीलिए ब्रजभाषा तथा खड़ीबोली क्षेत्र के लोगों द्वारा कभी-कभी 'अवधी' के लिए भी इस नाम का प्रयोग होता है। 'भोजपुरी' को 'भोजपुरिया' भी कहते हैं। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या 'भोजपुरी' क्षेत्र में लगभग २ करोड़ तथा क्षेत्र के बाहर ४ लाख, अत: कुल २ करोड़ ४ लाख के लगभग थी।

'भोजपुरी' उत्तर में नैपाल की दक्षिणी सीमारेखा के आसपास से लेकर दक्षिण में छोटा नागपुर तक और पश्चिम में पूर्वी मिर्जापुर, बनारस तथा पूर्वी फ़ैज़ाबाद से लेकर पूर्व में राँची और पटना के पास तक बस्ती (कुछ भाग), गोरखपुर, देवरिया, सारन, मिर्ज़ापुर (दक्षिणी-पूर्वी), बनारस, जौनपुर (पूर्वी), ग़ाज़ीपुर, बलिया, शाहाबाद, पालामऊ, तथा राँची (थोड़ा पूर्वी भाग छोड़कर) में बोली जाती है। भोजपुरी की प्रधान उपबोलियाँ चार हैं—**उत्तरी भोजपुरी, दक्षिणी भोजपुरी, पश्चिमी भोजपुरी,** तथा **नगपुरिया**। इनमें 'नगपुरिया' औरों से अपेक्षाकृत अधिक भिन्न है। **दक्षिणी भोजपुरी** (भोजपुर कस्बा जिसके केन्द्र में है) भोजपुरी का परिनिष्ठित रूप है। सुदूर उत्तर में भोजपुरी का थारू नाम की जाति में प्रचलित रूप मिलता है, जिसे **थारू भोजपुरी** कहते हैं। इसके अन्य उल्लेख्य स्थानीय रूप **मघेसी, बँगरही, सरवरिया, सारनबोली, गोरखपुरी, खारवारी, छपरहिया** तथा **सोनपारी** आदि हैं।

भोजपुरी में लिखित साहित्य प्राय: नहीं के बराबर है। यहाँ के लोगों ने साहित्य में, प्राचीन काल में अवधी या ब्रज तथा आधुनिक काल में खड़ीबोली का प्रयोग किया है। हाँ, इधर राहुलजी तथा कुछ अन्य लोगों ने भोजपुरी में कुछ साहित्य-रचना अवश्य की है।

भोजपुरी की उत्पत्ति पश्चिमी मागधी या मागधी अपभ्रंश के पश्चिमी रूप से मानी जाती है। जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, ग्रियर्सन ने मगही और मैथली के साथ भोजपुरी को बिहारी के अंतर्गत रखा है। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी इसके पक्ष में नहीं हैं। वे भोजपुरी को मगही, मैथिली से इतना भिन्न मानते हैं कि इन तीनों को एक वर्ग में रखना समीचीन नहीं मानते। भोजपुरी प्रमुखत: नागरी लिपि में लिखी जाती है। कुछ पुराने लोग कैथी का प्रयोग करते हैं। बही-खाते के लिए महाजनी लिपि का प्रयोग होता है।

ध्वनियाँ—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, कवर्ग, चवर्ग, टवर्त, तवर्ग, पवर्ग, य्, र्, ल्, व्, स्, ह्, ड़्, ढ़्, ड़्ह्, म्ह्, न्ह्, ल्ह्, र्ह। इसका अ, पश्चिमी हिंदी की तुलना में कुछ वृत्तमुखी है।

मूल संज्ञा-रूप—अवधी आदि की तरह इसमें भी सामान्य, दीर्घ एवं दीर्घतर रूप होते हैं : चमार—चमरा—चमरवा; सोनार—सोनरा—सोनरवा। कभी-कभी व्यंग्य या अत्यधिक क्रोध में -ऊ भी लगाते हैं : चमरऊ, सोनरऊ, मुनऊ। दो रूप ही अधिक मिलते हैं : किताब-किताबिया, घोड़ा-घोड़वा, नाऊ-नउवा, लइका-लइकवा।

परसर्ग : कर्ता ×

कर्म-संप्र० के, कें, को, ला, ले, लागि, लाग, खातिर, वास्ते

करण-अपा० से, सें, सों, संते, करते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संबंध	क, के, कें, कर, कैं, के, कि, का
अधिकरण	में, मों, पर, परि, म्में (ओम्में)

कारक-रूप	एक०	बहु०
अविकारी	घोड़ा, घर, घोड़ी, किताब्	घोड़ा, घोड़न्ह्, घोड़न्, घोड़ा सभ्, घरन्, घरन्ह्, घोड़िन्, घोड़िन्ह्, घोड़ी सभ, किताब्, किताब सभ
विकारी	घोड़ा, घर, घरे, घोड़ी, घौड़िये, किताब्	घोड़न्, घोड़न्ह्, घरन, घरन्ह, घोड़िन घोड़िन्ह, घोड़ी सभन, किताबन, किताबन्ह

सर्वनाम : पुरुषवाचक

उत्तमपुरुष	एक०	बहु०
कर्ता	में, मयँ, हम, मों	हमनीका, हमरन, हम लोग, हम-लोगन, हमहन, हम पचन
कर्म-संप्रदान	मोंके, मोराके, माराकें, हमरा, हमके, हमराके, हमराकें, हमराला	हमनीके, हमनीला, हमहन के, हमरनके, हमरनला
करण-अपादान	मोरा, हमरासें, मोरासें, मोंसे, मोरा से, हमसे	हमरनसें, हमनीसें, हमहनसे, हम लोगन से
संबंध	मोर, मोरे, मोरा, मोरी, हमार, हमरे, हमरा, हमरी	हमनीका, हमरनका, हमनीक, हमहनका, –के
अधिकरण	हमरा में, मोरा में, मोपर, हम पर	हमनीमें, हमरनमें, हमनी पर, हमरन पर, हम लोगन पर

मध्यमपुरुष		
कर्ता	तें, तूँ, तू, तैं	तोहनीका, तोहरन, तू लोग, तू सभन, तू पचन, तोहन्, तू लोगन
कर्म-संप्रदान	तोके, तोराके, तोराकें, तोराला, तोहराके, तोहराकें, तोहराला	तोहनके, तोहनीके, तोहनीकें, तोहनीला, तोहरनके, तोहरनकें, तोहरनला
करण-अपादान	तोरासें, तोहरासें, तो से, तोहसे	तोहनीसें, तोहरनसें, तोहन से, तू लोगन से-
संबंध	तोर, तोरे, तोरा, तोहार, तोहरे, तोहरा	तोहनीके, तोहनीका, तोहरनके, तोहरनका, तू लोगन क, तोहनक
अधिकरण	तोरामें, तोहरामें, तोहरा पर	तोहनीमें, तोहरनीमें, तू लोगन पर, तोहन में

आदरार्थ—रउवाँ, राउर, रउरा के, रउरा से, रउरा में, रउरा सभ के, रउरा सभ से आदि ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यपुरुष

कर्ता	ऊ, ओहि, ओ, उहां, उन्हां, उ, उन्हि, हुन्हि, हऊ	उन्हका, ओकरन, उहांका, उन्हन, उन्हनी, हुन्हन, ऊलोग, हउलोग, हउपच
कर्म-संप्रदान	ओहके, ओकराके, उहांके, उन्हकाके, ओके, होकराके, उन्हुकाके	उन्हके, ओकरनके, ओ लोगन के, उहाँ सभकाके, उन्हनके, उन्हनीके, हुन्हनके, हुन्हनीके, -कें
करण-अपादान	ओ से, उनकरा से, उहाँ से, उन्हका से	ओकरन से, उनहनी से, ऊ लोगन से, ओ लोगन से, ओन्हनी से
संबंध	ओकर, हुन्कर, उहाँक, हुआँक, -के	ऊ लोगनक, ओन्हनींक, हुनहनक, -के
अधिकरण	ओम्मे, होम्मे, ओप्पर, होप्पर	उनहन पर, उनहन में, उन्हनीं में

निश्चयवाचक (निकटवर्ती)

कर्ता	ई, एहि, ए, इहां, हई, एह	इन्हका, एकरन, इहांका, ईसब, ई लोग, इन्हका,हिन्हनका, इन्हनीं-का, हिन्हन्हींका
कर्म-संप्रदान	हेके, एहके, एकराके, इहांके, इन्हाकाके, हेकराके, इन्हि-काके, हिन्हकाके, इहाँक्के, हहाँ के	इन्हके, एकरनके, हे लोगन के, इहाँ सभका के, हिन्हके,इन्हनके, हिन्हन-के, इनकाके
करण-अपादान	हेसे, इहाँ से, इन्हका से, हेकरा से	इन्हका से, हे लोगन से, इन्हनींसे, हिन्हनी से
संबंध	हेकर, इनकर, इहाँक	हिन्हनींक, हे लोगन क, एकरनक, ई सबनक
अधिकरण	हेम्में, हेप्पर, इहाँमें, इहाँपर	हिन्हनींमें, एकरन पर

क्रिया : सहायक तथा अस्तित्ववाचक :

वर्तमान	**एक०**	**बहु०**
उ० पु०	बाटीं, बाड़ी, बाड़ीं, बाटों, बारूँ, बानी, हईं, हैंईं, बाड़ों, हवीं, आनी, हउवीं, बानों, बाट्यूँ, हवों	प्राय: एक० जैसा
म० पु०	बाट, बाड़, बाटे, बाटै, बाटस, बाड़े, हव, हवे, हउवे, बाटेस, बाटा, बाड़ा	बाड़े, बाटा, हउवा, हउआ, बाटह, हवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	एक०	बहु०
अ० पु०	बाट, बाड़, बाटे, बाटँ, बाड़े, बा, बाय, बटुए, हउवे, हवे, ह, आ, बाटसि	बाटुअँ, बाँड़अँ, बाटन, बाटेन, बाँड़न, हउअन, हुँउएँ, हवें, हैं, आँ, बाटँ, बाटें, बानी, हुईं, हउवन
भूत :		
उ० पु०	रहलीं, रहलों	रहीं, रहलीं, जाँ, रहुईं
म० पु०	रहले, रहल, रहुए, रहलेस	रहला, रहला-सन्हि, रहला सअ, रहुआ
अ० पु०	रहे, रहल्, रहलसि, रहुए	रहलेंअँ, रहलेंअँ स, रहलन, रहुअन्
भविष्य		
उ० पु०	होइब, होइबों, होइबि, रहब्, रहबि, होब	होइब, होइब जाँ, रहबि, रहबि जाँ, होब
म० पु०	होइबे, होई, रहिहे	होबा, रहबा, रहब-सन्हि, होइबा
अ० पु०	होई, रही	होइहें, रहिहें, होइहैं रहबि, होइहन, होइहेन

क्रिया-विशेषण—यहाँ—इँहाँ, इँहवाँ, इँहवा, हिंहवाँ, इँहाँ, हिंहाँ, एहिजा, एहिजाँ, हियाँ, एठन, एट्ठें, एठाँ, एठाईं, एठेन, एठिन, ठें। वहाँ—उँहाँ, उँहवाँ, ओठेन, ओहिजा, हुआँ, ऊठाँ, ऊठाईं, हुहवाँ, हुँ, हाँ, ओहिजाँ, होहिजाँ, होइजाँ, ओठन, ओठँन, ओठिन, ओठें, ओट्ठें। जहाँ—जाहाँ, जँहवाँ, जेठेन, जेहिजा, जेठाँ, जेठाईं, जेहिजाँ, जेइजाँ, जेइजा, जेठन, जेठिन, जेठें, जेट्ठें। तहाँ—ताहाँ, तँहवाँ, तेठन, तेहिजा, तेठा, तेठाईं, तेहिजाँ, तेइजाँ, तेइजा, तेठन, तेठेन, तेठिन, तेठें। कहाँ—काहाँ, कँहवाँ, केठेन, केहिजा, केठाँ, केठाईं, केहिजाँ, केइजाँ, केठन, केठेन, केठिन, केठें। अब—अँब, एहबेरा, एबेर, हेजून, एहजून। जँब—जँब, जेहबेरा, जेबेरा, जेबेर, जेहजून। तब—तँब, तेहबेरा, तेबेर, तेहजून। कब—कँब, केहबेरा, केहजून, केबेर। आज—आज, आजु। कल—काल, काल्ह। परसों—परसों, परों, परौं।

मगही

यह पूरे गया ज़िले में तथा पटना, हज़ारीबाग, मुंगेर, पालामऊ, भागलपुर और राँची ज़िलों के कुछ भागों आदि में बोली जाती है। 'मगही' शब्द 'मागधी' का विकसित रूप है। कुछ पढ़े-लिखे लोग इसे 'मागधी' भी कहते हैं। 'मगही' या 'मागधी' का अर्थ है 'मगध की भाषा', पर आधुनिक 'मगही' प्राचीन मगध (वर्तमान पटना ज़िला तथा गया का आधा भाग) तक ही सीमित नहीं है। 'मगही' बोलने वालों की संख्या ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार लगभग ६,५०४,८१७ थी। अब यह संख्या एक करोड़ के लगभग होगी। 'मगही' का परिनिष्ठित रूप गया ज़िले में बोला जाता है। अन्य स्थानों पर समीपवर्ती भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। पटना की 'मगही' पर मैथिली, भोजपुरी तथा पटना के उर्दूभाषी मुसलमानों का प्रभाव है। इसके क्षेत्र का दक्षिणी भाग उड़िया भाषाभाषी प्रदेश का स्पर्श करता है, अतः उधर के स्थानीय रूप 'उड़िया' से, और इसी प्रकार पूर्वी स्थानीय रूप बंगाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से प्रभावित हैं। पश्चिमी सीमा की 'मगही' भोजपुरी से प्रभावित है। इन विभिन्न रूपों को मिश्रित मगही या यदि अलग-अलग कहना चाहें तो मैथिली-प्रभावित मगही, भोजपुरी-प्रभावित मगही आदि नाम दे सकते है। 'मगही' का एक प्रधान रूप है पूर्वी मगही। इसके अन्तर्गत कई उपबोलियाँ हैं, जिनका आगे उल्लेख किया गया है। मगही में लिखित साहित्य नहीं है। लोक-साहित्य पर्याप्त है जिसमें 'गोपीचन्द और 'लोरिक' प्रसिद्ध हैं। इसकी लिपि प्रमुखतः कैथी तथा नागरी है। 'पूर्वी मगही' को कुछ लोग बंगाली तथा उड़िया में भी लिखते हैं। अब नागरी का प्रचार बढ़ रहा है।

संज्ञा—अनेक संज्ञाओं के दीर्घ रूप भी मिलते हैं : नाऊ—नउवा। दीर्घ रूप प्रायः हेयार्थी होते हैं। कभी-कभी सामान्य, दीर्घ और दीर्घतर तीन रूप भी मिलते हैं : बेटा—बेटवा—बेटउवा (या बेटववा)। कुछ शब्दों के सामान्य, दीर्घ, दीर्घतर, अतिरिक्त दीर्घतर अर्थात् चार रूप भी मिलते हैं, यद्यपि बहुत कम : घोड़—घोड़ा—घोड़वा,—घोड़ववा (घोड़उवा), लोह—लोहा—लोहवा—लोहउना (लोहववा)। बहुवचन के भी दीर्घ रूप होते हैं : घोड़न्वा, घरन्वा।

परसर्ग—कर्ता—×
कर्म—के
करण—से, सें, सतीं, सेती
सम्प्रदान—के, ला, लेल्, खातिर, लागी, ले, बदे, ए, वास्ते
अपादान—से, सें, सतीं, सेती
सम्बन्ध—क, के, केर, केरा, केरी (स्त्री)
अधिकरण—में, मे, मों, पर, ने (=में)

	एक०	बहु०
अविकारी	घोड़ा, घर्, घोड़ी, किताब्	घोड़न्, घरन्, घोड़िन्, किताबन्
विकारी	घोड़ा, घर्, घरे, घोड़ी, किताब्	घोड़न्, घरन्, घोड़िन्, किताबन्

पुरुषवाचक : उत्तमपुरुष	एक०	बहु०
अविकारी	हम, मोरा	हमनी, हमरनी
विकारी	मोरा, हमरा	हमनी, हमरनी
कर्म-संप्रदान	मो, मोराके, हमरा, हमरालेल, हमराके	हमनी, हमनीके, हमरनी, हमरनीलेल, हमहरनीके
करण-अपादान	मोरासें, हमरासें	हमनीसें, हमरनीसें
सम्बन्ध	मोर, मोरा, मोरी, हम्मर, हमरा, हमार, हमरे, हमरी	हमनीके, हमनीकेर, हमनीकेरा, हमरनीके, हमरनीकेर, हमरनीकेरा
अधिकरण	मोरामें, हमरामें	हमनीमें, हमरनीमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यमपुरुष

अविकारी	तूं, तों	तोहनी, तोहरनी
विकारी	तोरा, तोहरा	तोहनी, तोहरनी
कर्म-संप्रदान	तोराके, तोरालेल, तोरा, तोहरा, तोहराके, तोहरालेल	तोहनीके, तोहनीलेल, तोहरनीलेल, तोहरनीके
करण-अपादान	तोरासें, तोहरासें	तोहनीसें, तोहरनीसें
सम्बन्ध	तोर, तोरा, तोहर, तोहार, तोहरे, तोहरा, तोरी, तोहरी	तोहनीके, तोहनीकेर, तोहनीकेरा, तोहरनीके, तोहरनीकेर, तोहरनीकेरा
अधिकरण	तोरामें, तोहरामें	तोहनीमें, तोहरनीमें

अन्यपुरुष

अविकारी	ऊ	ऊ, उन्हकनी, उनकनी, ओकनी,
विकारी	ओह, ओकरा	उन्ह, उन्हकरा
कर्म-संप्रदान	ओहके, ओहलेल, ओकराके, ओकरालेल	उन्हके, उन्हकराके, उन्हलेल, उन्हकरालेल
करण-अपादान	ओहसें, ओकरासे	उन्हसें, उन्हकरासे
सम्बन्ध	ओकर, ओहकर, ओहके, ओके, ओकरा	उन्हकर, उन्हकरा
अधिकरण	ओहमें, ओकरामे	उन्हमें, उन्हकरामें

निश्चयवाचक (निकटवर्ती)

अविकारी	ई	ई, इन्हकनी
विकारी	एह, एक, एकरा	इन्ह, इन्हकरा, इन्हकनी
कर्म-संप्रदान	एकके, एकलेल, एकराके, एकरालेल, एहके	इन्हके, इन्हलेल, इन्हकराके, इन्हकरालेल, इन्हकनी के
करण-अपादान	एहसें, एकरा सें	इन्हसें, इन्हकरासें
सम्बन्ध	एकर, एह के	इन्हकर, इन्ह के
अधिकरण	एहमें, एकरा में	इन्ह में, इन्हकरा में

क्रिया—मगही क्रिया की एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि सर्वनामों की भाँति ही, रूपों की अधिकता है। कई क्रिया-रूप हर पुरुष में चार प्रकार के होते हैं: (१) कर्ता, कर्म दोनों के लिए अनादरार्थी, (२) कर्ता—अनादरार्थी, कर्म—आदरार्थी, (३) कर्ता—आदरार्थी, कर्म—अनादरार्थी, (४) दोनों आदरार्थी।

वर्तमान

	एक	दो	तीन	चार
उ० पु०	ही, हकी, हिकूं		हीं	

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म० पु०	हीं, हाँ, हे, है, हहीं, हकीं, (स्त्री०) हीं, ही	हकिन, हहिन	ह, हहो, हहू, हहूँ	हदुन, हखुन
अ० पु०	है, ह, हे, हो, हं, हस, हकै, हहीं	हहिन, हखिन, (स्त्री०) हखीन, हखिनी	हैं, हथ, हथी	हैन, हथिन, (स्त्री०) हथीन, हथिनी

भूत

उ० पु०	हलूं, हली		हलीं, हलिऐ	
म० पु०	हलें, हलैं, हले, हलहीं, हला, (स्त्री०) हलीं, हली	हलहिन	हल, हलह, हलहू, हलहो, हलहूँ	हलहुन
अ० पु०	हल, हलै, हलहीं, (स्त्री०) हली	हलहिन, हलखिन, (स्त्री०) हलखीन, हलखिनी	हलन, हलथी, (स्त्री०) हलिन	हलथिन, (स्त्री०) हलथीन, हलथिनी

अव्यय— यहाँ–ईठमाँ, इठवाँ, हिआँ, हियाँ, एतह। वहाँ–ऊठमाँ, उठमाँ, ऊठवाँ, उठवाँ, हुआँ, ओतह। जहाँ–जेठमाँ, जेठवाँ, जेतह। तहाँ–तेठमाँ, तेठवाँ, तेतह। कहाँ–केठमाँ, केठवाँ, कहवाँ। अब–अखनी। जब–जखनी, जहिआ। तब–ओखनी, तखनी, तहिआ। कब–कखनी, कहिआ। इधर–एहर, हेहर, एन्ने, एन्दे। उधर–ओहर, उहर, होहर, उन्ने, ओन्ने, होन्ने, ओन्दे। जिधर–जेहर, जेन्ने, जेन्दे। तिधर–तेहर, तेन्ने, तेन्दे। किधर–केहर, केन्ने, केन्दे।

मैथिली

हिन्दी प्रदेश की उपभाषा 'बिहारी' की यह एक बोली है। 'मैथिली' नाम उस क्षेत्र के नाम 'मिथिला' से सम्बद्ध है। 'मिथिला' शब्द भारतीय साहित्य में बहुत पहले से है। याज्ञवल्क्य स्मृति तथा वाल्मीकि रामायण में भी इसका उल्लेख है। 'मिथिला' शब्द की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। एक मतानुसार यहाँ के एक प्राचीन राजा का नाम 'मिथि' था। उन्हीं के आधार पर यह 'मिथिला' कहलाया। एक दूसरा मत उणादि सूत्रकार का है। वे इसी मंथ् धातु (मथना) से सम्बद्ध मानते हैं। कुछ लोग इसी से सम्बद्ध कल्पना यह भी करते हैं कि पहले यहाँ समुद्र था और समुद्र-मन्थन यहीं हुआ था, अतः यह मिथिला कहलाया। एक चौथे मत के अनुसार 'मिथिला' नामक ऋषि से इसका सम्बन्ध है। एक आधुनिक मत यह भी है कि 'मिथ' का अर्थ है 'एकसाथ' या 'मिला हुआ'। यह प्रदेश तीन प्राचीन छोटे-छोटे राज्यों (वैशाली, विदेह तथा अंग) का मिला रूप है, अतः इसे मिथिला कहा गया है। छठा मत शाकटायन का दिया जा सकता है, जिनके अनुसार 'मिथिला' का अर्थ है, 'वह देश जहाँ शत्रुओं का दमन हो'। सत्य यह है कि ये सभी मत अनुमान मात्र हैं। इनमें पुष्ट प्रमाणों पर कोई भी आधारित नहीं है। मैथिली भाषा के लिए एक प्राचीन नाम 'देसिल बअना' (विद्यापति) मिलता है। इसका एक अन्य नाम 'तिरहुतिया' भी है। यह नाम भी 'मैथिली' नाम से पुराना है। इसका प्रथम उल्लेख १७७१ में 'तिरुतियन' रूप में (बेलिगत्ती लिखित 'अब्फ़ाबेटुम ब्राह्मनिकुम' की अम्दुजी की भूमिका में) मिलता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। 'मैथिली' नाम का प्रयोग आधुनिक काल का है। सर्वप्रथम १८०१ में कोलब्रुक ने इस नाम का उल्लेख अपने लेखों में किया। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या एक करोड़ से कुछ ऊपर थी। 'मैथिली' का क्षेत्र बिहार के उत्तरी भाग में पूर्वी चम्पारन, मुज़फ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर, दरभंगा, पुर्निया तथा उत्तरी संथाल परगना में है। इसके अतिरिक्त यह माल्दह और दिनाजपुर में तथा भागलपुर एवं तिरहुत सब-डिवीज़न की सीमा के पास नेपाल की तराई में भी बोली जाती है। **'उत्तरी मैथिली'**, **'दक्षिणी मैथिली'**, **'पूर्वी मैथिली'**, **'पश्चिमी मैथिली'**, **'छिका-छिकी'** तथा **'जोलहा बोली'** मैथिली की ये छः उपबोलियाँ हैं। कुछ लोग पूर्वी सीतापुर तथा मधुबनी सब-डिवीज़न की निम्न श्रेणी की जातियों की बोली को **'केन्द्रीय'** (जन-साधारण की) **'मैथिली'** का नाम देते हैं। इस प्रकार इसकी बोलियों की संख्या सात हो जाती है। इनमें उत्तरी मैथिली ही 'मैथिली' का परिनिष्ठित रूप है; जो उत्तरी दरभंगा तथा आसपास के ब्राह्मणों में विशेष रूप से प्रयुक्त होती है। बिहारी बोलियों में केवल 'मैथिली' ही साहित्यिक दृष्टि से सम्पन्न है। इसके प्रसिद्ध कवि विद्यापति हिन्दी की विभूति हैं। यहाँ के अन्य साहित्यिकों में उमापति, नन्दीपति, रामापति, महीपति तथा मनबोध झा आदि प्रधान हैं। अब 'मैथिली' भाषाभाषी साहित्य में खड़ीबोली हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं।

मैथिली की उत्पत्ति मागधी अपभ्रंश के मध्य या केन्द्रीय रूप से मानी जाती है। मैथिली के लिए तीन लिपियों का प्रयोग होता है। मैथिल ब्राह्मणों में मैथिली लिपि प्रचलित है, जो बँगला से बहुत मिलती-जुलती है। अन्य जातियों के लोग स्थानीय रूपान्तरों के साथ कैथी लिपि का प्रयोग करते हैं। साहित्यिक कार्यों के लिए नागरी का प्रयोग होता है। अब नागरी का प्रचार धीरे-धीरे सभी कार्यों में बढ़ रहा है।

ध्वनियाँ– अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ, कवर्ग, चवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, य्, र्, ल्, व्, स, श्, ह्, ड़्, ढ़्, र्ह, ल्ह, ड्ह्, न्ह, म्ह्। अ, ए, ओ, ऐ, औ के एकाधिक रूप हैं। ल् का न् (लवण>नून, अलवण>अनोन, अर्गलिका>अरगनी), न् का ल् (नोट>लोट, नंबर>लंबर, नग्न+क>लंगा, नालिश>लालिस), **विपर्यय** (कृत्यग्रह>कचहरी>कहचरी), **घोषीकरण** (एकादश>एगारह, डॉक्टर>डाकडर, उपविशति>बइस—), **अघोषीकरण** (मेज़>मेच, कमीज़,>कमीच>कमेच) तथा **महाप्राणीकरण** (भ्रमर>भम्हरा, वेष>वेख>भेख, जर्जर>झाँझर) आदि की प्रवृत्ति है।

परसर्ग: कर्ता ×

कर्म-सम्प्रदान	के, कें, कै, कैं, कौं, लागी, लेल, लै, ले, खातिर
करण-अपादान	से, सें, सै, सैं, सों, सं, सन, सउँ, सौं
सम्बन्ध	कर्, कर, केर, क, के, केरा
अधिकरण	में, मों, मँ

सम्बोधन में हे, रे, ओ आदि का पूर्वसर्गवत् प्रयोग होता है।

संज्ञा-रूप—भोजपुरी, अवधी की तरह मैथिली में भी संज्ञा शब्दों के प्रायः सामान्य, दीर्घ तथा दीर्घतर तीन रूप होते हैं: घर—घरवा—घरउआ, घोड़ा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोड़वा—घोउड़वा। अर्थात् ह्रस्व—सामान्य—दीर्घ—दीर्घतर। विशेषण में भी यह प्रवृत्ति है।

कारक-रूप

अविकारी रूप	घोड़ा; घर; नेनी (लड़की); किताब	घोड़नि; घरन; नेनिन, किताबन, किताबनि
विकारी रूप	घोड़ा; घर; नेनी; किताब,	घोड़न, घोड़नि; घरन; नेनिन; किताबन, किताबनि

अर्थात् बहुवचन में -अन, -अनि जोड़ते हैं। सभ (घोड़ा सभ), लोग, लोकनि, लोगनि आदि जोड़कर भी बहुवचन के रूप बनते हैं।

सर्वनाम

	एक०	बहु०
उत्तम पुरुष		
अविकारी रूप	हम, मो (अल्प प्रयुक्त) हाम, हमा, हँओ, हम्मे, हम्मैं	हमनी, हम सभ, हमरा सभ के
विकारी रूप	मो, म, हम	हमरा सभ, हमनी, हम सभ
सम्बन्ध	मोर, मोरा, मोरि, मोरे मोरें, मोय, हमर, हमरा, हमारा, हमारी, हमार	हमरा सभके, हमनी के

विशेष रूप : कर्म-सम्प्रदान—मोहि, मोही, मोहे, मोरा, हमें। करण—मोंए, मोय।

मध्यम पुरुष		
अविकारी	तो, तु, तूं, तों, तोंह, तुहु, तुहुँ, तू	तोहनीं, तोंह सभ, तूं सभ, तों सभ, तोहरा सभ
विकारी	तु, त, तो, तुम्ह, तोरा, तोहरा	तोहरा सभ, तोंह सभ, तोहनीं
सम्बन्ध	तोर, तोरा, तोरि, तोरे, तोय, तोहर, तोहरा, तोहरी	तोहरा सभ के, तोहनीं के

विशेष रूप : कर्म सम्प्रदान—तोहि, तोही, तोहे, तोहें। करण—तोहें।

अन्य पुरुष (दूरवर्ती)		
अविकारी	ऊ, उ, उअँ, ओ, औं, हऊ, ओहु, हुन, वैं, ओहि	उन, उन्ह, हुनि, हुन्हि, उहै सभ
विकारी	ओहि, ओ, ऊ, ओकरा, होकरा, हुन, हो, ओई	उन्ह, हुन्ह, हुनकरा, हुनकर हुनका, उन्हकरा, उन्हनी

विशेष रूप : कर्म-सम्प्रदान—उहे, हुनि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्य-सम्बन्धी तथा अन्य पुरुष

अविकारी	से, सेहो, सेओ, तें, तन्हि, तैं	तिन्ह, तिन सभ, तिन्हि
विकारी	ता, त, तन्हि, तनि, तेहि, ताहि, तेकरा, ते	तिन्ह, तिन सभ
सम्बन्ध	तासु, ताहेरि, ताकर ताहुकर, तेकर	तिन्हकर, तिनकर

निकटवर्ती

अविकारी	ई, इ, ए, इहै, हई, इहे, हिनि, एहु, एहि, हिन	इन, इन्ह, हिन्हि, हिनि
विकारी	ए, एहि, एई, ई, एकरा, हेकरा	इन्ह, इन, हिन्हकरा, इनकरा, हिनका

क्रिया—मैथिलीं के क्रिया-रूप, मगही को छोड़ कर हिन्दी प्रदेश की अन्य भाषाओं एवं बोलियों के रूपों से थोड़े भिन्न हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषताएँ दो हैं : एक तो यह कि वचन का भेद प्रायः कम सा है, और दूसरे क्रिया के रूप कर्ता एवं कर्म में आदर-अनादर की भावना के अनुसार बदलते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि रूपों की अधिकता हो गई है। वचन के सम्बन्ध में यह उल्लेख्य है कि पिछली सदी में एकवचन-बहुवचन के रूपों में उल्लेख्य अन्तर था, और इसी कारण केलॉग ने अपने व्याकरण के दूसरे संस्करण में मैथिली के क्रिया-रूपों में वचन-भेद दिया है। अब कुछ कम है, किन्तु है अवश्य। मैं स्वयं मैथिली के सम्बन्ध में क्षेत्र-कार्य कर रहा था तो जनभाषा में इस प्रकार का भेद मुझे मिला। उदाहरणार्थ, सहरसा जिले के पँचगुछिया गाँव के एक मैथिल ब्राह्मण की भाषा में मध्यम पुरुष में तो वचन-भेद मुझे सर्वत्र मिला। जैसे 'तों चलै छे' (तू चलता है), 'तों सब चलै छह' (तुम सब चलते हो); या 'तों चल' (तू चल), 'तों चलअ' (तुम चलो), या 'तों चलिहे' (तू चलेगा), 'तों सब चलिहअ' (तुम सब चलोगे), इत्यादि। यही नहीं -कभी-कभी तो उत्तमपुरुष में भी भेद मिला। जैसे 'हम चलू' (मैं चलूँ), किन्तु 'हम चली' (हम चलें)। किन्तु इसका यह आशय नहीं कि यह अन्तर बहुत नियमित है। किन्तु यह कहना कि वचन का बिलकुल भेद नहीं है, मेरे विचार में बहुत ठीक नहीं है। हाँ, भेद बहुत कम है और यह सामान्य बोली से अधिक व्यक्ति बोली पर कदाचित् निर्भर करता है।

सहायक तथा अस्तित्वार्थी क्रिया : वर्तमान—वर्तमान में, सहायक एवं अस्तित्वार्थी रूप में, 'छ्' या 'अछ्' एवं 'थिक्' ये दो धातुएँ प्रयोग में आती हैं। केलॉग के अनुसार वचन के आधार पर, तथा ग्रियर्सन के अनुसार आदर-अनादर के आधार पर इन्हें नीचे दिया जा रहा है। आदर-अनादर के आधार पर मोटे रूप में क्रियाओं को चार वर्गों में रखा जा सकता है : (१) कर्ता-कर्म दोनों अनादृत [वह (नीच, बुरा, दास, छोटा) उसे (नीच, बुरा, दास, छोटा) देखता है]; (२) कर्ता अनादृत-कर्म आदृत [वह (नीच आदि) उसे (उच्च, अच्छा, स्वामी, बड़ा) देखता है]; (३) कर्ता आदृत-कर्म अनादृत [वह (उच्च आदि) उसे (नीच आदि) देखता है]; (४) दोनों आदृत [वह (उच्च आदि) उसे (उच्च आदि) देखता है]। इस प्रसंग में यह उल्लेख्य है कि प्रयोग में,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसा कि स्वाभाविक है, इसका बहुत ठीक पालन लोग नहीं करते। ये भेद मनोवैज्ञानिक है, अतः यों भी सभी के मस्तिष्क में आदर-अनादर का ठीक एक ही स्वरूप सदा नहीं रह सकता। साथ ही, सभी धातुओं के तीनों पुरुषों एवं इन चारों भेदों के अलग-अलग भेद नहीं हैं। इस प्रकार इस भेद की अपनी सीमाएँ भी हैं।

(क) वचन पर आधारित

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	छिअहु, छिऔ, छौं, छूं ,छिऐ, छी, थिकहुँ, थिकिहु, थिकिअहु, थिकिऔ, थिकौं, थिकों, थिकिए	छिऐन्हि, छिऐन्ह, छिहैन्ह, छिऐ, छिअ, छी, छिहौन्ह, छिहुन्ह, छिऔन्ह,छिऔ, छूं, थिकिऐन्हि, थिकिऐन्ह, थिको
म० पु०	छहै, छहो, छह, छिऐ, छैं, छे, छैं, छो, छौ, थिकहुँ, थिकाह, थिके, थिको, थिकौ, थिकहक, थिकहीक	छिऐन्हि, छहैन्ह, छन्हन्हि, छहौ, छहो, छन्ह, छौ, छूं, छह, छऽ, थिकिऐन्हि, थिकह, थिकऽ, थिकन्हन्हि
अ० पु०	अछि, अछ, छथि, छैं, छे, छौ, छऽ, छत, छैत, छौत, छो, थिकाह, थिको, थिकैं, थिके, थोक, थिक, थिको	छथून्हि, छथून, छहुन्ह, छौन्ह, छौन, छथौन्हि, छथीन्हि, छहिन्ह, छैन्हहि, छन्ह, छथि, छथ, छहीं, छहें, छैं, छत, छथी, थिकथून्हि, थिकथ, थिकथीन्हि, थिकथिन्ह, थिकैन्हि, थिकैन्ह

(ख) आदर-अनादर पर आधरित

	एक	दो	तीन	चार
उ० पु०	छी, छिऐ, छिअहु, थिकहू, थिकिये, थिकिअहु	छिऐन्हि, थिकिऐन्हि	छी, छिऐ, छिअहु, छिऐन्हि, थिकहू, थिकिऐ, थिकिऐन्हि थिकिअहु	
म० पु०	छह, छैं, छैं, छहक्, छहिक् (स्त्री०) छहिं; थिकह्, थिकें, थिकैं, थिकहक्, थिकहीक्, (स्त्री०) थिकीह या थिकीहि	छहुन्हि, थिकहुन्हि	छी, छिऐ, छिअहु, छिऐन्हि, थिकहू, थिकिऐ, थिकिऐन्हि थिकिअहु	
अ० पु०	अछि, छैं, छिक्, छहु, अहि, है, थिक्, थिकै, थीक्, थिकहु, थीकि	छैन्ह, छें, छैं, छह्क्, छहिक्, छहि; थिकैन्हि	छथि, थिकह्, थिकीह, थिकीहि	छथीन्हि, छथून्हि, थिकथीन्हि, थिकथून्हि

भूतकाल—भूत में 'छ्' और 'रह्' दो धातुओं का प्रयोग होता है। रूप निम्नांकित हैं —

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) वचन पर आधारित

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	छलिअहु, छलिऔ, छलहुँ, छलाओं, छलांव, छलौं, छलों, छुलूं, छलां, छलँ, छलिऐ, हलूं, रहिअहु, रहिऔ, रहौं, रहिऐ, रही, रहलौं	छलिऐन्हि, छलिऐन्ह, छलिअन्ह, छलिहन्ह, छलिहैन्ह, छलिऐ, छली, छहिऔन्ह, छलिहौन्ह, छलिऔ, हली, रहिऐन्हि, रहिऐ, रही, रहिऔ, रहली
म० पु०	छलहुँ, छलाह, छलहा, छलह, छलही, छलहीक, छलहै, छलिऐ, छलैं, छलें, छला, छल, छली, छलौ, हलें, रहिऐ, रही, रहैं, रहें, रहह, रहा, रह, रहहीक, रहलें	छलन्हन्हि, छलहुन्ह, छलहौ, छलहो, छलन्ह, छलहऽ, छलह, छलऽ, छलिऐन्हि, छलिऐन्ह, छलहैन्ह, हलऽ, रहिऐन्हि, रहन्हन्हि, रहह, रहऽ, रहलऽ
अ० पु०	छलाह, छलौ, छलै, छली, छले, छलऽ, छल, छलकै, छलकौ, हल, रहथि, रहै, रहे, रही, रहल, रहौ	छलथून्हि, छलथुन्ह, छलहौन्ह, छलौन्ह, छला, छलथोन्हि, छलथिन्ह, छलहैन्ह, छलहिन्ह, छलैन्हि, छलथी, छलही, छलथि, छलथ, छलें, छलखिन्ह, छलखीं, छलन्ह्, छलात, हलैन्ह, रहथून्हि, रहथीन्हि, रहथिन्ह, रहैन्हि, रहथ, रहलात

(ख) आदर-अनादर पर आधारित

	एक	दो	तीन	चार
उ० पु०	छलहु, छलिऐ, रही, रहिऐ, रहिअहु	छलिऐन्हि, रहिऐन्हि	छलहु, छलिऐ, रही, रहिऐ, रहिअहु	छलिऐन्हि, रहिऐन्हि, रहिअहु
म० पु०	छलह्, रहह्, रह्, रहहक्, रहहीक, (स्त्री०) रहही	छलहून्हि, रहहून्हि	छलहु, छलिऐ, रही, रहिऐ, रहिअहु	छलिऐन्हि, रहिऐन्हि, रहिअहु
अ० पु०	छल, छलै, छलहु, (स्त्री०) छलि, रहै, (अल्पप्रयुक्त), रहौ	छलैन्हि, रहैन्हि	छलह्, रहथि, रहै (अल्पप्रयुक्त), रहौ	छलथीन्हि, रहथीन्ह, रहथून्हि इत्यादि

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय खण्ड

हिन्दी भाषा और लिपि का इतिहास

३—हिन्दी भाषा, उसका उद्भव तथा विकास
४—हिन्दी ध्वनियाँ
५—उपसर्ग तथा प्रत्यय
६—संज्ञा
७—सर्वनाम
८—विशेषण
९—क्रिया
१०—अव्यय
११—शब्द-मंडार
१२—वाक्य
१३—हिन्दी भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव
१४—देवनागरी लिपि और अंक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ३

हिन्दी भाषा, उसका उद्भव तथा विकास

हिन्दी भाषा

मानक हिन्दी 'खड़ीबोली' का आधार—एक प्रश्न उठता है कि मानक हिन्दी खड़ीबोली का आधार क्या कौरवी, अर्थात् मेरठ के आसपास बोली जाने वाली खड़ीबोली है ? बीम्स, ग्रियर्सन, चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा आदि अधिकांश भाषाशास्त्रियों का मत यही है। कोलब्रुक इसका आधार कनौजी; इस्टविक तथा मुहम्मद हुसेन 'आज़ाद' ब्रजभाषा और मसऊद हसन खाँ हरियानी को मानते हैं। जहाँ तक 'कौरवी' का प्रश्न है, व्यंजन-द्वित्व (बेट्टा, जात्ता, खात्ता), स्वर-माध्यम ड, ढ (गाडी, पढाई), अनेक शब्दों में 'ल' के स्थान पर ळ (बाळक) आदि ऐसी बातें हैं जो खड़ीबोली (मानक हिन्दी) से मेल नहीं खातीं। इसी प्रकार कनौजी, ब्रजभाषा तथा हरियानी की अनेक ध्वन्यात्मक तथा व्याकरणिक विशेषताएँ मानक हिन्दी खड़ीबोली से मेल नहीं खातीं। इस प्रकार उपर्युक्त मतों में किसी भी एक को मानना कठिन है। मुझे ऐसा लगता है कि मुसलमान शासन पंजाब से होते आगरे में केन्द्रित हुआ और फिर दिल्ली आया। इस प्रकार पंजाबी, हरियानी, ब्रज और दिल्ली की खड़ीबोली—इन तीनों की विशेषताओं का मिश्रित रूप, जो दिल्ली में राजभाषा फ़ारसी की कोमल छाया में विकसित हुआ, आज की मानक हिन्दी खड़ीबोली है, जिसकी तीन शैलियाँ (हिन्दुस्तानी, उर्दू, हिन्दी) हैं। यों इसमें संदेह नहीं कि विभिन्न भाषाओं के मिश्रण के बावजूद इसमें प्राधान्य दिल्ली तथा उसके आसपास बोली जाने वाली कौरवी या खड़ीबोली का ही है।

खड़ीबोली का विकास—ऊपर हम कह चुके हैं कि खड़ीबोली अपने मूल में मात्र मेरठ की आसपास की कौरवी पर आधारित नहीं है, जैसा कि अधिकांश भाषाविज्ञानी मानते हैं, बल्कि यह एक मिश्रित बोली है, जिसमें प्रमुख बातें तो कौरवी की हैं, किन्तु साथ ही पंजाबी, बाँगरू, ब्रज के तत्त्व भी अपने मूल या परिवर्तित रूप में इसमें समाहित हैं। इस प्रकार यह मध्यदेश के भाषा-रूपों पर आधारित है और इसे उत्पत्ति की दृष्टि से शौरसेनी अपभ्रंश या उसके सन्धिकालीन रूप शौरसेनी अवहट्ठ से सम्बद्ध कर सकते हैं। खड़ीबोली में प्रयुक्त रूपों के बीज तो हमें प्राकृत-काल में ही मिलने लगते हैं। अपभ्रंश-काल में आकर वे और स्पष्ट हो गए थे। उदाहरणार्थ, हम, हमारी तू, जो, है, हो, कही, गए, के, का, आज, कैसे, जैसे रूप अपभ्रंश के अन्तिम काल में मिलने लगते हैं, यद्यपि उनका प्रयोग बहुत अधिक नहीं हुआ है। सन्धिकालीन अवहट्ठ की प्राकृत-पैंगलम्, वर्णरत्नाकर, उक्ति-व्यक्ति-प्रकरण, संदेशरासक एवं कीर्तिलता आदि में भी खड़ीबोली के अनेक रूप हैं। यों उनमें कुछ विकसित हैं, और कुछ अविकसित। उदाहरणार्थ : परसर्ग—का, के। सर्वनाम—हम, हमारी, तूँ, तुम्हें, तुम्ह, जो, कोई, अपना। संख्यावाचक विशेषण—एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारह, तेरह, सोलह, बाइस, सत्ताइस, अट्ठाइस, बत्तीस, चालीस, उनचास, सत्तरि आदि। क्रिया : भूत—आए, भरे, गए, चले; वर्तमान—है, हो, हों, । अव्यय—आज, जहाँ, तहाँ, जब, तब आदि।

खड़ीबोली का जन्म १००० ई० के आसपास माना जा सकता है। इसके विकास के तीन काल हैं: आदिकाल (१०००-१५००); मध्यकाल (१५००-१८००); आधुनिककाल (१८०० से अब तक)।

खड़ीबोली का आदिकालीन रूप गोरखनाथ, खुसरो, रामानन्द, कबीर, रैदास, नामदेव तथा बन्दानेवाज़ आदि में उपलब्ध है। ध्वनि की दृष्टि से प्रमुख उल्लेख्य बात यह है कि इस काल में अपभ्रंश की तुलना में दो ध्वनियाँ नई आ गईं : दो स्वर—ऐ, औ। रूप की दृष्टि से यह एक ओर तो अपभ्रंश के रूपों से आक्रांत थी, तो दूसरे इसके अपने सभी रूप विकसित नहीं हुए थे। उदाहरण के लिए 'भरिया', 'चलिया' जैसे रूप चलते थ। ये बाद में विकसित होकर आधुनिक रूप बने : भरिया > भर्‌या > भरा, चलिया > चल्या > चला। यह उल्लेख्य है कि पंजाबी में अब भी प्रथम दोनों रूप हैं, तथा कौरवी एवं बाँगरू में मध्यम। खड़ीबोली में मात्र तीसरा रूप है। इसका अर्थ यह भी हुआ कि तत्कालीन खड़ीबोली, पंजाबी आदि के बहुत विकट थी। राजस्थानी एवं ब्रज से भी अनेक समानताएँ थीं। इसे यों भी कहा जा सकता है कि उस काल तक अभी पंजाबी, कौरवी, ब्रज तथा समीपस्थ राजस्थानी का पूर्ण विकास नहीं हुआ था, अतः आपसी अन्तर बहुत कम ही थे। आदिकालीन खड़ीबोली का शब्द-समूह मुख्यतः तद्भव एवं देशज का था। तत्सम शब्द अपेक्षाकृत कम थे। पश्तो, तुर्की, अरबी, फ़ारसी के शब्द भी कुछ आ गए थे।

खड़ीबोली के मध्यकाल का स्वरूप हमें गंग की 'चन्द छन्द वर्णन की महिमा', नानक, दादू, मलूकदास, रज्जबजी आदि सन्तों, रहीम के 'मदनाष्टक', आलम के 'सुदामाचरित्र', जटमल की 'गोराबादल की कथा', वली, सौदा, इन्शा, नज़ीर आदि दक्खिनी एवं उर्दू के कवियों, कुतुबशतम (१७वीं सदी), भोगलु पुरान (१८वीं सदी) तथा सन्त प्राणनाथ के कुलजमस्वरूप आदि में मिलता है। ध्वनियों की दृष्टि से इस काल में अक्षरांत अ (कुछ अपवादों को छोड़कर) समाप्त हो गया। अर्थात् राम का उच्चारण राम् होने लगा। सामान्य लोगों में तो नहीं, किन्तु पढ़े-लिखों की खड़ीबोली में, इस काल के अन्त तक क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ये पाँच नए व्यंजन फ़ारसी से आ गए। फ़ारसी के प्रचलन के कारण ही इनका प्रवेश हुआ। रूपों की दृष्टि से खड़ीबोली अपभ्रंश आदि के रूपों से काफ़ी मुक्त हो गई। यों अब भी नए रूपों के साथ कुछ पुराने रूप चल रहे थे। उदाहरणार्थ, सर्वनामों में एक ओर तुम, हम, हमारा जैसे नए रूप थे, तो दूसरी ओर तुम्ह, हम्हे, अम्हारा जैसे पुराने रूप भी थे। क्रियारूपों में भी यही स्थिति है। एक ओर करन्ता, चल्या जैसे प्राचीन रूप चल रहे थे तो दूसरी ओर करता, चला जैसे नए रूप। संयुक्त क्रियाओं का प्रयोग अभी तक अधिक नहीं था। फ़ारसी के प्रभाव के कारण 'कि' की सहायता से वाक्य बनने लगे थे। शब्दों में, इस काल के पूर्वार्द्ध में पश्तो, तुर्की, अरबी, फ़ारसी के काफ़ी शब्द आ चुके थे। कालान्त तक कुछ पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी और अँग्रेज़ी शब्द भी आ गए। प्रथम काल की तुलना में इस काल में धार्मिक जागरण के कारण तत्सम शब्द कुछ अधिक आ गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधुनिक काल का आरम्भ ही खड़ीबोली की विशेष उन्नति से हुआ। प्रेस, समाचारपत्र, विज्ञान आदि के प्रचार ने इसके प्रयोग (विशेषतः गद्य) को बढ़ाया। ब्रज आदि धीरे-धीरे साहित्य-क्षेत्र से हटने लगीं। १९वीं सदी के अन्त तक खड़ीबोली प्रमुखतः गद्य की भाषा थी, किन्तु उसके बाद पद्य पर भी इसका एकाधिकार हो गया। इस काल में आकर खड़ीबोली की हिन्दी-उर्दू दो स्पष्ट शैलियाँ हो गईं। उर्दू में तो खड़ीबोली का प्रयोग पद्य में भी बहुत पहले से हो रहा था, यद्यपि उस पर अन्य बोलियों का भी प्रभाव था।

लल्लूलाल ने अपनी रचनाएँ मध्य एवं आधुनिक काल के संधिस्थल पर की थीं। उनके साहित्य में प्रयुक्त खड़ीबोली के रूप से, हमें उस काल की आरम्भिक खड़ीबोली का स्पष्ट चित्र मिल सकता है, अतः यहाँ संक्षेप में उसे देख लेना अनावश्यक न होगा। लल्लूलाल की खड़ीबोली में आज की प्रायः सभी ध्वनियाँ हैं। सभी स्वरों के अनुनासिक रूप भी हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त परसर्ग हैं : ने, को, ताईं, से, का, के, की, में। 'मेरे लिए' के लिए 'मेरे ताईं' का प्रयोग है। सर्वनामों में मैं, हम, मेरा, मुझ, मुझी; तूं, तैंने, तुम्हें, तुझे, तुम, तेरा, तुम्हारा; आप, अपना; वह, वे, उस, उन, विहने (=उन्हें), तिन, उनने (उसने), विन्होंने (=उन्होंने) आदि हैं। संख्यावाचक शब्दों में, विशेष रूप से 'करोड़' के लिए 'करोड़' तथा सौ के लिए सैं' उल्लेख्य हैं। अव्ययों में आज प्रयुक्त होने वाले तो हैं ही साथ ही जद (=जब), तद (=तब), फेर (=फिर), सोंही (सामने) भी हैं। क्रियारूपों में अनेक बातें उल्लेख्य हैं। धातुओं में 'ल्याना', 'बरसावना' जैसे प्रयोग (महा आनंदकर नैनों से जल बरसावने लगा) भी हैं। दूढ़ाना जैसी नामधातुओं का भी प्रयोग हुआ है। प्रमुख कृदंत ये हैं : **क्रियार्थक संज्ञा**—दौड़ना, बोलना आदि। **कर्तृवाचक संज्ञा**—इसमें वाला का प्रयोग नहीं है। लिवैया, रखैया, जैसे -ऐया वाले रूप हैं। **वर्तमानकालिक कृदन्त**—चलना, खाना आदि। **भूतकालिक कृदन्त**—पलाया (भागा), आया, गया आदि। **पूर्वकालिक कृदन्त**—पुकार के, कह के, बैठकर, मार कर। अर्थात् -के और -कर, दोनों हैं। केवल धातु का भी प्रयोग है; जैसे 'इतना कह लोमस ऋषि ने एक चेले को बुला के कहा'। कालों में सामान्य के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी रूप हैं, जो आज से भिन्न हैं : जानूं (जानता हूँ), रहे हैं (रहते हैं), कहे है (कह रही है), भए (हुए), कीया (किया), हता (था), करा (किया), गाय रहे थे (गा रहे थे), किया चाहिए (करना चाहिए), डुबोऊँगा (डुबाऊँगा)। संयुक्त क्रिया का प्रयोग पहले की तुलना में बढ़ गया है, किन्तु आज की तुलना में कम है। कुछ प्रयोग हैं 'जाया चाहते हैं', 'पिलावे लगी', 'बुला भेजा', 'लगे चिंघाड़ने', 'ला दीजो' आदि।

इसका आशय यह है कि उस काल तक खड़ीबोली में एकरूपता नहीं आई थी। ब्रज, कौरवी आदि के वे प्रभाव भी अवशेष थे, जो बाद में निकल गए। किन्तु आगे जैसे-जैसे खड़ीबोली का गद्य में प्रयोग बढ़ता गया, इसमें शुद्धता एवं एकरूपता आती गई। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपने काल में हिन्दी खड़ीबोली को नियमित एवं परिनिष्ठित रूप देने में अभूतपूर्व काम किया। अब रूप की दृष्टि से खड़ीबोली पूर्णतः अपने पैर पर खड़ी हो गई है। 'कृपया' जैसे कुछ संस्कृत रूप अपवाद हैं। इधर कुछ नई प्रवृत्तियाँ भी खड़ीबोली में आ रही हैं। उदाहरण के लिए बांगरू, पंजाबी के प्रभाव के कारण 'मैंने जाना है' जैसे प्रयोग बढ़ने लगे हैं। सर्वनामों में कई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारकों के रूप सम्बन्ध के आधार पर बनने लगे हैं : मेरे को, मेरे से, मेरे में। 'हम जा रही हैं' के स्थान पर भी पुल्लिग रूप 'हम जा रहे हैं' जैसे प्रयोग अधिक प्रचलित होते जा रहे हैं। सहायक क्रिया के प्रयोग की प्रवृत्ति कम हो रही है, विशेषतः अपूर्ण वर्तमान में—'मैं जा रहा हूँ' के स्थान पर 'मैं जा रहा।' 'मैं', 'तू' के स्थान पर बहुवचन 'हम', 'तुम' का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। अँग्रेज़ी प्रभाव से एक नई ध्वनि ऑ (ऑफ़िस) आ गई है। यों इसका प्रयोग केवल अँग्रेज़ी-दाँ ही करते हैं। ऐ, औ संयुक्त स्वर आदिकाल में आए थे, किन्तु अब ये पुनः लुप्त हो रहे हैं और इनके स्थान पर अर्ध-विवृत स्वरों का प्रयोग होता जा रहा है।

आधुनिक काल में शब्द-समूह में भी विशेष परिवर्तन हुए हैं, और होते जा रहे हैं। इधर अँग्रेज़ी शब्द बहुत अधिक आए हैं, और वे हमारी भाषा के अंग बन गए हैं। १९०० के बाद, छायावादी धारा में तत्सम शब्दों का प्रयोग बहुत बढ़ गया। इसका कारण सांस्कृतिक उत्थान, ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज तथा बँगला प्रभाव आदि था। आगे चलकर इसका परिणाम यह हुआ कि गद्य का शब्द-भण्डार भी संस्कृतनिष्ठ हो गया। प्रगतिवादी आन्दोलन ने १९३६ के बाद हमारी धारा गाँवों की ओर मोड़ी और उसके परिणामस्वरूप आंचलिक शब्द और मुहावरे साहित्यिक खड़ीबोली के अंग बनने लगे। इधर भारत की आज़ादी के बाद हमें पारिभाषिक शब्दों की विशेष आवश्यकता हुई है, अतः अनेक अन्तर्राष्ट्रीय शब्द अपनाए जा रहे हैं, नए शब्द बनाए जा रहे हैं, तथा भारत की अन्य भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किए जा रहे हैं। इस प्रकार हमारा शब्द-समूह बहुत विकसित होता जा रहा है। अब तक हमारी भाषा पत्र-व्यवहार, समाचार-पत्र एवं साहित्य की ही भाषा थी, अब उसे विज्ञान, वाणिज्य, विधि आदि का भी माध्यम बनना है। अतः स्वभावतः उसकी अभिव्यंजना-शक्ति में सर्वोन्मुखी विकास हो रहा है और वह दिनोंदिन सभी दृष्टियों से समर्थ एवं सम्पन्न होती जा रही है।

खड़ीबोली के विभिन्न रूप—खड़ीबोली का एक अर्थ उस बोली से लिया जाता है जो मेरठ के आसपास बोली जाती है। प्रस्तुत पुस्तक में उसे प्रायः **कौरवी** कहा गया है। खड़ीबोली का दूसरा अर्थ है, वह भाषा जिस पर आधुनिक परिनिष्ठित हिन्दी, उर्दू आदि आधारित हैं। यहाँ इसी अर्थ में खड़ीबोली नाम का प्रयोग किया गया है। साहित्यिक दृष्टि से **हिन्दी, उर्दू (रेख्ता, रेख्ती), हिन्दुस्तानी, दक्खिनी** इसके विभिन्न रूप हैं। भौगोलिक दृष्टि से प्रायः सभी नगरों की खड़ीबोली अपनी विशेषता लिये हुए है और इस प्रकार, इस दृष्टि से, खड़ीबोली के पचासों भेद हो सकते हैं। उदाहरण के लिए **कलकतिया खड़ीबोली** या **कलकतिया हिन्दुस्तानी** तथा **बम्बइया खड़ीबोली** या **बम्बइया हिन्दुस्तानी**, आदि।

उर्दू—'उर्दू' शब्द को सभी लोगों ने मूलतः तुर्की भाषा का माना है और इसका मूल अर्थ 'शाही शिविर' या 'खेमा' आदि माना है। मेरे अपने विचार में न तो यह शब्द मूलतः तुर्की भाषा का है, और न इसका मूल अर्थ 'खेमा' है। यह शब्द मूलतः कदाचित् चीनी भाषा का है। तुर्क, मंगोल तथा तातार, जिनमें यह शब्द विभिन्न रूपों तथा अर्थों में मिलता है, मूलतः हूणों के वंशज हैं। हूणों का मूल स्थान उत्तरी चीन में कहीं था। 'हूण' शब्द भी मूलतः चीनी भाषा का 'शान्-यू' है। 'शान्-यू' का अर्थ प्राचीन काल में 'लड़ाकू' या 'युद्धप्रिय' आदि था। चूँकि ऐसे लोग ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन काल में युद्ध करके 'राजा' बन जाया करते थे, अतः बाद में चीनी भाषा में 'शान्-यू' का अर्थ 'राजा' हो गया। चीनी लोगों ने युद्धप्रिय तथा लुटेरा होने के कारण हूणों को यही नाम दे दिया। 'शान्-यू' शब्द ही बिगड़कर 'हून', 'ह्यूङ्' या 'हूण' हो गया। यह शब्द पहली सदी के आसपास चीनी में 'ह्यूङ्-नू' (Hiung-nu) के रूप में मिलता है। इन हूणों का एक क़बीला ह्वांगहो नदी के किनारे था, जिसे चीनी 'ओर्दू' कहा करते थे। इन्हीं के आधार पर ह्वांगहो नदी के किनारे का वह स्थान (चीन में) 'ओर्दुस' कहलाता है। 'ओर्दू' का मूल अर्थ चीनी में 'घुमक्कड़' या 'यायावर' था। इन लोगों की घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के कारण ही चीनी इन्हें 'ओर्दू' कहा करते थे। पहली सदी ई० से कुछ पूर्व ही चीनों लोगों ने इन सभी लोगों को वहाँ से खदेड़ा और हूणों के साथ ये मंगोलिया होते मध्यएशिया में चले आए। ये लोग खेमों में रहा करते थे, अतः धीरे-धीरे इस क़बीले का नाम 'ओर्दू' इन लोगों के खेमों के लिए प्रयुक्त होने लगा। यों, यूरोप की कई भाषाओं में 'ओर्दू' से निकलने वाले शब्दों का प्रयोग अब भी मूल अर्थ (अर्थात् 'घुमक्कड़ जाति') में ही होता है। उदाहरणार्थ अंग्रेज़ी 'होर्ड' (Horde) का अर्थ यही है।

तुर्क (जो मूलतः हूणों के वंशज थे) इतिहास में ४थी सदी के आसपास दिखाई पड़ते हैं। उसके पहले ये हूणों (जिसमें हूण, तातार, ओर्दू आदि सभी थे) के अंग थे। परम्परागत रूप में तुर्की में भी 'ओर्दू' या 'ओर्दु' शब्द आया। उस समय इस शब्द के दोनों अर्थ ('यायावर जाति' तथा 'खेमा') चल रहे थे। कभी-कभी अन्य अर्थों ('सेना' या 'सैनिक पड़ाव') में भी इसका प्रयोग होता था। 'ओर्दु' का 'ओर्द' रूप भी मिलता है। यूरोप में इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग १३वीं सदी पूर्वार्द्ध में 'ओर्दम' (Ordam) रूप में है। यूरोप में यह शब्द कई रूपों में कई भाषाओं में प्रयुक्त हुआ है। उदाहरणार्थ, पोलिश होर्द (Horda), जर्मन होर्डे (Horde), फ्रांसीसी होर्द (Horde), अँग्रेज़ी होर्ड (Horde) तथा रूसी ओर्दा (Orda) आदि। इन भाषाओं में इस शब्द के तुर्की के अतिरिक्त मंगोली भाषा से भी जाने की सम्भावना है, क्योंकि मंगोली में भी यह शब्द चीनी से आ चुका था। बल्कि कुछ तुर्की विद्वानों का तो यह कहना है कि उनके यहाँ यह शब्द कदाचित् मंगोली से ही आया। प्राचीन उज़बेक में 'आर्दू' 'किले' के अर्थ में, तथा पश्तो में 'लश्करी पड़ाव' के अर्थ में मिलता है। उज़बेकिस्तान की राजधानी ताशकन्द में 'उर्दा' शहर के एक विशेष भाग का नाम है जहाँ पहले शाही स्थान था। तुर्कों के साथ यह शब्द भारत में आया।

इस तरह, यह शब्द, चीन से चलकर मंगोलिया और तुर्की होते तुर्कों के साथ भारत में आया। हॉब्सन-जॉब्सन के अनुसार यह शब्द बाबर के समय में भारत में आया, किन्तु मैं समझता हूँ कि बाबर से पूर्व ही तुर्कों के साथ यह भारत आ चुका था। उस समय इसके अर्थ 'खेमा', 'तम्बू', 'फ़ौजी पड़ाव' आदि थे तथा उसका रूप 'ओर्दू' से 'उर्दू' हो चुका था। 'ऊ' पर अतिरिक्त बलाघात के कारण 'ओ' कोमल होकर 'उ' हो गया। यहाँ आने पर इसका अर्थ 'छावनी या लश्कर का बाज़ार' या 'वह बाज़ार जहाँ सब तरह की चीजें मिलती हों' आदि भी हो गया। आक्रमणकारी मुसलमान फ़ौजी पड़ावों में रहते थे तथा वहाँ उनका ज़रूरी चीज़ों के लिए बाज़ार भी होता था। 'सेना के बाज़ार' अर्थ में ही भारत के कई नगरों (दिल्ली, गोरखपुर, ग़ाज़ीपुर आदि) में 'उर्दू बाज़ार' नाम मिलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुग़ल बादशाहों के 'फ़ौज़ी पड़ावों' के लिए भी 'उर्दू' शब्द चलता था। इन बादशाहों के सिक्के कभी-कभी पड़ावों में ही ढालने पड़ते थे, इसीलिए सिक्कों पर टकसाल का नाम प्रायः 'उर्दू' लिखा मिलता है। बाबर के कुछ सिक्कों पर 'उर्दू' लिखा है। इसी प्रकार अकबर के भी कुछ सिक्कों पर 'उर्दू-ए-ज़फ़र क़रीन' (अर्थात् 'विजय-श्री से युक्त उर्दू' अर्थात् 'विजयी शाही पड़ाव') या 'उर्दू' लिखा है। जहाँगीर ने कभी दक्षिण जाते समय रास्ते में अपने शाही पड़ाव में सिक्के ढलवाये थे। उसका एक सिक्का ऐसा मिला है, जिस पर टकसाल का नाम 'उर्दू-दर-राहे-दक्कन' (अर्थात् 'दक्षिण के राह में का पड़ाव') लिखा है। शाहजहाँ ने कदाचित अकबर के अनुकरण पर अपने टकसाल का नाम ही 'उर्दू-ए-ज़फ़र-क़रीन' रख लिया था। इस तरह बाबर से लेकर शाहजहाँ तक 'उर्दू' शब्द 'शाही पड़ाव' या 'शाही फ़ौज़ी पड़ाव' आदि के अर्थों में प्रयुक्त होता रहा।

इन पड़ावी सैनिकों ने, बाबर के काल में, दिल्ली के आसपास प्रचलित (कौरवी-बाँगरू-पूर्वी पंजाबी-ब्रज मिश्रित) लोकभाषा को अपनाया। बाद में जब राजधानी आगरे से चली गई तो शाही फ़ौजी पड़ाव वहाँ गया और इन फ़ौजियों की भाषा पर ब्रजभाषा का अतिरिक्त रंग चढ़ गया। इस प्रकार मुग़ल बादशाहों के साथ रहने वालों की भाषा वह थी, जिसके शब्द-समूह में अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्द काफ़ी थे, किन्तु जिसका व्याकरण मूलतः कौरवी का था, किन्तु साथ ही पंजाबी, बाँगरू, ब्रज आदि के तत्त्व भी उसमें थे।

शाहजहाँ ने अपनी राजधानी फिर आगरा से दिल्ली बदल ली और अपने नाम पर 'शाहजहानाबाद' आबाद किया। यहाँ उसने लाल क़िला बनवाया। यह भी उसका एक प्रकार से शाही फ़ौजी पड़ाव, अतः उर्दू था। स्थायी, बड़ा तथा सुन्दर होने के कारण, इसका नाम मात्र 'उर्दू' न होकर 'उर्दू-ए-मुअल्ला' हो गया। 'मुअल्ला' अरबी भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'श्रेष्ठ'। अर्थात्, यह 'श्रेष्ठ शाही पड़ाव' था। क़िला होने के कारण कुछ लोग इसे 'क़िला-मुअल्ला' तथा लाल पत्थर का बना होने के कारण सामान्य लोग इसे 'लाल क़िला' भी कहते थे।

इस समय तक शाही पड़ाव की भाषा कदाचित् एक निश्चित रूप ले चुकी थी, अतः इस भाषा को 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' (अर्थात् 'श्रेष्ठ शाही पड़ाव की भाषा') कहा गया। इस तरह शाहजहाँ और उसके शाहजहाँनाबाद (जहाँ 'उर्दू-ए-मुअल्ला' या 'लाल क़िला' है) से उर्दू भाषा का सम्बन्ध माना गया है। इसीलिए उर्दू को कभी-कभी 'शाहजहाँनी उर्दू' भी कहते हैं। यों यह निश्चय के साथ कहना कठिन है कि शाहजहाँ के समय में उर्दू का यह नाम चल पड़ा था या नहीं। इंशा अल्ला खाँ आदि प्राचीन लेखकों को भी इस बात में सन्देह रहा है। अस्तु, यदि उसके समय में नहीं तो कुछ ही समय बाद, १७०० के कुछ पूर्व ही, यह मूल नाम चल पड़ा, जैसा कि आगे संकेत किया है। भाषा के नाम के रूप में 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' शब्द बड़ा था, इसलिए धीरे-धीरे प्रयोग में आने पर यह छोटा होने लगा। पहले 'मुअल्ला' शब्द हटा और यह 'ज़बान-ए-उर्दू' ही कही जाने लगी। इसी का अनुवाद कुछ लोगों ने 'उर्दू की ज़बान' या 'लैंग्विज ऑव् उर्दू' किया है। कुछ दिन और बीतने पर 'ज़बान' शब्द भी छूट गया और 'ज़बान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' केवल 'उर्दू' रह गई।

'उर्दू' भाषा के मूल विकास की दृष्टि से कहा जा सकता है कि नाम यद्यपि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं था, किन्तु इसका बीज किसी-न-किसी रूप में उसी समय पड़ा, जब १२०७ ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली को राजधानी बनाया। दिल्ली की लोकभाषा को अपने शब्द-समूह की छौंक के साथ मुसलमान सिपाहियों ने उसी समय सबसे पहले अपनाया होगा। बाबर के आगमन तक स्थिरता की कमी के कारण इसका विशेष विकास नहीं हुआ। बाबर और शाहजहाँ के बीच इसने पर्याप्त उन्नति कर ली। इतनी उन्नति कर ली कि शाहजहाँ के शासन की समाप्ति के लगभग ५० वर्ष बाद ही इसमें काव्य-रचना का प्रारंभ हो गया। उस समय इस भाषा को 'हिन्द' की होने के कारण 'हिन्दी' या अरबी-फ़ारसी शब्दों से मिश्रित होने के कारण 'रेख्ता' कहते थे।

भाषा के अर्थ में 'उर्दू' के प्रयोग का प्रारम्भ कब हुआ, यह अब भी विवादास्पद विषय है। लोगों ने तरह-तरह के मत व्यक्त किये हैं। मौलाना सैयद सुलेमान नदवी कहते हैं कि 'उर्दू का नाम १३वीं सदी हिजरी (अर्थात् १९वीं सदी) में एकाएक आ गया' (हिन्दुस्तानी, जनवरी १९३६, पृ० १७)। डॉ० ग्राहम बेली तथा डॉ० ताराचन्द आदि का कहना है कि 'उर्दू' का भाषा के निश्चित अर्थ में सबसे पुराना प्रयोग मसहफ़ी में मिलता है। मसहफ़ी का एक शेर है—'खुदा रक्खे ज़बाँ हमने सुनी है, मीर-वो-मिरज़ा की; कहें किस मुँह से हम ऐ मसहफ़ी 'उर्दू' हमारी है।' मसहफ़ी की मृत्यु १८२४ ई० में हुई। अनुमान है कि १८०० के आसपास यह शेर लिखा गया, क्योंकि शेर से लगता है कि मीर और सौदा की मृत्यु के बाद यह लिखा गया होगा। सैयद यहतिशाम हुसेन अपने 'उर्दू साहित्य के इतिहास' में लिखते हैं कि १८वीं सदी के अन्त तक उर्दू नाम भाषा के अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ। इसी प्रकार और भी अनेक लोगों द्वारा इसी से मिलते-जुलते मत व्यक्त किये गये हैं।

वस्तुतः भाषा के लिए 'ज़बाने-उर्दू-ए-मुअल्ला' का प्रयोग १७०० से कुछ पूर्व ही चल पड़ा, और १७४० तक यह घिसते-घिसते 'ज़बाने-उर्दू-ए-मुअल्ला' से 'ज़बाने उर्दू' तथा 'ज़बाने-उर्दू' से 'उर्दू' हो गया। इस शब्द का अकेले प्राचीनतम प्रयोग जहाँ तक मुझे ज्ञात है, सन् १७४० में लिखित 'मआसिरुल उमरा' में आया है। उसमें लेखक उर्दू में शेर कहे जाने की बात लिखता है। उसके बाद से 'उर्दू' शब्द चल पड़ा, हालाँकि इसके लिए 'हिन्दी और 'रेख्ता' नाम कहीं अधिक प्रचलित थे। तब से १९वीं सदी के मध्य के कुछ पूर्व तक 'उर्दू' शब्द के अनेक स्थलों पर प्रयोग मिलते हैं, यद्यपि उस समय तक भी 'उर्दू' शब्द उर्दू भाषा का एकमात्र नाम उस रूप में नहीं बन सका था, जैसा कि उसके बाद हो गया। इन प्रयोगों में कुछ यहाँ उल्लेख्य हैं। प्रसिद्ध कवि आरज़ू (१६८७-१७५४) ने अपनी दो पुस्तकों—'नवादिरुल अलफ़ाज़' तथा 'मुस्मर' में 'उर्दू' शब्द का कई स्थानों में प्रयोग किया है। उदारहणार्थ, 'नवादिरुल अलफ़ाज़' (रचना-काल १७५१ ई०) में 'गज़क' शब्द के बारे में लिखते हुए कवि कहता है—दर इस्तलाहे अहले उर्दू नव अस्त अज़ शीरीनी कि अज़ कुंजद व शकर साज़द'। अन्य बहुत से शब्दों के सम्बन्ध में लिखते हुए भी इस पुस्तक में 'उर्दू' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी के आसपास मीर (१७१२-१८१०) नेकातुश्शुअरा के दीबाचे में लिखते हैं—'दर फ़ने रेखता कि शेरस्त बतौर शेर फ़ारसी बज़बाने उर्दू-ए-मोअल्ला शाहजहाँनाबाद देहली।' क़ाइम की 'मिखज़ने निकात' (१७५४ ई०) में भी यह शब्द आया है। इसी प्रकार १८०३ ई० में लिखित 'तज़किरः मख़ज़नउल्ग़रायब' में मिरज़ा मज़हर जानजाना के सम्बन्ध में आता है—'दर जबाने हिन्दी कि मुराद उर्दू अस्त।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उर्दू के लिए विभिन्न कालों में 'हिन्दुस्तानी', 'हिन्दवी', 'रेख्ता', 'हिन्दी' तथा 'हिन्दवी उर्दू' आदि नामों का प्रयोग हुआ है। 'रेख्ता' नाम मोटे तौर पर १८वीं सदी के प्रारम्भ से, लगभग १९वीं के मध्य तक, विशेषतः उर्दू के लिए, चलता रहा है। 'हिन्दुस्तानी' नाम फ़ोर्ट विलियम कॉलिज के रिकार्डों में ही 'उर्दू' के लिए सर्वप्रथम प्रयुक्त हुआ, और चलता भी रहा। आगे चल कर, इस सदी में प्रायः हिन्दी-उर्दू के बीच की शैली के लिए 'हिन्दुस्तानी' नाम का प्रयोग हुआ है। गांधी जी की 'हिन्दुस्तानी' यही है। यों अब भी कभी-कभी 'हिन्दुस्तानी' नाम से लिखी जाने वाली भाषा 'हिन्दुस्तानी' न होकर 'उर्दू' होती है। उर्दू के उत्पत्ति-काल से लेकर, प्रायः १९वीं सदी के प्रथम चरण तक, 'हिन्दी' नाम 'उर्दू' के लिए भी चलता रहा। उर्दू के मीर, ग़ालिब आदि अनेक कवियों ने 'हिन्दी' शब्द का 'उर्दू' के लिए प्रयोग किया है। अन्य नामों का प्रयोग व्यापक रूप से अधिक दिनों तक लगातार न होकर, प्रायः कभी-कभार ही हुआ है।

उर्दू भाषा कैसे बनी या उसकी उत्पत्ति किस भाषा से हुई, इस बात को लेकर विद्वानों में विवाद रहा है। कुछ लोग इसकी उत्पत्ति फ़ारसी या अरबी-फ़ारसी से मानते रहे हैं। स्पष्ट ही इन लोगों का ध्यान मात्र शब्दावली पर रहा है, व्याकरण पर नहीं, जो वास्तविक रूप में भाषा का मूल होता है। प्रो० आज़ाद ने 'आबे-हयात' में ब्रजभाषा से उर्दू का जन्म माना है। किन्तु ब्रजभाषा से उर्दू के व्याकरण की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि उर्दू में कुछ बातें ब्रज की अवश्य हैं, किन्तु वे इतनी थोड़ी हैं कि ब्रज से उर्दू को उत्पन्न नहीं माना जा सकता। कभी वेली तथा कुछ अन्य लोगों ने यह मत प्रकट किया था कि 'उर्दू' पंजाबी या लाहौरी से उत्पन्न हुई है। पंजाबी के भी कुछ रूप उर्दू में अवश्य हैं, किन्तु ब्रज की तरह ही वे इतने कम हैं कि पंजाबी से उर्दू की उत्पत्ति नहीं मानी जा सकती। इसी प्रकार कुछ लोगों ने मुसलमानों से सिंध का प्राचीन सम्बन्ध दिखलाते हुए उर्दू की उत्पत्ति सिन्ध में, सिंधी से मानी है, जो और भी असंभव है। वली को दक्खिनी का अन्तिम तथा उर्दू का प्रथम कवि देखकर कुछ लोगों ने उर्दू की उत्पत्ति दक्षिण में भी मानी है। इस प्रकार अनेकानेक मत व्यक्त किये गए हैं। किन्तु जैसा कि ऊपर दिखाया जा चुका है, वस्तुतः खड़ीबोली या आधुनिक परिनिष्ठित हिन्दी की तरह ही उर्दू भी मूलतः दिल्ली के आसपास की खड़ीबोली पर आधारित है, जिसमें कुछ रूप (मूल या विकसित रूप में) पूर्वी पंजाबी, बाँगरू तथा ब्रज के भी हैं। पुरानी हिन्दी की तरह, पुरानी उर्दू में कुछ रूप अवधी के भी मिलते हैं। इस प्रकार व्याकरणिक दृष्टि से हिन्दी-उर्दू, कुछ अपवादों को छोड़कर, प्रायः पूर्णतः एक हैं। मूल अन्तर केवल शब्दावली का है। साहित्यिक उर्दू में अरबी-फ़ारसी शब्द अधिक होते हैं, किन्तु यह अन्तर साहित्य के स्तर पर ही अधिक है। सामान्य, व्यावहारिक या बोलचाल के स्तर पर हिन्दी-उर्दू दोनों ही, अपने कठिन संस्कृत या अरबी-फ़ारसी शब्दों को छोड़कर प्रायः एक हो जाती हैं, जिसे गांधी जी हिन्दुस्तानी कहा करते थे। इधर हिन्दी तथा उर्दू दोनों का कुछ साहित्य भी उस भाषा में लिखा गया है। इसीलिए उर्दू को हिन्दी की फ़ारसी-अरबी शब्दावली से युक्त शैली कहना अधिक समीचीन है। दोनों का व्याकरण प्रायः पूर्णतः एक होने पर, इन्हें अलग भाषाएँ मानना न तो व्यावहारिक है और न वैज्ञानिक।

उर्दू भाषा कैसे बनी, इस बात को लेकर इन्शा ने कहा है कि उस काल की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रचलित भाषा में से कुछ भाषाओं के शब्दों को निकाल कर, और उनके स्थान पर कुछ शब्द रखकर, तथा कुछ हेर-फेर करके उर्दू भाषा बनाई गई। वे 'दरिया-ए-लताफ़त' में लिखते हैं—'यहाँ के खुशबयानों ने मुत्तफ़िक होकर मुताद्दिद ज़बानों से अच्छे-अच्छे लफ्ज़ निकाले, और बाज़ी इबारतों और अल्फ़ाज़ में तसर्रुफ़ करके और ज़बानों से अलग एक नई ज़बान पैदा की, जिसका नाम उर्दू रक्खा।' इसी आधार पर श्री चन्द्रबली पांडेय ने अपनी कई पुस्तकों में यह मत प्रकट किया है कि हिन्दी शब्दों को निकालकर तथा उनके स्थान पर अरबी-फ़ारसी आदि के शब्दों को रखकर उर्दू भाषा बनाई गई। डॉ० उदयनारायण तिवारी भी चन्द्रबली पांडेय से सहमत हैं। किन्तु तर्क की कसौटी पर यह मत ठहरता नहीं। उर्दू के बनने के सैकड़ों वर्ष बाद इंशा यह बात लिख रहे थे। स्पष्ट ही उनका यह अनुमान मात्र है, यदि कोई ठोस प्रमाण होता तो उन्होंने अवश्य दिया होता। वस्तुतः इस रूप में भाषा बनाने का उदाहरण विश्व में कहीं नहीं मिलता। उर्दू वैसे ही बनी, जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है। अर्थात्, तत्कालीन 'हिन्दवी' जब मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त हुई, तो सहज ही उसका व्याकरण अपना कर भी उसके सारे-के-सारे शब्द मुसलमान नहीं अपना सके। संज्ञा, विशेषण तथा क्रियाविशेषण आदि फ़ारसी के ही प्रयुक्त होते रहे, जिनका वे फ़ारसी आदि बोलने में प्रयोग करते थे। इस प्रकार मेरी और उपर्युक्त विद्वानों की बात प्रायः एक ही है। अन्तर केवल यह है कि इन्शा और उनके साथ पांडेय जी तथा डॉ० उदयनारायण तिवारी कहते हैं कि उर्दू बनाई गई, कुछ लोगों द्वारा मिलकर। किन्तु परिस्थितियाँ यह कहती हैं कि उर्दू बन गई। आज तो भाषा बनाई जा सकती है, किन्तु उस काल में जब भाषा के प्रति वर्तमान जागरूकता नहीं थी, भाषा बनाए जाने की बात गले से नीचे नहीं उतरती। ऐसी स्थिति में उर्दू के बन जाने की बात ही मानी जा सकती है, बनाए जाने की नहीं।

उर्दू भाषा के प्रारम्भ की समस्या साहित्य के सन्दर्भ में भी विचारणीय है। उर्दू साहित्य के अध्येताओं द्वारा इस सम्बन्ध में प्रायः विरोधी मत प्रकट किए गए हैं। एक ओर तो उर्दू का आरम्भ खुसरो आदि से माना गया है तथा 'दक्खिनी' को 'दक्खिनी उर्दू' कहकर उसके पूरे साहित्य को उर्दू की सम्पत्ति माना गया है, और दूसरी ओर वली को, जो 'दक्खिनी' के अन्तिम कवि हैं, उर्दू का प्रथम कवि माना गया है। वस्तुतः उर्दू नाम तथा उसके वर्तमान स्वरूप को यदि दृष्टि में रखा जाय तो इसके साहित्य का प्रारम्भ १७०० के आसपास से ही माना जाना चाहिए, किन्तु भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से उसकी पूर्ववर्ती भाषा को उर्दू से अलग नहीं रखा जा सकता। वास्तविकता यह है कि उर्दू, हिन्दी की ही एक शैली है, अतः अपने मूल में उर्दू उतनी ही पुरानी है, जितनी पुरानी कि हिन्दी। हाँ, स्वतंत्र शैली के रूप में इसका जन्म मुसलमानों के भारत में जमने के बाद हुआ, तथा साहित्य में इसका प्रयोग १७०० के आसपास हुआ है और तबसे इसके इतिहास या विकास को दो कालों में बाँटा जा सकता है। प्रथम काल लगभग १८०० के पूर्व का है और दूसरा इसके बाद का। प्रथम काल के प्रमुख कवि वली, आबरू, हातिम, दर्द, सौदा, मीर आदि हैं तथा दूसरे काल के मोमिन, ज़ौक, ग़ालिब, दाग़, हाली, जिगर, इक़बाल, फ़िराक़ आदि। प्रथम काल में उर्दू भाषा में ब्रज, अवधी तथा दक्खिनी का भी प्रभाव था, किन्तु परवर्ती उर्दू इन प्रभावों से मुक्त हो गई। इधर पाकिस्तान के बनने के बाद, उर्दू पाकिस्तान की राष्ट्र-भाषा घोषित हो गई है, और इस प्रकार उसमें, अब साहित्य-रचना पाकिस्तान तथा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दुस्तान, दोनों ही देशों में हो रही है। अभी तक दोनों देशों की उर्दू में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु सम्भावना यह है कि आगे चलकर एक ओर पाकिस्तान की उर्दू, जहाँ सिंधी-पश्चिमी पंजाबी शब्दों से कुछ युक्त होगी, तो भारतीय उर्दू में कुछ संस्कृत के तत्सम-तद्भव शब्द आ जाएँगे।

पाकिस्तान के बनने के पूर्व भारत में उर्दू के दिल्ली, रामपुर, लखनऊ, हैदराबाद, ये चार केन्द्र थे। इन चारों—प्रमुखतः दिल्ली और लखनऊ—की उर्दू में मुहावरा आदि की दृष्टि से कुछ अन्तर था। अब यह अन्तर प्रायः समाप्त हो गया है। यों व्याकरणिक दृष्टि से अब भी उर्दू में एकाधिक शैलियाँ (कुछ लोग कहते हैं 'मुझे रोटी खानी है' और कुछ कहते हैं 'मुझे रोटी खाना है') चल रही हैं।

रेख्ता—'रेख्ता' या 'रेखता' शब्द का प्रयोग, उर्दू में एक प्रकार की 'गज़ल', संगीत के एक पारिभाषिक शब्द, तथा एक प्रकार की भाषा के लिए मिलता है। मूलतः यह शब्द फ़ारसी के 'रेखतन्' मस्दर से बना है, जिसका अर्थ 'रचना', 'बनाना', 'डालना', 'मिलाना', 'तोड़ना' आदि होता है। संस्कृत की 'रिच्' धातु तथा फ़ारसी का 'रेखतन्' मस्दर मूलतः एक है। 'रिच्' का अर्थ 'गिराना', 'अलगाना' आदि होता है। लैटिन, ग्रीक आदि में भी यह धातु है। 'रेख्ता' का फ़ारसी में अर्थ गिरा हुआ या 'गिराकर बनाया हुआ ढेर' आदि है। भारत में, 'रेख्ता' शब्द का प्रयोग पहले छन्द और संगीत के क्षेत्र में हुआ। इन दोनों ही क्षेत्रों में इसमें 'मिलने' या 'मिश्रण' का भाव है। फ़ारसी और भारतीय पद्धति को मिलाकर इनको बनाया गया। साथ ही ऐसे छन्दों को भी 'रेखता' कहा गया, जिनमें कुछ अंश फ़ारसी का तथा कुछ हिन्दी का हो, जैसे ख़ुसरो की प्रसिद्ध पंक्ति 'जहाल मस्कीं मकुन तग़ाफ़ुल दुराय नैना बनाय बतियाँ।' आगे इसी मिश्रण की दृष्टि से १७०० से कुछ पूर्व से १८०० से कुछ बाद तक की उर्दू की पद्य-भाषा 'रेख्ता' कही गई थी। इसमें, हिन्दी व्याकरण में अरबी-फ़ारसी शब्दों का मिश्रण था। ग़ालिब और उनके पूर्व के अधिकांश कवियों ने इसी अर्थ में 'रेख्ता' शब्द का प्रयोग किया। हिन्दी के भी बहुत-से कवियों ने रेख्ता का प्रयोग 'मिश्रित छन्द' या 'मिश्रित भाषा' या 'मिश्रित राग' के अर्थ में किया। आलम, पलटू, तुलसी, बूला साहब, गुलाल, किनाराम, ग़रीबदास, दरियादास, तथा भीखा साहब आदि के नाम इस दृष्टि से लिए जा सकते हैं। 'रेख्ता' के आधार पर ही औरतों की भाषा रेख्ती कहलाई। भाषा के प्रसंग में, 'रेख्ता' का प्रयोग प्रायः उर्दू के लिए (विशेषतः १७०० के कुछ पूर्व से १८०० के कुछ बाद तक) ही मिलता है।

रेख्ती—पुरुषों की भाषा से स्त्रियों की भाषा मुहावरा, प्रयोग आदि की दृष्टि से प्रायः भिन्न होती है। रंगीन आदि कुछ उर्दू कवियों ने स्त्रियों की भाषा में कविता लिखनी शुरू की, जिसे **बेगमाती जबान** या **बेगमाती उर्दू** कहा गया। बाद में 'रेख्ता' के आधार पर इस ज़नानी भाषा तथा इसमें की गई कविता के लिए 'रेख्ती' शब्द का प्रयोग किया गया। रेख्ती लिखने वाले कवियों में रंगीन के अतिरिक्त इंशा, अलीबेग नाजनी तथा जान साहब आदि के नाम प्रमुखतः लिये जा सकते हैं।

हिन्दुस्तानी—यह शब्द मूलतः विशेषण (हिन्दुस्तान+ई) है, और इसका अर्थ है 'हिन्दुस्तान का' या 'भारतीय'। भाषा के अर्थ में 'हिन्दुस्तानी' शब्द का प्रयोग हिन्दी के एक रूप के लिए होता है। ग्रियर्सन, धीरेन्द्र वर्मा तथा कई अन्य लोगों का विचार है कि यह नाम यूरोपियों की देन है, किन्तु वस्तुतः यह नाम कहीं अधिक पुराना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। 'तुजुके बाबरी' में आता है 'मैंने उसे (दौलत खाँ लोदी को) अपने सामने बिठला-कर, एक व्यक्ति द्वारा, जो हिन्दुस्तानी भाषा भली-भाँति जानता था, अपनी हर बात उसे समझाने का आदेश दिया।' इस प्रकार कम-से-कम बाबर के समय से तो यह प्रयोग में है ही। यों मेरे विचार में यह शब्द भाषा के अर्थ में बाबर से भी पहले कदाचित् १५वीं सदी का है। आगे यह बाबर (१६वीं सदी), फ़रिश्ता (१७वीं सदी), टेरी (१६१६), वजही (१६३५), अमादुज्जी (१७०४), केटलियर (१७१५) तथा लेबिदोफ़ (१७९५) आदि में 'हिन्दुस्तानी' एवं 'इन्दोस्तान' आदि रूपों में मिलता है। भाषा के अर्थ में, प्रारम्भ में, यह शब्द 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' का पर्याय था, किन्तु बाद में १८वीं सदी में, इसका प्रयोग मुसलमानों की भाषा (केवल दक्षिणी भारत के या उत्तरी-दक्षिणी दोनों के) के लिए होने लगा। इस रूप में यह शब्द 'उर्दू' का पर्याय हो गया। १९वीं सदी में यह बात स्पष्टतः दिखाई पड़ती है। गार्सां द तासी (१९वीं सदी मध्य) के इतिहास के नाम 'इस्त्वार द ल लित्रेत्यूर ऐंदुई ए ऐंदुस्तानी' से भी इस बात का संकेत मिलता है। इसमें 'ऐंदुई' तो 'हिंदुवी' है और 'ऐंदुस्तानी' अर्थात् 'हिन्दुस्तानी', 'उर्दू'। हेनरी यूल तथा बर्नेल ने अपने प्रसिद्ध कोश 'हॉब्सन-जॉब्सन' (१८८६) में स्पष्टतः इसे उर्दू कहा है (Hindustani zaban 'the language of that country,' but in fact the language of the Mohommedans of Upper India, and eventually of the Mohommedans of the Deccan, developed out of the Hindi dialect of the Doab chiefly, and of the territory round Agra and Delhi, with a mixture of Persian vocables and phrases, and a readiness to adobt other foreign words. It is also called OORDOO....Old-fashioned Anglo-Indians used to call it the Moors.) तथा यह भी बतलाया है कि उसे पुराने ऐंग्लो-इंडियन 'मूर्स' कहा करते थे। १९०० के आसपास 'हिन्दुस्तानी' का प्रयोग कभी तो उर्दू के लिए और कभी-कभी हिन्दी-उर्दू के बीच की भाषा, अर्थात् 'सरल हिन्दी' या 'सरल उर्दू' के के लिए मिलता है। इसी आधार पर, ग्रियर्सन ने 'कौरवी' को 'वर्नाक्यूलर हिन्दुस्तानी' (इस दूसरे अर्थ में) कहा है। अँग्रेज़ों ने राष्ट्रीयता के जागरण को दबाने के लिए हिन्दू-मुसलमानों में विरोध उत्पन्न करने की नीति १९वीं सदी में ही अपना ली थी, और 'हिन्दुस्तानी' नाम की आड़ में वे अल्पसंख्यकों की भाषा उर्दू को प्रोत्साहित कर रहे थे। अन्य कारणों के अतिरिक्त इसका सामना करने के लिए भी, १८९३ ई० में 'नागरी प्रचारिणी सभा, काशी' की, तथा १९१० में 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' की स्थापना हुई। दिनोंदिन हिन्दी-उर्दू में विरोध बढ़ने लगा जो राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए घातक सिद्ध होने लगा। कांग्रेस के नेताओं ने इसका अनुभव किया, अतः १९२६ के कांग्रेस अधिवेशन (कानपुर) में राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने यह प्रस्ताव रखा कि आगे से कांग्रेस की कार्यवाही 'हिन्दुस्तानी' में हो। हिन्दुस्तानी से उनका अर्थ हिन्दी-उर्दू के बीच की सरल भाषा था। हिन्दी-उर्दू के झगड़े को दूर करने के लिए, दोनों को छोड़ इस नाम का प्रयोग किया गया था। यह सब गांधीजी की प्रेरणा से हुआ था। इस प्रकार इस सदी के दूसरे चरण के आरम्भ में गांधीजी ने 'हिन्दुस्तानी' शब्द में यह अर्थ (सरल हिन्दी या सरल उर्दू, या हिन्दी-उर्दू के बीच की भाषा) सदा-सर्वदा के लिए निश्चित कर दिया। आज भी 'हिन्दुस्तानी' नाम प्रायः इसी अर्थ में प्रयुक्त होता है। यों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीच-बीच में अब्दुल हक़, सैयद सुलेमान नदवी, डॉ० ताराचन्द, पं० सुन्दरलाल तथा कुछ अन्य लोगों ने 'हिन्दुस्तानी' नाम का प्रयोग 'उर्दू की ओर झुकी भाषा' के लिए भी किया, किन्तु जनता ने उसे कभी स्वीकार नहीं किया।

दक्खिनी—इसके अन्य नाम 'हिन्दी', 'हिन्दवी', 'दकनी', 'दखनी', 'देहलवी', 'गूजरी' (शाह बुरहानुद्दीन—यह सब गूजरी किया जबान), 'हिन्दुस्तानी', 'ज़बाने हिन्दुस्तान', 'दक्खिनी हिन्दी', 'दक्खिनी उर्दू', 'मुसलमानी', 'दक्खिनी हिन्दुस्तानी' आदि हैं। दक्खिनी मूलतः हिन्दी का ही एक रूप है। इसका मूल आधार, दिल्ली के आसपास प्रचलित १४वीं-१५वीं सदी की 'खड़ीबोली' है। मुसलमानों ने भारत में आने पर इस बोली को अपनाया था। मसऊद, इब्नसाद, ख़ुसरो तथा फ़रीदुद्दीन शकरगंजी आदि ने अपनी हिन्दी कविताएँ इसी में लिखी थीं। १५वीं-१६वीं सदी में फ़ौज, फ़कीरों तथा दरवेशों के साथ यह भाषा दक्षिण भारत में पहुँची और वहाँ प्रमुखतः मुसलमानों में, तथा कुछ हिन्दुओं में जो उत्तर-भारत के थे, प्रचलित हो गई। इसके क्षेत्र प्रमुखतः दक्षिण भारत (बीजापुर, गोलकुण्डा, अहमदनगर आदि), बरार, बम्बई तथा मध्यप्रदेश आदि हैं। ग्रियर्सन इसे हिन्दुस्तानी का बिगड़ा रूप न मानकर उत्तर भारत की 'साहित्यिक हिन्दुस्तानी' को ही इसका बिगड़ा रूप मानते हैं। डॉ० चटर्जी इसे हिन्दुस्तानी नहीं, तो उसकी सहोदरा भाषा अवश्य मानते हैं। भाषावैज्ञानिक दृष्टि से, दक्खिनी को, मैं समझता हूँ कि मूलतः 'प्राचीन खड़ीबोली' मानना चाहिए, जिसमें पंजाबी, हरियानी, ब्रज, मेवाती तथा कुछ अवधी के रूप भी हैं। दक्षिण में जाने के बाद इस पर कुछ गुजराती-मराठी का भी प्रभाव पड़ा है। यह ध्यातव्य है कि उत्तरी भारत की पंजाबी, हरियानी, ब्रज, अवधी आदि भाषाओं के रूपों के मिलने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि इन सब का इस पर केवल प्रभाव है। वस्तुस्थिति यह है कि उस काल की भाषा कुछ इस प्रकार की मिश्रित थी ही। सभी बोलियों का स्पष्ट अलग-अलग विकास नहीं हुआ था। कबीर ने भी इसी मिश्रित भाषा का प्रयोग किया है। ग्रियर्सन के भाषा-सर्वेक्षण के अनुसार, दक्खिनी बोलने वालों की संख्या लगभग साढ़े छत्तीस लाख थी। आज भी उस क्षेत्र में, दक्खिनी (उर्दू नाम से) बोली जाती है, यद्यपि यह भाषा कई दृष्टियों से बदल गई है। परिवर्तन की दृष्टि से तीन बातें उल्लेखनीय हैं—(१) उर्दू भाषा का उस पर पर्याप्त प्रभाव पड़ गया है। (२) कुछ पुराने रूप विकसित होकर कुछ-के-कुछ हो गए हैं। (३) शब्द-समूह में क्षेत्रानुसार तमिल, तेलुगु, कन्नड़ आदि भाषाओं का प्रभाव पड़ा है। १५वीं से १८वीं सदी तक दक्खिनी को बहमनी वंश के तथा अन्य राजाओं का आश्रय प्राप्त रहा और इसमें पर्याप्त साहित्य-रचना हुई। इसमें गद्य-साहित्य भी पर्याप्त प्राचीन मिलता है। खड़ीबोली गद्य का प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ दक्खिनी में ही मिलता है। इस गद्य-ग्रन्थ का नाम 'मिराजुल आशिकीन' है, जिसके लेखक ख्वाजा बन्दानवाज़ (१३१८-१४३०) हैं। दक्खिनी के साहित्यकारों में अब्दुला, वजही, निजामी, गवासी, गुलामअली तथा वेलूरी आदि प्रमुख हैं। उर्दू साहित्य का आरम्भ भी वस्तुतः दक्खिनी से ही हुआ है। उर्दू के प्रथम कवि वली (रचना-काल १७०० ई० के लगभग) ही दक्खिनी के अन्तिम कवि वली औरंगाबादी हैं। इस प्रकार दक्खिनी को एक प्रकार से उर्दू की जननी कह सकते हैं, यद्यपि भाषा और भाव दोनों ही दृष्टियों से दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। दक्खिनी की केवल लिपि ही फ़ारसी (या प्रचलित शब्दावली में उर्दू) है, अन्यथा इसकी भाषा में सामान्य हिन्दी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाँति ही, भारतीय परम्परा के शब्द पर्याप्त हैं। अरबी-फारसी शब्द उर्दू की तुलना में बहुत ही कम हैं। इसका क्षेत्र दक्षिण में होने के कारण ही इसका नाम दक्खिनी है। आज हिन्दीवाले, इसे 'हिन्दी' या 'दक्खिनी हिन्दी' कहकर, इसे अपनी भाषा और इसके साहित्य को अपने साहित्य का अंग मान रहे हैं, और उर्दू वाले 'कदीम उर्दू' या 'दक्खिनी उर्दू' कहकर इसे अपना अंग मान रहे हैं। वस्तुतः न केवल दक्खिनी भाषा, अपितु उसका साहित्य भी हिन्दी के निकट है। कुछ अपवादों को छोड़कर, उर्दू के विरुद्ध, दक्खिनी भाषा और साहित्य की आत्मा पूर्णतया भारतीय है। कुछ शब्द उदाहरण के लिए देखे जा सकते हैं: प्रकार, संचित, इन्द्रिय, अलिप्त, स्थूल, कल्पित (बुरहानुद्दीन में); गगन, कला, पवन, नीर, अधर, यौवन (कुली कुतुबशाह में); गम्भीर, अनूप, भाल, जीव (वजही में)। यों उर्दू भी हिन्दी की एक शैली ही है, बहुत सशक्त एवं सजीव शैली। ऐसी स्थिति में 'दक्खिनी हिन्दी' हिन्दी ही है। किसी भी दक्खिनी गद्य-लेखक या कवि ने उसके लिए 'उर्दू' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। ऐसी स्थिति में किसी भी रूप में, उर्दू नाम का प्रयोग, उसके लिए बहुत उचित नहीं कहा जा सकता।

'दक्खिनी' के लिए प्राचीन नाम 'हिन्दी' (यों देखत हिन्दी बोल—शाही मीराजी, पन्द्रहवीं सदी, अन्तिम चरण), 'देहलवी' और 'हिन्दवी' (यों मैं हिन्दवी कर आसान—शेख अशरफ़ (१५०३) नौसरहार में) मिलते हैं, जिसका आशय यह है कि उत्तर भारत से, भाषा के साथ ये नाम भी गए थे। बाद में सम्भवतः सत्रहवीं सदी के अन्तिम चरण में 'दक्खिनी' नाम प्रचलित हुआ। इसका प्रथम प्रामाणिक प्रयोग कदाचित् 'वजही' में है। वे अपनी कुतुबमुश्तरी (१६३८ ई०) में लिखते हैं—'दखिन में जो दखिनी मीठी बात का'। कुछ उर्दू लेखकों ने लिखा है कि दक्खिनी को बाद में 'रेख्ता' भी कहने लगे थे। वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। दक्खिनी के अन्तिम काल के कवियों (जैसे वली आदि) ने 'रेख्ता' का काव्य की एक विशेष शैली के लिए ही प्रयोग किया है। यह दक्खिनी का नाम नहीं है।

हिंदुई—'हिंदुई' शब्द 'हिंदू+ई' से बना है। हिंदवी, हिंदुई या हिन्दुवी नाम का प्रयोग प्राचीन हिंदी के लिए काफ़ी पहले से मिलता है। १३वीं सदी में औफ़ी और अमीर खुसरो ने इसका प्रयोग किया है। 'खालिकबारी' में 'हिंदी' और 'हिंदवी' दोनों का प्रयोग एक ही भाषा के लिए हुआ है, किन्तु हिंदी का प्रयोग केवल कुछ बार है, जबकि हिन्दवी का बहुत अधिक। इसका अर्थ यह हुआ कि पहले हिंदी की तुलना में हिन्दवी नाम ज्यादा प्रचलित था। धीरे-धीरे हिन्दवी नाम उस भाषा के लिए सीमित हो गया, जिसमें संस्कृत के शब्द अपेक्षाकृत अधिक थे, और हिन्दुस्तानी उस भाषा को कहने लगे जिसमें अरबी-फ़ारसी के शब्द ज्यादा हैं। गार्सां द तासी के इतिहास में 'हिन्दुई' तथा 'हिन्दुस्तानी' नाम ठीक इसी अर्थ में आए हैं। अब प्रायः लोग केवल 'दक्खिनी' या दक्खिनी तथा उसके पहले के उत्तर भारत के मसऊद, खुसरो तथा शकरगंजी आदि के साहित्य की भाषा के लिए ही प्रायः हिन्दुई या हिन्दवी नाम का प्रयोग करते हैं।

'हिन्दी' नाम—प्रायः सभी भाषाशास्त्रियों ने 'हिंदी' नाम का सम्बन्ध मूलतः सं० शब्द 'सिंधु' से माना है, जो नदी-विशेष का वाचक था। मेरे विचार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस नदी तथा आसपास के क्षेत्र का यह नाम मूलतः संस्कृत का नहीं है, तथा आर्यों के आने के पूर्व से चला आ रहा है, और उसका मूल द्रविड़ शब्द 'सिद्' या 'सित्' जो उस नदी तथा उसके आसपास के प्रदेश का आर्यपूर्व नाम था। (विस्तार के लिए दे० हिन्दी भाषा का वृहद् इतिहास में संबद्ध अंश)। 'सिन्धु' नाम उसी का संस्कृत बनाया हुआ रूप है। ईरान में जाकर यह 'सिंधु' शब्द ध्वनि-परिवर्तन से 'हिंदु' (स > ह, ध > द) हो गया और पहले तो यह सिंध प्रदेश का नाम था, फिर ईरानी, भारत के जितने भी भाग से परिचित होते गए, उसे इसी नाम से अभिहित करते गए, तथा धीरे-धीरे यह पूरे भारत का वाचक हो गया। 'हिंदु' शब्द आगे चलकर पुरानी फ़ारसी आदि में 'हिंद' बना और उसका भी अर्थ भारत था। इसी में 'ईक' प्रत्यय लगने से 'हिंदीक' बना जो ग्रीक में जाकर 'इंदीक', 'इंदिका' तथा अँग्रेज़ी आदि में 'इंडिया' बन गया। 'हिंदीक' में ही 'क' के लोप से 'हिंदी' शब्द बना जिसका मूल अर्थ है 'भारत का'। इसी आधार पर 'ज़बान-ए-हिन्दी' का अर्थ हुआ 'भारत की भाषा' और इसका प्रयोग समय-समय पर संस्कृत, प्राकृत तथा आधुनिक भाषाओं के लिए हुआ। धीरे-धीरे 'ज़बान-ए' लुप्त हो गया और केवल 'हिंदी' बचा तथा यह शब्द भारत की केन्द्रीय भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा। इस अर्थ में 'हिंदी' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफुद्दीन यज्दी के 'ज़फ़रनामा' (१४२४ ई०) में मिलता है। १९वीं सदी के प्रारंभ तक 'हिंदी' नाम 'उर्दू' के लिए भी आता था। हातिम, नासिख, सौदा, मीर तथा ग़ालिब आदि ने अपनी भाषा के लिए इस नाम का भी प्रयोग किया है। १८०० ई० में कलकत्ते में फ़ोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना के बाद अँग्रेज़ों की हिंदू-मुसलमान में फूट डालने की नीति ने उस एक ही मूल भाषा के संस्कृतनिष्ठ रूप के लिए 'हिंदी' तथा अरबी-फ़ारसी-निष्ठ रूप के लिए 'उर्दू' को रूढ़ कर दिया तथा कोशिश इस बात की भी की कि 'हिंदुओं' के साथ 'हिंदी' और 'मुसलमानों' के साथ 'उर्दू' संबद्ध हो जाए, जिसमें वे एक सीमा तक—किन्तु केवल एक सीमा तक—सफल भी हुए।

वस्तुतः शब्दों में अरबी-फ़ारसी तथा संस्कृत के आधिक्य की बात छोड़ दें, तो हिन्दी-उर्दू में कोई खास अंतर नहीं है। दोनों ही एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं। इसीलिए प्रारम्भ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग हिन्दी और उर्दू दोनों के लिए होता था। तज़किरा मख़ज़न-उल-ग़रायब में आता है 'दर ज़बाने हिन्दी कि मुराद उर्दू अस्त'। इस उद्धरण में हिन्दी उर्दू का समानार्थी है तो दूसरी तरफ़ हिन्दी सूफ़ी कवि नूर मुहम्मद ने कहा है—

हिन्दू मग पर पाँव न राख्यौ।
का बहुतै जो हिन्दी भाख्यौ॥

यहाँ इस शब्द का प्रयोग हिन्दी के लिए है। वस्तुतः यदि अँग्रेज़ बीच में न पड़े होते तो आज ये दोनों एक भाषाएँ होतीं। यों भाषाविज्ञानवेत्ता आज भी इन दोनों को एक ही भाषा की दो शैलियाँ मानते हैं।

'हिंदी' शब्द का अर्थ—'हिन्दी' शब्द का प्रयोग आज मुख्य रूप से तीन अर्थों में हो रहा है—

(क) 'हिन्दी' शब्द अपने विस्तृततम अर्थ में हिन्दी-प्रदेश में बोली जाने वाली १७ बोलियों का द्योतक है। 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में 'हिन्दी' शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रयोग इसी अर्थ में होता है, जहाँ ब्रज, अवधी, डिंगल, मैथिली, खड़ीबोली आदि प्रायः सभी में लिखित साहित्य का विवेचन हिन्दी के अंतर्गत किया जाता है।

(ख) भाषाविज्ञान में प्रायः 'पश्चिमी हिंदी' और 'पूर्वी हिन्दी' को ही हिन्दी मानते रहे हैं। ग्रियर्सन ने इसी आधार पर हिन्दी-प्रदेश की उपभाषाओं को राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी कहा था, जिनमें 'हिंदी' शब्द का प्रयोग नहीं है, किन्तु अन्य दो को हिन्दी मानने के कारण 'पश्चिमी हिन्दी' तथा 'पूर्वी हिन्दी' नाम दिया था। इस प्रकार इस अर्थ में 'हिन्दी' आठ बोलियों (ब्रज, खड़ीबोली, बुन्देली, हरियाणी, कनौजी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढ़ी) का सामूहिक नाम है।

(ग) 'हिन्दी' शब्द का संकुचिततम अर्थ है 'खड़ीबोली हिन्दी' जो आज हिन्दी प्रदेशों की सरकारी भाषा है, पूरे भारत की राजभाषा है, समाचार-पत्रों, फ़िल्मों में जिसका प्रयोग होता है तथा जो हिन्दी-प्रदेश के शिक्षा का माध्यम है और जिसे 'परिनिष्ठित हिन्दी' या 'मानक हिन्दी' आदि नामों से भी पुकारते हैं। उर्दू भी इसी का एक शैलीय रूपांतर है।

उद्भव और विकास

वैदिक संस्कृत-काल में आर्यभाषा-प्रदेश में तीन स्थानीय बोलियाँ विकसित हो चुकी थीं : पश्चिमोत्तरी, मध्यवर्ती, पूर्वी। पालि-काल में एक और स्थानीय बोली दक्षिणी का विकास हो गया। इस प्रकार स्थानीय बोलियों की संख्या चार हो गई। प्राकृत-काल में स्थानीय बोलियाँ धीरे-धीरे छः-सात हो गईं, जिनके नाम थे ब्राचड, केकय, टक्क, शौरसेनी, माहाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी। इन्हीं से अपभ्रंश-काल में छः-सात अपभ्रंशीय स्थानीय बोलियों का विकास हुआ जिन्हें प्राकृतों के नाम के आधार पर उन्हीं नामों से पुकारा जा सकता है : ब्राचड, केकय, टक्क, शौरसेनी, माहाराष्ट्री, अर्धमागधी, मागधी। इन्हीं अपभ्रंशों से आधुनिक भारतीय भाषाएँ उद्भूत हुई हैं : ब्राचड→सिंधी, केकय→लहँदा, टक्क→पंजाबी, माहाराष्ट्री→मराठी, शौरसेनी→गुजराती, **राजस्थानी**, **पश्चिमी हिंदी**, **पहाड़ी**, अर्धमागधी→**पूर्वी हिंदी**, मागधी→**बिहारी**, बंगला, असमी, उड़िया।

इस प्रकार हिंदी जो पाँच उपभाषाओं अथवा बोली-समूहों (पश्चिमी हिंदी, पूर्वी हिंदी, राजस्थानी, पहाड़ी, बिहारी) का सामूहिक नाम है, शौरसेनी, अर्धमागधी तथा मागधी अपभ्रंश से १००० ई० के आसपास उद्भूत हुई। यहाँ एक बात संकेत करने की है कि यों तो हिंदी के कुछ रूप पालि में मिलने लगते हैं, प्राकृत में उनकी संख्या और भी बढ़ जाती है तथा अपभ्रंश में उनमें और भी वृद्धि हो गई है, किन्तु सब मिलाकर इनका प्रतिशत इतना कम है कि १००० ई० के पूर्व हिंदी का उद्भव नहीं माना जा सकता। साहित्य के इतिहासों में कुछ लोगों ने हिंदी का प्रारंभ और भी बाद में माना है; किंतु वास्तविकता यह है कि साहित्य में प्रयोग के आधार पर वे निष्कर्ष आधारित हैं और साहित्य में भाषा का प्रयोग जन्म के साथ ही नहीं हो जाता। जब किसी भाषा में जनमने के बाद कुछ प्रौढ़ता आ जाती है, उसका रूप निखर आता है तथा वह बहुस्वीकृत हो जाती है, तभी साहित्यकार उसे

---

१. पीछे हम देख चुके हैं कि हिंदी और उर्दू एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं। यहाँ विकास में उर्दू को भी समाहित कर लिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है। इस तरह यदि लगभग ११५० ई० के आसपास से भी हिंदी साहित्य मिले तो भी उस भाषा का आरंभ १००० ई० के आसपास ही मानना पड़ेगा।

विकास अथवा इतिहास

हिंदी भाषा १००० ई० में जनम कर विकसित होते-होते अब लगभग १००० वर्षों की हो गई है। उसके इन १००० वर्षों के इतिहास अथवा विकास को तीन कालों में बाँटा जाता है—

(१) आदिकाल (१००० ई० से १५०० ई०)

हिंदी भाषा अपने आदिकाल में सभी बातों में अपभ्रंश के बहुत अधिक निकट थी, क्योंकि उसी से हिंदी का उद्भव हुआ था। आदिकालीन हिंदी की मुख्य विशेषताएँ नीचे दी जा रही हैं—

ध्वनि—आदिकालीन हिंदी में मुख्यतः उन्हीं ध्वनियों (स्वरों-व्यंजनों) का प्रयोग मिलता है जो अपभ्रंश में प्रयुक्त होती थीं। मुख्य अन्तर ये हैं: (१) अपभ्रंश में केवल आठ स्वर थे—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ। ये आठों ही स्वर मूल स्वर थे। आदिकालीन हिन्दी में दो नए स्वर ऐ, औ विकसित हो गए, जो संयुक्त स्वर थे तथा जिनका उच्चारण क्रमशः अए, अओ जैसा था। (२) च, छ, ज, झ संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में स्पर्श व्यंजन थे, किन्तु आदिकालीन हिंदी में वे स्पर्श-संघर्षी हो गए और तब से अब तक स्पर्श-संघर्षी ही हैं। (३) न, र, ल, स संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में दंत्य ध्वनियाँ थे। आदिकाल में ये वर्त्स्य हो गए। (४) अपभ्रंश में ड़, ढ़ व्यंजन नहीं थे। आदिकाल की हिन्दी में इनका विकास हुआ। (५) न्ह, म्ह, ल्ह पहले संयुक्त व्यंजन थे, अब वे क्रमशः न, म, ल के महाप्राण रूप हो गए, अर्थात् संयुक्त व्यंजन न रहकर मूल व्यंजन हो गए। (६) संस्कृत तथा फ़ारसी आदि से कुछ नए शब्दों के आ जाने के कारण कुछ संयुक्त व्यंजन हिंदी में आ गए होंगे, जो अपभ्रंश में नहीं थे। कुछ अपभ्रंश शब्दों के लोप के कारण कुछ ऐसे संयुक्त व्यंजनों, स्वरानुक्रमों (vowel sequence) तथा व्यंजनानुक्रमों (consonant sequence) आदि के लोप की भी संभावना हो सकती है, जो अपभ्रंश में रहे होंगे।

व्याकरण—आदिकालीन हिन्दी का व्याकरण १००० या ११०० ई० के आस-पास तक अपभ्रंश के बहुत निकट था। भाषा में काफ़ी रूप ऐसे थे जो अपभ्रंश के थे। किन्तु धीरे-धीरे अपभ्रंश के व्याकरणिक रूप कम होते गए और हिन्दी के अपने रूप विकसित होते गए, तथा धीरे-धीरे १५०० ई० तक आते-आते हिन्दी अपने पैरों पर खड़ी हो गई और अपभ्रंश के रूप प्रायः प्रयोग से निकल गए। आदिकालीन हिन्दी का व्याकरण समवेततः अपभ्रंश व्याकरण से इन बातों में भिन्न है: (१) अपभ्रंश संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि की तुलना में वियोगात्मक होते हुए भी एक सीमा तक संयोगात्मक भाषा थी। काफ़ी क्रिया तथा कारकीय रूप संयोगात्मक होते थे, किन्तु आदिकालीन हिन्दी में वियोगात्मक रूपों का प्राधान्य हो चला। सहायक क्रियाओं तथा परसर्गों (कारकचिह्नों) का प्रयोग काफ़ी होने लगा और धीरे-धीरे संयोगात्मक रूप कम होते गए और उनका स्थान वियोगात्मक रूप लेते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए। (२) नपुंसकलिंग एक सीमा तक अपभ्रंश में था, यद्यपि संस्कृत, पालि, प्राकृत की तुलना में उसकी स्थिति अस्पष्ट-सी होती जा रही थी। आदिकालीन हिन्दी में नपुंसकलिंग का प्रयोग प्रायः पूर्णतः समाप्त हो गया। गोरखनाथ में कुछ प्रयोगों को कुछ लोगों ने नपुंसकलिंग का माना है, किन्तु यह मान्यता पूर्णतः असंदिग्ध नहीं कही जा सकती। (३) कृदंतों से बनी क्रियाओं में लिंग-परिवर्तन पूरी तरह होने लगे। (४) हिन्दी वाक्य-रचना में शब्द-क्रम धीरे-धीरे निश्चित होने लगा था। अपभ्रंश में शब्द-क्रम बहुत निश्चित नहीं था। (५) हिंदी की बोलियों के अपने-अपने व्याकरणिक रूप पूर्णतः अलग-अलग नहीं हुए थे।

शब्द-भण्डार—आदिकालीन हिन्दी का शब्द-भण्डार अपने प्रारम्भिक चरण में अपभ्रंश का ही था, किन्तु धीरे-धीरे कुछ परिवर्तन आते गए, जिनमें उल्लेख्य दो-तीन हैं: (१) भक्ति-आन्दोलन का प्रारम्भ हो गया था, अतः तत्सम शब्दावली, आदिकालीन हिन्दी में अपभ्रंश की तुलना में, कुछ बढ़ने लगी थी। (२) मुसलमानों के आगमन से कुछ पश्तो, फ़ारसी-अरबी, तुर्की शब्द हिन्दी में आए। उदाहरणार्थ: गोरखबानी में अकलि, नूर, गूंगा, अलह, काजी; पृथ्वीराजरासो में अब्बीर, नजर, जीन, सोर, गाजी, समसेर; चन्दायन में खून, तुरसी, सुरमा, मीर आदि। (३) भक्ति-आन्दोलन तथा मुसलमानी शासन का प्रभाव समाज पर भी पड़ा जिसके परिणामस्वरूप इस बात की भी संभावना हो सकती है कि कुछ ऐसे पुराने शब्द जो अपभ्रंश में प्रचलित थे, इस काल में अनावश्यक अथवा अल्पावश्यक होने के कारण या तो हिन्दी शब्द-भंडार से निकल गए या फिर उनका प्रयोग बहुत कम हो गया।

साहित्य में प्रयोग—इस काल में साहित्य में प्रमुखतः डिंगल, मैथिली, दक्खिनी, अवधी, ब्रज तथा मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है। इस काल के प्रमुख हिन्दी साहित्यकार गोरखनाथ, विद्यापति, नरपति नाल्ह, चन्दबरदाई, कबीर, ख्वाजा बंदा नेवाज़ तथा शाह मीराजी आदि हैं।

(२) मध्यकाल (१५०० ई० से १८०० ई० तक)

ध्वनि—इस काल में आकर ध्वनि, व्याकरण तथा शब्द-भंडार के क्षेत्र में मुख्यतः आगे दिए गए परिवर्तन हुए। ध्वनि के क्षेत्र में दो-तीन बातें उल्लेख्य हैं: (१) शब्दांत का 'अ' कम-से-कम मूल व्यंजन के बाद आने पर लुप्त हो गया। अर्थात् 'राम' का उच्चारण 'राम्' होने लगा। मानस के अनेक छंद दोषपूर्ण हो जाएँगे यदि उनमें 'राम्' न पढ़कर 'राम' पढ़ा जाए: राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम। किन्तु 'भक्त' जैसे शब्दों में जहाँ अ के पूर्व संयुक्त व्यंजन था, 'अ' बना रहा। कुछ स्थितियों में अक्षरांत 'अ' का भी लोप होने लगा। उदाहरण के लिए आदिकालीन 'जपता' अब उच्चारण में 'जप्ता' हो गया। (२) फ़ारसी की शिक्षा की कुछ व्यवस्था तथा दरबार में फ़ारसी भाषा का प्रयोग होने से उच्च वर्ग में तथा नौकरी-पेशा लोगों में फ़ारसी का प्रचार हुआ, जिसके कारण उच्च वर्ग के लोगों की हिन्दी में तुर्की-अरबी-फ़ारसी के काफ़ी शब्द प्रचलित हो गए और क़, ख़, ग़, ज़, फ़ ये पाँच नए व्यंजन हिंदी में आ गए। (३) ह के पहले का अ कुछ स्थितियों में ए जैसा उच्चरित होने लगा था। पांडुलिपियों में ऐसे 'अ' के स्थान पर 'ए' के प्रयोग से इस बात का अनुमान लगता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरण—व्याकरण के क्षेत्र में भी मुख्यतः तीन ही बातें उल्लेख्य हैं : (१) इस काल में हिन्दी भाषा व्याकरण के क्षेत्र में पूरी तरह अपने पैरों पर खड़ी हो गई। अपभ्रंश के रूप प्रायः हिन्दी से निकल गए। जो कुछ बचे थे, वे वह थे जिन्हें हिन्दी ने आत्मसात कर लिया था। (२) भाषा, आदिकालीन भाषा की तुलना में और भी वियोगात्मक हो गई। संयोगात्मक रूप और भी कम हो गए। परसर्गों तथा सहायक क्रियाओं का प्रयोग और भी बढ़ गया। (३) उच्च वर्ग में फ़ारसी का प्रचार होने के कारण हिन्दी वाक्य-रचना फ़ारसी वाक्य-रचना से प्रभावित होने लगी थी। उदाहरण के लिए, हिन्दी की प्रारम्भिक परम्परा के अनुकूल सूर में आता है 'इन्द्र कह्यो मम करो सहाइ।' यहाँ 'कि' का प्रयोग नहीं है, किन्तु बाद में फ़ारसी शब्द 'कि' के प्रयोग से वाक्य बनने लगे। राम प्रसाद निरंजनी के 'भाषायोगवासिष्ठ' (१७४१ ई०) में आता है : 'वेद में एक ठौर कहा है कि जब लग जीवता रहे तब लग कर्म को करना।'

शब्द-भंडार—शब्द-भंडार की दृष्टि से ये बातें मुख्य हैं : (१) इस काल में आते-आते काफ़ी शब्द फ़ारसी (लगभग ३५००), अरबी (लगभग २५००), पश्तो (लगभग ५०), तथा तुर्की (लगभग १२५) से हिंदी में आ गए और इन आगत विदेशी शब्दों की संख्या लगभग ६००० से ऊपर हो गई। फ़ारसी से कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी आईं। (२) भक्ति-आन्दोलन के चरम बिंदु पर पहुँचने के कारण तत्सम शब्दों का अनुपात भाषा में और भी बढ़ गया। (३) यूरोप से संपर्क होने के कारण कुछ पुर्तगाली, स्पेनी, फ्रांसीसी तथा अंग्रेजी शब्द भी हिंदी में आ गए।

साहित्य में प्रयोग—इस काल में धर्म की प्रधानता के कारण राम-स्थान की भाषा अवधी तथा कृष्ण-स्थान की भाषा ब्रज में ही विशेष रूप से साहित्य रचा गया। यों दक्खिनी, उर्दू, डिंगल, मैथिली और खड़ीबोली में भी साहित्य-रचना हुई। इस काल के प्रमुख साहित्यकार जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, केशव, बिहारी, भूषण, देव, बुरहानुद्दीन, नुसरती, कुली-कुतुबशाह, वजही तथा वली आदि हैं।

(३) आधुनिक काल (१८०० ई० से अब तक)

ध्वनि—आधुनिककालीन हिंदी में ध्वनि के क्षेत्र में चार-पाँच बातें उल्लेख्य हैं : (१) आधुनिक काल में शिक्षा के व्यवस्थित प्रचार के कारण तथा प्रारंभ में हिंदी प्रदेश में अनेक क्षेत्रों में कचहरियों की भाषा उर्दू होने के कारण क़, ख़, ग़, ज़, फ़ जो मध्यकाल में केवल उच्च वर्गों के या फ़ारसी पढ़े-लिखे लोगों तक प्रचलित थे, इस काल में प्रायः १९४७ तक सुशिक्षित लोगों में ख़ूब प्रचलित हो गए, किंतु स्वतंत्रता के बाद स्थिति बदली है और अँग्रेज़ी में प्रयुक्त होने के कारण ज़, फ़ तो एक सीमा तक अब भी प्रयोग में हैं, किंतु क़, ख़, ग़ के ठीक प्रयोग में कमी आई है। नई पीढ़ी, कुछ अपवादों को छोड़कर, इनके स्थान पर प्रायः क, ख, ग बोलने लगी है। हिंदी की उर्दू शैली में इन पाँचों का ठीक उच्चारण होता है। (२) अँग्रेज़ी शिक्षा के प्रचार के कारण कुछ बहुशिक्षित लोगों में ऑ (कॉलिज, डॉक्टर, ऑफ़िस, कॉफ़ी आदि में) ध्वनि भी हिन्दी में प्रयुक्त हो रही है। यों सामान्य लोग इसके स्थान पर आ का प्रयोग करते हैं। (३) अंग्रेज़ी शब्दों के प्रचार के कारण कुछ नए संयुक्त व्यंजन (जैसे ड्र) हिंदी में प्रयुक्त होने लगे हैं। (४) स्वरों में ऐ,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

औ हिंदी में आदिकाल में आए थे। उस समय इनका उच्चारण अए, अओ था, अर्थात् वे संयुक्त स्वर थे। आधुनिक काल में, मुख्यतः १९४० के बाद ऐ और औ की स्थिति कुछ भिन्न हो गई है। इस सम्बन्ध में ३ बातें उल्लेख्य हैं : (क) पश्चिमी हिंदी क्षेत्र में ये स्वर सामान्यतः मूल स्वर के रूप में उच्चरित होते हैं। (ख) पूर्वी हिंदी क्षेत्र में अब भी ये अए, अओ रूप में संयुक्त स्वर के रूप में ही प्रयुक्त हो रहे हैं। (ग) नैया, वैयाकरण, कौआ जैसे शब्दों में, पश्चिमी तथा पूर्वी दोनों ही हिंदी क्षेत्रों में ऐ, औ का उच्चारण क्रमशः संयुक्त स्वर अइ, अउ रूप में अर्थात् संस्कृत उच्चारण के समान होता है। (५) मध्यकाल में अ का लोप शब्दांत में तथा कुछ स्थितियों में अक्षरांत में होना आरंभ हुआ था। आधुनिक काल तक आते-आते यह प्रक्रिया पूरी हो गई। अब हिंदी में उच्चारण में कोई भी शब्द अकारांत नहीं है। (६) व ध्वनि आदि तथा मध्यकाल में कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः द्वयोष्ठ रूप में उच्चरित होती थी, अब वह कुछ अपवादों को छोड़कर हिन्दी के काफ़ी शब्दों में कम-से-कम पश्चिमी क्षेत्र में दन्तोष्ठ्य रूप में उच्चरित होती है। संभावना यह है कि द्वयोष्ठ्य व का प्रयोग धीरे-धीरे बहुत कम रह जाएगा।

व्याकरण—व्याकरण की दृष्टि से अधोलिखित बातें कही जा सकती हैं : (१) आदिकाल में हिन्दी की विभिन्न बोलियों के व्याकरणिक अस्तित्व का प्रारंभ हो गया था, किन्तु काफ़ी व्याकरणिक रूप ऐसे थे जो आसपास के क्षेत्रों में समान थे। मध्यकाल में उनमें इस प्रकार के मिश्रण में काफ़ी कमी हो गई थी। सूर, बिहारी, देव आदि की ब्रजभाषा तथा जायसी, तुलसी आदि की अवधी इस बात का प्रमाण है। आधुनिक काल तक आते-आते ब्रज, अवधी, भोजपुरी, मैथिली आदि कई बोलियों का व्याकरणिक अस्तित्व इतना स्वतंत्र हो गया है कि उन्हें बड़ी सरलता से भाषा की संज्ञा दी जा सकती है। (२) हिन्दी प्रायः पूर्णतः एक वियोगात्मक भाषा हो गई है। (३) प्रेस, रेडियो, शिक्षा तथा व्याकरणिक विश्लेषण आदि के प्रभाव से हिन्दी व्याकरण का रूप काफ़ी स्थिर हो गया है। कुछ अपवादों को छोड़कर हिन्दी व्याकरण का रूप सुनिश्चित हो चुका है। व्याकरण के इस स्थिरीकरण में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का मुख्य हाथ रहा है। (४) कहा जा चुका है कि मध्यकाल में हिन्दी वाक्य-रचना एक सीमा तक फ़ारसी से प्रभावित हुई थी। आधुनिक काल में अँग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार फ़ारसी की तुलना में कहीं अधिक हुआ है। साथ ही समाचार-पत्रों, रेडियो तथा सरकारी कामों में प्रयोग के कारण भी अँग्रेज़ी हमारे अधिक निकट आई है। इसका परिणाम यह हुआ है कि हिन्दी भाषा वाक्य-रचना, मुहावरा तथा लोकोक्ति के क्षेत्र में अँग्रेज़ी से बहुत अधिक प्रभावित हुई है। अँग्रेज़ी ने विराम-चिह्नों के माध्यम से भी हिन्दी वाक्य-रचना को प्रभावित किया है। (५) इधर कुछ वर्षों से 'कीजिए' के लिए 'करिए', 'मुझे' के लिए 'मेरे को', 'मुझको' के लिए 'मेरे से', 'तुझमें' के लिए 'तेरे में', 'नहीं जाता है' के स्थान पर 'नहीं जाता', 'नहीं जा रहा है' के स्थान पर 'नहीं जा रहा' जैसे नये रूपों तथा नई वाक्य-रचना का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। अर्थात् हिन्दी भाषा रूप-रचना तथा वाक्य-रचना दोनों ही क्षेत्रों में परिवर्तित हो रही है।

शब्द-भंडार—शब्द-भंडार की दृष्टि से १८०० से अब तक के आधुनिक काल को मोटे रूप से छः-सात उपकालों में विभाजित किया जा सकता है। १८०० से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८५० तक का हिंदी शब्द-भंडार मोटे रूप से वही था जो मध्यकाल के अंतिम चरण में था। अंतर केवल यह था कि धीरे-धीरे अँग्रेज़ी के अधिकाधिक शब्द हिन्दी भाषा में आते जा रहे थे। १८५० से १९०० तक अँग्रेज़ी के और शब्दों के आने के अतिरिक्त आर्यसमाज के प्रचार-प्रसार के कारण तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ा और कुछ पुराने तद्भव शब्द परिनिष्ठित हिन्दी से निकल गए। उदाहरण के लिए 'इंद्री' निकल गया और 'इन्द्रिय' आ गया, यद्यपि 'इन्द्री' का बहुवचन 'इन्द्रियाँ' अब तक चल रहा है। १९०० के बाद द्विवेदी काल तथा छायावादी काल में अनेक कारणों से तत्सम शब्दों का प्रयोग बढ़ना आरम्भ हो गया। प्रसाद, पंत, महादेवी वर्मा का पूरा साहित्य इस दृष्टि से दर्शनीय है। इसके बाद प्रगतिवादी आंदोलन के कारण तद्भव शब्दों के प्रयोग में पुनः वृद्धि हुई तथा तत्सम शब्दों के प्रयोग में कुछ कमी हुई। १९४७ तक लगभग यही स्थिति रही। १९४७ के बाद के शब्द-भंडार में कई बातें उल्लेख्य हैं: (क) अनेक पुराने शब्द नए अर्थों में प्रचलित हो गए हैं। उदाहरण के लिए, 'सदन' शब्द राज्यसभा तथा लोकसभा के लिए प्रयुक्त हो रहा है। (ख) अभिव्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक (फ़िल्माना, घुसपैठिया) नए शब्द आ गए हैं। (ग) साहित्य में नाटक, उपन्यास, कहानी, कविता की भाषा बोलचाल के बहुत निकट है, उसमें अरबी, फ़ारसी तथा अँग्रेज़ी के जन-प्रचलित शब्दों का काफ़ी प्रयोग हो रहा है, किन्तु आलोचना की भाषा अब भी एक सीमा तक तत्सम शब्दों से काफ़ी लदी हुई है। (घ) इधर हिन्दी को पारिभाषिक शब्दों की बहुत आवश्यकता पड़ी है, क्योंकि हिन्दी अब विज्ञान, वाणिज्य, विधि आदि की भी भाषा है। इसकी पूर्ति के लिये अनेक शब्द अँग्रेज़ी, संस्कृत आदि से लिये गये हैं तथा अनेक नए शब्द बनाए गये हैं। स्वतन्त्रता के पूर्व हिन्दी में मुश्किल से ५-६ हज़ार पारिभाषिक शब्द थे, किंतु अब उनकी संख्या लगभग एक लाख से ऊपर है और दिनोंदिन उसमें वृद्धि होती जा रही है। हिन्दी शब्द-भंडार अनेक प्रभावों को ग्रहण करते हुए तथा नए शब्दों से समृद्ध होते हुए दिनोंदिन अधिक समृद्ध होता जा रहा है, जिसके परिणामस्वरूप हिंदी अपनी अभिव्यंजना में अधिक सटीक, निश्चित, गहरी तथा समर्थ होती जा रही है।

साहित्य में प्रयोग—आधुनिक काल राजनीति का है। अतः भारतीय राजनीति के केन्द्र दिल्ली की भाषा खड़ीबोली, ब्रज, अवधी आदि को पीछे छोड़ प्रायः एक मात्र हिन्दी क्षेत्र की साहित्यिक अभिव्यक्ति का माध्यम बन गई है। अन्य बोलियों में यदि कुछ लिखा भी जा रहा है तो अपवादतः। यही खड़ीबोली हिन्दी हमारी राजभाषा तथा राष्ट्रभाषा भी बन गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ४

हिन्दी ध्वनियाँ

हिन्दी ध्वनियों की विकास-परंपरा यों तो मूल भारोपीय भाषा से प्रारम्भ होती है, किन्तु यहाँ हम उतने पीछे न जाकर वैदिक संस्कृत से ही उसे देख रहे हैं।

वैदिक ध्वनियाँ

वैदिक संस्कृत की ध्वनियों के बारे में थोड़ा विवाद है, किन्तु मोटे ढंग से ये ध्वनियाँ थीं : मूल स्वर–अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ; संयुक्त स्वर–ए (अइ), ऐ (आइ), ओ (अउ), औ (आउ)। व्यंजन–क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, व्, स, ष, श, ह, ळ, ळ्ह; शुद्ध नासिक्य ध्वनि–अनुस्वार। 'अ' विवृत पश्च था, अर्थात् अ-आ के उच्चारण-स्थान एक थे, 'ऋ' आक्षरिक 'र' तथा 'ऌ' आक्षरिक 'ल' थीं। स्वरों का वर्गीकरण है : संवृत––इ, ई, उ, ऊ,; विवृत–अ, आ,; अग्र–इ, ई; ऋ, ॠ, ऌ; पश्च–उ, ऊ, अ, आ; स्पर्श––पाँचों वर्गों के प्रथम चार-चार व्यंजन; नासिक्य : ङ, ञ, ण, न, म; पार्श्विक––ल, ळ (अल्पप्राण), ळ्ह (महाप्राण); प्रकंपित:––र; संघर्षी––स, ष, श, ह, व। ह के अघोष रूप विसर्ग, उपध्मानीय तथा जिह्वामूलीय थे। अर्ध स्वर–य, व। अर्थात् व दो थे। स्थान प्राय: आज के हिन्दी के ही थे। मुख्य अंतर थे : (१) न, स, स दंत्य थे। (२) ळ, ळ्ह, ट, ठ, ड, ढ, ण, ष मूर्धन्य थे। अनुस्वार शुद्ध नासिक्य ध्वनि था, अर्थात् संसार का उच्चारण कुछ 'सअँसार' जैसा होता था।

संस्कृत ध्वनियाँ

संस्कृत में आकर प्राय: वही ध्वनियाँ रहीं। हाँ, थोड़ा-सा परिवर्तन अवश्य हुआ : (१) ए, ओ मूल स्वर हो गये और इनका उच्चारण क्रमश: अर्धविवृत अग्र तथा अर्धविवृत पश्च होने लगा। (२) संयुक्त स्वर ऐ, औ क्रमश: अइ, अउ उच्चरित होने लगे। (३) ऋ, ॠ, ऌ लेखन में स्वर थे, किन्तु उच्चारण में ये रि, री, लि हो गए। (४) संस्कृत व्यंजनों से ळ, ळ्ह निकल गए। यों मेरे विचार में सामान्य जनता उनका प्रयोग करती थी, सुसंस्कृत संस्कृतज्ञ नहीं।

पालि ध्वनियाँ

प्राय: संस्कृत की ही थीं। मुख्य अन्तर थे : (१) ह्रस्व स्वर एँ, ओँ विकसित हो गये; (२) अ, आ में जीभ के स्थान में भेद हो गया, अ अर्धविवृत और आ विवृत; (३) ऐ, औ भाषा से निकल गए; (४) ळ, ळ्ह पालि में हैं। (५) श, ष भाषा से प्राय: निकल गए। केवल कुछ क्षेत्रों में ही उच्चरित होते थे।

प्राकृत ध्वनियाँ

प्राय: पालि की ही थीं। मुख्य अंतर यह था कि श, ष लेखन में पुन: प्रयुक्त होने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपभ्रंश ध्वनियाँ

प्राकृत के समान ही हैं।

हिन्दी ध्वनियाँ

अन्य भाषाओं की तरह ही हिन्दी में भी ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं: स्वर, व्यंजन।

स्वर

स्वर उन ध्वनियों को कहते हैं जिनके उच्चारण में (मुंह में) वायुमार्ग में किसी भी प्रकार की पूर्ण या अपूर्ण रुकावट नहीं होती। परंपरागत पुस्तकों में हिन्दी वर्णमाला में निम्नांकित स्वरों का उल्लेख मिलता है--

अ आ इ ई उ ऊ
ऋ ए ऐ ओ औ
अं अः

उच्चारण की दृष्टि से इनमें केवल निम्नांकिन दस ही स्वर हैं--

अ आ इ ई उ ऊ
ए ऐ ओ औ

क्योंकि 'ऋ' उच्चारण के स्तर पर 'रि' अर्थात् व्यंजन (र्) और स्वर (इ) का योग है; 'अं' अ तथा अनुस्वार [जो विभिन्न शब्दों में ङ् (गंगा), ञ् (चंचल), ण् (पंडित), न् (आनन्द), म् (पंप) का कार्य करता है] का मिला हुआ रूप है; तथा अः ध्वनि अ+ह (जैसे प्रायः में) है। इस तरह शेष तीनों, अर्थात् ऋ, अं, अः स्वर न होकर स्वर-व्यंजन के मिले हुए रूप हैं।

इन दस में एक ऑ मिला कर स्वरों की संख्या ग्यारह मानी जा सकती है। यह अवश्य है कि ऑ का प्रयोग सभी नहीं करते। ह्रस्व ए, ह्रस्व ओ भी कुछ शब्दों में (बेंच, ओसारा) मिलते हैं।

हिन्दी स्वरों का वर्गीकरण

(१) **मात्रा के आधार पर**--मात्रा के आधार पर स्वर दो प्रकार के होते हैं: (क) ह्रस्व--जिनके उच्चारण में कम समय लगता है। हिन्दी में अ, इ, उ ह्रस्व स्वर हैं। (ख) दीर्घ--जिनके उच्चारण में अपेक्षाकृत अधिक समय लगे। हिन्दी में आ, ऑ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ दीर्घ स्वर हैं।

(२) **जीभ के भाग के आधार पर**--कुछ स्वरों के उच्चारण में जीभ का अग्र भाग काम करता है, कुछ में मध्य भाग तथा कुछ में पश्च भाग। इसी आधार पर स्वर तीन प्रकार के माने गए हैं। अग्र स्वर--इ, ई, ए, ऐ; मध्य स्वर--अ; पश्च स्वर--उ, ऊ, ओ, औ, ऑ, आ।

(३) **हवा के नाक और मुंह के रास्ते निकलने के आधार पर**--जिन स्वरों के उच्चारण में हवा केवल मुंह से निकलती है, उन्हें मौखिक या निरनुनासिक स्वर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहते हैं। अ, आ, ऑ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ ऐसे ही स्वर हैं। जिन स्वरों के उच्चारण में हवा नाक से भी निकलती है, उन्हें अनुनासिक स्वर कहते हैं। उपर्युक्त स्वरों के अनुनासिक रूप हैं: अँ, आँ, इँ, ईं, उँ, ऊँ, एँ, ऐं, ओं, औं। ऑ के अनुनासिक रूप का प्रयोग हिन्दी में नहीं होता।

(४) **ओष्ठों की स्थिति के आधार पर**—कुछ स्वरों के उच्चारण में ओष्ठ वृत्तमुखी या गोलाकार होते हैं। इस आधार पर दो भेद होते हैं: **वृत्तमुखी**—उ, ऊ, ओ, औ, ऑ; **अवृत्तमुखी**—अ, आ, इ, ई, ए, ऐ।

(५) **जीभ के उठने के आधार पर**—जीभ के उठने से मुख-विवर सँकरा हो जाता है। इसीलिए जब जीभ बहुत ऊपर उठ जाती है तो उसे संवृत तथा बहुत नीचे होती है तो विवृत कहते हैं। बीच में अर्धसंवृत तथा अर्धविवृत भी होते हैं। हिन्दी स्वरों के इस आधार पर निम्नांकित भेद हैं: (क) **संवृत**—इ, ई, उ, ऊ; (ख) **अर्ध-संवृत**—ऐ, ओ; (ग) **अर्धविवृत**—ऐ, अ, औ, ऑ; (घ) **विवृत**—आ।

(६) **प्रकृति के आधार पर**—स्वर, प्रकृति के आधार पर, मूल और संयुक्त दो प्रकार के होते हैं। **मूल स्वर** में जीभ एक स्थान पर होती है। हिन्दी में अ, आ, ऑ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ मूल स्वर हैं। **संयुक्त स्वर** में जीभ एक स्वर के स्थान से दूसरे स्वर के स्थान की ओर चलती है और इस चलने की स्थिति में उच्चारण हो जाता है। ए, औ पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र में मूल स्वर रूप में उच्चरित होते हैं, किंतु पूर्वी हिन्दी क्षेत्र में संयुक्त स्वर रूप में। पूर्वी हिन्दी प्रदेश में ऐ 'अ+ए' का संयुक्त रूप है तो औ 'अ+ओ' का।

	अग्र	मध्य	पश्च
संवृत	इ, ई		उ, ऊ
अर्धसंवृत	ए		ओ
अर्धविवृत	ऐ	अ	औ ऑ
विवृत			आ

व्यंजन

व्यंजन उन ध्वनियों को कहते हैं जिनके उच्चारण में (मुख-विवर में) वायु-मार्ग में पूर्ण या अपूर्ण व्यवधान उपस्थित होता है।

हिन्दी के परम्परागत ग्रंथों में हिन्दी वर्णमाला में निम्नांकित व्यंजन मिलते हैं—

क ख ग घ ङ
च छ ज झ ञ
ट ठ ड ढ ण
त थ द ध न
प फ ब भ म
य र ल व श
ष स ह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु उपर्युक्त व्यंजनों के अतिरिक्त प्रयोग में ड़, ढ़, क़, ख़, ग़, ज़, फ़, व़ ध्वनियाँ भी हैं। न्ह, म्ह, ल्ह दिखते हैं संयुक्त व्यंजन, किंतु हैं मूल। ये क्रमशः न, म, ल के महाप्राण हैं। लेखन में व़ को छोड़कर शेष का प्रयोग तो है, किन्तु उच्चारण में उपर्युक्त व्यंजनों में 'ष' नहीं है। इसके स्थान पर 'श' का ही उच्चारण होता है। इस तरह उच्चारण के स्तर पर हिन्दी वर्णमाला में निम्नांकित व्यंजन हैं—

क	ख	ग	घ	ङ	क़ ख़ ग़
च	छ	ज	झ	ञ	ज़
ट	ठ	ड	ढ	ण	ड़ ढ़
त	थ	द	ध	न	न्ह
प	फ	ब	भ	म	म्ह फ़
य	र	ल	व		व़ ल्ह
श		स	ह		

उपर्युक्त सूची में दो व हैं। 'व' तो दोनों ओठों से बोला जाता है तथा 'व़' ऊपर के दाँत तथा नीचे के ओठ से। काफ़ी लोग क़, ख़, ग़, ज़, फ़ के स्थान पर क, ख, ग, ज, फ बोलते हैं। हिंदी की उर्दू शैली में क़, ख़, ग़, ज़, फ़ का समुचित प्रयोग होता है। अन्य लोगों में कम ही लोग ज़, फ़ का ठीक प्रयोग करते हैं। क़, ख़, ग़ का प्रयोग तो और भी कम लोग करते हैं।

हिन्दी व्यंजनों का वर्गीकरण

हिन्दी व्यंजनों को निम्नांकित आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है—

(१) **स्थान के आधार पर**—जिस स्थान से उच्चारण किया जाता है, वह व्यंजन का उच्चारण-स्थान कहलाता है। स्थान के आधार पर निम्नांकित वर्ग बनते हैं—(क) **ओष्ठ्य** (दोनों ओठों से उच्चरित)—प, फ, ब, भ, म, म्ह, व; (ख) **दंतोष्ठ्य** (ऊपर के दाँत और नीचे के ओठ से)—फ़, व़; (ग) **दंत्य**—त, थ, द, ध; (घ) **वर्त्स्य** (मसूढ़ों के पास से उच्चरित)—न, न्ह, र, ल, ल्ह, स, ज़; (ङ) **तालव्य** (तालु से)—च, छ, ज, झ, ञ; (च) **पूर्वतालव्य** (मूर्द्धा तथा तालु की संधि के पास से)—ट, ठ, ड, ढ, ण, ड़, ढ़; (छ) **कोमलतालव्य** (कोमल तालु अर्थात् तालु के सबसे पिछले भाग से)—क, ख, ग, घ, ङ, ख़, ग़; (ज) **जिह्वामूलीय** (जीभ की जड़ से)—क़; (झ) **स्वरयन्त्रमुखी** (गले के भीतर स्वरयंत्र के मुख से)—ह।

(२) **प्रयत्न के आधार पर**—किसी व्यंजन के उच्चारण में जो यत्न किया जाता है, उसे प्रयत्न कहते हैं। प्रयत्न के आधार पर निम्नांकित वर्ग बनते हैं : (क) **स्पर्श**—जिसके उच्चारण में एक अंग दूसरे का स्पर्श करे। क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, त, थ, द, ध, प, फ, ब, भ, क़ स्पर्श व्यंजन हैं। (ख) **संघर्षी**—जिसके उच्चारण में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो अंग एक-दूसरे के इतने निकट आ जाएँ कि बीच से निकलने वाली हवा संघर्ष या घर्षण करती हुई निकले : फ़, व, स, ज़, श, ख, ग़, ह। (ग) **स्पर्श-संघर्षी**—जिसके उच्चारण में दो अंग एक-दूसरे को स्पर्श करें, साथ ही जब वे एक-दूसरे से दूर हटने लगें तो हवा कुछ देर के लिए अंगों के समीप रहने के कारण संघर्ष करती हुई निकले। च, छ, ज, झ स्पर्श-संघर्षी व्यंजन हैं। (घ) **नासिक्य**—जिसके उच्चारण में हवा नाक से निकले : ङ, ञ, ण, न, न्ह, म, म्ह। (ङ) **पार्श्विक**—जिसके उच्चारण में जीभ बीच में स्पर्श करे और हवा एक या दोनों पार्श्वों से निकले : ल, ल्ह। (च) **उत्क्षिप्त**—जिसके उच्चारण में जीभ ऊपर उठकर झटके के साथ नीचे को आए : ड़, ढ़। (छ) **प्रकंपित**—जिसके उच्चारण में कंपन हो : र। (ज) **संघर्षहीन सप्रवाह**—जिसके उच्चारण में हवा बिना संघर्ष के निकलती रहे। इन्हें **अर्धस्वर** भी कहते हैं : य, व।

(३) **प्राणत्व के आधार पर**—'प्राण' का अर्थ है 'हवा'। जिन व्यंजनों के उच्चारण में कम हवा निकलती है, उन्हें **अल्पप्राण** तथा जिनमें अधिक हवा निकलती हैं, उन्हें **महाप्राण** कहते हैं। **अल्पप्राण**—क, ग, ङ, च, ज, ञ, ट, ड, ण, त, द, न, प, ब, म, य, र, ल, व, ड़। **महाप्राण**—ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, न्ह, फ, भ, म्ह, ल्ह, ढ़।

(४) **घोषत्व के आधार पर**—गले में स्थित स्वर-यन्त्र में स्वर-तन्त्रियों के बीच हवा के घर्षण के साथ जो ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं, उन्हें **घोष** ध्वनि कहते हैं। ग, घ, ङ, ज, झ, ञ, ड, ढ, ण, द, ध, न, न्ह, ब, भ, म, म्ह, य, र, ल, ल्ह, व, ह, ड़, ढ़, ज़, ग़, व तथा सभी स्वर घोष हैं। जिन ध्वनियों के उच्चारण में यह घर्षण नहीं होता, अर्थात् स्वर-तंत्रियाँ दूर-दूर रहती हैं, उन्हें **अघोष** कहते हैं। क, ख, क़, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ, स, श, फ़ अघोष हैं।

अगले पृष्ठ के चार्ट में हिन्दी व्यंजन वर्गीकृत रूप में दिए गए हैं।

हिंदी ध्वनियों का औच्चारणिक विवरण

स्वर अ—अर्धविवृत अवृत्तमुखी ह्रस्व मध्य स्वर। आ—विवृत अवृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर। आँ—अर्धविवृत ईषत् वृत्तमुखी पश्च स्वर। इ—संवृत अवृत्तमुखी ह्रस्व अग्र स्वर। ई—संवृत अवृत्तमुखी दीर्घ अग्र स्वर। उ—संवृत वृत्तमुखी ह्रस्व पश्च स्वर। ऊ—संवृत वृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर। ए—अर्धसंवृत अवृत्तमुखी दीर्घ अग्र स्वर। ऐ—अर्धविवृत अवृत्तमुखी दीर्घ अग्र स्वर। ओ—अर्धसंवृत वृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर। औ—अर्धविवृत वृत्तमुखी दीर्घ पश्च स्वर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हिन्दी व्यंजन

प्रयत्न	स्थान								
	द्वयोष्ठ्य	दंत्योष्ठ्य	दंत्य	वर्त्स्य	तालव्य	पूर्व-तालव्य	कोमलतालव्य	जिह्वामूलीय	स्वरयंत्रमुखी
स्पर्श	प् फ् ब् भ्		त् थ् द् ध्			ट् ठ् ड् ढ्	क् ख् ग् घ्	क़्	
स्पर्श-संघर्षी					च् छ् ज् झ्				
नासिक्य	म् म्ह्			न् न्ह्	न्	ण्	ङ्		
पार्श्विक				ल् ल्ह्					
प्रकंपित				र्					
उत्क्षिप्त						ड़् ढ़्			
संघर्षी		फ़् व्		स् ज़्	श्		ख़् ग़्		ह्
संघर्षहीन सप्रवाह	व्				य्				

टिप्पणी—स्पर्श तथा स्पर्श-संघर्षी में ऊपर की पंक्तियाँ अघोष और नीचे की घोष हैं। नासिक्य, पार्श्विक, प्रकंपित, उत्क्षिप्त और संघर्षहीन सप्रवाह के खानों की सभी ध्वनियाँ घोष हैं। संघर्षी में हर खाने की पहली ध्वनि अघोष और दूसरी घोष है। (श् अघोष है और ह् घोष)।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यंजन : क—अघोष अल्पप्राण कोमलतालव्य स्पर्श। ख—अघोष महाप्राण कोमलतालव्य स्पर्श। ग—घोष अल्पप्राण कोमलतालव्य स्पर्श। घ—घोष महाप्राण कोमलतालव्य स्पर्श। ङ—घोष अल्पप्राण कोमलतालव्य नासिक्य। क़—अघोष अल्पप्राण जिह्वामूलीय स्पर्श। ख़—अघोष कोमलतालव्य संघर्षी। ग़—घोष कोमलतालव्य संघर्षी। च—अघोष अल्पप्राण तालव्य स्पर्शसंघर्षी। छ—अघोष महाप्राण तालव्य स्पर्शसंघर्षी। ज—घोष अल्पप्राण तालव्य स्पर्शसंघर्षी। झ—घोष महाप्राण तालव्य स्पर्शसंघर्षी। ञ—घोष अल्पप्राण तालव्य नासिक्य। ज़—घोष वर्त्स्य संघर्षी। ट—अघोष अल्पप्राण पूर्वतालव्य स्पर्श। ठ—अघोष महाप्राण पूर्वतालव्य स्पर्श। ड—घोष अल्पप्राण पूर्वतालव्य स्पर्श। ढ—घोष महाप्राण पूर्वतालव्य स्पर्श। ण—घोष अल्पप्राण पूर्वतालव्य नासिक्य। ड़—घोष अल्पप्राण पूर्वतालव्य उत्क्षिप्त। ढ़—घोष महाप्राण पूर्वतालव्य उत्क्षिप्त। त—अघोष अल्पप्राण दंत्य स्पर्श। थ—अघोष महाप्राण दंत्य स्पर्श। द—घोष अल्पप्राण दंत्य स्पर्श। ध—घोष महाप्राण दंत्य स्पर्श। न—घोष अल्पप्राण वर्त्स्य नासिक्य। न्ह—घोष महाप्राण वर्त्स्य नासिक्य। प—अघोष अल्पप्राण ओष्ठ्य स्पर्श। फ—अघोष महाप्राण ओष्ठ्य स्पर्श। ब—घोष अल्पप्राण ओष्ठ्य स्पर्श। भ—घोष महाप्राण ओष्ठ्य स्पर्श। म—घोष अल्पप्राण ओष्ठ्य नासिक्य। म्ह—घोष महाप्राण ओष्ठ्य नासिक्य। फ़—अघोष दंतोष्ठ्य संघर्षी। य—घोष अल्पप्राण तालव्य अर्धस्वर (संघर्षहीन सप्रवाह)। र—घोष अल्पप्राण वर्त्स्य प्रकंपित। ल—घोष अल्पप्राण वर्त्स्य पार्श्विक। ल्ह—घोष महाप्राण वर्त्स्य पार्श्विक। व—घोष अल्पप्राण ओष्ठ्य अर्धस्वर (संघर्षहीन सप्रवाह)। व़—घोष दंतोष्ठ्य संघर्षी। स—अघोष वर्त्स्य संघर्षी। श—अघोष तालव्य संघर्षी। ह—घोष स्वरयंत्रमुखी संघर्षी।

हिन्दी ध्वनियों का विकास : सामान्य नियम

हिन्दी ध्वनियों का विकास—मूलतः किसी भाषा की ध्वनियों का विकास मुख्यतः उस भाषा से होता है, जो उसके मूल में होती है। उदाहरण के लिए, हिन्दी भाषा की ध्वनियों का विकास मूलतः और मुख्यतः संस्कृत ध्वनियों से पालि, प्राकृत, अपभ्रंश होते हुआ है। हिन्दी की इस प्रकार विकसित ध्वनियाँ निम्नांकित हैं—

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ;
क, ख ग, घ, ङ; च, छं, ज, झ, ञ;
ट, ठ, ड, ढ, ण; त, थ, द, ध, न, न्ह;
प, फ, ब, भ, म, म्ह; य, र, ल, ल्ह, व, व़;
श, स, ह

मध्यकाल में फ़ारसी (अरबी, तुर्की, पश्तो भी) से भी इसमें से कई ध्वनियाँ आ मिलीं : अ (अनार), आ (आदमी), इ (इज्ज़त), ई (ईमान), उ (उस्ताद), ऊ (क़ानून), ए (एहसान), ऐ (मैदान), ओ (ज़ोर), औ (मौसम), क (किताब), ग (गर्म), च (चंदा), ज (जलसा), त (तबला), द (दौलत), न (नौकर), प (पोशाक), ब (बाग़), म (मजदूर), य (याद), र (रंगीन), ल (लिफ़ाफ़ा), व (वकील), श (शहर), स (साबुन), ह (हवा)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फ़ारसी से हिन्दी में पाँच ऐसे नए व्यंजनों का भी विकास हुआ जो हिन्दी या उसकी पुरानी परम्परा में नहीं थे।

क़ (क़ानून, वक़्त ताक़), ख़ (ख़बर, अख़बार, ख़ैर), ग़ (ग़ज़ल, बाग़), ज़ (राज़, ज़रा), फ़ (फ़न, लिफ़ाफ़ा)।

आधुनिक काल में, अंग्रेज़ी से भी काफ़ी शब्द आए और उनके माध्यम से अंग्रेज़ी से भी उपर्युक्त ध्वनियों में से कुछ हिन्दी में आईं : अ (रबर), आ (गिलास), इ (मिल), ई (आइसक्रीम), उ (फुटबाल), ऊ (जून), ए (रेल), ऐ (बैंक), ओ (कोट), क (कोट, ट्रक), ग (गोल), च (चर्च), ज (जेल), ट (ट्रक), ड (रेडियो), न (नवम्बर), प (पाइप), ब (बटन), म (मोटर), य (यार्ड), र (रेल), ल (जेल), व (वायलिन), श (मशीन), स (साइकिल), ह (होटल), फ़ (फ़ोन), ज़ (ब्लाउज़)।

अंग्रेज़ी से एक नई ध्वनि हिन्दी में आई है, यद्यपि उसका प्रयोग बहुत नहीं होता--ऑ (कॉलिज, ऑफ़िस, बॉल, हॉल, कॉफ़ी)।

इस तरह फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी से अधिकांशतः तो वे ही ध्वनियाँ आयी हैं जो इन भाषाओं के सम्पर्क के पूर्व संस्कृत परम्परा से हिन्दी में थीं। हाँ, इन ध्वनियों में फ़ारसी ने पाँच व्यंजन (क़, ख़, ग़, ज़, फ़,) नए दिये हैं तो अंग्रेज़ी ने इनमें दो व्यंजनों (ज़, फ़) वाले नए शब्द दिये हैं, तथा एक नया स्वर दिया है : 'ऑ'।

सामान्य नियम--संस्कृत, फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी तीनों ही से आये शब्दों में दो प्रवृत्तियाँ सामान्य रूप से मिलती हैं--

(१) जो ध्वनियाँ इन भाषाओं में तथा हिन्दी में समान हैं, स्वभावतः प्रायः ज्यों की त्यों हिन्दी में आ गई हैं।

(२) जिन ध्वनियों में थोड़ा-बहुत अन्तर है, प्रायः वह निकटतम हिन्दी ध्वनि में परिवर्तित हो गई हैं।

शेष नियम तीनों ही के सम्बन्ध में अलग-अलग हैं।

फ़ारसी (अरबी, तुर्की, पश्तो भी)--उपर्युक्त के अतिरिक्त सामान्य बातें तीन हैं--

(१) हिन्दी के सुशिक्षित वर्ग में प्रभावस्वरूप पाँच नए व्यंजन आ गये हैं, जिनमें फ़, ज़ का तो काफ़ी प्रयोग होता है, किन्तु क़, ख़, ग़ का प्रयोग इधर काफ़ी कम हो गया है।

(२) बोलचाल की सामान्य हिन्दी में क़, ख़, ग़, ज़, फ़ क्रमशः क, ख, ग, ज, फ हो गए हैं।

(३) ध्वनि-परिवर्तन के नियम के रूप में मुख्यतः केवल एक ही बात कही जा सकती है और वह यह कि शब्द के अन्त में आने वाला अल्पोच्चारित 'ह' हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में निरपवाद रूप से 'आ' हो गया है : दारोग़ह > दारोग़ा, तमाशह > तमाशा, किनारह > किनारा, किरायह > किराया, ग़ुस्सह > गुस्सा।

अंग्रेज़ी—अंग्रेज़ी ध्वनियों से हिन्दी ध्वनियों के सम्बन्ध के विषय में उपर्युक्त के अतिरिक्त दो बातें और कहने की हैं—

(१) हिन्दी के सुशिक्षित वर्ग ने अपने उच्चारण में 'ऑ' को ग्रहण कर लिया है।

(२) सामान्य बोलचाल में अंग्रेज़ी ऑ से आ (फुटबाल), 'फ़' से 'फ' (फोटो), तथा ज़ से ज (सेफ्टीरेजर) हो गया है।

संस्कृत—संस्कृत से हिन्दी में आने पर काफ़ी ध्वनियाँ तो ज्यों-की-त्यों या प्रायः ज्यों की त्यों आई हैं। किन्तु काफ़ी ध्वनियों में कुछ नियमित परिवर्तन हुए हैं, जिनमें से निम्नांकित मुख्य हैं—

स्वर

(१) क्षतिपूरक दीर्घीकरण का नियम—संस्कृत शब्दों में संयुक्त या दीर्घ व्यंजन (द्वित्व) के पूर्व यदि ह्रस्व स्वर हो, तो हिन्दी में दो व्यंजनों के स्थान पर प्रायः एक रह जाता है, तथा शब्द में मात्रा की उस कमी को पूरा करने के लिए ह्रस्व स्वर प्रायः दीर्घ हो जाता है, जिसे क्षतिपूरक दीर्घीकरण (compensatory lengthening) कहते हैं। इसमें अ का आ, इ का ई, अथवा ए तथा उ का ऊ या ओ हो जाता है :

अ > आ : कर्म = कम्म = काम, सप्त = सत्त = सात, अष्ट = अट्ठ = आठ, हस्त = हत्थ = हाथ, सर्प = सप्प = साँप, अद्य = अज्ज = आज।

इ = ई : भिक्षा = भिक्ख = भीख, शिक्षा = सिक्ख = सीख, इक्षु = इक्खु = ईख, जिह्वा = जिब्भ = जीभ।

= ए : छिद्र = छिद्द = छेद, शिम्बा = सिम्म = सेम, बिल्व = बिल्ल = बेल।

ए = ऊ : दुग्ध = दुद्ध = दूध, पुत्र = पुत्त = पूत, बुभुक्षा = बुभुक्खा = भूख, उष्ट्र = उट्ट = ऊँट।

= ओ : पुस्तिका = पुत्थिआ = पोत्थिअ = पोथी, कुष्ट = कुड्ढ = कोड्ढ = कोढ़।

(२) केन्द्रीकरण का नियम—अ स्वर मध्य है तथा अन्य स्वर अग्र या पश्च हैं। इसलिए 'अ' का उच्चारण सरल है। यही कारण है कि मुख-सुख के लिए प्रायः सभी स्वर केन्द्रीय स्वर अ में परिवर्तित हो जाते हैं। इसे केन्द्रीकरण कहते हैं। उदाहरणार्थ—आभीर = अहीर, तित्तिर = तीतर, परीक्षा = परख, अगुरु = अगर (बत्ती), आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) अक का आ—अक (=अग=अग़=अअ=आ) में 'आ' विकसित हो जाता है : घोटक=घोड़ा, चणक=चना, दोरक=डोरा, सप्तक=सत्ता, चित्रक=चीता, आदि।

(४) इका का ई—इका (=इगा=इग़ा=इआ=इअ=ई) 'ई' में विकसित हो जाती है : शाटिका=साड़ी, घोटिका=घोड़ी, घटिका=घड़ी, होलिका=होली, आदि।

व्यंजन : मूल

(१) महाप्राणों के ह होने के नियम—संस्कृत शब्दों का महाप्राण व्यंजन मुख्यतः यदि वह आदि में नहीं है (भू=हो, जैसे कुछ अपवाद हैं) तो प्राय ह् में परिवर्तित हो जाता है :

ख=ह : मुख=मुंह, आखेट=अहेर (शिकार), आखेटिक=अहेरी।

घ=ह : अरघट्ट=रहँट, मेघ=मेह, प्राघूर्ण=पाहुन।

छ=ह : +

झ=ह : +

ठ=ह : +

ढ=ह : +

थ=ह : कथ=कह, यूथी=जूही।

ध=ह : दधि=दही, बधिर=बहरा, वधू=बहू, साधु=साहु, गोधूम=गेहूँ।

फ=ह : मुक्ताफल=मुक्ताहल (मोती), कंटकफल=कटहल।

भ=ह : आभीर=अहीर, गंभीर=गहरा, गर्दभ=गदहा, दुर्लभ=दुलहा।

छ, झ, ठ, ढ से हिन्दी में 'ह' के विकास के उदाहरण मुझे नहीं मिले।

(२) घोषीकरण का नियम—संस्कृत के शब्दों के स्वर मध्यम अघोष अल्पप्राण स्पर्श हिन्दी में परम्परागत तद्भव शब्दों में घोष अल्पप्राण स्पर्श या स्पर्शसंघर्षी हो गए हैं :

क=ग : शाक=साग, कंकण=कंगन, कंकाल=कंगाल, एकादश=ग्यारह।

च=ज : कुंचिका=कुंजी, पंचक=पंजा।

ट=ड : ड् ध्वनि हिन्दी में अंत्य तथा स्वर-मध्यम स्थिति में ड़ हो जाती है, अतः ट का ड होकर नहीं रुकता, अपितु वह ड़ हो जाता है : घोटक=घोडअ=घोड़ा, घोटिका=घोड़िआ=घोड़ी, घटिका=घडिआ=घड़ी, अक्षवाटक=अक्खवाडअ=अखाड़ा, गुटिका=गुडिआ=गुड़िया, कीटक=कीडअ=कीड़ा, कभी-कभी ड़ का र भी हो जाता है : सं० विटपक=बिरवा कोटिका=कोरी।

त=द : +

प=ब : गोपेन्द्र=गोबिन्द, उपायन=बायन। प का ब में विकास हुआ, किन्तु अनेक शब्दों में ब शिथिल होकर व हो गया : पूपक=पूवा, अष्टापंचाशत=अठ्ठावन, आपाक=आँवा, गोपेन्द्र=गोविन्द, विटपक=बिरवा, अग्रपद=अगुवा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ शब्दों में व का उ हुआ और फिर उ पूर्ववर्ती अ आदि से लिकर 'औ' हो गया : सपत्नी=सौत, कपर्दिका=कौड़ी।

(३) अ सम्बन्धी नियम—अनेक शब्दों में स्वर मध्यग म् शिथिल होकर 'वँ' हुआ, और फिर व् की अनुनासिकता पूर्ववर्ती स्वर पर चली गई : आमलक=आँवला, ग्राम=गाँव, कुमार=कुँवर, कुमारी=कुँवारी, श्यामल=साँवला, धूम=धुँआ, चमर=चँवर, भ्रमर=भँवर। कुछ शब्दों में व और भी शिथिल होकर उ हो गया और पूर्ववर्ती अ, आ से मिलकर औ बन गया : दमनक=दौना, गमन+क=गौना, वामन+क=बौना, भ्रमरक=भौंरा।

(४) ण का न हो जाने का नियम—परिनिष्ठित हिन्दी में प्रयुक्त तद्भव शब्दों में सर्वत्र ण के स्थान पर न हो गया है : कंकण=कंगन, चणक=चना, प्राघूर्णक=पाहुना, स्वर्णकार=सुनार, पर्ण=पान, कर्ण=कान। अपवाद : पाषाण=पहाड़।

(५) व का ब हो जाने का नियम—कुछ शब्दों में 'व' का 'ब' हो जाता है : वधू=बहू, वारिद=बादल, वानर=बन्दर, वक्र=बाँका, दूर्वा=दूब, वृद्ध=बूढ़ा।

(६) य का ज हो जाने का नियम—कुछ शब्दों में य का ज हो जाता है : यमुना=जमुना, जमना, यव=जौ, कार्य=काज, यूक=जूँ, शय्या=सेज, यंत्र=जंतर।

(७) ष का प्रायः स—मुषल=मूसल, कषपट्टिका=कसौटी, षंड=साँड़, वर्ष=बरस, उषर=ऊसर, आषाढ=असाढ़, षष्ठि=साठ; या कभी-कभी ख : पुरुष=पुरखा, मेष=मेख (मीन-मेख निकालना), षड्राग=खटराग (में पड़ना), झष=झख (मारना), शोषण=सोखना, पाषाण=पाखान, वर्षा=बरखा; अथवा ह : पाषाण=पहाड़, पाहन, कृष्ण=कान्ह; अथवा छ : षट्=छः।

(८) स का प्रायः स—सर्व=सब, सर्प=साँप, सप्त=सात, सौभाग्य=सुहाग; या कभी-कभी ह : स्ना=नहा, सप्तति=हत्तर (६९, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८); किंतु अपवादतः च : लालसा=लालच, कृसरान्न=खिच(ड़ी)।

(९) श का प्रायः स—श्वास=साँस, शत=सौ, विंशति=बीस, शाक=साग, श्यामल=साँवला, शाटिका=साड़ी, श्रावण=सावन, शृगाल=सियार; किन्तु कभी-कभी ह : दश=रह (११, १२, १३, १७, १८), दह (१४), रह (१५), केशरी=केहरी।

(१०) र का कभी-कभी ल—वारिद=बादल, हरिद्रा=हल्दी, पत्र=पत्तल, चत्वारिंशत्=चालीस, बब्बूर=बबूल, करीर=करील।

(११) ल का कभी-कभी र—लाला=राल, लोष्टक=रोड़ा, अट्टालिका=अटारी, श्लाघ=सराह (धातु), कवल=कौर, शृगाल=सियार, लांगूली=लंगूर।

व्यंजन : संयुक्त

संयुक्त व्यंजनों का संस्कृत से हिन्दी तक विकास होने में हम पाते हैं कि कभी तो इनमें किसी एक या दो का लोप (सप्त=सात, उष्ट्र=ऊँट) हो जाता है और कभी एक (स्ना=नहा) या दोनों परिवर्तित हो जाते (षंड=साँड़) हैं, या इसी प्रकार कुछ घटित होता है। इसका विस्तृत विवेचन अभी तक नहीं हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगता है कि उच्चारण के आधार पर व्यंजनों को सशक्त या (अपेक्षाकृत) अशक्त कहा जा सकता है। जिस व्यंजन के उच्चारण में जितनी दृढ़ता होगी, वह उतना ही सशक्त और उसके उच्चारण में जितनी ही अदृढ़ता होगी, वह उतना ही अशक्त होगा। इस दृष्टि से संस्कृत व्यंजनों को पाँच वर्गों में रखा जा सकता है--

(१) सर्वाधिक सशक्त—पाँचों वर्गों के प्रथम चार वर्ण (स्पर्श)

(२) उनसे अशक्त--स, ष, श (ऊष्म)

(३) उनसे भी अशक्त—वर्गों के पाँचवें वर्ण (नासिक्य)

(४) उनसे भी अशक्त--य, र, ल, व (अंतस्थ)

(५) सर्वाधिक अशक्त—ह

उपर्युक्त आधार पर संयुक्त व्यंजन दो प्रकार के हो सकते हैं—

(क) सम : जिसमें दोनों ही बल की दृष्टि से समान हों; जैसे दुग्ध, सप्त।

(ख) विषम : जिसमें एक बली हो तथा एक निर्बल हो; जैसे अग्नि, कर्म, अंगुष्ठ, जिह्वा।

सम संयुक्त व्यंजन—यदि दोनों समान शक्ति के हों तो पूर्ववर्ती व्यंजन का लोप हो जाता है। इसका कारण यह है कि पूर्ववर्ती का उच्चारण पूरा नहीं होता, अतः वह परवर्ती की तुलना में, जो पूर्णोच्चरित है, उस स्थिति में, कुछ अशक्त हो जाता है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि उसके साथ स्वर नहीं होता। उदाहरणार्थ—

(१) स्पर्श+स्पर्श—भक्त=भत्त=भात, दुग्ध=दुद्ध=दूध, सप्त=सत्त=सात।

(२) अन्तस्थ+अन्तस्थ--आर्यक=आजा, आर्यिका=आजी, कुमायूनी इजा (माँ), सर्व=सब (अपवाद : कल्य=कल; दे० आगे)।

विषम संयुक्त व्यंजन—जैसा कि स्वाभाविक है कि विषम, अर्थात् यदि संयुक्त व्यंजन में एक सशक्त हो और एक अशक्त, तो अशक्त का लोप होगा तथा सशक्त यथावत् या कुछ परिवर्तित होकर बना रहेगा। नासिक्य व्यंजन लुप्त होते भी हैं, तो प्रायः पार्श्ववर्ती स्वर को प्रभावित कर जाते हैं। इसी प्रकार स, श, ष, ह आदि अवशिष्ट व्यंजन को महाप्राणित कर जाते हैं।

(१) स्पर्श+नासिक्य—कवर्ग--अंकन=आँकना, पंक=पाँक, टंक=टाँक, भंग=भाँग।

चवर्ग—चन्चु=चोंच, पञ्च=पाँच, मंचिका=मँचिया, संचक=साँचा।

टवर्ग—भाण्डक=भाँड़ा, भण्ड=भाँड़, मण्डप=माँड़व, षण्ड=साँड़, कण्टक=काँटा।

तवर्ग—इन्धन=ईंधन, बन्धन=बाँधना, संधि=सेंध।

पवर्ग—कम्पन=काँपना, (शिम्बा=सेम अपवाद है)

मिश्र—अग्नि=आग, सपत्नी=सौत।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे-पीछे का कोई अन्तर नहीं है; सन्धि, अग्नि। ज्ञ अपवाद है ; ज्ञ के स्थान पर प्रायः न (राज्ञी=रानी, यज्ञोपवीत=जनेऊ) हो जाता है। तथाकथित तत्सम एवं अर्धतत्सम शब्दों में ग्य या ग्यँ (ज्ञान=ग्यान, आज्ञा=आग्याँ, यज्ञ=यग्य, जग्य) होता है।

(२) स्पर्श+अन्तस्थ—सूत्र=सूत, पुत्र=पूत, गुर्जर=गूजर, पत्र=पात, पत्ता, पक्व=पका, अर्क=आक, चक्र=चाक, सर्प=साँप। आगे-पीछे आने का कोई अन्तर नहीं : अर्क, चक्र।

(३) स्पर्श+ऊष्म—क्ष=ख। इसमें 'क+ष' है। 'ष' का लोप तो होता है किन्तु वह क को प्रभावित करके उसे महाप्राण 'ख' बना देता है : अक्षि=आँख, क्षेत्र=खेत, शिक्षा=सीख, बुभुक्षा=भूख। ष पहले आए, तब भी कोई अन्तर नहीं पड़ता : पुष्कर=पोखरा, शुष्क=सूखा। स्त=थ (पुस्तिका=पोथी, हस्त=हाथ, स्तन=थन, हस्ती=हाथी, मस्तक=माथा) में भी वही बात है। अन्य उदाहरण : कुष्ट=कोढ़ (ट=ढ=ढ़), अष्ट=आठ, पश्चिम=पच्छिम, रुष्ट=रूठा, पक्ष=पंख। अर्थात् ऊष्म स्पर्श को महाप्राण बना देता है।

(४) नासिक्य+अन्तस्थ—पर्ण=पान, कर्ण=कान, कर्म=काम, घर्म=घाम, शून्य=सूना, पूर्णिमा=पूनो, प्राघूर्णक=पाहुना, (चूर्ण=चूर अपवाद) चून, धर्म=घाम (तीर्थ), अन्य=आन, शून्य=सुन्न, पुण्य=पुन्न, पुन, ऊर्ण=ऊन।

(५) ऊष्ण+नासिक्य—रश्मि=रास, रस्सी।

(६) ऊष्ण+अन्तस्थ—यस्य=जिस, तस्य=तिस, कस्य=किस, श्वशुर=ससुर, श्याला=साला, श्वास=साँस, श्वश्रू=सास।

(७) कोई व्यंजन+ह—जिह्वा=जीभ, गुह्यिका=गुझिया। (व>ब+ह=भ; य>ज+ह=झ) :

त्रिव्यंजन—तीन व्यंजनों के संयुक्त रूप में भी प्रायः यही बात देखी जाती है. अन्त्र=आँत, उष्ट्र=ऊँट, चन्द्र=चाँद, पंक्ति—पाँत, तीक्ष्ण=तीखा, यन्त्रक=जाँता, पार्श्व=पास।

अन्तस्थ+अन्तस्थ—(१) ल के उच्चारण में मध्यरेखा पर स्पर्श होता है, अतः वह य, व की तुलना में अधिक सशक्त होता है; यही कारण है कि ल्य, ल्व में य, व लुप्त हो जाता है : मूल्य=मोल, कल्य=कल, बिल्व=बेल।

(२) यदि य, व व्यंजन ज, ब बनकर स्पर्श हो जाएँ तो वे सशक्त हो जाते हैं : व्याघ्र=बाघ, सर्व सब, कार्य=काज।

संयुक्त व्यंजनों में एक व्यंजन के लोप तथा उसके प्रभाव से शेष के महाप्राणीकरण, मूर्धन्यीकरण, तालव्यीकरण की भी प्रवृत्ति मिलती है। इनमें जो व्यंजन शेष बचता है, वह भी परिवर्तित हो जाता है। कभी-कभी कारण न होने पर भी मात्र प्रवृत्तिवश इस प्रकार का परिवर्तन हो जाता है, जिसे प्रवृत्त्यात्मक परिवर्तन कहा जा सकता है। महाप्राणीकरण विषय की कुछ बातें प्रसंगतः ऊपर भी आ चुकी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्राणीकरण—स्पर्शों के साथ स, ष, श, ह का योग हो तो स्वभावतः स, ष, श, ह का लोप होता है, किन्तु शेष स्पर्श महाप्राण हो जाता है। मेरे विचार में इसे दो रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है : (१) स, ष, श का विकास 'ह' में हो जाता है और 'ह' के योग से महाप्राणता संभव है (कब+ही=कभी); (२) स, ष, श, ह लुप्त हो जाते हैं, किन्तु उनके प्रभाव से अवशिष्ट अल्पप्राण महाप्राण में परिवर्तित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ :

(क) शिक्षा=सीख, भिक्षा=भीख, बुभुक्षा=भूख, शुष्क=सूखा, पुष्कर=पोखर, क्षीर=खीर, इक्षु=ईख, क्षेत्र=खेत, स्कंभ=खंभा।

(ख) वृश्चिक=बिच्छू।

(ग) अष्ट=आठ=कुष्ट=कोढ़, रुष्ट=रूठा।

(घ) प्रस्तर=पत्थर, पुस्तिका=पोथी, हस्त=हाथ, मस्तक=माथा, स्तन=थन, हस्ती=हाथी।

(ङ) जिह्वा=जीभ, ब्राह्मण=ब्राम्हन, ब्राम्हण (पश्चवर्ती प्रभाव), वाष्प=भाप (व>ब+ह=भ)। उल्लेख्य है कि न्ह, म्ह भी महाप्राण हैं।

मूर्धन्यीकरण—तवर्ग (प्रथम चार) +र=टवर्ग (प्रथम चार)—ऐसा इसलिए है कि 'र' मूर्धा से उच्चरित (ऋतुरषाणां मूर्द्धा) है, अतः तवर्ग का मूर्धन्यीकरण हो गया। त+र=ट, त्रसर=टसर, करपत्र=करवट (आरा), कैवर्त=केवट, उद्वर्त्तन=उबटन, कर्त=काट, वर्त्म=बाट, कर्तरी=कटारी, चित्र=छींट, त्रुट्,=टूट, (अपवाद : अंत्र=आंत, त्रयोविंशति=तेईस, चित्रक=चीता, वर्तिका=बत्ती, पत्र=पात, पुत्र=पूत, सूत्र=सूत, वेत्र=वेंत, क्षेत्र=खेत, रात्रि=रात)। लगता है कि कुछ क्षेत्रों में 'र' के प्रभाव से टवर्ग हुआ तथा कुछ में निर्बल 'र' लुप्त हो गया। कुछ शब्दों में दूर होने पर भी प्रभाव : वृतक=बड़ा, मृत्तिका=माटी, मिट्टी, विकृत=विकट। 'ल' का भी अपवादतः यही प्रभाव : तिलक=टीका, गलगति=गिरगिट। प्रवृत्त्यात्मक : विभीतक=बहेड़ा। थ+र=ठ : अर्धचतुर्थ=अहुंट (३½), (दूर होने पर) ग्रन्थि=गाँठ, थियेटर=ठेठर (भोजपुरी में)। अपवादत : सार्थ=साथ, चतुर्थ=चौथा। प्रवृत्त्यात्मक : प्रस्था=पठा, स्थग=ठग, उत्थान=उठान। द+र=ड, बीच में या अन्त में होने पर ड़ : कर्पादिका=कौड़ी। दूर होने पर भी : दर=डर, दोरक=डोरा। ल का भी यही प्रभाव : दौलिका=डोली। अपवाद : दद्रु=दाद, भाद्रपद=भादों, निद्रा=नींद, चन्द्र=चाँद। प्रवृत्त्यात्मक : दंडक=डंडा, दंशन=डँसना, विभीतक=बहेड़ा। ध+र=ढ, बीच में या अन्त में होने पर ढ़ : धृष्ठ=ढीठ, सार्ध=साढ़े, अर्धतृतीय=अढ़ाई, ढाई, वर्ध=बढ़। ल के प्रभाव से : शिथिल=ढील। अपवाद : अर्ध=आधा। प्रवृत्त्यात्मक—स्तब्ध=ठाढ़, क्वाथक=काढ़ा।

तालव्यीकरण—तवर्ग (प्रथम चार)+य=चवर्ग (क्रमशः प्रथम बार)। 'य' तालव्य है, अतः त, य, द, ध दंत्य स्पर्श से हटकर तालव्य हो गए। त+य=च : नृत्य=नाच, सत्य=साँच, सच, कृत्यगृह=कचहरी। थ+य=छ : मत्स्य=मछली। द+ज :=अद्य=आज, वाद्य=बाजा, द्यूत=जुआ, विद्युत्=बिजली, वैद्यनाथ=बैजनाथ। ध+य=झ : संध्या=साँझ, बंध्या=बाँझ, युध्य=जूझ, सम्बुध्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

=समझ, अध्यापक=झा, उपाध्याय=ओझा, अन्तध्याय=अंझा, मध्यधार=मझधार।

हिंदी ध्वनियों का विकास

आगे हिंदी की प्रायः सभी ध्वनियों का पृथक्-पृथक् इतिहास दिया जा रहा है। यहाँ अरबी शब्दों को अलग से न लेकर फ़ारसी के साथ ही रखा गया है, क्योंकि अरबी के शब्द फ़ारसी के माध्यम से ही आए हैं। पुर्तगाली शब्द, कुछ तो सीधे पुर्तगाली से आए हैं, तथा कुछ अन्य भाषाओं के माध्यम से। इसका दो-टूक निर्णय करना कठिन है कि कौन-कौन किन अन्य भाषाओं के माध्यम से आए हैं। इसीलिए पुर्तगाली शब्द पुर्तगाली उच्चारण को पृष्ठभूमि में रखकर ही दिये गए हैं।

अ : (१) सं० अ से—सं० गर्दभी>प्रा० गद्दही>हि० गदही, गधी, सं० स्थग>प्रा० ठग>हि० ठग, सं० खर्जूर>प्रा० खज्जूर>हि० खजूर। (२) स्वराघातरहित सं० आ से—सं० भांडागार>प्रा० भंडागार>हि० भंडार, सं० आभीर>प्रा० अहीर>हि० अहीर, सं० आषाढ>प्रा० आसाढ़>हि० असाढ़। (३) सं० इ से—सं० विभीतक>प्रा० बहेडअ>हि० बहेड़ा, सं० वारिद>हि० बादल। (४) सं० ई से—सं० परीक्षा>प्रा० परिक्खा>हि० परख। (५) सं० उ से—सं० अगुरु>प्रा० अगरु>हि० अगर (अगरबत्ती)। (६) सं० ऋ से—सं० कृष्ण>कन्हैया। (७) सं० ए से—सं० एरंड>प्रा० एरंड>हि० अरंड। (८) सं० ओ से—शोभांजन>हि० सहिजन (एक पेड़)। (९) तुर्की अ से (बेगम, तोशक)। (१०) फ़ा० अ से (अन्दर, अनार)। (११) पुर्त० अ से (अनन्नास, गमला)। (१२) अं० अ से (जज, बस)। (१३) अं० ऑ से (अफ़सर, अगस्त, अर्दली)। (१४) अं० ऐ से (जनवरी, अलबम)। (१५) अं० ए से (दिसम्बर, फरवरी)। (१६) अं० इ से (रपट, इंजन)।

आ : (१) सं० आ से—सं० शाक> प्रा० साग>हि० साग, सं० श्वास> हि० साँस, सं० काष्ठ> प्रा० कट्ठ>हि० काठ। (२) सं० अ से (यदि यह अ संयुक्त या दीर्घ व्यंजन के पूर्व हो)—सं० चक्र>प्रा० चक्क>हि० चाक, सं० हस्त>प्रा० हत्थ>हि० हाथ, सं० सर्प>प्रा० सप्प>हि० साँप, सं० कर्म>प्रा० कम्म>हि० काम। (३) सं० अक से—सं० घोटक>प्रा० घोडअ>हि० घोड़ा, सं० चणक>प्रा० चणअ>हि० चना, सं० दोरक>प्रा० डोरअ>हि० डोरा। (४) सं० ऋ से (यदि यह संयुक्त या दीर्घ व्यंजन के पूर्व हो)—सं० नृत्य>प्रा० णच्च>हि० नाच, सं० कृष्ण>प्रा० कण्ह>हि० कान्ह। (५) तुर्की, फ़ा०, अं० आ से (दारोग़ा, चाकू, आज़ाद, पास)। (६) 'अह्' से (ख़ज़ानह्>ख़ज़ाना, किनारह्> किनारा, मसालह्>मसाला, बस्तह>बस्ता)। (७) पुर्त० आ से (अनन्नास, अल्मारी, काजू)।

इ : (१) सं० इ से—सं० विटपक>प्रा० विरवअ>हि० बिरवा, सं० माणिक्य>प्रा० माणिक्क>हि० मानिक। (२) सं० अ से—सं० गलगति>हि० गिरगिट, सं० पञ्जर>प्रा० पंजर>हि० पिंजरा। (३) सं० ई से—सं० दीपक>प्रा० दीअअ>हि० दिया, सं० दीपावली>प्रा० दीवाअली>हि० दिवाली। (४) सं० ऋ से—सं० मृत्तिका>प्रा० मिट्टिआ>हि० मिट्टी, सं० शृगाल>प्रा० सिआल>हि० सियार। (५) सं० ए से—सं० गोपेन्द्र>हि० गोबिन्द। (६) तुर्की, फ़ा०, अं० इ से (चिक, आतिशबाज़ी, इंजन)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ई : (१) सं० ई से—सं० गृहिणी>प्रा० घरिणी>हि० घरनी, सं० क्षुरी> प्रा० छुरी, हि० छुरी, सं० क्षीर> प्रा० खीर>हि० खीर। (२) सं० इ से—(जो दीर्घ या संयुक्त व्यंजन के पूर्व हो) सं० इक्षु>प्रा० इक्खु>हि० ईख, सं० भिक्षा> प्रा० भिक्ख>हि० भीख। (३) सं० इ से (अन्य स्थितियों में)—सं० दधि>प्रा० दहि>हि० दही, सं० अपि> प्रा० वि>हि० भी। (४) सं० इका से—सं० घोटिका>प्रा० घोडिआ>हि० घोड़ी, सं० होलिका>प्रा० होलिआ>हि० होली, सं० आरात्रिका>हि० आरती। (५) सं० ऋ से—सं० पृष्ठ>प्रा० पिठ्ठ >हि० पीठ। (६) तुर्की, फ़ा०, अं० इ से—(क़ालीन, क्रीम)। (७) अं० इ से—(अर्दली, तिजोरी, जुलाई)।

उ : (१) सं० उ से—सं० कटुक>प्रा० कडुअ>हि० कड़ुआ, सं० गुटिका>प्रा० गुडिआ>हि० गुड़िया। (२) सं० ऊ से—सं० प्रभूत>प्रा० बहुत्त>हि० बहुत, सं० धूम>हि० धुआँ, सं० द्यूत>प्रा० जूअ>हि० जुआ। (३) सं० अ से—सं० पश्च>प्रा० पुच्छ (सं० में भी प्रयुक्त)>हि० पूंछ, सं० पलाल>हि० पुआल। (४) सं० ऋ से—सं० वृद्ध>प्रा० बुड्ढ>हि० बुड्ढा। (५) सं० ओ (को) से—सं० एकोन>प्रा० अउण>हि० उन (उनतीस, उनतालिस, उनसठ)। (६) सं० म् से—सं० स्मृति>हि० सुरत (सं>स, ऋ>र, म>व>उ)। (७) सं० व् से—सं० स्वर्णकार>प्रा० सुण्णार>हि० सुनार (सोनार भी)। (८) तुर्की, फ़ा०, अं० उ से (उज़बक, कुर्ता, उस्तरा, कुश्ती, फुटबाल, हुक)।

ऊ : (१) सं० ऊ से—सं० ऊषर>प्रा० ऊसर>हि० ऊसर, सं० ऊर्ण>प्रा० उण्ण> हि० ऊन। (२) सं० उ से (दीर्घ या संयुक्त व्यंजन के पूर्व का)—सं० उष्ट्र >प्रा० उट्ट>हि ऊँट, सं० पुत्र>प्रा० पुत्त>हि० पूत (सपूत, कपूत), सं० दुग्ध >प्रा० दुद्ध>हि० दूध। (३) सं० 'उ' या 'उका' से—सं० वालुका>प्रा० वालुआ>हि० बालू, सं० भल्लुक>प्रा० भल्लुअ>हि० भालू, सं० शक्तुक प्रा०> सत्तुअ>हि० सत्तू। (४) सं० इ से—सं० वृश्चिक>हि० बिच्छू। (५) सं० इक से—सं० गैरिक>प्रा० गेरुअ>हि० गेरू। (६) सं० ऋ से—सं० पृच्छ >प्रा० पुच्छ>हि० पूछ, सं० वृद्ध>प्रा० बुड्ढ>हि० बूढ़ा। (७) सं० औ से—सं० पौष>प्रा० पुस्स>हि० पूस। (८) तुर्की, फ़ा०, पुर्त०, अं० ऊ से (बारूद, कूच, अंगूर, खरबूजा, काजू, जून, प्रूफ़, सूप)।

ए : (१) सं० ए से—सं० अग्रे>प्रा०अग्गे>हि० आगे, सं० मेघ>प्रा० मेह>हि० मेह, सं० क्षेत्र>प्रा० खेत्त>हि०खेत। (२) सं० अ से—सं०शय्या>प्रा०सेज्जा> हि० सेज (कदाचित् य के प्रभाव से), सं० कंचुलिका> प्रा० कंचुलिआ>हि० कंचुली, सं० मज्जा >हि० भेजा। (३) सं० इ से (जिसके बाद संयुक्त व्यंजन हो)—सं० शिम्बा>हि० सेम, सं० छिद्र>प्रा० छिद्द>हि० छेद, सं० बिल्व >प्रा०बिल्ल>हि० बेल। (४) सं० ऐ से—सं० कैवर्त>प्रा० केवट्ट>हि० केवट, सं० तैल>प्रा० तेल, हि० तेल, सं० गैरिक>प्रा० गेरुअ>हि० गेरू। (५) सं० उ से—सं० फुप्फुस>हि० फेफ(ड़ा)। (६) सं० अयो से—सं० त्रयोदश> प्रा० तेरस, तेरह>हि० तेरह; सं० त्रयोविंशति>प्रा० तेवीस>हि० तेइस। (७) सं० अइ से—सं० नवति>प्रा० नव्वए>हि० नव्वे, नब्बे; सं० सप्तनवति >प्रा० सत्तानवे>हि० सत्तानबे। (८) सं० ओ से—सं० गोधूम>हि० गेहूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गोहूँ बालियों में)। (९) तुर्की, फ़ा० ए से (वेग, वेगम, सफ़ेद, रेशम)। (१०) पुर्त० ए से (मेज़)। (११) अं० एँइ से (एक्सरे, रेडियो)।

ऐ : (१) सं० ऐ से—सं० चैत्र>प्रा० चइत्त>हि० चैत, सं० वैराग्य>हि० बैराग। (२) सं० अइ से–सं० प्रविष्ट>प्रा० पइट्ठ>हि० पैठ्, सं० उपविष्ट>प्रा० बइट्ठ>हि० बैठ्। (३) सं० इ से–सं० द्विशाखिका>हि० बैसाखी। (४) सं० अय से—सं० नयन>हि० नैन। (५) तुर्की, फ़ा० अइ से (कैंची, मैदान, खैर)। (६) अं० ऐ से (गैस, बैंड, टैंक, बैंक)।

ओ : (१) सं० ओ से—सं० घोटिका>प्रा० घोडिआ>हि० घोड़ी, सं० होलिका>प्रा० होलिआ>हि० होली, सं० दोरक>प्रा० डोरअ>हि० डोरा। (२) सं० उ से (यदि बाद में संयुक्त व्यंजन हो)—सं० पुष्कर>प्रा० पुक्खर, पोक्खर>हि० पोखर, सं० कुष्ट>प्रा० कुड्ढ>हि० कोढ़; सं० पुस्तिका>प्रा० पुत्थिआ, पोत्थिअ>हि० पोथी। (३) सं० ऊ से—सं० मूल्य>प्रा० मोल्ल>हि० मोल; सं० भुर्ज प्रा०>भुज्ज>हि० भोज (पत्र)। (४) सं० औ से–सं० सौभाग्य>प्रा० सोहग्ग>हि० सोहाग; सं० मौक्तिक>प्रा० मोत्तिअ>हि० मोती; (५) सं० व से—सं० स्वर्ण>प्रा० सोण्ण>हि० सोना। (६) सं० 'अयू' से—सं० मयूर>प्रा० मऊर>हि० मोर। (७) सं अव से—सं० अलवणल>प्रा० अलोणअ>हि० अलोना; सं० अवश्या>प्रा० ओस्सा>हि० ओस। (८) सं० उप से—सं० उपल+क>प्रा० उवल+अ>हि० ओला। (९) सं अप से—सं० अपसार>प्रा० ओसार>हि० ओसार (ा, ई)। (१०) तुर्की, फ़ा० ओ से (तोप, दारोग़ा, ज़ोर, गोश्त)। (११) पुर्त० ओउ से (गोभी, बोतल)। (१२) अं० ओउ से (कोट, नोट, रेडियो)।

औ : (१) सं० औ से—सं० गौ(अउ) रव>हि० गौरव। (२) सं० अप से—सं० सपत्नी>हि० सौत, सं० कपर्दिका>प्रा० कवड्डिआ>हि० कौड़ी, सं० अपर>प्रा० अवर>हि० और। (३) सं० आम से—सं० वामन+क>हि० बौना, सं० चामर>हि० चौंर। (४) सं० अउ से—सं० जतुगृह>प्रा० जउहर>हि० जौहर, सं० चतुष्क>प्रा० चउक्क>हि० चौक, सं० चतुर्दश>प्रा० चउद्दह>हि० चौदह। (५) सं० अव से—सं० यव>प्रा० जव>हि० जौ। सं० लवंग>हि० लौंग, सं० नव>प्रा० णव>हि० नौ। (६) तुर्की, फ़ा० अउ से (सौगात, मौसम, फ़ौज)। (७) पुर्त० ओ से—(पिस्तौल)। (८) पुर्त० आ से—(तौली)। (९) पुर्त० ओआ से (तौलिया)।

क् : आदि क् : (१) सं० क् से—सं० कातर>प्रा० काअर, कायर>हि० कायर, सं० कटाहिका>प्रा० कडाहिआ>हि० कड़ाही; सं० कर्ण>प्रा० कण्ण>हि० कान, सं० क्वाथ>हि० काढ़ा। (२) तुर्की, फ़ा० क़ से (कुर्ता, कुमक, कमजोर, किताब)। (३) पुर्त० क् से (काजू, कप्तान, कमरा)। (४) अं० ईषत् महाप्राणयुक्त क् से (कमेटी, कंकरीट, कलक्टर)। मध्य क् : (१) सं० क् से—सं० एकविंशति>प्रा० एक्कवीसइ>हि० इक्कीस; सं० शकट+क>हि० छकड़ा। सं० कर्कर>प्रा० कक्कर>हि० कंकड़; सं० वक्र>हि० बाँका; सं० चिक्कण>प्रा० चिक्कण>हि० चिकना; सं० पक्व>प्रा० पक्क>हि० पका। (६) तुर्की, फ़ा० क़ से (मुचलका, आबकारी इन्कार)। (९) पुर्त०, अं० क् से (अलकतरा, तंबाकू, एकड़, एक्सरे)। अंत्य क् :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) सं० क् से–सं० ग्राहक>प्रा० गाहक>हि० गाहक, सं० चतुष्क>प्रा० चउक्क >हि० चौक, सं० माणिक्य>प्रा० माणिक्क>हि० मानिक; सं० चक्र>प्रा० चक्क >हि० चाक। सं० बुक्क>प्रा० भुक्क>हि० भूँक। (७) तुर्की, फ़ा० क् से (उज़बक, कुमक, चाबुक, ऐनक)। (१०) अं० (मूल) या संयुक्त क् से (बैंक, चेक, ट्रक, टैंक)।

ख् : आदि ख् : (१) सं० ख् से—सं०>खर्जू>प्रा० खज्जू, खज्ज>हि० खाज; सं० खट्वा>प्रा० खट्टा, खट्ट>हि० खाट; (२) सं क्ष् से—सं० क्षेत्र>प्रा० खेत्त> हि० खेत; सं० क्षीर>प्रा० खीर>हि० खीर। (३) सं० क से—सं० कर्पर> प्रा० खप्पर>हि० खप्पर। (४) सं० स्क् से—सं० स्कंभ>प्रा० खम्भ> हि० खम्भा। (५) सं० ष् से सं० षट्राग>हि० खटराग। मध्य ख् : (१) सं० ख् से–सं० खसखस>प्रा० खसखस>हि० खसखस। (२) सं० क्ष् से—सं० द्वादशाक्षरी>हि० बारहखड़ी; सं० अक्षवाटक>प्रा० अक्खवाडग>अक्खवाडअ>हि० अखाड़ा; सं० म्रक्षण>प्रा० मक्खण>हि० मक्खन, माखन। (३) सं० ख्य् से–सं० व्याख्यान>प्रा० वक्खाण>हि० बखान। (४) सं० ष्क् से—सं० पुष्कर> प्रा० पुक्खर, पोक्खर>हि० पोखर, पोखरा; सं० शुष्क>प्रा० सुक्ख>हि सूखा। अंत्य ख् : (१) सं० ख् से–सं० दुःख>हि० दुख, सं० सुख>हि०सुख; (२) सं० क्ष से–सं० अक्षि>प्रा० अक्खि>हि० आँख; सं० लक्ष>प्रा० लक्ख>हि० लाख; सं० इक्षु>प्रा० इक्खु>हि० ईख। (३) सं० ष् से—सं० झष>हि० झख (मुहावरा—झख मारना); सं० मीनमेष>हि० मीनमेख (मुहावरा—मीनमेख निकालना); (४) सं० ष्क् से—संशुष्क>प्रा० सुक्ख>सं० सूख् (धातु)।

ग् : आदि ग् : (१) सं० ग् से—सं० गम्भीर>प्रा० गहिर>हि० गहरा, सं० गुटिका>प्रा० गुडिआ>हि० गुड़िया, सं० ग्राम>प्रा० गाम>हि० गाँव; सं० ग्रंथि>प्रा० गण्ठि>हि० गांठि गाँठ। (२) सं० क् से—सं० कंदुक>प्रा० गेंदुअ >हि० गेंद, सं० एकदश>हि० ग्यारह। (४) सं० घ् से—सं० घट्>प्रा० गढ>हि० गढ़ (धातु)। (५) फ़ा०, पुर्त०, अं० ग से—(गंदा, गर्मी, गमला, गिरजा, गिलास, गोल)। मध्य ग : (१) सं० ग् से—सं० अगुरु>प्रा० अगरु >हि० अगर(बत्ती), सं० फाल्गुन>प्रा० फग्गुण>हि० फागुन, सं० अंगिका> प्रा० अंगिआ>हि० अंगिया, सं० गर्गर>प्रा० गग्गर>हि० गागर, सं० अग्निस्थिका>प्रा० अंगिट्ठिआ>हि० अँगीठी, सं० अग्रहायण>प्रा० अग्गहण>हि० अगहन। (२) सं० क् से—सं० शकुन>प्रा० सगुन>हि० सगुन, सं० भक्त> हि० भगत। सं० कंकाल>हि० कंगाल। (९) तुर्की, फ़ा० ग् से—(बेगम, तगाड़, कारीगर)। (१०) फ़ा० क़ से—(नक़्क़ारः>नगाड़ा)। (११) अं० क् से–(डिक्री>डिग्री)। अन्त्य ग् : (१) सं० ग् से–सं० शृंग>प्रा० सिंग>हि० सींग; सं० लवंग>हि० लौंग, सं० स्थग>हि० ठग, सं० वल्गा>प्रा० बग्ग>हि० बाग (घोड़े की), सं० अग्नि>प्रा० अग्गि>हि० आग, सं० सौभाग्य>प्रा० सोहग्ग> हि० सोहाग, सं० मुद्ग>प्रा० मुग्ग>हि० मूँग। (२) सं० क् से—सं० लोक>प्रा० लोग>हि० लोग, सं० शाक>प्रा० साग>हि० साग; सं० काक> हि० काग। (३) फ़ा० ग् से—(तंग, रंग, रग)। (८) पुर्त०, अं० ग् से—(परेग=कील, बैंग, जंग)। (१०) अं० क से (कॉर्क>काग)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घ् : आदि घ् : (१) सं० घ् से—सं० घट+क>प्रा० घडअ>हि० घड़ा; सं० घोटिका>प्रा० घोडिआ>हि० घोड़ी; सं० घटिका>घडिआ>हि० घड़ी। (२) सं० ग्, ह् के योग से—सं० गृह>प्रा० घर>हि० घर; सं० गृहिणी>प्रा० घरिणी >हि० घरनी। मध्य घ् :(१) सं० घ् से—सं० व्याघ्रिणी>हि० बाघिन, सं० उद्घाटन, प्रा० उग्घाड>हि० उघाड़ (ना)। (२) सं० ग् तथा ह् से—सं० विग्रह>प्रा० विग्गह>हि० बीघा। अन्त्य घ् : (१) सं० घ् से—सं० जंघा> प्रा० जंघ>हि० जाँघ, सं० व्याघ्र>प्रा० वग्घ>हि० बाघ।

क़् : आदि क़् : (१) तुर्की, फ़ा० क़् से—(क़ुर्क़, क़दम, क़ब्ज)। मध्य क़् : (१) तुर्की, फ़ा० क़् से—(चक़मक़, अक्ल)। अंत्य क़् : (१) तुर्की, फ़ा० क़् से—(चक़मक़, खन्दक़, ग़र्क़)।

ट् : आदि ट् : (१) सं० ट् से—सं० टंकशाला>हि० टकसाल। (२) सं० त् से (र या ल पास हो तो)—सं० तिलक>हि० टीका, टिकली; सं० त्रसर>प्रा० टसर> हि० टसर (रेशम)। (३) अं० ट् से (टैंक, टाइप, टिकट)। मध्य ट् : (१) सं० ट् से—सं० कंटक>प्रा० कंटअ>हि० काँटा; सं० कषपट्टिका>प्रा० कसवट्टिआ >हि० कसौटी। (२) सं० त् से—सं० कर्तरिका>प्रा० कट्टरिआ>हि० कटारी। सं० उद्वर्त्तन>हि० उबटन; सं० मृत्तिका>प्रा० मिट्टिआ>हि० मिट्टी। (३) पुर्त ब् से—पुर्त० बाल्दे>हि० बाल्टी। (४) अं० ट् से (एटलस, नोटिस)। अंत्य ट् : (१) सं० ट् से—सं० अरघट्ट>प्रा० रहट्ट>हि० रहट; सं० हट्ट>प्रा० हट्ट>हि० हाट। (२) सं० त् से—सं० कर्त>हि० काट्; सं० कैवर्त>प्रा० केवट्ट>हि० केवट, सं० करपत्र>प्रा० करवट्ट>हि० करवट् (काशी करवट)। (३) सं० ष्ठ् से—सं० कोष्ठ>प्रा० कोट्ट>हि० कोट (पुराना क़िला)। (४) अं० ट् से (कोट, एजेंट, टिकट)।

ठ् : आदि ठ् : (१) सं० ठ् से—सं० ठक्कुर>प्रा० ठक्कुर>हि० ठाकुर (ठक्कुर शब्द सं० में है, किंतु मूलतः यह सं० शब्द नहीं है। कुछ लोगों ने इसे तुर्की 'तेगिन' से जोड़ा है)। (२) सं० स्थ् से—सं० स्थग>प्रा० ठग>हि० ठग; सं० स्थाप्य >प्रा० ठप्प>हि० ठप। मध्य ठ् : (१) सं० ठ् से—सं० कंठिका>प्रा० कंठिआ>हि० कंठी, सं० कोष्ठागारिका>प्रा० कोट्ठारिआ>हि० कोठरी; सं० अंगुष्ठ+क>प्रा० अंगुट्ठअ>हि० अँगूठा। (३) सं० ट् से—सं० मिष्टान्निका >हि० मिठाई; सं० लष्टिका>प्रा० लट्ठिआ>हि० लाठी। (४) सं० स्थ से—सं० प्रस्था (पयति)>प्रा० पट्ठा>हि० पठा (भेज्); सं० अग्निस्थिका >प्रा० अग्गिट्ठिआ>हि० अँगीठी; (५) सं० त्थ से—सं० उत्थान>प्रा० उट्ठान>हि० उठान। अंत्य ठ् : (१) सं० ठ् से—सं० शुंठि>प्रा० सुंठि> हि० सोंठ। (२) सं० ट् से—सं० षट्षष्टि>प्रा० छासट्ठ>हि० छियासठ; सं० प्रविष्ट>प्रा० पइट्ठ>हि० पैठ् (धातु); सं० अष्ट>प्रा० अट्ठ>हि० आठ; (३) सं० र् के समीप थ् से—सं० ग्रंथि>प्रा० गंठि>हि० गाँठि, गाँठ।

ड् : आदि ड् : (१) सं० ड् से—सं० डमरू>हि० डमरू; सं० डाकिनी>प्रा० डाइणि>हि० डाइन। (२) सं० द् (प्रायः ल, र का समीपवर्ती) से—सं० दोरक >प्रा० डोरअ>हि० डोरा; सं० दर>प्रा० डर>हि० डर; सं० दाह>हि० डाह, सं० दंशन>हि० डँसना। (३) अं० ड् से—डाक्टर, डिग्री। मध्य ड् : (१) सं० ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से—सं० भाण्डागारिक>प्रा० भंडारिअ>हि० भंडारी; सं० अण्डक>हि० अंडा। (२) सं० स्थ् से—सं० अस्थि>प्रा० हड्डि>हि० हड्डी। (३) अं० ड् से—रेडियो, सोडा। अंत्य ड् : (१) सं० ड् से—सं० मंड>हि० मांड्। (२) अं० ड् से—कार्ड, गार्ड।

ढ् : आदि ढ् : (१) सं० ढ् से—सं० ढाल>हि० ढाल। (२) सं० ध् (र के समीप) से—सं० धार>ढाल, सं० अर्धतृतीय>प्रा० अड्ढतिय, अड्ढइ>हि० अढ़ाई, ढाई; सं० धृष्ठ>प्रा० ढिट्ठ>हि ढीठ। (५) सं० थ् (ल के समीप) से—सं० शिथिल>प्रा० सिढिल>हि० ढीला। मध्य ढ्: कुछ मिश्र शब्दों में—बेढब।

त् : आदि त् : (१) सं० त् से—सं० तुन्द>प्रा० तुंद>हि० तोंद; सं० तालक>प्रा० तालअ>हि० ताला; सं० त्रयोविंशति>प्रा० तेवीस>हि० तेइस; सं० त्वरित>हि० तुरत, तुरंत। (२) तुर्की, फा० त् से (तमग़ा, तमंचा, तंग, तंदूर)। (३) पुर्त० त् से (तौलिया, तंबाकू)। (७) अं० ट् से (तारकोल, तारपीडो, तिजोरी)। मध्य त् : (१) सं० त् से—सं० पश्चाताप>प्रा० पच्छताव>हि० पछतावा; सं० स्रोतक>प्रा० सोतअ>हि० सोता (चश्मा), सं० आदित्यवार>हि० इतवार; सं० अंत्र>अप० अंत+डी>हि० अंतड़ी; सं० चित्रक>प्रा० चित्तअ>हि० चीता; सं० कार्तिक>प्रा० कत्तिक>हि० कातिक; सं० पित्तल>प्रा० पित्तल>हि० पीतल; सं० मौक्तिक>प्रा० मोत्तिअ>हि० मोती; सं० नप्तृक>प्रा० नत्तिअ>हि० नाती; सं० विज्ञप्तिका>प्रा० विनत्तिआ>हि० विनती, बिनती। (२) सं० ट् से—(अपवादतः) सं० कटवर>हि० कतवार (कूड़ा)। (३) तुर्की, फा० त् से—(कोतल, कुर्ता, उस्तरा, उस्ताद)। (४) पुर्त० त् से—(संतरा, इस्त्री, मिस्त्री, फ़ीता, पिस्तौल)। (५) अं० ट् से—(पतलून, केतली, सितंबर, अस्पताल)। अंत्य त् : (१) सं० त् से—सं० दंत>प्रा० दन्त>हि० दाँत; सं० क्षेत्र>प्रा० खेत्त>हि० खेत; सं० रात्रि>प्रा० रत्त>हि० रात; सं० भक्त>प्रा० भत्त>हि० भात; सं० पंक्ति>प्रा० पंति>हि० पाँत; सं० सप्त>प्रा० सत्त>हि० सात। सं० वार्ता>प्रा० वत्ता, बत्त>हि० बात। (२) तुर्की, फा० त् से—(सौगात, गनीमत, किस्त, मस्त, अमानत)। (३) पुर्त० त् से—(इस्पात, परात)। (४) अं० ट् से—(अगस्त)।

थ्: आदि थ् : (१) सं० थ् से—सं० स्थाली>प्रा० थाली>हि० थाली; सं० स्थानक>प्रा० थानअ>हि० थाना; सं० स्तन>प्रा० थण>हि० थन। (२) अं० थ् से—(थर्मामीटर, थर्मस, थिएटर)। मध्य थ् : (१) सं० थ् से—सं० कथन+ई>हि० कथनी; (२) स० त् से—सं० मस्तक>प्रा० मत्थअ>हि० माथा; सं० पुस्तिका>प्रा० पोत्थिआ>हि० पोथी; सं० हस्ती>प्रा० हत्थी>हि० हाथी। (२) अं० थ् से—ईथर। अंत्य थ् : (१) सं० थ् से—सं० पथ>हि० पथ; सं० कपित्थ>प्रा० कइत्थ>हि० कैथ; सं० सार्थ>प्रा० सत्थ>हि० साथ। (२) सं त् से—सं० मस्तक>प्रा० मत्थअ>हि० माथा; सं० हस्त>प्रा० हत्थ>हि० हाथ। सं० लोत्र>प्रा० लोत्त>हि० लोथ (लाश)। (६) अं० थ् से (बर्थ—रेल की, रेडियो का तार—अर्थ)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द् : आदि द् : (१) सं० द् से—सं० दुर्बल>प्रा० दुब्बल>हि० दुबला; सं० दद्रु>प्रा० दद्दु>हि० दाद; सं० दुग्ध>प्रा० दुद्ध>हि० दूध; सं० द्रोणक>प्रा० दोणअ>हि० दोना; सं० द्वौ>प्रा० दो>हि० दो। (२) तुर्की, फा० द् से—(दारोग़ा, देर, देहात)। (३) अं० द् से—(दलेल, दराज, दर्जन, दिसम्बर)। मध्य द् : (१) सं० द् से—सं० वारिद>प्रा० बद्दल>हि० बादल; सं० हरिद्रिका>प्रा० हलिद्दिआ, हलिद्दी>हि० हल्दी; सं० भाद्रपद>प्रा० भाद्दवअ>हि० भादों, भादौं; सं० गर्दभक>प्रा० गद्दहअ> हि० गदहा (गंधा)। (२) तुर्की, फा० द् से—(उर्दू, बहादुर, आदत आदि)। (३) पुर्त० द् से—(पादरी)। (४) अं० द् तथा द् से—(अर्दली, अकादमी, फैदम)। अंत्य द् : (१) सं० द् से—सं० तुन्द>प्रा० तुन्द>हि० तोंद; सं० बिन्दु>प्रा० बिन्दु>हि० बूंद; सं० दद्रु>प्रा०दद्द, दद्द>हि० दाद; सं० निद्रा>प्रा०निद्दा>हि० नींद। (४) तुर्की, फ़ा० द् से—(बारूद, आबाद, खराद, खुद)। (५) पुर्तगाली द् से—(गारद)।

ध् : आदि ध् : सं० ध् से—सं० धान्य>प्रा० धण्ण>हि० धान; सं० धूम्र>प्रा० धुम्म>हि० धुआँ। मध्य ध् : (१) सं० ध् से—सं० अंधकार>पा० अंधकार >प्रा० अंधआर, अंधयार, अंधियार>हि० अंधेरा; सं० उद्धार>प्रा० उद्धार> हि० उधार। (२) सं० द् (महाप्राण के ह से मिलकर) से—सं० गर्दभ+क >प्रा० गद्दह+अ >हि० गदहा >गधा (गर्दभी से गधी भी)। अंत्य ध् : सं० ध् से—सं० अश्वगंधा > हि० असगंध; सं० दुग्ध>प्रा० दुद्ध > हि० दूध।

प् : आदि प् : (१) सं० प् से—सं० पाषाण >प्रा० पहाण > हि० पहाड़; सं० पारद >प्रा० पारअ >हि० पारा; सं० प्रहेलिका> प्रा० पहेलिआ>हि० पहेली; सं० स्पर्श>हि० परस। (२) फ़ा० प् से—(पंजा, परगना, परदा)। (३) पुर्त० प् से—(पादरी, परात, पावरोटी)। (४) अं० प् से—(पंप, पतलून, पार्क, पार्सल, पाउडर, प्रेस)। मध्य प् : (१) सं० प् से—सं० स्वप्न > हि० सपना; सं० सुपुत्र>हि० सपूत, सं० कर्पटक >प्रा० कप्पडअ>हि० कपड़ा; सं० उत्पलक>प्रा० उप्पलअ>हि० उपला; सं० पिप्पल>प्रा० पिप्पल>हि० पीपल। (२) सं० त्म से—सं० आत्मनाम्>प्रा० अप्पणो>हि० अपना। (३) फ़ा० प् से—(आबपासी)। (४) पुर्त० प् से—(आलपीन, कप्तान, इस्पात)। (५) अं० प् से—(आपरेशन, डिग्री, टेम्पो, अपील)। अंत्य प् : (१) सं० प् से—सं० कम्प<प्रा० कंप>हि० काँप; सं० शूर्प>प्रा० सुप्प> हि० सूप; सं० सर्प>प्रा० सप्प>हि० साँप; सं० वाष्प>हि० भाप। (२) सं० त्म से—सं० आत्म>प्रा० अप्प>हि० आप। (३) तुर्की, फा० प् से—(तोप, गप)। (४) अं० प् से—(टाइप, क्लिप, पंप, कैंप)।

फ् : आदि फ् (१) सं० फ् से—सं० फाल्गुन>प्रा० फग्गुण>हि० फागुन; सं० फण> प्रा० फण>हि० फन; सं० स्फोटक>प्रा० फोडअ>हि० फोड़ा। (२) सं० प् (ऊष्म के समीप का) से—सं० पाश >हि० फाँस; सं० परशु>प्रा० फरसु> हि० फरसा। मध्य फ् : सं० फ् से—सं० सफल >हि० सफल। अंत्य फ् : (१) सं० फ् से—सं० कफ> हि० कफ (इसे कदाचित् अं० कफ़ के प्रभाव से प्रायः कफ़ भी कहते हैं); सं० गुंफ>हि० गफ। (२) सं० प् से—सं० शतपुष्प>हि० सौंफ (यद्यपि यह संस्कृत से विकसित शब्द है, किन्तु इसे प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग 'सौंफ़' कहते हैं)।

ब् : आदि ब् : (१) सं० ब् से—सं० बीटक>प्रा० बीडग, बीडअ>हि० बीड़ा (पान); सं०बधिर+क>प्रा० बहिर+अ>हि० बहिरा, बहरा; सं० ब्राह्मण >प्रा० बम्हण>हि० बाम्हन। (२) सं० ब् से—सं० वटक>प्रा० वडग, वडअ>हि० बड़ा (दही बड़ा); सं० वधू>प्रा० बहू,>हि० बहू; सं० द्वात्रिंशत>प्रा० बत्तीसा>हि० बत्तिस; सं० व्याघ्र—प्रा० बग्घ>हि० बाघ। (३) सं० प् से—सं० उपविष्ट्>प्रा० बइट्ठ>हि० बैठ् (धातु); सं० प्रभूत> प्रा० बहुत>हि० बहुत। (४) सं० भ् से—सं० भगिनी>प्रा० भइणी> बहिणी>हि० बहिन। (५) सं० म् से—सं० मल्लिका बेला (बोली—बेइला, वेइल)। (६) तुर्की, फ़ा० ब् से—(बारूद, बेगम, बदन, बयान)। (७) पुर्त० ब् से—(बाल्टी, बंबा, बोतल)। (८) अं० ब् से—(बैंक, बंडल, बटन, बम)। मध्य ब् : (१) सं० ब् से—सं० लम्बक>प्रा० लम्बअ>हि० लम्बा; सं० दुर्बल+क>प्रा० दुब्बल+अ>हि० दुबला; सं० निम्बुक>प्रा० निम्बुअ>हि० नींबू। (२) सं० म् से—सं० ताम्र>प्रा० तम्म, तम्ब>हि० ताँबा; सं० आम्रिका>प्रा० अम्बिया>हि० अँबिया (टिकोरा)। (३) सं० प् से— सं० गोपेन्द्र>प्रा० गोविन्द>हि० गोबिन्द। (४) सं० भ् से—सं अभ्रक> हि० अबरक। (५) सं० ब् से—सं० उद्वर्त्तन>हि० उबटन। (६) तुर्की, फ़ा० ब् से—(उज़बक, क़ाबू, आबकारी, आबनूस, आबादी)। (७) पुर्त० ब् से—(चाबी, बंबा)। (८) अं ब् से—(अक्तूबर, अलबम, नंबर, रबड़)। अंत्य ब् : (१) सं० ब् से—सं कदम्ब>हि० कदम्ब। (२) सं० ब् से— सं० सर्व>प्रा० सब्ब>हि० सब; सं० दूर्वा>प्रा० दुब्बा>हि०>दूब। (२) फ़ा० ब् से—(असबाब, खूब, कबाब, अजीब)। (३) अं० ब् से—(ठब, हब, निब, क्लब)।

भ् : आदि भ् : (१) सं० भ् से—सं० भूर्ज>प्रा० भुज्ज>हि० भोज (पत्र), स० भिक्षा>प्रा० भिक्खा>भिक्ख>हि० भीख; सं० भ्रमर+क>प्रा० भवँरअ>हि० भवँरा, भौंरा। (२) सं० ब् (समीप के 'प' का प्रभाव) से— सं० वेष>हि० भेस (जैसा देश वैसा भेस); सं० वाष्प>हि० भाप। (३) सं० म् (जिसके समीप ह हो) से—सं० महिष>प्रा० महिस>हि० भैंस (म>व>ब+ह=भ); (बिना ह के) सं० मज्जा>प्रा० मज्जा>हि० भेजा। (५) सं० प् से—सं० अपि>प्रा०>वि>हि० भी (ज़ोर के कारण ई)। (६) सं० ब् से—सं० बुषक, बुशक>प्रा० भुस्सअ>हि० भूसा (ऊष्म के कारण महाप्राणत्व)। मध्य भ् : (१) सं० भ् से—सं० आभूषण>हि० आभूषण; सं० उद्भर (ति)>हि० उभर (ना); सं०गर्भिणी>प्रा०>गब्भिणी >हि० गाभिन। (२) पुर्त० ब् से—पुर्त० कोवि>हि० गोभी। अंत्य भ् : (१) सं० भ् से—सं० लाभ>हि० लाभ, सं० लोभ>हि० लोभ। (२) सं० ब् से—सं० जिह्वा>प्रा० जिब्भा, जिब्भ>हि० जीभ।

च् : आदि च् : (१) सं० च् से—सं० चैत्र>प्रा० चइत>हि० चैत; सं० चक्र> प्रा० चक्क>हि० चाक; सं० चणक>प्रा० चणअ>हि० चना। (२) सं० त् से—सं० तंडुल>प्रा० तंडुल>चांउल>हि० चावल। (३) तुर्की, फ़ा०च् से—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(चकमक, चाक़ू, चिक, चंदा, चरबी, चश्मा, चादर)। (४) पुर्त० च् से—(चाबी)। (५) अं० च् से—(चेक, चिमनी, चाकलेट, चुरुट)। मध्य च् : सं० च् से—सं० अंचल>प्रा० अंचल>हि० आँचल; सं० कूर्चिका>प्रा० *कुच्चिआ>हि० कूची; सं० कच्चर+क>प्रा०कच्चरअ>हि० कचड़ा। (२) सं० त् से—सं० कृत्यगृहिका>प्रा० किच्चहरिया>हि० कचहरी। (३) सं० स् से—सं० कृसरान्न>प्रा० खिच्च+डी>हि० खिचड़ी। (४) सं० ज्ञ् से—सं० अज्ञातक>फ़ा०, हि० अचानक। (७) सं स्त् से—सं० स्तंभित>हि० अचंभित। (८) तुर्की, फ़ा० च् से (खच्चर, गुचलका, आलूचा, परचा, बच्चा)। (१०) अं० च् से (पंक्चर, बोलियों में पंचर)। अंत्य च् : (१) सं० च् से—सं० चंचु>प्रा० चंचु>हि० चोंच्; सं० पंच>प्रा० पंच>हि० पाँच। (२) सं० त् से—सं० नृत्य>प्रा० नच्च>हि० नाच; सं० सत्य>प्रा० सच्च>हि० साच, साँच, सच। (३) सं० स् से—सं० लालसा>हि० लालच। (४) तुर्की : फ़ा० च् से—(कूच, चम्मच)। (५) अं० च् से—(मैच, बेंच, टार्च, इंच)।

छ् : आदि छ् : (१) सं० छ् से—सं० छत्रक>प्रा० छत्तअ>हि० छाता; सं० छाया>प्रा० छाआ>हि० छाँह; सं० छिद्र>प्रा० छिद्द>हि० छेद। (२) सं० ष् से—सं० षट्पट>प्रा० छप्पय>हि० छप्पय; सं० षष्ठ>प्रा० छठ्ठ>हि० छठ (ा)। (३) सं० श् से—सं० शकटक>प्रा० *छक्ककडअ>हि० छकड़ा; सं० शल्कल>हि० छिलका। (४) सं० च् से—सं० चित्र>हि० छींट। (५) सं० क्ष् से—सं० क्षुद्र+क>प्रा० छुट्टु+अ>हि० छोटा; सं० क्षुरक>प्रा० छुरअ>हि० छुरा। मध्य छ् : (१) सं० क्ष् से—सं० कक्षपट्टिका>प्रा० कच्छुट्टिआ>हि० कछौटी; सं० ऋक्षिणी>हि० रीछनी। (२) सं० त्स् से—सं० उत्साह>प्रा० उच्छाह>हि० उछाह; सं० उत्संग>प्रा० उच्छंग>हि० उछंग (गोद); सं० वत्सक>प्रा० वच्छअ>हि०>बाछा (प्रा० में ड प्रत्यय से बछड़ा); सं० मत्स्य प्रा० मच्छ+ली>हि० मछली। (३) सं० च् से—सं० वृश्चिक>प्रा० विच्छुअ>हि० बिच्छू; सं० पश्चाताप>प्रा० पच्छाताअ>हि० पछतावा। अंत्य छ् : (१) स० छ् से—सं० पृच्छ>प्रा० पुच्छ>हि० पूछ् (धातु); सं० पुच्छ>प्रा० पुच्छ>हि० पूँछ। (२) सं० क्ष् से—सं० ऋक्ष>प्रा० रिच्छ>हि० रीछ। (३) सं० श् से—सं० श्मश्रु>प्रा० म्हच्छु>हि० मूँछ।

ज् : आदि ज् : (१) सं० ज् से—सं० जतुगृह>प्रा० जउहर>हि० जौहर; सं० जिह्वा>प्रा० जिब्भा>हि० जीभ; सं० ज्येष्ठ>प्रा० जेट्ठ>हि० जेठ; सं० ज्वल>प्रा० जल>हि० जल् (धातु)। (२) सं० द् से—सं० द्यूत>हि० जूआ। (३) सं० य् से—सं० यमुना>यमना, जमना; सं० यूष>प्रा० जूस>हि० जूस (अं० भी जूस); सं० यव>प्रा० जो>हि० जौ; सं० यादृश>प्रा० जइस—हि० जैसे (सा); सं० यूक>प्रा० जूअ>हि० जूँ। (४) फ़ा० ज् से—(जासूस, जिल्द, जवाब)। (५) पुर्त० ज़ से—(जंगला)। (५) अं० ज् से—(जज, जंक्शन, जनवरी)। मध्य ज् : (१) सं० ज् से—सं० स्वजन>सजण, सज्जण>हि० सजन, साजन; सं० पंजरक>प्रा० पंजरअ>हि० पिंजरा, पिंजड़ा; सं० कज्जल>प्रा० कज्जल>हि० काजल; सं० वाणिज्यकारक>प्रा० वाणिज्जारअ>हि० बनिजारा, बनजारा। (२) सं० द्य् से—सं० विद्युत्+इका>प्रा० बिज्जुलिआ>हि० बिजली; सं० वाद्य+क>प्रा० बज्जअ>हि० बाजा। (३) सं० च् से—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सं०—कुंचिका>हि०कुंजी; सं०पंचक>हि०पंजा। (४) सं०य् से—सं० यवानिका >अजवाइन, सरयू>सरजू। (५) सं० द् से—सं० गदाधर>हि० गजाधर (नामों में)। (६) फ़ा०ज् से—(पायजामा, अजीब, इजलास)। (७) पुर्त० ज् से—(काजू, गिरजा)। (८) अं०ज् से—(एजेंट, एजेंसी, इंजीनियर, इंजन)। अंत्य ज् : (१) सं० ज् से—सं० भ्रातृजाया>प्रा० भाउज्जा>हि० भावज। (२) सं० राज्य>प्रा०रज्ज>हि० राज; लज्जा>प्रा० लज्ज>हि० लाज; (३) सं० द् से—सं० अद्य>प्रा० अज्ज>हि० आज; सं० अन्नाद्य>प्रा० अणज्ज>हि० अनाज, सं० खोद्य>प्रा० खोज्ज>हि० खोज। (४) सं० य् से—सं० तृतीय>प्रा० तिइज्ज>अप० तइज्ज>हि० तीज; सं० कार्य>प्रा० कज्ज>हि० काज; सं० शय्या>प्रा० सेज्जा>हि० सेज। (५) फ़ा० ज् से—(हज, रंज, इलाज, गंज)। (६) पुर्त० ज् से—(काज—बटन का)। (७) अं० ज् से—(जज, गैरेज, ब्रिज)।

झ् : आदि झ् : (१) सं० झ् से—सं०झाट>प्रा० झाड>हि० झाड़; >सं० झष> प्रा० झख>हि० झख (मुहावरा—झख मारना)। (२) सं० श् से—सं० शद् >प्रा० झड>हि० झड (ना)। (३) सं० ध् से—सं०ध्वजदंडक>प्रा० *झंडअ >झंडा (इसे प्लाट्स ने 'जयंतक' से जोड़ा है); सं० अध्यापक>प्रा० अज्झा-वय>अज्झा>हि०झा। मध्य झ् : (१) सं०झ् से—सं०झंझा>प्रा०झंझा>हि० झंझा। (२) सं० ध् से—सं० उपाध्याय>हि० ओझा; सं० अनध्याय>हि० अंझा। अंत्य झ् : (१) सं० ध् से—सं० संध्या>प्रा० संझ>हि० साँझ; सं० वंध्या>प्रा० बंझ>हि० बाँझ।

ङ् : मध्य ङ् : (१) सं० ङ् से—सं० कङ्काल>हि० कंगाल। (२)सं० न् से—सं० नग्न* क : >प्रा० नग्गओ>हि नंगा। (३) आगम—सं० कर्कर>प्रा० कक्कर> हि०कंकड़। (४) फ़ा० ङ् से—(दंगल, तंग, जंग, रंगीन)। (५) अं० ङ् से—(बैंक, टैंक)।

ञ् : आदि में तथा अंत में नहीं आता। मध्य ञ् : (१) सं० ञ् से—सं०पञ्चक> प्रा० पंचअ>हि० पंजा। (२) आगम—सं० मज्जन>हि० मंजन। (३) फ़ा० से—(रंज, गंज, संजीदा)। (४) अं० से—(इंजन, इंजीनियर, इंच, रिंच)।

ण् : आदि में यह हिंदी में नहीं आता। मध्य ण् : (१) सं० ण् से—सं० अगणित >हि० अगणित (अगँड़ित्); सं० प्रामाणिक>हि०प्रामाणिक (प्रामाँड़िक्); सं० वर्णन>हि० वर्णन (वरड़न्)। अर्थात्, इनमें ण् अनुनासिक उत्क्षिप्त है। स्पर्श-युक्त ण्—सं० पण्डित>हि० पंडित; सं० खण्ड>हि० खंड। (२) अं० शब्दों में—(अंडरवियर, कंट्रोल, कंडक्टर, बंडल)। अंत्य ण् : (१) सं० ण् से—सं० गुण>हि० गुण, सं० पण>हि० प्रण (उत्क्षिप्त ड़ है)।

न् : आदि न् : (१) सं० न् से—सं० नव>प्रा० णअ, णउ>हि० नौ; सं० निद्रा> प्रा० णिद्द>हि० नींद; सं० नृत्य>प्रा० णच्च>हि०नाच। (२) सं० ज्ञ् से—सं० ज्ञातिगृह>प्रा० णइहर>हि० नैहर। (३) सं० ल् से—सं० लवण>प्रा० लोण>हि० नोंन, नून (बोलियों में)। (४) तुर्की, फ़ा० न् से(नागा, नमक, नाखून, नहर)। (५) पुर्त० ल् से—पुर्त० लेलाँव>हि० नीलाम (बोलियों में लिलाम कहते हैं जो मूल के अधिक निकट है)। (६) अं० न् से—(निब, निकर,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नोटिस)। मध्य न् : (१) सं० न् से—सं० पानीय>प्रा० पाणिअ>हि० पानी; (२) सं० ण् से—सं० चणक>प्रा० चणअ>हि० चना; सं० गृहिणी>प्रा० घरिणी>हि० घरनी; सं० प्राघूर्णक>प्रा० प्राहुणग>पाहुणअ>हि० पाहुना; सं० स्वर्णकार>प्रा० सुण्णार>हि० सुनार; (३) सं० ज्ञ् से—सं० विज्ञप्तिका>प्रा० विण्णत्तिआ>हि० विनती; (४) तुर्की, फ़ा० न् से—(गनीमत अनार, आमदनी); (५) पुर्त० न् से—(अनन्नास, सन्तरा); (६) अं० न् से—(चिमनी)। अंत्य न् : (१) सं० न् से—सं० स्तन>प्रा० थण>हि० थन; सं० भगिनी>प्रा० भइणी, बहिणी, बहिण>हि० बहिन, बहन; सं० धान्य>प्रा० धण्ण>हि० धान। (२) सं० ण् से—सं० ऊर्णा>प्रा० उण्णा>हि० ऊन; सं० कर्ण>प्रा० कण्ण>हि० कान; सं० पर्ण>प्रा० पण्ण>हि० पान; सं० कंकण>प्रा० कंकण>हि० कंगन। (३) सं० ञ् से—सं० अष्टापंचाशत्>प्रा० अट्ठावण>हि० अट्ठावन। (४) सं० ल् से—सं० जम्बूफल>जम्बुल>जम्बुन>हि० जामुन। (५) तुर्की, फ़ा० न् से—(क़ालीन, आसमान; अरमान, कानून)। (६) पुर्त० न् से—(आलपिन, क्रिस्तान, कप्तान)। (७) अं० न् से—(दर्जन, आपरेशन, टेलीफोन)।

न्ह् : आदि न्ह् : मानक हिंदी में नहीं है। मध्य न्ह् : (१) सं० ष्ण् से—सं० कृष्ण+क>प्रा० कण्हअ>हि० कान्हा, कन्हैया। अन्त्य न्ह् : (१) सं० ष्ण् से—सं० कृष्ण>प्रा० कण्ह>हि० कान्ह। (२) सं० ह्न से—सं० चिह्न>हि० चिन्ह।

म् : आदि म् (१) सं० म् से—सं० मक्षिका>प्रा० मक्खिआ>हि० मक्खी; सं० मृत्तिका>प्रा० मिट्टिआ>हि० मिट्टी; सं० म्रक्षण>प्रा० मक्खण (तेल, लेप)>हि० मक्खन, माखन; सं० श्मश्रु (दाढ़ी-मूछ)>प्रा० मुच्छु>हि० मूँछ; (२) सं० ब् से—सं० बकुलश्री>प्रा० बउलसिरी, बोलसिरी>मध्ययुगीन हिन्दी मौलसिरी>आधुनिक हि० (सं० प्रभाव से) मौलश्री; (३) तुर्की, फ़ा० म् से—(मुचलका, मजदूर, मर्द, मस्त); (४) पुर्त० म् से—(मिस्त्री, मारतौल); (५) अं० म् से—(मलेरिया, मशीन, मिल, मिनट)। मध्य म् : (१) सं० म् से—सं० मामिका>प्रा० मामिआ>हि० मामी; सं० चर्म>प्रा० चम्म, हि० चमड़ा; सं० जम्बूफल>प्रा० जम्बुल>, जम्बुन>हि० जामुन। (२) सं० द्व् से—सं० उद्वेष्टते>प्रा० उव्वेढइ>हि० उमेठ (ना)। (३) तुर्की, फ़ा० म् से—(तमग़ा, कुमक, अमानत, आमदनी, क़मीना)। (४) पुर्त० म् से (अलमार, गमला, कमरा)। (५) अं० म् से—(कैमरा, चिमनी)। अंत्य म् : (१) सं० म् से—सं० नाम>प्रा० नाम>हि० नाम; सं० कर्म>प्रा० कम्म>हि० काम; सं० निम्ब>प्रा० णिम्म>हि० नीम; सं० आम्र>प्रा० अम्व, अम्म>हि० आम; सं० दम्म (मूलतः ग्रीक)>प्रा० दम्म>हि० दाम; (२) सं० भ् से—सं० वल्लभ>प्रा० वल्लभ>हि० बालम। (३) तुर्की, फ़ा० म् से—(बेगम, जाज़िम, आराम, गरम, इनाम, कसम)। (४) पुर्त० ब् से—(नीलाम)। (५) अं० म् से—(टीम, आइसक्रीम, अलबम, बम)।

म्ह् : आदि म्ह् : मानक हिंदी में नहीं है। मध्य म्ह् : (१) सं० ष्म् से—सं० कुष्मांडक>प्रा० कुम्हंडअ>हि० कुम्हड़ा; सं० तुष्मे>प्रा० तुम्हे>तुम्ह+

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करक>तुम्ह+अरअ>तुम्हारा; सं० *तुष्मे>प्रा० तुम्हे>अप० तुम्हइँ>हि० तुम्हें। (२) सं० श्म् से—सं० कुम्भकार>प्रा० कुंभार, कुम्हार>हि० कुम्हार। (३) सं० ह्म से—सं० ब्राह्मण>प्रा० बम्हण>हि० बाम्हन (बोली); सं० ब्रह्मा>हि० ब्रम्हा। अंत्य म्ह : सं० ह्म से-विपर्यय द्वारा—सं० ब्रह्म>हि० ब्रम्ह।

ल् : आदि ल् : (१) सं० ल् से—सं० लक्ष>प्रा० लक्ख>हि० लाख; सं० लोक>प्रा० लोग>हि० लोग। (२) सं० य् से—सं० यष्टिका प्रा० लट्ठिआ>हि० लाठी (य् से ल् सामान्यतः संभव नहीं है)। (३) तुर्की, फ़ा० ल् से—(लाश, लगाम, लबालब, लिफ़ाफ़ा)। (४) पुर्त० ल् से—(लबादा)। (५) अं० ल् से-(long cloth>लट्ठा, लांड्री, लाइसेंस, लैंप)। मध्य ल् : (१) सं० ल् से—सं० शिथिल>प्रा० सिढिल>हि० ढीला; सं० श्यालक>प्रा० शिआलअ>हि० साला; सं० भल्लुक>प्रा० भल्लुअ>हि० भालू; सं० वल्लभ>हि० बालम। (२) सं० र् से—सं० हरिद्री (हरिद्रा भी) >प्रा०हलिद्दी>हि०हल्दी; सं०चत्वारिंशत्>प्रा० चत्तालीसा>हि०चालीस; सं० पर्यङ्क>प्रा० पल्लंग>हि० पलंग। (३) सं० ड् से—सं० तडाग>प्रा० तलाअ, तलाव>हि० तालाब। (४) सं० द्र् से—सं० भद्र+क>प्रा० भल्लअ >अप० भल्ला>हि० भला। (५) सं० त् से—सं० *विद्युतिका >प्रा० विज्जुलिआ>विज्जुली>हि०विजली; सं०अतीसी, अतसी>प्रा०अतसी, अलसी >हि०अलसी। (६) सं० ड् से-सं० षोडश>प्रा० *सोड ', सोलह>हि०सोलह। (७) तुर्की, फ़ा० ल् से—(गलीचा, मुचलका, अक़्लमंद, कलाबाज़ी,अदालत)। (८) पुर्त० ल् से—(आलपीन, नीलाम, गमला)। (९) अं०ल् से—(एटलस, अलबम, पलास, पतलून, कालर)। (१०) अं० र् से—अं०ड्रिल>दलेल। अंत्य ल् : (१) सं० ल् से— सं० कज्जल>प्रा० कज्जल>हि० काजल; सं० खल> हि० खरल; सं० गल्ल>प्रा० गल्ल> हि० गाल; सं० कल्य>प्रा० कल्ल>हि० कल; सं० मूल्य>प्रा० मोल्ल>हि० मोल; सं० बिल्व>प्रा० बेल्ल>हि० बेल (श्रीफल)। (२) सं० र्ण् से—सं० घूर्ण>प्रा० घोल्ल>हि० घोल (धातु)। (३) सं० त् से—सं० हारीत>हि० हारिल (एक पक्षी)। (४) सं० र् से—सं० बब्बूर>प्रा० बब्बूर>हि० बबूल (कीकर)। (५) तुर्की, फ़ा० ल् से -(अयाल, कोतल, लाल, बगल, काहिल)। (६) पुर्त० ल् से—(पिस्तौल, बोतल)। (७) अं० ल् से—(गोल, जेल, अस्पताल)।

ल्ह : आदि ल्ह् : परिनिष्ठित हिन्दी में आदि में नहीं आता। मध्य ल्ह् : (१) सं० ल्ह् से—सं० कुल्हरिका>हि० कुल्हड़; सं० चुल्हक>प्रा०चुल्हअ>हि० चूल्हा। (२) स० ठ् से—सं० कुठारक>हि० कुल्हाड़ा।

र् : आदि र् : (१) सं० र् से—सं० अरघट्ट>प्रा० अरहट्ट>रहट्ट>हि० रहट; सं० रात्रि>प्रा० रत्ति>हि० रात; सं० राज्ञी>प्रा० रञ्ञी, राणी>हि० रानी। (२) सं० ऋ से री—सं० ऋक्ष>प्रा० रिच्छ>हि० रीछ। (३) सं० न्य् से—सं० न्यंज>प्रा० णंच>हि० रंच। (४) सं० ल् से—सं० लाला >हि० राल। (५) तुर्की, फ़ा० र् से—(रब्बा=एक गाड़ी, रूमाल, रोशनी, रिश्ता)। (६) अं० र् से—(रंगरूट, रजिस्ट्री, रबर)। मध्य र् : (१) सं० र् से— सं० गैरिक>प्रा० गेरुअ>हि० गेरू; सं० आरात्रिक>प्रा० आरत्तिअ> हि० आरती। (२) सं० ऋ से—सं० कृ०>प्रा० कर>हि० कर; सं० मृ>मर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

>हि० मर; सं० गृहिणी>प्रा० घरिणी>हि० घरनी। (३) सं० द् से—सं० एकादश >प्रा० एगारह>हि० ग्यारह; सं० द्वादश>प्रा० बारस>बारह>हि० बारह। (४) सं० ल् से—सं० प्रक्षाल >प्रा० पक्खार>हि० पखार (ना); सं० अट्टालिका>प्रा० अट्टारिआ>हि० अटारी। (५) सं० ट् से—सं० वाटिका>प्रा० वाडिआ>हि० बाड़ी>बारी; सं० विटपक>प्रा० विडवअ>>विरवअ>हि० बिरवा। (६) आगम—सं० कोटि>प्रा० कोडि>हि० करोड़; अं० डज़न>दर्जन, सं० पण>हि० प्रण; सं० खल>हि० खरल; स० शाप>हि० श्राप। (७) तुर्की, फ़ा० र् से—(कुर्ता, बारूद, सुराग, आबरू, आराम)। (८) पुर्त० र् से—(अलमारी,-पादरी, गिरजा, सन्तरा, कमरा)। (९) अं० र् से—(आपरेशन, दराज, ओवरसियर, सर्कस)। अन्त्य र्: (१) सं० र् से—सं० अपर>प्रा० अवर, अउर>हि० और; सं० माकर>प्रा० मक्कार >हि० मक्कार। (२) सं० ल् से—सं० अवेला>हि० अबेर, सवेला>सबेर (अबेर-सबेर); सं० कवल>हि० कौर; सं० शृगाल>प्रा० सिगाल>हि० सियार। (३) सं० त् से—सं० सप्तति>प्रा० सत्तरि>हि० सत्तर; सं० सप्त-सप्तति>प्रा० सत्तहत्तरि>हि० सतहत्तर, सतत्तर। (४) सं० ट् से—सं० आखेट>प्रा० आहेड>हि० अहेर (शिकार)। (५) सं० ऋ से—सं० ज्ञाति-गृह>प्रा० णइहर>हि० नैहर; सं० पितृगृह>हि० पीहर। (६) तुर्की, फ़ा० र् से—(बहादुर, खच्चर, अंजीर, अंदर, अनार, काश्तकार)। (७) अं० र् से—(अक्तूबर, कंडक्टर, इन्सपेक्टर, टाइपराइटर, कलेंडर)। (७) अं० शब्द में आगम—अं० टमाटोउँ (Tomato)>हि० टमाटर। इस प्रकार का यह अकेला शब्द है।

ड़्: आदि में यह ध्वनि नहीं आती। मध्य ड़्: (१) सं० ड् से—सं० पीडा>प्रा० पीडा >हि० पीड़ा; सं० पण्डित>प्रा० पंडइ>हि० पाँड़े; सं० गड्डलिका>प्रा० गड्डरिगा >हि० गड़रिया; सं० जाड्य>प्रा० जड्डा>हि० जाड़ा; सं० ओड्रिक>प्रा० लोड्डिअ>हि० उड़िया। (२) सं० ट् से—सं० घोटक>प्रा० घोडअ>हि० घोडा; सं० वाटिका>प्रा० वाडिआ>हि० बाड़ी (बारी भी); सं० कटाहिका >प्रा० कडाहिआ>हि० कड़ाही; सं० अष्टत्रिंशत्>प्रा० अट्ठतीसा>हि० अड़तिस; सं० हट्टताल>हि० हड़ताल (कदाचित् गुजराती होते)। (३) सं० ड् से—सं० संदंशिका>प्रा० संडंसिया>हि० सँड़सी; सं० कपर्दिका>प्रा० कवड्डिआ >हि० कौड़ी। (४) सं० त् से—सं० बिभीतक>प्रा० बहेडय>हि० बहेड़ा; सं० प्रतिवेश>प्रा० पडोस>हि० पड़ोस; सं० आम्रातक>प्रा० अम्बाअ>क> अंबाडय>*अम्माडअ>हि० आमड़ा, अमड़ा। (५) सं० र् से—सं० कच्चर+ क>प्रा० कच्चरअ>हि० कचड़ा; सं० द्वादशाक्षरी>हि० बारहखड़ी; सं० प्रस्तारक>हि० पहाड़ा; सं० कच्चपूरिका>हि० कचौड़ी। (६) सं० ल् से—सं० पूपालिका>प्रा० पूवलिया>हि० पूड़ी (पूरी भी)। (७) फ़ा० र् से—फ़ा० शरक (मूलतः अरबी)>हि० सड़क। (८) अं० र् से—(बूचड़खाना)। अन्त्य ड़्: (१) सं० ड् से—सं० एडूक>प्रा० एड>हि० एड़; सं० षंढ (शंड भी) >प्रा० संड>हि० साँड़; सं० खंड>प्रा० खंड>हि० खाँड़; सं० शुंड>प्रा० सुंड>हि० सूँड़। (२) सं० ण् से—स० पाषाण>प्रा० पहाण>हि० पहाड़। (३) सं० ट् से—सं० पर्पट>प्रा० पप्पड़>हि० पापड़; सं० कोटि>प्रा०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोडि>हि० करोड़। (४) सं० स्थ् से—सं० अस्थि>प्रा० हड्डि, हड्ड>हि० हाड़ (हड्डी प्रा० अवशेष है)। (५) सं० र् से—सं० कर्कर>प्रा० कक्कड>हि० कंकड़; सं० कुल्हरक>हि० कुल्हड़। (६) तुर्की र् से—(तगाड़)। (७) अं० र् से—(रबड़, एकड़, बूचड़)।

ढ़ : यह ध्वनि आदि में नहीं आती। मध्य ढ़ : (१) सं० ढ् से—सं० गाढ>प्रा० गाढ>हि० गाढ़ा। (२) सं० थ् से—सं० क्वाथ+क>प्रा० कड्ढअ>हि० काढ़ा। (३) सं० ध् से—सं० अर्द्धतृतीयक>प्रा० अड्ढइअ>हि० अढ़ाई; सं० द्विअर्द्धक>प्रा० डिअड्ढअ>हि० डेढ़ा, ड्योढ़ा; सं० सार्द्ध>प्रा० सड्ढ>साढ़े; सं० वर्धकिन>प्रा० बड्ढकिअ>हि० बढ़ई; सं० वृद्ध>प्रा० बुड्ढअ>हि० बूढ़ा। (४) सं० ठ् से—सं० पठन>प्रा० पढण>हि० पढ़ना; सं० पीठिका>हि० पीढ़ी। (५) सं० ड् से—सं० गडिका>प्रा० गढिआ>हि० गढ़ी। अंत्य ढ़ : (१) सं० ढ् से—सं० गूढ>प्रा० गूढ>हि० गूढ़; सं० आषाढ>प्रा० आसाढ>हि० असाढ़। (२) सं० ठ् से—सं० पठ>प्रा० पढ>हि० पढ़ (धातु)। (३) सं० ट् से—सं० कुष्ट>प्रा० कोड्ढ>हि० कोढ़; सं० घट>प्रा० गढ>हि० गढ़ (धातु); सं० दंष्ट्र>प्रा० दड्ढ>हि० दाढ़। (४) सं० ध से—सं० द्विअर्द्ध>प्रा० डिअड्ढ>हि० डेढ़; सं० वर्द्ध>प्रा० वड्ढ>हि० बाढ़, बढ़ (धातु)। (५) सं० ध् से—सं० क्रुध्य(ति)>प्रा० कुड्ढ>हि० कुढ़ (धातु)। (६) सं० र्ष् से—सं० कर्ष>प्रा० कड्ढ>हि० काढ़।

फ़ : आदि फ़ : (१) फ़ा० फ् से—(फ़ायदा, फ़ासला, फ़रमाइश, फ़ौज)। (२) पुर्त० फ् से—(फ़ीता, फ़र्मा)। (३) अं० फ् से—(फ़ैशन, फ़ोटो, फ़ीस, फ़ैक्टरी)। मध्य फ़ : (१) फा० फ् से—(अफ़सोस, खुफ़िया, गिरफ्तार, अफ़वाह)। (२) पुर्त० फ् से—(काफ़ी)। (३) अं० फ् से—(अफ़सर, ऑफ़िस, सोफ़ा, मफ़लर, टेलीफ़ोन)। अंत्य फ़ : (१) फा० फ् से—(साफ़, इंसाफ़, उफ़, गफ़, कफ़, खरीफ़)। (२) अं० फ़ से—(रफ़, कफ़)। (३) सं० ष्प से—सं० शतपुष्पा>हि० सौंफ़। इसे उर्दू में 'फ़े' से लिखते हैं। हिन्दी का भी पढ़ा-लिखा समाज इसे 'सौंफ' न कहकर 'सौंफ़' ही कहता है। इस प्रकार अंत्य स्थिति में फ़, ध्वनि फ़ा०, अं० के अतिरिक्त, कम-से-कम एक शब्द में सं० से भी विकसित हुई है।

स् : आदि स् : (१) सं० स् से—सं० सर्प>प्रा० सप्प>हि० साँप; सं० सत्य>प्रा० सच्च>हि० साच, सच; सं० सप्त>प्रा० सत्त>हि० सात; सं० स्वामी>प्रा० सावीं>प्राचीन हि० साईं; गोस्वामी>गोसाईं। (२) सं० श् से—सं० शाटिका>प्रा० साडिआ>हि० साड़ी; सं० शाक>प्रा० साग>हि० साग; सं० सय्या>प्रा० सेज्जा>हि० सेज; सं० श्रेष्ठि>प्रा० सेट्ठि>हि० सेठ; सं० श्रावण>प्रा० सावण>हि० सावन; सं० श्यामलक>प्रा० साँवलअ>हि० साँवला; सं० श्यालक>प्रा० सिआलय, सालअ>हि० साला; सं० श्वास>प्रा० सास>हि० साँस; सं० श्वश्रु>प्रा० सस्सु>हि० सास; सं० शृंग>प्रा० सिंग>हि० सींग; सं० शृंगाटक>प्रा० सिंघाडअ>हि० सिंघाड़ा। (३) सं० ष् से—सं० षंड>प्रा० संड>हि० साँड़। (४) तुर्की, फा० स् से—(सौग़ात, सुराग़, सफ़ेद, सरक़ार, सज़ा)। (५) फ़ा० श् से—फ़ा० शरक हि०>सड़क। (६) पुर्त० स् से—(साया, संतरा)। (७) अं० स से—(सर्कस, सर्जन, साइकिल, सलाद)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्य स् : (१) सं० स् से—सं० असिद+क>प्रा० असिअ+अ>हि० हँसिया; सं० श्वसुर>प्रा० ससुर>हि० ससुर; सं० कांस्य+क>प्रा० कंस्स +अ>हि० काँसा। (२) सं० श् से—सं० लशुन>प्रा० लसुण >हि० लहसुन; सं० दंशन>प्रा० डंसण>हि० डँसना; सं० रश्मि>प्रा० रस्सि>हि० रस्सी; सं० अश्रु>प्रा० अस्सु>हि० आँसू; असगन्ध (एक बूटी)। (३) सं० ष् से—सं० ऊषर>प्रा० ऊसर>हि० ऊसर; सं० कषपट्टिका>प्रा० कसवट्टिया>हि० कसौटी; सं०आषाढ>प्रा० आसाढ>हि० असाढ़; सं० *मातृ-ष्वसिका>प्रा० माउसिआ>हि० मौसी। (४) फ़ा० स् से–(अफ़सोस, आसमान, आसान)। (१०) पुर्त० स् से—(इस्त्री, इस्पात, पिस्तौल, मिस्त्री)। (११) अं० स् से—(आइसक्रीम, एक्सरे)। अत्य स् : (१) सं० स् से—सं० घास>प्रा० घास>हि० घास; सं० श्वास>प्रा० सास>हि० साँस; सं० कस्य>प्रा० किस्स >हि० किस। (२) सं० श् से—सं० दश>प्रा० दस>हि० दस; सं० विंशति >प्रा० वीसइ>हि० बीस; सं० रश्मि>प्रा० रस्सि>हि० रास (घोड़े की); सं० पार्श्व>प्रा० पस्स>हि० पास; सं० स्वश्रु>प्रा० सस्सु>हि० सास; सं० अवश्या प्रा० ओस्सा>हि० ओस। (३) सं० ष् से—सं० वर्ष>हि० बरस; सं० यूष> प्रा० जूस>हि० जूस; (४) फ़ा० स् से—(अफ़सोस, आबनूस, चापलूस)। (५) फ़ा० श् से—अब्रश (मूलतः अरबी)>हि० अपरस (एक चर्मरोग)। (६) पुर्त० स् से—(अनन्नास)। अं० स् से—(एटलस, काँग्रेस, प्रेस, बस)।

ज़ : आदि ज़ : (१) फ़ा० ज़ से—(ज़हर, ज़रा, ज़ोर)। (२) अं० ज़ से–(ज़ीरो, ज़ीन) मध्य ज़ : (१) तुर्की ज़ से—(उजबक)। (२) फा० ज़ तथा झ से—(आज़ाद, कर्ज़दार, अज़दहा, पज़ावा, औज़ार)। (३) अं० ज़ से—(सेफ्टीरेज़र, चिम्पैंज़ी)। अंत्य ज़ : (१) फ़ा ज़ से—(राज़, आवाज़, अन्दाज़)। (२) अं० ज़ तथा झ से —(ब्लाउज़, दराज़, रूज़)।

श् : आदि श् : (१) सं० श् से—सं० शिक्षा>हि० शिक्षा। (२) सं० ष् से— सं० षडानन>हि० षडानन (शडानन); सं० षड्यंत्र>हि० षड्यंत्र (शड्यंत्र)। (३) फा० श् से—(शहर, शीशा, शाम, शिकार)। (४) अं० श् से—(शेयर, शो)। मध्य श् : (१) सं० श् से—सं० आशा>हि० आशा; सं० विश्व> हि० विश्व। (२) सं० ष् से—सं० शोषण>हि० शोषण (शोशड़ं)। (३) तुर्की, फ़ा० श् से—(तोशक, शीशा, किश्ती, शीशी)। (४) अं० श् से–(ऑप-रेशन, राशनकार्ड, पेंशन, मशीन)। अंत्य श् : (१) सं० श् से—सं० देश >हि० देश; सं० नाश>हि० नाश। (२) सं० ष् से—सं० दोष>हि० दोष (दोश)। (३) तुर्की, फ़ा० श् से—(लाश, किशमिश, खरगोश, खानाबदोश, खुश)। (५) अं० श् से—(पालिश, वार्निश)।

ख् : आदि ख् : तुर्की, फ़ा० ख् से—(खच्चर; खर्च, खराब, खज़ाना, खास, खरीदना)। मध्य ख् : फ़ा० ख् से—(आखिर, चारखाना, अखबार, गुस्ताखी)। अंत्य ख् : फा० ख् से (गुस्ताख, चखचख, शोख, शेख)।

ग् : आदि ग् : तुर्की, फ़ा० ग् से—(ग़लीचा, ग़नीमत, ग़ल्ला, ग़रीब, ग़लत)। मध्य ग् : तुर्की, फ़ा० ग् से—(दारोग़ा, तमग़ा, चुगद, इस्पग़ोल)। अंत्य ग् : तुर्की, फ़ा० ग् से—(सुराग़, चिराग़, दाग़)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ह् : विसर्ग भी 'ह' है। आदि ह् : (१) अं० ह् से–सं० हट्ट>प्रा० हट्ट>हि० हाट; सं०होलिका>प्रा० होलिआ>हि० होली; सं० हस्तिन्>प्रा०हत्थि>हि० हाथी; (२) सं० भ् से—सं० भू>प्रा० हो>हि० हो (धातु)। (३) आगम—सं० अस्थि>प्रा० हड्डि, हड्डी, हड्ड>हि० हाड़, हड्डी; सं० ओष्ठ>प्रा० होठ्ठ>हि० होठ। (४) सं० ध् से—सं० अधस्तात>प्रा० हेट्ठा>हि० हेठा। (५) फा० ह् से (हज़ार, हफ्ता, होश)।(६) अं० ह् से—(हॉकी, होटल, हॉल)। मध्य ह् : (१) सं० ह् से—सं० प्रहेलिका>प्रा० प्रहेलिआ>हि० पहेली; सं० अग्रहायण>प्रा० अग्गहण>हि० अगहन। (२) सं० ख से—सं० आखेट>प्रा० आहेढ>हि० अहेर; सं० द्विमुख+क>प्रा० दुमुहअ>हि० दुमुहाँ। (३) सं० घ् से—सं० अरघट्ट>प्रा० अरहट्ट, रहट्ट>हि० रहट; सं० प्राघुण (प्राघूर्ण भी)>प्रा० पाहुण>हि० पाहुन। (४) सं० थ् से—सं० यूथी>प्रा०, हि० जूही; सं० कथन>प्रा०कहण>हि०कहना। (५) सं० ध् से—सं० दधि>प्रा० दहि>हि० दही; सं० वधू>प्रा० बहू>हि० बहू; सं० वधिर>हि० बहरा। (६) सं० फ् से—सं० मुक्ताफल>हि० मुक्ताहल; सं० कंटकफल (काष्टफल भी)>हि० कँटहल; सं० शफरी>हि० सहरी (मध्ययुगीन हिन्दी)। (७) सं० भ् से—सं० आभीर>प्रा० अहिर, अहीर>हि० अहिर; सं० गंभीर>प्रा० गहिर>हि० गहरा; सं० दुर्लभ+क>प्रा० दुल्लह+अ>हि० दुलहा। (८) सं० ष् से–सं० पाषाण>प्रा० पहाण>हि० पहाड़। (९) सं० श् से—सं० केशरी>हि० केहरी (शेर); सं० दश>प्रा० दह+ला>हि० दहला। (१०) सं० स् से—सं० एकसप्तति>प्रा० एकहत्तरि>हि० इकहत्तर; सं० स्नान>हि० नहान; सं० प्रस्तारक>हि० पहाड़ा। (११) आगम—सं० लशन>प्रा० लसुण>हि० लहसुन। (१२) तुर्की, फ़ा० ह् से—(बहादुर, चेहरा, इम्तहान, ओहदा)। (१३) अं० ह् से—(टॉउनहाल)। अंत्य ह् : (१) सं० ह् से—सं० दाह>प्रा० डाह>हि० डाह; सं० बाहु>प्रा० बाहु>हि० बाँह। (२) सं० ख से–सं० मुख>हि० मुँह। (३) सं० घ् से–सं० मेघ>प्रा० मेह>हि० मेह (४)। सं० ढ् से—सं० दुरूढ>प्रा० दुरूह>हि० दुरूह। (५) सं० थ् से—सं० कथ्>प्रा० कह>हि० कह (धातु)। (६) सं० ध् से—सं० गोधा>प्रा० गोहा>हि० गोह। (७) सं० ष् से—सं० एषः>प्रा० एसो>एहो>हि० यह। (८) सं० श् से—सं० चतुर्दश>प्रा० चउद्दह>हि० चौदह; सं० षोडश>प्रा० सोलह>हि० सोलह। (९) आगम—सं० छाया>हि० छाँह। (१०) फ़ा० ह् से—(गुनाह, गुमराह, जगह, गवाह)।

य् : आदि य् : (१) सं० य् से—(योजना, युद्ध, यात्रा, यद्यपि, यदि)। (२) सं० ए से—सं० एषः>प्रा० एसो>अप० एहो>हि० यह; सं० एते>प्रा० एए>अप० एइ>हि० ये। (३) फ़ा० य् से—(या, याद, यादगार)। (४) अं० य् से—(यूरोप, यूनियन, यूरेनियम)। मध्य य् : (१) सं० य् से—(प्रयत्न, संयोजक, नायक, नायिका)। (२) तद्भव शब्दों में विभिन्न व्यंजनों के लोप से श्रुति-रूप में आगत य्—सं० कोकिल>प्रा० कोइल>हि० कोयल; सं० कोकिला (=अंगारा)>प्रा० कोइला>हि० कोयला; सं० गुटिका>प्रा० गुड़िया>हि० गुड़िया; सं० कातर>प्रा० कायर>हि० कायर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) व्याकरणिक पदों में श्रुति-रूपों में—लाया, जायेगा, लाये; (४) तुर्की, फ़ा० य् से—(अयाल, खुफ़िया, साया, असलियत)। (५) पुर्त० शब्दों में—(आया, साया, तौलिया)। (६) अं० शब्दों में—(इंजीनियर, डेयरी, टायर, डायरी)। अंत्य य् : (१) सं० य् से—समय, आशय, अभिनय। (२) सं० इ से—सं० गाविका>प्रा० गाई>हि० गाय। (३) लोप के कारण श्रुति-रूप में आगम—सं० प्रिय>प्रा० पिअ>हि० पिय; सं० षट्पद>प्रा० छप्पय>हि० छप्पय। (४) तुर्की, फा० य् से—(सराय; राय, बजाय)।

व् : आदि व् : (१) सं० व् से—(सजग सुशिक्षित लोगों के उच्चारण में)—वधू, वन, वंशी, वर्ष, वर्तमान। (२) विवादास्पद व्युत्पत्ति के कुछ तद्भव शब्दों में—(वह, वहाँ)। (३) फ़ा० व् से—(वकील, वक्त. वर्ना, वज़न)। (४) अं० व् से—(विकेट, वायलिन, वारंट, वार्निश)। मध्य व् : (१) सं० व् से—सं० श्रावण>प्रा० सावण>हि० सावन। (२) सं० प् से—सं० अष्टापंचाशत>प्रा० अट्ठावण्ण>हि० अट्ठावन; सं० उत्तापल+क>प्रा० उत्तावल+अ>हि० उतावला; सं० विटपक>प्रा० विरवअ>हि० बिरवा। (३) सं० म् से—सं० श्यामलक>प्रा० साँवलअ>हि० साँवला; सं० आमलक>प्रा० आमलअ>हि० आँवला। (४) फ़ा० शब्दों में—(हवा, आवाज़, आवारा)। (५) अं० शब्दों में—(नवम्बर, रेलवे, ओवरसियर, ओवरकोट)। अंत्य व् : (१) सं० व् से—अभिनव, गौरव, शव, नाव (सं० बहु० नावः से)। (२) सं० म् से—(पूर्ववर्ती स्वर प्रायः अनुनासिक हो जाता है)—सं०आम>हि० आँव (कच्ज़); सं० ग्राम>हि०गाँव, सं०नाम>हि०नाँव। (३) सं० प् से—सं० ताप>प्रा० ताव>हि० ताव (गर्मी, क्रोध)। (४) लोप के बाद श्रुति-रूप में आगम—सं० पाद>पाव, पाँव; सं० राजा>प्रा० राआ, राअ>हि० राव। (६) कुछ तकनीकी अंग्रेज़ी शब्दों में—(निगेटिव)।

अनुनासिकता : आदि में यह नहीं आती। मध्य : (१) सं० ङ् से—सं० अंगिका>हि० अँगिया; सं० जंघ>हि० जाँघ। (२) सं० ञ् से—सं० पंच>हि० पाँच; सं० अंचल>हि० आँचल। (३) सं० ण् से—सं० कंटक>हि०काँटा; सं० भांड>हि० भाँड़ा; सं० मंड>हि० माँड़। (४) सं० न् से—सं० चन्द्र>हि०चाँद; सं०स्कंध>हि०काँधा। (५) सं० म् से—सं०कम्पन>हि० काँपना; सं० भ्रमर>हि० भौंरा; सं० आमलक>हि० आँवला। (६) स्वतः-अनुनासिकता—सं० सर्प>हि०साँप; सं० अक्षि>हि० आँख; सं० कक्ष>हि० काँख; सं० वेत्र>हि० बेंत। अंत्य : (१) सं० म् से—सं० किम्+एवं>हि० क्यों; सं० स्वामी>हि० साईं; सं०गोस्वामी>हि० गोसाईं। (२) स्वतः—सं० यूक>हि० जूँ; सं० भ्रू>हि० भौं।

फ़ारसी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन

फ़ारसी में अरबी शब्द भी समाहित हैं, क्योंकि अरबी शब्द भी फ़ारसी के माध्यम से हिंदी में आए हैं। फ़ारसी और हिन्दी में ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं—

(क) समान ध्वनियाँ, (ख) असमान ध्वनियाँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) समान ध्वनियाँ

फ़ारसी की उन ध्वनियों में कोई उल्लेख्य परिवर्तन नहीं हुआ जो हिन्दी के प्रायः समान हैं--

(१) आ (आदमी, आराम, आज़ाद, आबादी, तोता); (२) इ (इज्ज़त, इनाम, निशान, आख़िर, कि, बल्कि); (३) ई (ईमान, ईजाद, अमीर, कारीगर, आसानी); (४) उ (उस्तरा, उस्ताद, दुनिया, फ़ुर्सत); (५) ऊ (उदा (आसमानी रंग), सूद, आबनूस, तराज़ू); (६) ए (एहसान, सफ़ेद, रेशम); (७) ओ (ज़ोर, कोफ्ता, कमज़ोर, कोशिश, क़ानूनगो); (८) क (किताब, कम, नौकर, सरकार, चाबुक़, नमक); (९) ग (गर्दा, गवाह, खरगोश, अंगूर, तंग, जंग, बुज़ुर्ग); (१०) त (तबला, तोता, कबूतर, किताब, मौत, दोस्त); (११) द (दंग, दंगल, सूद, दर्द); (१२) प (पनीर, पोशाक, वापस, आबपाशी; गप); (१३) ब (बंदरगाह, बस्ता, अबीर, आबाद, कबाब, किताब); (१४) ङ (अंगूर, तंग, रंगीन); (१५) म् (मज़ा, मैदा, अमीर, आदमी, आराम, कम); (१६) ब् (वकालत, वजह, वक्त, हवा, हलवा, पुलाव)।

(ख) असमान ध्वनियाँ

ये ध्वनियाँ तीन प्रकार की हैं--

(क) जिन्हें हिंदी और हिंदी की उर्दू शैली ने ग्रहण कर लिया है: (१) (क़) क़ायदा, क़ानून, अक्ल, शौक़); (२) ख़ (ख़राब, ख़ून; अख़बार; गुस्ताख़); (३) ग़ (ग़ुस्सा, ग़रीब; बग़ल; दिमाग़, मुर्ग़); (४) फ़ (फ़ैसला, फ़ौरन, लिफ़ाफ़ा, साफ़, ख़िलाफ़)।

(ख) जिन्हें ग्रहण किया है किंतु परवर्तित रूप में: (१) ज़ (यह फ़ारसी में तीन प्रकार की थी: ज़े (दंत्य-संघर्षी); झे (तालव्य-संघर्षी); ज़ाल ('द' से मिलती-जुलती दंत्य-संघर्षी)। अरबी के ज़ोय (कंठस्थानयुक्त दंत-संघर्षी) और ज़्वाद (कंठस्थानयुक्त दंतवर्त्स्य स्पर्श ध्वनि, द से मिलती-जुलती) ध्वनियाँ इन्हीं में समाहित हो गईं। हिन्दी ने फ़ारसी की इन तीनों ध्वनियों को ज़ (वर्त्स्यसंघर्षी) रूप में ग्रहण किया: ज़हर, ज़िंदगी, इन्तज़ाम, कब्ज़ा, रोज़, जहाज़।

(ग) जो हिन्दी की मिलती-जुलती ध्वनियों में परिवर्तित हो गईं: (१) स (फ़ा में दंत्य-संघर्षी; अरबी में तीन स्वतंत्र ध्वनियाँ थीं: से, स्वाद, सीन; फ़ा में एक रह गई थी; हिंदी में यह वर्त्स्य संघर्षी हो गई: साहब, सबूत; आसान, आसमान, ख़ास, इजलास); (२) न (दंत्य से वर्त्स्य; नौकर, नरम; अनार, आमदनी; ख़ून, दीवान); (३) च (तालव्य वर्त्स्य से तालव्य; चरबी, चुस्त, अचकन, पेंच, खर्च); (४) ज (तालव्यवर्त्स्य से तालव्य; जेब, जान; नतीजा, अंजीर, लहजा, ख़ारिज); (५) य (तालव्यवर्त्स्य से तालव्य; यार, याद; किफ़ायत, राय); (६) श (तालव्यवर्त्स्य से तालव्य; शायद, शहर; शीशा, किशमिश, कोशिश); (७) र (तालव्यवर्त्स्य का वर्त्स्य; रंगीन, रोज़, आराम, नरम; अनार, अन्दर); (८) ल (तालव्यवर्त्स्य का वर्त्स्य; लगाम, लापता; अदालत, क़लई; इस्तेमाल, ख्याल); (९) ह (अरबी में दो हे थी: उपालिह्वीय, स्वरयंत्रमुखी; फ़ा० एक: अघोष स्वरयंत्रमुखी; हिंदी में वह घोष हो गई; हवा, हज़ार, नहर, ज़हर, अफ़वाह, राह); (१०) अल्पोच्चारित ह ?' (हिंदी में आ हो गया: इशारह्-इशारा, किनारह्-किनारा, इरादह्-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इरादा); (११) स्वरयंत्रमुखी स्पर्श (हिंदी में आदि में तो यह लुप्त हो गया (अरब, अक्ल, ईद, ईसवी) और मध्य तथा अंत में आ हो गया (बाद, इतास, मशाल, जमा, मना); (१२) अ (विवृत अ का अर्धविवृत अ—अंजीर, अन्दाज, खबर); (१३) अइ (संयुक्त स्वर अइ का ऐ; ऐनक, मैदान, शैतान, क़ैद); (१४) अउ (संयुक्त स्वर अउ का औ; औरत, शौक़ीन, दौलत)।

विशेष परिवर्तन

उपर्युक्त सामान्य परिवर्तनों के अतिरिक्त अनेक प्रकार के विशेष परिवर्तन भी मिलते हैं। लोकभाषाओं से क्षेत्रीय परिवर्तन भी अनेक प्रकार के हैं जो केवल सीमित क्षेत्रों में मिलते हैं। **लोप** (ज़ियादती>ज्यात्ती>ज़ात्ती, ज्याद्ती; मु?आमलह्>मामला, बोय>बू, खुशबोय>खुशबू, मज़दूर>मजूर, ख्वाहिश>खाहिश, मुवाफ़िक, म्वफ़िक); **ह्रस्वीकरण** (नव्वाब>नवाब, दल्लाल>दलाल, ज़िद्द>ज़िद, हक़्क़>हक़, खत्तहा>खाता, आचार>आचार); **अनुनासिकता** (दुनिया>दुनियाँ); **संधि से महाप्राणीकरण**, (बिहिश्ती>भिश्ती); **मूर्धन्यीकरण** (शरक>सड़क, दायर>डायर (मुकदमा डायर करना), दायम-उल-हब्स>डामल); **विपर्यय** (फ़तीलह>फ़लीता, कुफ्ल>कुल्फ़ी, लमहा>लहमा); **अंत्य न् का अनुनासिकता में परिवर्तन** (कारून>कारूँ, खान>खाँ, मियान>मियाँ); **घोषीकरण** (नक़द>नगद; तकादह्>तकाज़ा, तगादा); **आगम** (गर्म>गरम, शर्म>शरम, हुक्म>हुकुम; तथा **हमजा का ई** (इस्त?फ़ा>इस्तीफ़ा) आदि।

अंग्रेज़ी ध्वनियों में परिवर्तन

तुलनात्मक दृष्टि से हिंदी और अंग्रेज़ी की ध्वनियाँ दो प्रकार की हैं : समान, असमान।

(क) समान ध्वनियाँ

अंग्रेज़ी से हिन्दी में जो शब्द आए हैं, उनमें उन ध्वनियों में परिवर्तन या किसी खास परिवर्तन की संभावना नहीं है जो दोनों भाषाओं में समान हैं। जैसे (१) **आ** (पास, क्लास, ड्रामा; अपवादतः क्लाःक—क्लर्क); (२) **ई** (क्रीम, टीम; अपवादतः ई का ऐ कुनीन, कुनैन); (३) **ऊ** (जून, प्रूफ़, सूप; अपवादतः ऊ का ओ ऐरऽ रूट—अरारोट); (४) **ग** (गिलास, गोल, बैग, कांग्रेस); (५) **ब** (बैंक, बटन, डबल, अक्तूबर, निब); (६) **ङ** (टैंक, बैंक); (७) **न** (नवंबर, नोटिस, नोट, जून); (८) **म** (मोटर, मलेरिया, कैमरा, बम); (९) **य** (यार्ड); (१०) **स** (सर्कस, सिनेमा, बस, प्रेस); (११) **फ़** (यह मूलतः हिन्दी का नहीं है, किन्तु अंग्रेज़ी जब आई, उसके पहले फ़ारसी से हम इसे ग्रहण कर चुके थे : फ़ोन, फ़ाइल, आफ़िस कफ़); (१३) **ज़** (यह भी मूलतः हिंदी का नहीं है, किन्तु अंग्रेज़ी से शब्दों के आने के पहले फ़ारसी से यह ध्वनि परिवर्तित होकर हिन्दी में आ चुकी थी : जीन, ज़ीरो, सेफ्टीरेज़र, दराज़, ब्लाउज)।

(ख) असमान ध्वनियाँ

(१) **अ** : अं० में मुख्यतः दो अ (ʌ, ə) हैं। डज़्न् (dozon-dʌzn) में पहला है तो; सैलड् (salad-saee-ləd) में दूसरा। पहला अर्धविवृत मध्य स्वर है तथा दूसरा उदासीन स्वर (neutral vowel या श्वा schwa), जिसका स्थान प्रायः इससे कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऊपर होता है। हिन्दी में भी कभी-कभी एक उदासीन स्वर का प्रयोग होता है, किन्तु अं० के इन दोनों अ को प्रायः हि० में सामान्य अ (अर्ध-विवृत मध्य स्वर) कर देते हैं : रवर, टन, कम्पनी, अपील, एकड़।

(२) इ : अं० अर्ध-संवृत है। हि० में यह संवृत इ में परिवर्तित हो जाती है : इंच, डिग्री, निब। अंत्य इ हि० में प्रायः ई हो जाती है : अर्दली, अकादमी, कमेटी।

(३) उ : अं० उ अर्ध-संवृत है। हि० में आकर वह संवृत हो गया है : फ़ुटबाल, फ़ुट, हुक, जुलाई।

(४) ऍ : अं० ए (e) के, अं० में दो उच्चारण हैं। कुछ लोग इसे अर्ध-संवृत एवं अर्ध-विवृत के प्रायः ठीक बीच से बोलते हैं और कुछ लोग अर्ध-विवृत मुख्य स्वर से थोड़ा ही ऊपर अर्थात् अर्ध-विवृत। हि० में इसे प्रायः अर्ध-संवृत कर दिया जाता है : रेकार्ड, बेंच, पेन।

(५) ऐ : अं० में यह सामान्यतः अर्ध-विवृत है। यों विभिन्न लोगों के उच्चारण में यह विवृत एवं अर्ध-विवृत के बीच में या उसके आसपास भी उच्चरित होती है। हि० में सामान्यतः इस मूल स्वर के स्थान पर पूर्वी क्षेत्र में संयुक्त स्वर ऐ बोलते हैं : गैस, बैंक, कैमरा, बैंड, टैंक।

(६) अं : अं० में यह (ɔ) पश्च विवृत ह्रस्व स्वर है। हि० में इसे अं० से गृहीत किया गया है, किन्तु हि० का आँ, अंग्रेज़ी की इस ध्वनि से कुछ भिन्न है। एक तो अं० ध्वनि विवृत है, किन्तु हि० ध्वनि अर्ध-विवृत है। इसके अतिरिक्त अं० ध्वनि ह्रस्व है जब कि हि० में इसे प्रायः लोग दीर्घ बोलते हैं : कॉलिज, प्लॉट, डॉक्टर।

(७) अऽ : यह (ɔ:) अर्ध-संवृत, दीर्घ मध्य स्वर है। उसके बाद प्रायः र ध्वनि होती है जो अनुच्चरित रहती है। हि० में इसके स्थान पर सामान्य अर्ध-विवृत ह्रस्व अ बोलते हैं और र् का उच्चारण करते हैं : नर्स, फ़र, चर्च, पर्स।

(८) एइ : अं० में 'एइ' संयुक्त स्वर है। हि० में इसे अर्ध-संवृत दीर्घ अग्र मूल स्वर ए कर देते हैं : रेल, मेल, जेल, रेडियो, एकड़, एक्सरे।

(९) ओउ : अं० में 'ओउ' संयुक्त स्वर है। हिन्दी में इसे अर्ध-संवृत दीर्घ पश्च मूल स्वर ओ कर देते हैं : होटल, कोट, पोस्टकार्ड, नोट।

(१०) अइ : इसके स्थान पर हि० में प्रायः 'आइ' हो जाता है : पाइप, टाइप, लाइसेंस, टाइम, आइसक्रीम।

(११) अउ : हि० में इसका प्रायः आउ या ऑउ हो जाता है : ऑउट, टॉउन, पॉउण्ड।

(१२, १३) क, प : अं० में ये ध्वनियाँ (ट् भी) ईषत् महाप्राण होती हैं। इनकी महाप्राणता स्थान के अनुसार कम या अधिक होती है। उदाहरणार्थ, शब्दारम्भ में तथा बलाघातयुक्त (stressed) स्वर के पूर्व (come, payment, taken) महाप्राणता अधिक होती है, तथा अन्य स्थितियों में, जैसे बलाघातयुक्त के बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(baker, letter, upper) कम या स के बाद (spider, skin, stand) प्रायः नहीं। इसी प्रकार दीर्घ स्वर के पूर्व होने पर ह्रस्व स्वर की तुलना में महाप्राणता अधिक होती है। हि० में आने पर क्, प्, ट्, तीनों ही में महाप्राणता नहीं रहतीं : कमेटी, कफ़, कंकरीट, एकड़, ट्रक, टैंक, टाइम, टिकट, एजेण्ट, चुरुट, पम्प, पैण्ट, पॉकिट, अपील, टाइप, पाइप।

(१४, १५) च, ज : अं० में ये तालव्य-वर्त्स्य स्पर्श-संघर्षी हैं, किन्तु हिन्दी में प्रायः तालव्य हैं। इसके अतिरिक्त अं० उच्चारण में इनमें संघर्ष तथा उच्चारण में दृढ़ता ये दोनों अधिक होते हैं। हि० में स्पर्शत्व की मात्रा अधिक है : चाकलेट, चुरुट, चेक, पंचर, मैच, टार्च, जेल, जज, इंजन, कॉलिज।

(१६, १७) ट, ड : अं० की ट् (t), ड (d) ध्वनियाँ वर्त्स्य हैं। हिंदी में ये ध्वनियाँ या तो दंत्य त, द (पतलून, केतली, अगस्त, अक्तूबर, सितम्बर, तिजोरी, अस्पताल, दलेल, दर्जन, दिसम्बर, दराज, गारद) हो जाती हैं या पूर्वतालव्य ट, ड् (टंकी, ट्रक, ट्रंक, टिकट, एटलस, एजेन्ट तथा चुरुट आदि)। ट् में प्राणत्व की दृष्टि से भी अन्तर आ जाता है। दे० ऊपर।

(१८, १९) थ्, द् : अंग्रेजी में थ (th), द (th) दंत्य संघर्षी हैं। हिंदी में ये दंत्य स्पर्श हो जाते हैं। थीसिस, थर्मस, थर्मामीटर, थियेटर, फादर (पादरी), फैदम (पानी की गहराई नापने की माप)।

(२०) ल : अं० ल की दो संध्वनियाँ हैं : (१) स्पष्ट ल (clear l)—यह हिंदी ल जैसा है। स्वर तथा य के पूर्व आने वाला ल यही है : लैम्प, लाइन, कालर, लाइसेंस। (२) अस्पष्ट ल (dark l)—यह व्यंजन के पूर्व तथा शब्दान्त में आता है। इसके उच्चारण में जीभ का मध्य भाग कुछ नतोदर हो जाता है, तथा पश्च भाग कोमल तालु की ओर कुछ ऊपर उठ जाता है। हिंदी में इसके स्थान पर भी स्पष्ट ल का प्रयोग होता है : जेल, पार्सल, गोल, पिटरोल, बिल्डिंग।

(२१) व : अंग्रेजी में w (अर्धस्वर) तथा v (दन्तोष्ठ्य संघर्षी) दो ध्वनियाँ हैं। दोनों ही के उच्चारण में हि० में दृढ़ता कम होती है। दन्तोष्ठ्य संघर्षी में संघर्षण भी अपेक्षाकृत हल्का होता है। अनेक हिंदीभाषी दोनों के स्थान पर किसी एक—प्रायः अर्धस्वर—का प्रगोग करते हैं। इस प्रकार v में ही विशेष परिवर्तन होता है : वाट, वैगन, वेल्डर, वायलिन, वैसलिन, ड्राइवर, ओवरकोट।

(२२) श : हि० तथा अं० श में थोड़ा ही अन्तर है। हि० का श तालव्य है, किन्तु अं० का श वर्त्स्य-तालव्य : शेयर, बुशशर्ट, मशीन, पालिश, वार्निश, डैश।

(२३) झ : अं० में यह ध्वनि श का घोष रूप है। यह ध्वनि प्रायः केवल फ्रांसीसी शब्दों में मिलती है। हि० में इसके स्थान पर ज (Rouge–रूज=मुँह पर लाने का लाल पाउडर, Garege गैरिज, गैराज) या ज़ (रूज़) का प्रयोग होता है।

(२४) र : अं० र मोटे रूप से संघर्षी है। हि० में आकर प्रकम्पी हो जाता है। इसके अतिरिक्त अं० में र का उच्चारण केवल स्वर के पूर्व होता है, व्यंजन के पूर्व तथा शब्दान्त में नहीं। किन्तु सामान्यतः हिंदी में सभी स्थितियों में इसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चारण होता है। राशन, रिक्शा, रंगरूट, आपरेशन आदि में तो अं० एवं हि० दोनों में र उच्चरित होता है, किन्तु बुशर्ट, अर्दली (orderly), ओवरकोट, ओवरसियर, टाइपराइटर, अक्तूबर, पार्क, रिपोर्ट, कार, डाक्टर, कालर जैसे शब्दों में अं० में र उच्चरित नहीं होता, किन्तु हि० में होता है।

विशेष परिवर्तन

उपर्युक्त परिवर्तनों के अतिरिक्त **घोषीकरण** (cork—काग, recruit—रंगरूट); **आगम** (इस्टेशन— station), इस्कूल (school), बुरुश (brush), टेबल, टेबुल, टेबिल (table), जेहल (jail), गिलास (glass), दर्जन, टमाटर; **लोप :** सितम्बर (september), पंचर (puncture), पतलून (pantaloon), तिजोरी (treasury), डिप्टी (deputy); **विपर्यय** (जर्नल—general), सिंगल (singal) (coaltar—तारकोल) तथा **समीकरण** (कलट्टर—collector), सिकत्तर (secretary), (inspector—इन्सपट्टर) आदि की भी प्रवृत्ति है।

बलाघात

बोलते समय वाक्य के किसी अंश या शब्द पर अथवा शब्द के किसी अक्षर या स्वर पर बल देते हैं। यह बल ही बलाघात कहलाता है। यों बलाघात कई प्रकार का हो सकता है : (१) **ध्वनि-बलाघात**—यह एकाधिक ध्वनि के किसी अक्षर (syllable) में शीर्ष ध्वनि या प्रायः स्वर पर होता है। जैसे 'राम' में 'आ' पर। (२) **अक्षर-बलाघात**—यह एकाधिक अक्षर के किसी शब्द के एक अक्षर पर होता है। जैसे घोड़ा में 'घो' पर। (३) **शब्द-बलाघात**—एकाधिक शब्द के एक शब्द पर। जैसे 'मुझे एक खिड़की वाला मकान चाहिए' में 'एक' या 'खिड़की' पर। यहाँ दोनों स्थितियों में अर्थ एक नहीं रहेगा। 'एक' पर बल होने का अर्थ होगा 'एक ही खिड़की वाला', किन्तु 'खिड़की' पर बल होने का अर्थ होगा 'खिड़की वाला'। (४) **वाक्यांश-बलाघात**—तुम रहे **गधे के गधे**। भाषाविज्ञान में प्रायः अक्षर बलाघात ही महत्त्वपूर्ण माना जाता है, इसलिए **बलाघात का अर्थ प्रायः अक्षर-बलाघात ही लिया जाता है।**

मूल भारोपीय भाषा में इस प्रकार का बलवाला बलाघात न होकर मुख्यतः उतार-चढ़ाव वाला या संगीतात्मक स्वराघात था। संगीतात्मक स्वराघात **उदात्त** तथा **स्वरित** दो प्रकार का था। वैदिक काल के पूर्व भारत-ईरानी काल में **अनुदात्त** भी विकसित हो चुका था। वैदिक काल के उदात्त, अनुदात्त, स्वरित लौकिक संस्कृत के जन्म के पूर्व ही समाप्त हो गए तथा बलाघात अस्तित्व में आ गया, यद्यपि वह काफ़ी हलका था। पालि में थोड़ा बहुत संगीतात्मक स्वराघात था, जो वैदिक का अवशेष था; साथ ही बलाघात भी था जो संस्कृत की तुलना में अधिक विकसित हो चुका था। प्राकृत-काल में माहाराष्ट्री, अर्धमागधी तथा मागधी में कदाचित् संगीतात्मक स्वराघात कुछ-न-कुछ शेष था, किन्तु अन्यों में केवल बलात्मक स्वराघात या बलाघात था। अपभ्रंश तक आते-आते संगीतात्मक स्वराघात केवल मागधी में शेष रहा, शेष में बलाघात। आधुनिक भाषाओं में उसी परम्परा में मुख्यतः बलाघात है। केवल मागधी से विकसित भोजपुरी, बंगला आदि में संगीतात्मकता है। यों प्रश्न, आश्चर्य, निराशा आदि भावों को व्यक्त करने की दृष्टि से बोलने में उतार-चढ़ाव की संगीतात्मकता प्रायः सभी भाषाओं में होती है और यहाँ भी है। पालि-प्राकृत-अपभ्रंश-विषयक बातें मैं अपनी ओर से कह रहा हूँ। विद्वानों में इसे लेकर मतभेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ग्रियर्सन केवल बलात्मक मानते हैं, टर्नर दोनों मानते हैं तथा जूल ब्लाक को किसी के भी होने में संदेह है।

मानक हिन्दी में संगीतात्मक स्वराघात न होकर बलात्मक स्वराघात या बलात्मक है। हिन्दी का बलाघात अक्षर-विभाजन और अक्षर की ह्रस्वता-दीर्घता से संबद्ध है। हिन्दी अक्षर ह्रस्वता-दीर्घता की दृष्टि से चार प्रकार के होते हैं—

(क) **ह्रस्व** यह केवल ह्रस्व स्वर का होता है। इसके पूर्व एक या अधिक व्यंजन भी आ सकते हैं, नहीं भी। उदाहरण के लिए 'इसी' में 'इ' (केवल ह्रस्व स्वर), 'किसी' में 'कि' (व्यंजन+ह्रस्व स्वर), 'कृपा' में 'क्रि' (व्यंजन+व्यंजन+ह्रस्व स्वर) ह्रस्व अक्षर हैं।

(ख) **मध्यम**—इसमें दो प्रकार के अक्षर आते हैं : (१) जिसमें ह्रस्व स्वर हो तथा उसके बाद एक व्यंजन हो। स्वर के पूर्व एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते हैं. नहीं भी। उदाहरण के लिए 'उसका' में 'उस' (ह्रस्व स्वर+व्यंजन), 'किसका' में 'किस' (व्यंजन+ह्रस्व स्वर+व्यंजन), 'सर्वप्रियता' में 'प्रिय' (व्यंजन+व्यंजन+ह्रस्व स्वर+व्यंजन)। (२) केवल दीर्घ स्वर हो। उसके पूर्व एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते हैं, नहीं भी। जैसे ऐतिहासिक में 'ऐ' (केवल दीर्घ स्वर), 'कहा' में 'हा' (व्यंजन+दीर्घ स्वर) तथा 'व्यापारी' में 'व्या' (व्यंजन+व्यंजन+दीर्घ स्वर) आदि।

(ग) **दीर्घ**—इसमें भी दो प्रकार के अक्षर आते हैं : (१) जिनमें ह्रस्व स्वर हो तथा उसके बाद संयुक्त या दीर्घ (द्वित्व) व्यंजन हो। स्वर के पूर्व एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते हैं, नहीं भी। उदाहरण के लिए 'अर्थयुक्त' में 'अर्थ' (ह्रस्व स्वर+व्यंजन+व्यंजन) तथा 'युक्त' (व्यंजन+ह्रस्व स्वर+व्यंजन+व्यंजन) या 'अव्यक्त' में 'व्यक्त' (व्यंजन+व्यंजन+ह्रस्व स्वर+व्यंजन+व्यंजन) आदि। (२) जिनमें दीर्घ स्वर हो तथा उसके बाद मूल व्यंजन हो। स्वर के पूर्व एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते हैं, नहीं भी। जैसे 'आबपाशी' में 'आब' (दीर्घस्वर+व्यंजन) या 'राजधानी' में 'राज' (व्यंजन+दीर्घ स्वर+व्यंजन) या 'त्यागपूर्ण' में 'त्याग' (व्यंजन+व्यंजन+दीर्घ स्वर+व्यंजन) आदि।

(घ) **अतिदीर्घ**—इसमें दीर्घ स्वर तथा उसके बाद संयुक्त या दीर्घ (द्वित्व) व्यंजन आते हैं। स्वर के पूर्व व्यंजन आ भी सकता है, नहीं भी। उदाहरण के लिए 'आप्त' (दीर्घ स्वर+व्यंजन+व्यंजन), 'अपरिहार्य में 'हार्य' (व्यंजन+दीर्घ स्वर+व्यंजन+व्यंजन), व्याप्त (व्यंजन+व्यंजन+दीर्घ स्वर+व्यंजन+व्यंजन) या 'सुस्वास्थ्य' में 'स्वास्थ्य' (व्यंजन+व्यंजन+दीर्घ स्वर+व्यंजन+व्यंजन+व्यंजन) आदि।

एकाक्षरी शब्द में तो बलाघात उसी अक्षर पर होता है, अतः समस्या केवल एकाधिकाक्षरी शब्दों की है। उनके लिए निम्नांकित नियम दिए जा सकते हैं—

(१) यदि किसी शब्द के सभी अक्षर ह्रस्व, मध्यम, दीर्घ या अतिदीर्घ हों तो बलाघात (काले टाइप में) उपांत्य, अर्थात् अन्तिम से पहले वाले अक्षर पर होता है : **क**-टु, स-**मि**-ति, आ-**भा**-री, सा-**ला**-ना, **कम्**-बल, **अर्थ**-युक्त, **रोज़**-गार।

(२) यदि एक ही अक्षर मध्यम हो, और शेष ह्रस्व हों तो बलाघात मध्यम पर (कि-**सी**, अ-**मिट**, प-रि-**चित**); यदि एक ही अक्षर दीर्घ हो और शेष लघु या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यम हों तो बलाघात दीर्घ पर (क-**पूत**, अ-**पार**, अ-**भिन्न**, स्व-**तंत्र**, आ-**नन्द**, सा-**कार**) और यदि एक ही अक्षर अतिदीर्घ हो तथा शेष ह्रस्व, मध्यम या दीर्घ हों तो बलाघात अतिदीर्घ (अ-प-रि-**हार्य**, अव्-**व्याप्त**, पंच-**पात्र**) होता है।

(३) यदि शब्द के एकाधिक अक्षर अतिदीर्घ हों और उनमें कोई एक उपांत्य हो तो बलाघात उसी पर होगा। यदि उनमें उपांत्य कोई न हो तो बलाघात उसके पूर्व निकटतम अतिदीर्घ पर होता है। यदि अतिदीर्घ कोई न हो और एकाधिक दीर्घ हों तो उपांत्य दीर्घ पर या यदि उपांत्य दीर्घ न हो तो पूर्व निकटतम दीर्घ पर बलाघात होता है। इसी प्रकार यदि अतिदीर्घ तथा दीर्घ न हो तथा एकाधिक मध्यम हों तो उपांत्य मध्यम पर या यदि उपांत्य मध्यम न हो तो उसके निकटतम पूर्व मध्यम पर बलाघात होता है। उदाहरणार्थ : सं-स-कार, रो-ज़-गार, रे-डि-यो, का-री-ग-री, स-**फा**-या, **पा**-वस, **सौं**-दर्य, सन्-श-**या**-लु, आ-**सक्**-ति, अ-ना-**वृष्**-टि, **कम**-ला, उल्-**लू**, आ-**कस्**-मिक, **बा**-टि-का।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ५

उपसर्ग तथा प्रत्यय

उपसर्ग

'उपसर्ग' उस वर्ण या वर्ण-समूह को कहते हैं, जिसका स्वतन्त्र प्रयोग न होता हो, और जो किसी शब्द के पूर्व, कुछ आर्थिक विशेषता लाने के लिए जोड़ा जाय। हिन्दी भाषाशास्त्रियों (कामताप्रसाद गुरु, धीरेन्द्र वर्मा, उदयनारायण तिवारी आदि) ने 'कम', 'खुश', 'हर', 'ग़ैर', 'भर' आदि अनेक ऐसे शब्दों को भी उपसर्ग मान लिया है, जो स्वतन्त्र शब्द हैं (वह खुश है; कटोरा भर; उसके पास ज्यादा है मेरे पास कम; वह तो गैर है; इत्यादि)। वस्तुतः इनके योग से बनने वाले शब्द सामासिक पद (खुशबू, कमज़ोर, गैरहाज़िर) हैं। यदि इनको उपसर्ग मान लिया जाय तो सामासिक पद एवं उपसर्ग से बने शब्दों के बीच सीमारेखा खींचना असम्भव होगा। ऐसी स्थिति में केवल उन शब्दों को ही उपसर्ग मानना होगा 'जो स्वतत्त्वतः प्रयोग में न आते हों, जैसे अ, आ, सु, कु आदि।

भारोपीय परिवार में उपसर्गों का इतिहास काफ़ी प्राचीन काल तक जाता है। पहले ये स्वतन्त्र शब्द थे तथा इनका अपना अर्थ था। बाद में इनकी यह स्वतन्त्रता पूर्णतः समाप्त हो गई और ये केवल मूल शब्द से सम्बद्ध होकर ही आने लगे। संस्कृत में प्र, परा, अप, सम, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर् आदि २२ उपसर्ग माने जाते हैं।

पालि-प्राकृत-अपभ्रंश में प (सं० प्र), ओ (सं० अप), अव (सं० अप), सं (सं० सम्), अणु (सं० अनु), ओ (सं० अव), नि (सं० निर्), नी (सं० निर्), दु (सं० दुर्) आदि लगभग तीस से ऊपर उपसर्ग हैं। हिन्दी में उनकी संख्या और भी बड़ी है। वे कई स्रोतों से तथा कई प्रकार के शब्दों से विकसित हुए हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी उपसर्ग तीन प्रकार के हैं—तत्सम, तद्भव, विदेशी।

(क) तत्सम उपसर्ग

(१) अ (=नहीं, अभाव, हीनता, शून्यता): अभाव, अप्रतिष्ठा, अछूत, अकूत, अटल आदि।

(२) अधि (=अधिक) : अधिसंख्य, अधिपति।

(३) अनु (=पीछे, समान) : अनुरूप, अनुशासन, अनुवाद।

(४) अन् (=अभाव, हीनता, शून्यता) : अनायास, अनन्त, अनंत, अनदेखा, अनछुआ, अनपढ़। संस्कृत में यह केवल स्वर से प्रारम्भ होने वाले शब्दों में लगता था, किन्तु हिन्दी में ऐसी बात नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) अप (=बुरा): अपमान, अपहरण, अपशब्द।

(६) अभि (=ओर, अतिरिक्त) : अभिमान, अभियोग, अभिमत, अभिनव।

(७) अव (=बुरा, हीन, नीचे, दूर) : अवगुण, अवनत।

(८) आ (=तक, समेत, ओर, कम) : आगमन, आजन्म, आकर्षक, आजानु।

(९) उत् (=ऊपर, ऊँचा) : उत्फुल्ल, उत्पीड़न।

(१०) उप (=सहायक, गौण, छोटा, निकट) : उपबोली, उपभाषा, उपराष्ट्रपति, उपमंत्री, उपकुलपति।

(११) कु (=बुरा) : कुरूप, कुयोग, कुख्यात, कुपथ, कुदृष्टि, कुदिन।

(१२) दुर् (=बुरा, कठिन) : दुराचार, दुर्बल, दुर्गुण, दुर्जन, दुर्दिन, दुर्घटना।

(१३) नि (=नीचे, समूह, आदेश, समीप, कुशलता, आदि) : निकुंज, निगूढ़, निदर्शन, निबंध, नियुक्त, नियुक्ति।

(१४) निर् (=नहीं, रहित, दूर, बाहर) : निर्बल, निरपराध, निर्मल, निर्भय, निर्दोष।

(१५) वि (=अभाव, दूसरा, अधिक, विशेष) : विज्ञान, विस्मरण, विवाद, विदेश।

(१६) स (=सहित) : सफल, सजीव, सरस, सनाथ, सकुशल, सानंद।

(१७) सु (=अच्छा, सरल, ज्यादा) : सुशिक्षित, सुडौल, सुगंध, सुयोग्य, सुगम, सुप्रसिद्ध।

(ख) तद्भव उपसर्ग

ये मूलतः स० (उपसर्ग, गति, अव्यय) से विकसित हुए हैं—

(१) उ—सं० उद्>प्रा० उ>हि० उ। मूल अर्थ ऊपर, ऊँचा आदि : उनींदा, उथला, उभरना, उतरना।

(२) उन—सं० एकोन>पालि एकून>प्रा० ऊन (सं० में भी ऊन है) > हि० उन। अर्थ है 'एक नहीं' या 'एक कम'। यह केवल संख्यावाचक शब्दों में ही आता है : उन्नीस, उन्तीस, उन्तालीस, उनचास, उनसठ, उनहत्तर, उन्यासी।

(३) औ—सं० अव>प्रा० अव, ओ>हि० औ। अर्थ है 'हीन', 'नीचे', 'दूर' आदि : औगुन, औघट, औथर, औघड़।

(४) क—सं० कु>प्रा० कु>हि०>क। यह केवल 'कपूत' में आता है।

(५) नि—सं० निर्>प्रा० नी, नि>हि० नि। अर्थ है रहित : निहत्था, निडर, निकम्मा।

(६) पर—सं० प्र>हि० पर, पड़। अर्थ है 'दूसरी पीढ़ी का' : परपोता, परदादा, परनाना।

(७) स—सं० सु>हि० स (अच्छा) : सपूत।

(ग) विदेशी उपसर्ग : फ़ारसी

(१) अल (अर०)=निश्चय : अलमस्त।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) दर—मूलतः यह फ़ा० का 'दरवाजा' का समानार्थी शब्द 'दर' (सं० द्वार) है। अर्थ है 'में' : दरअसल, दरहक़ीकत।

(३) ब—(फ़ा०) = 'के साथ', 'से' : बखूबी, बदौलत, बदस्तूर, बतौर, बक़ौल, बनाम।

(४) बा–(फ़ा०) = 'साथ' या 'से' : बाक़ायदा, बाज़ाब्ता, बावजूद।

(५) बे—(फ़ा०) = 'बिना' (तुलनीय सं० वि), 'रहित' : बेरहम, बेईमान, बेचारा, बेइज्जती, बेतुका, बेडौल, बेधड़क।

(६) ला—(अर०) = 'अभाव', 'नहीं': 'लापरवाह, लाइलाज, लाजवाब, लावारिस, लाचार, लासानी।

(७) हम—(फ़ा०) = 'आपस में', 'साथ', 'बराबर' : हमदर्द, हमउम्र, हमदम, हमबिस्तर, हमसफ़र।

अँग्रेजी उपसर्ग

(१) वाइस = 'उप' : वाइसचांसलर, वाइसचेयरमैन, वाइसप्रेसिडेंट, वाइस-ऐडमिरल, वाइसप्रिंसिपल।

(२) सब = 'उप', 'नायब', 'छोटा' : सबडिप्टी इन्स्पेक्टर, सबकमिटी, सबइन्स्पेक्टर, सबरजिस्ट्रार, सबस्टेशन।

प्रत्यय

प्रत्यय ध्वनि अथवा ध्वनि-समूह की वह भाषिक इकाई है जिसे किसी शब्द अथवा धातु के अंत में जोड़कर शब्द अथवा रूप की रचना की जाती है। मूल भारोपीय भाषा तक हिंदी प्रत्ययों की परंपरा जाती है। यों समय-समय पर कुछ पुराने प्रत्यय लुप्त होते रहे हैं तथा नए प्रत्यय विकसित होते रहे हैं। संस्कृत में दो प्रकार के प्रत्यय थे : कृत्—जो धातु के साथ जोड़े जाते थे। **तद्धित**—जो संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रियाविशेषण में जोड़े जाते थे। प्रत्यय-प्रयोग की परंपरा संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश होते हिंदी में आई है। हिंदी में कृत् और तद्धित का भेद करना अनावश्यक है, क्योंकि कई प्रत्यय (जैसे आऊ—खाऊ, कमाऊ, पंडिताऊ) दोनों रूपों में आते हैं।

हिन्दी प्रत्ययों को (क) **अर्थ** (**भावार्थक**—ता : सुंदरता; **अपत्यार्थक**—आयन: वात्स्यायन; **कर्तृवाचक**—वाला : जानेवाला, आदि); (ख) **प्रयोग, जैसे संज्ञा** (आई, आरी, आस, एरा, पा, पन), **संबंधी** (एरा—ममेरा, चचेरा), **लिंग** (आ, इन, नी, इया), बहुवचन (ए, एँ, आँ, ओं), **विशेषण** (आऊ, आलू, ईय, ई), **क्रियाविशेषण** (शः, तः); तथा (ग) **इतिहास** (तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज) इन तीन आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। इतिहास वे ग्रंथ में ऐतिहासिक दृष्टि से उन्हें लेना उचित होगा।

(क) तत्सम प्रत्यय

ये संस्कृत के समान हैं। यों गहराई से ध्वनियों का विचार करें तो इनमें भी तद्भवता मिलेगी (शत + क = शतक; यह उच्चारण में 'शतक्' है तथा 'शत' भी 'शत्' है, अतः प्रत्यय 'क' नहीं 'अक्' है। इसी प्रकार अन्य भी), किंतु परंपरागत रूप से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्हें तत्सम माना जा रहा है, अतः यहाँ भी इन्हें यही कहा जा रहा है। कुछ मुख्य तत्सम प्रत्यय हैं—

(१) **आ**— स्त्री प्रत्यय : आदरणीया, सुता, प्रिया।
(२) **आनी**—स्त्री प्रत्यय : भवानी, मेहतरानी, देवरानी।
(३) **आलु** —विशेषण प्रत्यय : दयालु, कृपालु, श्रद्धालु, निद्रालु।
(४) **इत**—विशेषण प्रत्यय : पल्लवित, पुष्पित, हर्षित।
(५) **इमा**—संज्ञा प्रत्यय : महिमा, गरिमा, नीलिमा।
(६) **इक**—विशेषण तथा संज्ञा प्रत्यय : वैज्ञानिक, दैनिक, वैदिक, लौकिक।
(७) **क**—स्वार्थे, समूह : शतक, घटक, सप्तक, ठंढक।
(८) **कार**—पत्रकार, जानकार।
(९) **ज**—जन्मा हुआ : जलज, पंकज, स्वेदज, अंडज।
(१०) **जीवी** – जीनेवाला : परजीवी, बुद्धिजीवी, लघुजीवी।
(११) **ज्ञ**—जाननेवाला : विज्ञ, सर्वज्ञ, अज्ञ, मर्मज्ञ।
(१२) **तः**—क्रियाविशेषण प्रत्यय : सामान्यतः, वस्तुतः, स्वतः, अंशतः।
(१३) **तया**—क्रियाविशेषण प्रत्यय : सामान्यतया, मुख्यतया, विशेषतया।
(१४) **तर**—तुलनाबोधक प्रत्यय : सुन्दरतर, निम्नतर, उच्चतर।
(१५) **तम**—सर्वाधिकताबोधक प्रत्यय : उच्चतम, निकृष्टतम।
(१६) **ता**—संज्ञा प्रत्यय : सुन्दरता, नवीनता, मधुरता।
(१७) **त्व**—संज्ञा प्रत्यय : ममत्व, महत्त्व, कृतित्व, सतीत्व।
(१८) **वान्**—वाला : गुणवान्, धनवान्, रूपवान्।

(ख) तद्भव प्रत्यय

तद्भव प्रत्यय हिंदी में काफ़ी हैं। यहाँ कुछ मुख्य दिए जा रहे हैं—

(१) **अंगड़** (सं० अंग+प्रा० अट)—बतंगड़।
(२) **अंतू** (सं० अंत+ऊ)—रटंतू, घुमंतू। यह संयुक्त प्रत्यय है।
(३) **अत** (सं० त्व>प्रा० त्त)—लिखत, पढ़त, बचत, खपत, रँगत।
(४) **आँध** (सं० आगंध>आइंध)—सड़ाँध, बिसाँध।
(५) **आ** (सं० अक)—पु० प्रत्यय—घोड़ा, लड़का, अच्छा, बड़ा।
(६) **आई** (सं० आपिका)—कठिनाई, सफ़ाई, बुराई।
(७) **आऊ** (सं० तृ+स्वार्थे क)—टिकाऊ, खाऊ, बिकाऊ, पंडिताऊ।
(८) **आप, आपा** (सं० त्व+स्वार्थे क)—रँड़ापा, पुजापा, बुढ़ापा, अपनापा, मिलाप।
(९) **आर, आरी, आरा** (सं० कार, कारक, कारी)—कुम्हार, लुहार, पुजारी, भिखारी, चमार, घसियारा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१०) **आलू** (सं० आलु)—दयालू, झगड़ालू।

(११) **आवट** (सं० आप+वृत्ति)—बनावट, रुकावट, बिनावट, कसावट, लिखावट।

(१२) **आस** (सं० आशा)—उपास, लिखास, प्यास।

(१३) **आहत, आहट** (सं० तव्य+क+त्वं, प्रा० अव्वट्टं)—भलमनसाहत, गड़-गड़ाहट, चिल्लाहट, घबराहट।

(१४) **इन** (सं० आनी>णी>इण>इन)—स्त्री प्रत्यय—ठकुराइन, जुलाहिन, तेलिन, पुजारिन।

(१५) **इया** (सं० ईय+स्वार्थे क)—पर्वतिया, भोजपुरिया, कनौजिया; (सं० इका) =चुहिया, डिबिया, चुटिया (स्त्रीलिंग तथा अल्पार्थक)।

(१६) **ई** (सं० इका तथा ईय)—स्त्री प्रत्यय, संज्ञा प्रत्यय तथा विशेषण प्रत्यय। 'ई' प्रत्यय सं०, फ़ा०, अर० में भी है। हिंदी में चारों का मिश्रण हो गया है—कौड़ी, तेली, कटारी, बीसी, टोकरी।

(१७) **ईला** (सं० इल)—भड़कीला, चमकीला, शर्मीला, हठीला, पथरीला। 'ईल+आ' संयुक्त प्रत्यय है।

(१८) **एरा** (सं० कृत+क>केरक)—लुटेरा, फुफेरा, ममेरा, चचेरा, कँसेरा; (सं० तर+क)—बहुतेरा।

(१९) **औड़ा** (सं० पूर+क)—मुँगौड़ा, पकौड़ा, रेवड़ी, सेवड़ा।

(२०) **जा** (सं० जात, जातक)—भतीजा, भांजा।

(२१) **ड़, र** (सं० वर्त>वट्ट>ड़, र)—लोथड़ा, चमड़ा, चमड़ी, लँगड़ा, बछड़ा, दमड़ी।

(२२) **त्** (सं० क्त)—सोता, खाता, आता, जाता।

(२३) **पन** (सं० त्वन>प्पण)—बचपन, छुटपन, बड़प्पन, पागलपन।

(२४) **ल** (सं० इल)—पिछला, अगला, निचला, धुँधला।

(२५) **वाला** (सं० पालक)—ताँगेवाला, अपनेवाला, लालवाला, ऊपरवाला, जाने-वाला, खानेवाला।

(ग) देशज प्रत्यय

देशज प्रत्यय अज्ञात व्युत्पत्तिक होते हैं। मुख्य देशज प्रत्यय ये हैं—

(१) **अक्कड़**—पियक्कड़, भुलक्कड़, घुमक्कड़।

(२) **अड़**—अंधड़, भुक्खड़।

(३) **आक**—धड़ाक, चटाक, फटाक, धमाका, पड़ाका, धड़ाका।

(४) **आटा**—फर्राटा, खर्राटा।

(५) **हयल**—अड़ियल, सड़ियल, दढ़ियल।

(घ) विदेशी प्रत्यय : फ़ारसी (अरबी)

(१) **अन**—मसलन, ग़ालिबन।

(२) **आना**—जुर्माना, दस्ताना, मर्दाना, मस्ताना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) **आनी**—जिस्मानी, रूहानी, बर्फ़ानी।
(४) **इयत**—इंसानियत, आदमियत, अंग्रेज़ियत, ख़ैरियत, असलियत।
(५) **कार**—सलाहकार, दस्तकार, काश्तकार।
(६) **खोर**—गमखोर, रिश्वतखोर, घूसखोर।
(७) **गर**—बाज़ीगर, कारीगर, कीमियागर। इसीसे गरी या गिरी भी बनता है: बाबूगिरी, कुलीगिरी।
(८) **गार**—मददगार, परहेज़गार, रोज़गार, यादगार।
(९) **गाह**—बन्दरगाह, ईदगाह, चरागाह।
(१०) **गी**—जिन्दंगी, गन्दगी।
(११) **चा, ची**—बगीचा, देगचा; संदूकची, इलायची, डोलची; बंदूकची, अफ़ीमची, मशालची, तबलची। छोटे अर्थ में ये फ़ा० प्रत्यय हैं तथा वाला अर्थ में 'ची' तुर्की प्रत्यय है।
(१२) **जाद, ज़ादा, जादी**—शाहज़ादा, शाहज़ादी, आदमज़ाद, हरामज़ादा।
(१३) **दाँ**—कानूनदाँ, कद्रदाँ।
(१४) **दान, दानी**—कलमदान, चायदानी, इत्रदान, गोंददानी।
(१५) **दार**—ईमानदार, दूकानदार, कर्जदार, मालदार।
(१६) **बाज़**—मुकदमेबाज़, धोखेबाज़, चालबाज़। इसी से 'बाज़ी' भी बनता है।
(१७) **बान**—बागबान, दरबान।

अँग्रेजी प्रत्यय

(१) **इज्म**—कम्यूनिज्म, बुद्धिज्म, सोशलिज्म, शैविज्म।
(२) **इस्ट**—सोशलिस्ट, मार्क्सिस्ट, बुद्धिस्ट।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ६

संज्ञा

संस्कृत में अंत्य ध्वनि की दृष्टि से संज्ञाएँ दो प्रकार की हैं : **स्वरांत**--जैसे बालक (अकारांत), विश्वपा (आकारांत), कवि (इकारांत), सुधी (ईकारांत), भानु (उकारांत) आदि; **व्यंजनांत**--जैसे जगत्, वीरुध्, अप् आदि। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा में व्यंजनांत संज्ञाएँ प्रायः समाप्त होती गईं और मुख्यतः केवल स्वरांत शेष रह गईं; जैसे फल, लता, भिक्षुक, हत्थी (स्त्री), मुनि आदि।

हिन्दी संज्ञाओं के विषय में निम्नांकित बातें ध्यान देने की हैं--(१) हिन्दी में स्वरांत और व्यंजनांत दोनों प्रकार की संज्ञाएँ हैं; जैसे घोड़ा, कवि, साथी अथवा आम, रोग, ईख आदि। (२) स्वरांत संज्ञाओं में केवल **आ** (घोड़ा, लता), **इ** (कपि, शक्ति), **ई** (हाथी, गाड़ी), **उ** (पशु, धातु), **ऊ** (डाकू, बहू) से अन्त होनी वाली संज्ञाएँ ही प्रमुख हैं। (३) अकारांत संज्ञाएँ हिन्दी में नहीं हैं। जो लेखन में अकारांत हैं, उनका उच्चारण व्यंजांत ही होता है; अर्थात् आम, रोग, मेज, बाल, ईख, पुस्तक आदि शब्द केवल लेखन में अकारांत हैं। उच्चारण की दृष्टि से ये व्यंजनांत हैं--आम्, रोग्, मेज्, बाल्, ईख्, पुस्तक् आदि। (४) एकारांत (चौबे, दुबे), ओकारांत (रेडियो, फ़ोटो), औकारांत (जौ, गौ) संज्ञा शब्द बहुत ही कम हैं और उनमें से दो-चार को छोडकर अधिकांश बिना किसी परिवर्तन के प्रयुक्त होते हैं।

लिंग--संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश (एक सीमा तक) में तीन लिंग थे : पुल्लिग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग। हिन्दी में केवल दो लिंग हैं : पुल्लिग, स्त्रीलिंग। पुल्लिग से स्त्रीलिंग बनाने के लिए मुख्यतः निम्नांकित स्त्री प्रत्ययों का हिन्दी संज्ञा शब्दों में प्रयोग होता है : (१) **आ** (सं०)-सुता, कान्ता; (२) **ई** (सं० तथा सं० इका से विकसित)-कुमारी, कटोरी नर्तकी, घोड़ी, लड़की; (३) **इनी** (सं०)-संन्यासिनी, सर्पिणी, हथिनी; (४) **इन** (सं० इनी)-दुलहिन, बाघिन, कहारिन; (५) **नी** (सं० इनी)-ऊँटनी, जाटनी, मोरनी; (६) **ती** (सं० ति)-युवती; (७) **आनी** (सं०)-भवानी, मेहतरानी, नौकरानी, सेहानी। (८) **आइन** (सं० आनी)--ठकुराइन, जुलाहिन; (९) **इया** (सं० इका)--खटिया, लठिया। इसके अतिरिक्त 'नर', 'मादा' को जोड़कर भी भेड़िया, चील, कौवा, चीता आदि काफ़ी शब्दों के लिंगीय रूप बनते हैं; जैसे नर कौवा, मादा कौवा।

वचन--संस्कृत में तीन (एक०, द्वि०, बहु०) वचन थे। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में दो वचन (एक०, बहु०) रह गए। हिन्दी में ये ही दो हैं। हिन्दी में कुछ संज्ञा शब्द (प्राण, दर्शन, लोग आदि) तो बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं। शेष के बहुवचन बनाने के लिए निम्नांकित प्रत्ययों का प्रयोग होता है : (१) **शून्य** (हाथी, साधु), (२) **ए** (घोड़े, लड़के), (३) **आँ** (लड़कियाँ, गुड़ियाँ), (४) **एँ** (किताबें, बहुएँ), (५) **ओं** (लड़कों, साथियों), (६) **ओ** (भाइयो !, बहनो !)। इन प्रत्ययों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिरिक्त गण (मंत्रिगण), जन (कविजन), लोग (राजा लो आदि अतिरिक्त शब्दों का भी बहुवचन बनाने के लिए प्रयोग होता है। कुछ लो अरबी-फ़ारसी में प्रयुक्त आन (साहेबान), आत (क़ाग़जात), आम (हुक्काम) आदि के भी कुछ शब्दों में प्रयोग करते हैं। हिन्दी के बहुवचन के ए, ओं आदि प्रत्यय कहे प्रयुक्त होते हैं, इस पर आगे कारकीय रूप के प्रसंग में विचार किया जा रहा है।

कारकीय रूप—संस्कृत से चलकर हिन्दी तक आते-आते कारकीय रूप की संख्या घटती गई है। उदाहरण के लिए, संस्कृत में सैद्धांतिक दृष्टि से एक संज्ञा शब्द के २४ रूप (८ कारक × ३ वचन) हैं। यों प्रयोगतः यह संख्या कुछ कम ठहरती है, क्योंकि उनमें कई रूप समान हैं, जैसे अकारांत पुल्लिग संज्ञा शब्द के कुल १७ ही रूप बनते हैं। वैदिक संस्कृत में रूपों की संख्या संस्कृत से भी अधिक है। पालि में द्विवचन प्रायः लुप्त हो गया, अतः सिद्धांततः एक संज्ञा के कुल रूप १६ (२ वचन × ८ कारक) हो गए। प्रयोगतः यह संख्या और भी कम है, जैसे अकारांत पुल्लिग के केवल १५ रूप हैं। यो इनमें कई रूपों के पुराने और नए-विकसित दोनों रूप मिलते हैं। जैसे करण बहु० में बुद्धेभि- बुद्धेहि। यदि ऐसे रूपों को निकाल दें तो यह संख्या १२ हो जाती है। प्राकृत-अपभ्रंश में यह संख्या और भी कम (१०-११) होती गई। हिन्दी में यह संख्या और भी कम हो जाती है। प्राचीन भाषाओं (संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश) तथा हिन्दी में कारकीय रूप-रचना की दृष्टि से एक उल्लेख्य अन्तर यह है कि इन भाषाओं में 'प्रातिपदिक' अथवा 'मूल शब्द' में विभक्ति जोड़कर प्रायः कारकीय रूप बनते थे (राम + विसर्ग = रामः), किन्तु हिन्दी में तीन भाषिक इकाइयों को जोड़कर कारकीय रूप बनते हैं: (क) 'मूल शब्द' या 'प्रातिपदिक' + (ख) कारकीय रूप बनाने के प्रत्यय + (ग) परसर्ग (ने, को, से आदि)। उदाहरणार्थ: 'लड़के ने पत्र लिखा' वाक्य में 'लड़के ने' कर्ता कारक का रूप है। इसमें 'लड़का (मूल) + ए + ने' ये तीन भाषिक इकाइयाँ हैं। संस्कृत तथा पालि में यह स्थिति प्रायः बिल्कुल नहीं है। प्राकृत-अपभ्रंश में है भी तो कम।

हिन्दी में कारकीय रूप तीन प्रकार के हैं: (क) **अविकारी रूप**—जिनके साथ कारक-चिह्न (परसर्ग) न लगें। जैसे 'राम गया' में 'राम', 'मैंने फूल देखा' में 'फूल' आदि। (ख) **विकारी रूप**—जिनके साथ कारक-चिह्न (परसर्ग) अवश्य लगें। जैसे 'लड़के ने फूल तोड़ा' में 'लड़के' या 'अपने मित्र को बुलाओ' में 'मित्र'। (ग) **सम्बोधन रूप**—जिसका प्रयोग संबोधन में हो। जैसे 'ओ मोहन' में 'मोहन' या 'ऐ लड़के' में 'लड़के' या 'हे भाई' में 'भाई' आदि। अविकारी रूप को **मूल रूप** तथा विकारी को **विकृत** या **तिर्यक्** रूप भी कहा जाता है।

कारकीय रूप-रचना की दृष्टि से हिन्दी में कुल चार प्रकार के संज्ञा शब्द हैं। इनके रूप तथा इसमें लगने वाले प्रत्यय नीचे दिए जा रहे हैं—

(१) आकारांत पुल्लिग (जैसे घोड़ा)

	रूप		प्रत्यय	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
अविकारी	घोड़ा	घोड़े	शून्य	ए
विकारी	घोड़े	घोड़ों	ए	ओं
संबोधन	घोड़े	घोड़ो	ए	ओ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा]

'दारोग़ा' जैसे कुछ विदेशी; 'पिता', 'राजा' जैसे कुछ संस्कृत तत्सम तथा 'मामा', 'नाना', 'चाचा', 'काका', 'बाबा', 'लाला' जैसे पुनरुक्ति वाले शब्द अपवाद हैं। इनके रूप घोड़ा, लड़का आदि हिन्दी के सामान्य आकारांत पुल्लिग शब्दों की तरह नहीं बनते। (विस्तार के लिए दे० 'संरचना' खंड।)

(२) **अन्य पुल्लिग** (जैसे व्यंजनांत मित्र, इकारांत कवि, ईकारांत साथी, उकारांत साधु तथा ऊकारांत डाकू आदि)

	रूप		प्रत्यय	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
अविकारी	मित्र, कवि, साथी गुरु, डाकू	मित्र, कवि, साथी, गुरु, डाकू	शून्य	शून्य
विकारी	मित्र, कवि, साथी गुरु, डाकू	मित्रों, कवियों, साथियों, गुरुओं, डाकुओं	शून्य	ओं
संबोधन	मित्र, कवि, साथी गुरु,, डाकू	मित्रो, कवियो, साथियो, गुरुओ, डाकुओ	शून्य	ओ

(३) **इकारांत** (जैसे जाति), **ईकारांत** (जैसे लड़की), **इयांत** (जैसे गुड़िया) **स्त्रीलिंग**।

	रूप		प्रत्यय	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
अविकारी	जाति, लड़की, गुड़िया	जातियाँ, लड़कियाँ, गुड़ियाँ	शून्य	आँ
विकारी	जाति, लड़की, गुड़िया	जातियों, लड़कियों, गुड़ियों	शून्य	ओं
सम्बोधन	जाति, लड़की, गुड़िया	जातियो, लड़कियो, गुड़ियो	शून्य	ओ

(४) **अन्य स्त्रीलिंग** (जैसे व्यंजनांत पुस्तक, आकारांत माता, उकारांत ऋतु, ऊकारांत बहू तथा औकारात गौ आदि)

	रूप		प्रत्यय	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
अविकारी	पुस्तक, माता, ऋतु, बहू, गौ	पुस्तकें, माताएँ, ऋतुएँ, बहुएँ, गौएँ	शून्य	एँ
विकारी	पुस्तक, माता, ऋतु, बहू, गौ	पुस्तकों, माताओं ऋतुओं, बहुओं, गौओं	शून्य	ओं
सम्बोधन	पुस्तक, माता, ऋतु, बहू, गौ	पुस्तको, माताओ, ऋतुओ, बहुओ, गौओ	शून्य	ओ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल शब्दों में प्रत्यय जोड़कर रूप-रचना करने में निम्नांकित ध्वन्यात्मक परिवर्तन करने पड़ते हैं : (१) आकारांत पुल्लिग संज्ञा में शून्य के अतिरिक्त कोई भी प्रत्यय जोड़ा जाय तो अंतिम 'आ' का लोप हो जाता है; घोड़ा 'घोड़ा+ए'= 'घोड़+ए'=घोड़े। इसी प्रकार घोड़ों, घोड़ो आदि में भी। (२) ईकारांत, ऊकारांत संज्ञा शब्द में शून्य प्रत्यय को छोड़कर कोई भी प्रत्यय जोड़ा जाय तो अंत्य 'ई', 'ऊ' क्रमशः 'इ, उ' में परिवर्तित हो जाते हैं; जैसे 'साथी+ओं'='साथि+ओं' (साथियों), 'डाकू+ओ'='डाकु+ओ'=डाकुओ। इसी प्रकार लड़कियाँ, लड़कियों, बहुएँ, बहुओं, बहुओ आदि में भी। (३) ह्रस्व इ के बाद आँ, ओं, ओ प्रत्यय जोड़ें तो 'य' का आगम हो जाता है; जैसे 'कवि+ओ='कवियो,' 'साथी+ओं'= 'साथियों,' 'जाति+आँ'='जातियाँ' तथा 'लड़की+ओं'='लड़कियों' आदि। (४) इयांत स्त्रीलिंग शब्द में आँ, ओं, ओ प्रत्यय जोड़ने पर 'या' का लोप हो जाता है और शब्द इकारांत रह जाता है। जैसे 'गुड़िया+आँ'='गुड़ियाँ', 'गुड़िया+ओं'= 'गुड़ियों', 'गुड़िया+ओ'='गुड़ियो'। यहाँ 'य' का आगम तीसरे नियम से हो जाएगा। इन ध्वन्यात्मक परिवर्तनों अथवा संधि-नियमों में १, २ और ३ तो प्रायः सामान्य रूप से हिंदी के अपने नियम हैं जो कारकीय रूप-रचना के अतिरिक्त अन्य प्रकार की शब्द-रचना तथा रूप-रचना में भी मिलते हैं, किन्तु ४ की यहाँ विशेष रूप से कल्पना कर ली गई है। इस कल्पना का उद्देश्य है प्रकृति-प्रत्यय का सुव्यवस्थित विश्लेषण तथा प्रात्ययिक एकरूपता का निदर्शन।

ऊपर के सारे प्रत्यय ये हैं—

रूप	एक०	बहु०
अविकारी	शून्य	शून्य, ए, ओं, एँ
विकारी	ए, शून्य	ओं
संबोधन	ए, शून्य	ओ

अर्थात् ये ६ हैं : शून्य (दोनों वचन), ए (दोनों वचन), आँ, एँ, ओं, ओ। आगे इनकी व्युत्पत्ति तथा इनके विकास पर विचार किया जा रहा है।

शून्य—दोनों वचनों के शून्य का विकास संस्कृत की विभक्तियों के लोप से हुआ। ध्वनि-परिवर्तन के कारण धीरे-धीरे विभक्तियाँ लुप्त हो गईं और शून्य शेष बच गया : रामः>रामो>रामु>राम।

ए—एकवचन के ए के विकास के बारे में मुख्य मत तीन हैं : (१) केलॉग के मतानुसार संस्कृत के स्य (सम्बन्ध एकवचन) या कुछ सर्वनामों में प्रयुक्त स्मिन् (सप्तमी एकवचन) से यह विकसित है। उनका कहना है कि प्राकृत-काल में प्रभाव के कारण स्मिन् से विकसित 'हिं' संज्ञा में जोड़ा जाने लगा था। अर्थात् या तो : घोटकस्य>घोड़इ>घोड़े; अथवा घोटकः>घोडओ+हिं (<सं० स्मिन्)>घोड़इँ >घोड़े। डॉ० उदयनारायण तिवारी का भी यही मत है। (२) डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ० एकवचन के सभी कारकीय रूपों का इस 'ए' को अवशेष मानते हैं, किंतु कर्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घोटकः), कर्म (घोटकम्) तथा अपादान (घोटकात्) के रूपों से ए (घोड़े) के विकास की संभावना प्रायः नहीं है। (३) मेरे विचार में 'ए' का विकास करण (घोटकेन), संप्रदान (घोटकाय), सम्बन्ध (घोटकस्य) तथा अधिकरण (घोटके) के रूपों से हुआ है। उनसे 'घोड़े' के ध्वन्यात्मक विकास की संभावना तथा इन सभी कारकों में 'घोड़े' रूप का प्रयोग, ये दोनों बातें मेरे मत के पक्ष में जाती हैं।

ए—बहुवचन के 'ए' के विकास के सम्बन्ध में कई मत हैं: (१) बीम्स ने संकेत किया है कि संभव है यह 'सर्वे' के 'ए' का प्रभाव हो। (२) हार्नले तथा केलॉग इसे मूलतः एकवचन का ही 'ए' मानते हैं, जिस पर ऊपर विचार किया जा चुका है। किन्तु एकवचन से बहुवचन का विकास मानना बहुत उपयुक्त नहीं है। (३) डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी वैदिक संस्कृत में प्रयुक्त 'एभिः' विभक्ति (करण बहुवचन) से इस 'ए' का विकास मानते हैं। वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति अभी तक अस्पष्ट है।

आँ, एँ—इनकी व्युत्पत्ति के बारे में कोई भी विवाद नहीं है। सभी लोग इन्हें नपुंसकलिंग प्रथमा बहुवचन विभक्ति आनि से विकसित मानते हैं: (क) आनि >आइँ>आँ; (ख) आनि>आइँ>ऐं>एँ।

ओं—इसकी व्युत्पत्ति के विषय में भी विवाद नहीं है। षष्ठी बहुवचन की विभक्ति 'आनाम्' से इसका विकास हुआ है: आनाम्>आनं>अणं >वन>ओं। उदाहरणार्थः घोटकानाम्>घोडगानं>घोडअणं>घोड़वन>घोड़ों।

ओ—संबोधन बहुवचन 'ओ' की व्युत्पत्ति पर केवल मैंने ही विचार किया है। मुझे ऐसा लगता है कि मूलतः संस्कृत प्रथमा एकवचन विसर्ग से इसका विकास हुआ है। सं० 'रामः' का पालि-प्राकृत में 'रामो' हो गया। यही ओ प्रभावस्वरूप प्राकृत में संबोधन एकवचन में भी प्रयुक्त होने लगा, तथा आगे और चलकर यह अपभ्रंश में प्रयोग-विस्तार से एकवचन-बहुवचन दोनों का प्रत्यय बन गया। हिन्दी का बहुवचन ओ अपभ्रंश के बहुवचन ओ से ही आया है।

परसर्ग

कारकचिह्न ने, को, से, का, में, पर आदि को **परसर्ग** कहते हैं। 'परसर्ग' अंग्रेजी शब्द Postposition का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजों ने अपने शब्द Preposition के आधार पर हिन्दी आदि भारतीय भाषाओं के ने, को, से आदि को Postposition कहा था, क्योंकि ये, शब्द के बाद (राम ने, मोहन को, घर से) आते हैं, जब अंग्रेजी के टू, फ्राम आदि शब्द के पहले (To Ram, from Delhi) आते हैं। हिन्दी के परसर्ग हैं: ने, को, के लिए, से, का, में, पर। आगे इनकी व्युत्पत्ति पर विचार किया जा रहा है।

ने—'ने' की व्युत्पत्ति के बारे में विद्वानों में काफ़ी विवाद है: (१) पं० कामताप्रसाद गुरु तथा किशोरीदास वाजपेयी 'ने' का विकास संस्कृत तृतीया एकवचन विभक्ति 'एन' से मानते हैं। इनके अनुसार इसका विकास होगा: संस्कृत >प्राकृत एण>एन>(विपर्यय से) ने। विचार करने पर इस मत के विपक्ष में ये बातें सामने आती हैं: (क) जैसा कि बीम्स ने कहा है: यदि 'एन' के स्थान पर 'नेन' होता तो उससे 'ने' का विकास संभव था। 'एन' का विकास 'एँ' हो सकता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ने' नहीं। (ख) यदि 'एन' से 'ने' का विकास होता तो 'एन' पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में विकसित होता हुआ मिलता, किन्तु ऐसी बात है नहीं। हिन्दी के पूर्व ही यह 'एं' हो गया था। (ग) आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं के परसर्गों का विकास विभक्तियों से नहीं हुआ है। इससे प्रायः सभी विद्वान् सहमत हैं। वस्तुतः विभक्तियों के घिस जाने के बाद अर्थ की अस्पष्टता आने पर ही कारकीय भाव को स्पष्ट करने के लिए स्वतंत्र शब्द जोड़े गए थे। परसर्ग उन्हीं शब्दों के, ध्वनि-परिवर्तन से विकसित रूप हैं। अतः परसर्गों का विकास स्वतंत्र शब्दों से मानना उचित होगा विभक्तियों से नहीं। (२) बीम्स तथा केलॉग आदि 'ने' का संबंध 'लग्' धातु के रूप' से मानते हैं। केलॉग के अनुसार संस्कृत लग्यः>प्राकृत लग्गिओ>हिन्दी लगि>लै>ले>ने रूप में 'ने' विकसित हुआ है। (३) डॉ० सुकुमार सेन तथा कुछ अन्य लोग संस्कृत 'कर्णे' से ने का विकास मानते हैं : कर्णे>कने>ने। कई बोलियों में 'कने' का प्रयोग 'पास' के अर्थ में होता है। वस्तुतः इनमें कोई भी मत (अर्थ, प्रयोग, ध्वनि-विकास इन तीनों दृष्टियों से) बहुत पुष्ट नहीं दीखता, अतः 'ने' की व्युत्पत्ति संदिग्ध माननी पड़ेगी, जैसा कि धीरेन्द्र वर्मा आदि कुछ लोगों ने कहा भी है।

को—'को' की व्युत्पत्ति भी काफ़ी विवादास्पद है : (१) ट्रंप ने 'को' को संस्कृत 'कृत' से विकसित माना है : कृतं>कितो>किओ>को। केलॉग भी पहले इसी मत के थे, किन्तु बाद में उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया। (२) बीम्स, हार्नले, चटर्जी आदि के अनुसार 'को' का संबंध संस्कृत 'कक्ष' (=निकट, बगल) से है। बीम्स इसका विकास देते हैं : कक्षं>कक्खं>काखं>काहं>कहं>कहुं (अपभ्रंश की उकार बहुला प्रवृत्ति से)>कौं>को। (३) काल्डवेल इसे द्रविड़ 'कु' (कर्म-कारक का चिह्न) से जोड़ते हैं। इनमें अर्थ-संबंध, प्रयोग तथा ध्वनि-विकास तीनों दृष्टियों से बीम्स तथा चटर्जी आदि का मत ठीक लगता है।

के लिए—'के' और 'लिए' दोनों का विकास अलग-अलग हुआ है। 'के' की व्युत्पत्ति के बारे में दो मत हैं : (१) कुछ लोग 'के' को संस्कृत 'कृते' से जोड़ते हैं : कृते>किते>किदे>किए>कए>के। सं० में 'रामस्य कृते' (राम के लिए) जैसे प्रयोग इस व्युत्पत्ति का समर्थन करते हैं। (२) दूसरे मतानुसार इसका विकास प्राकृत 'केरक' से है : केरक>केर>के। 'केरक' का अर्थ प्राकृत में 'का' है, अतः पहला मत ही ठीक लगता है। यह प्रयोगतः अर्थ की दृष्टि से भी निकट है तथा इससे 'के' के ध्वन्यात्मक विकास की भी संभावना है। 'लिए' के संबंध में भी तीन मत हैं : (१) हार्नले इसका संबंध संस्कृत 'लब्धे' से मानते हैं। (२) एक अन्य मतानुसार संस्कृत 'लग्ने' से इसका विकास हुआ है : लग्ने>लग्गे>लए>लिए। (३) धीरेन्द्र वर्मा प्राकृत धातु 'ले' से इसे जोड़ते हैं : कुछ हिन्दी बोलियों में 'लिए' के अर्थ में लगे, लागि आदि का प्रयोग आज भी मिलता है, अतः 'लग्ने' से 'लिए' के विकास की संभावना हो सकती है। हाँ, 'लिए' में 'ल' की 'इ' कहाँ से आ गई, यह स्पष्ट नहीं है।

से—'से' की व्युत्पत्ति भी काफ़ी विवादास्पद है : (१) हार्नले 'से' का संबंध प्राकृत 'सुतों' या 'खेतों' से मानते हैं। (२) बीम्स 'से' का अर्थ मूलतः from न मानकर with मानते हैं और इसी आधार पर इसे संस्कृत 'समं' से विकसित कहते हैं:—समं>सों>से। पृथ्वीराज रासो में इस अर्थ में 'सम' का प्रयोग मिलता भी है, जिससे बीम्स के मत को बल मिलता है :—'कह दूत प्रिथिराज सम'। किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनाई यह है कि समं में 'से' के ए के विकास के लिए संभावना नहीं है। (३) केलॉग 'से' को संस्कृत 'संगे' से जोड़ते हैं—संगे>सैं>सें>से। (४) चटर्जी ने 'से' का विकास 'सम हि' से माना है—सं० सम हि>सअइ>से। इन सब में अर्थ तथा ध्वन्यात्मक विकास दोनों दृष्टियों में केलॉग का मत ही अधिक तर्क-संगत ज्ञात होता है।

का—'का' के तीन रूप मिलते हैं : का, की, के। 'का' पुल्लिग एकवचन है, 'की' स्त्रीलिंग तथा 'के' बहुवचन या विकारी। इसकी व्युत्पत्ति के विषय में मुख्य मत दो हैं : (१) पिशेल, भंडारकर तथा कुछ अन्य लोग इसे संस्कृत शब्द 'कार्यम्' से जोड़ते हैं। (२) हार्नले और बीम्स के अनुसार 'का' का विकास संस्कृत शब्द 'कृत' से हुआ है। कहते भी हैं—तुलसी-कृत रामायण=तुलसी का रामायण। विकास इस प्रकार हुआ है : सं० कृतः>प्रा० करितो, करिओ, केरको>केरओ>केरो>कर>का। इनमें दूसरा मत प्रायोगिक अर्थ तथा ध्वन्यात्मक विकास दोनों दृष्टियों से संभावित लगता है। किन्तु मेरे विचार में इसे कृतः के स्थान पर कृतकः (>केरको>केर (अवधी), कर (अवधी), एर (बँगला), हि० का) से मानना अर्थ, प्रयोग तथा ध्वनि-विकास, इन तीनों ही दृष्टियों से अधिक उचित है। कृतः से 'केरको' का विकास संभव नहीं है।

में—'में' की व्युत्पत्ति के बारे में प्रायः कोई विवाद नहीं है। दो-एक को छोड़कर प्रायः सभी विद्वान् इसका संबंध संस्कृत 'मध्ये' से मानते हैं—मध्ये>मज्झे>मज्झि>माहि>महि>महँ>मैं>में।

पर—'पर' की व्युत्पत्ति के बारे में दो मत हैं : (१) केलॉग तथा धीरेन्द्र वर्मा इसे संस्कृत 'उपरि' से विकसित मानते हैं। (२) हार्नले तथा उदयनारायण तिवारी इसे संस्कृत 'परे' (=दूर) से जोड़ते हैं। अर्थ तथा ध्वन्यात्मक विकास दोनों दृष्टियों से पहला मत ही ठीक ज्ञात होता है।

हे—यह संबोधन में प्रयुक्त होता है। इसे परसर्ग न कहकर पूर्वसर्ग कहना अधिक उपयुक्त है। यह संस्कृत में भी 'हे' (संबोधन में प्रयुक्त) है।

ऐ—यह भी पूर्वसर्ग है। इस पर विचार नहीं किया गया है। मेरे विचार में सं० 'है' (संबोधन में प्रयुक्त) से यह विकसित है—है>ऐ।

परसर्गवत् प्रयुक्त अन्य शब्द **अंदर** (फ़ा०), **आगे** (सं० अग्रे>प्रा० अग्गे>आगे), **ऊपर** (सं० उपरि), **ओर** (सं० अवार), **ख़ातिर** (अ०), **नीचे** (सं० नीचे;), **पास** (सं० पार्श्वे), **पीछे** (सं० पश्चे), **बाहर** (सं० बहिर्), **मारे** (सं० मारितेन), **भीतर** (अभ्यंतर), **वास्ते** (अरः वासितः) आदि हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ७

सर्वनाम

सर्वनाम संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त होते हैं। संज्ञा की भाँति ही इनके विकारी और अविकारी रूप होते हैं। पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि अविकारी रूप में परसर्ग नहीं लगते तथा विकारी में अवश्य लगते हैं। सर्वनाम एक बात में संज्ञा शब्दों से भिन्न हैं कि उनका संबोधन में प्रायः प्रयोग नहीं होता। आगे हिन्दी सर्वनामों के रूप तथा उनका विकास दिया जा रहा है।

पुरुषवाचक सर्वनाम :

उत्तम पुरुष

	एक०	बहु०
अविकारी रूप	मैं	हम
विकारी रूप	मैं, मुझ	हम
संबंध रूप	मेरा	हमारा

मैं--(१) कामताप्रसाद गुरु ने 'मैं' का संबंध संस्कृत 'अहम्' से माना है, किंतु अहम् का ध्वन्यात्मक विकास 'मैं' नहीं हो सकता। प्राकृत में इसका रूप 'हं' हो जाता है, जिससे ब्रजभाषा का 'हौं' विकसित हो सकता है, और हुआ भी है, किन्तु 'मैं' नहीं। (२) इसीलिए बीम्स, चटर्जी आदि अन्य प्रायः सभी विद्वान् 'मैं' का सम्बन्ध सं० मया (तृतीया एकवचन) से मानते हैं : सं० मया>पा० मया>प्रा० मइ> अप० मइँ, मैं। एक प्रश्न उठता है कि मइँ में अनुनासिकता कहाँ से आ गई। इस संबंध में दो मत हैं : (क) डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी इसे संस्कृत एक० तृतीया एन (जैसे बालकेन) का प्रभाव मानते हैं। (ख) मेरे विचार में निकटस्थ ध्वनि म के प्रभाव से अनुनासिकता आई है। 'में' (सं० मध्ये) आदि कई अन्य शब्दों की अनुनासिकता भी इसी प्रकार की है। सच पूछा जाय तो मइँ अपभ्रंश-काल का रूप है और इस काल में आकर सामान्य जनता की भाषा पर संस्कृत के रूप के प्रभाव की संभावना नहीं है। इसलिए दूसरा मत ही ठीक लगता है।

मुझ--अधिकांश विद्वान् 'मुझ' को 'मह्यम्' (संप्रदान एकवचन) से संबद्ध मानते हैं : सं० मह्यम्>पा० मज्झं>प्रा० मज्झं>अप० मज्झ, मज्झु>हि० मुझ। मुझ में 'उ' कहाँ से आ गया, यह प्रश्न विचारणीय है। (१) बीम्स ने इसे तुझ (सं० तुभ्यम्) के सादृश्य पर माना है। (२) मेरे विचार में अप० में प्राप्त रूप मज्झु (जो अपभ्रंश की उकारबहुला प्रवृत्ति के कारण अस्तित्व में आया होगा) से विपर्यय के कारण 'मुझ' बना होगा। यों संभावना बीम्स के मत की भी हो सकती है।

मुझे--(i) इसके 'ए' को वर्मा विकारी ए (लड़का-लड़के) मानते हैं। (२) मेरे विचार में अप० 'तुज्झे' के सादृश्य पर 'मुज्झे' बना था जो मिलता है। उसी से 'मुझे 'विकसित हुआ है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा—मेरा, हमारा, तेरा, तुम्हारा में अंत्य 'आ' लिंग-वचन का द्योतक है, और इसके स्थान पर ए (मेरे, तेरे आदि) या ई(मेरी, तेरी आदि) आ सकते हैं। शेष में 'मे', 'हमा', 'ते', 'तुम्हा' क्रमशः उत्तम पुरुष, मध्यमपुरुष के हैं। शेष बचता है 'र'। यह 'र' ही संबंध कारक का द्योतन करता है। 'मेरा' के विकास के संबंध में मुख्य मत दो हैं : (१) केलॉग तथा धीरेन्द्र वर्मा आदि इसे मह+केर या केरो से जोड़ते हैं। धीरेन्द्र वर्मा ने विकास दिया है : मह केर या मह केरो>म्हारो, मारो, मेरा। किंतु 'मा' से 'मे' के विकास की संभावना नहीं है। (२) आठवीं सदी के एक संस्कृत-चीनी कोश में 'मेरा' के अर्थ में एक शब्द मिला है 'ममेर', जो 'मम+केर' से निकला ज्ञात होता है। प्राकृत-काल में 'केर' संबंधकारक का चिह्न था। 'मम' की अस्पष्टता के कारण उसके साथ 'केर' के जुड़ जाने की पूरी सम्भावना हो सकती है। उदयनारायण तिवारी 'ममेर' से ही 'मेरा' को जोड़ते हैं। प्राकृत 'केर' मूलतः संस्कृत 'कृत' से विकसित है : अर्थात् मम+केर (सं० कृत)>ममेर>मेर+लिंग-वचन का प्रत्यय। इनमें दूसरा मत अधिक तर्कसंगत ज्ञात होता है, क्योंकि ध्वन्यात्मक विकास, अर्थ तथा प्रयोग तीनों ही दृष्टियों से इससे विकास की सम्भावना हो सकती है।

हम—(१) कामताप्रसाद गुरु इसे सं० अहं से विकसित मानते हैं। किन्तु अहं से उसके ध्वन्यात्मक विकास की सम्भावना है नहीं। (२) तेसितोरी, चटर्जी, वर्मा आदि इसे वैदिक संस्कृत अस्मे (संप्रदान-अधिकरण बहु०) से जोड़ते हैं : अस्मे> पालि, प्राकृत, अप० अम्हे>अम्ह>हम। अपभ्रंश से हिन्दी विकास में धीरेन्द्र वर्मा 'म' और 'ह' में विपर्यय मानते हैं। मेरे विचार में ऐसा नहीं है। गुजराती में 'हम' के लिए 'अम' का प्रयोग इस बात का संकेत देता है कि 'अम्ह' का 'अम' बना और फिर ह के आदि-आगम (ओष्ठ से होंठ या अस्थि से हड्डी की भाँति) से 'अम' 'हम' बन गया।

हमें—(१) बीम्स तथा वर्मा प्राकृत, अपभ्रंश अम्हइँ से मानते हैं। (२) उदयनारायण तिवारी 'हमें' के 'एँ' को 'एन' से जोड़ते हैं। किन्तु यह तो तृतीया है और 'हमें' तृतीया में नहीं आता। (३) मेरे विचार में अपभ्रंश कर्मकारक 'अम्हे' से यह निकला है।

हमारा—(१) 'हमारा' की व्युत्पत्ति धीरेन्द्र वर्मा 'अम्ह करको' से मानते हैं : प्राकृत अम्ह करको>अम्ह अरओ>अम्हारो>हमारो, हमारा। इस विकास को संस्कृत तक ले जाते हुए मैं इस रूप में रखना चाहूँगा : अस्मे+कृतकः>अम्ह करको >अम्ह अरओ>अम्हारउ>हमारा। (२) उदयनारायण तिवारी ने 'हमारा' को 'अस्म कर' से जोड़ा है, किन्तु इसकी सम्भावना अपेक्षाकृत कम लगती है।

मध्यम पुरुष	एक०	बहु०
अविकारी रूप	तू	तुम
विकारी रूप	तू, तुझ	तुम
संबन्ध रूप	तेरा	तुम्हारा

तू—(१) धीरेन्द्र वर्मा इसका विकास संस्कृत त्वया से मानते हैं, किंतु इसका सीधा विकास त्वम् से हुआ है, जैसा कि (२) हार्नले, सुनीतिकुमार चटर्जी तथा बाबूराम सक्सेना आदि मानते हैं : सं० त्वम्>पा० त्वं, तुवं>प्रा० तुवं>हिं० तू।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुझ--(१) पिशेल तथा तेसितोरी 'तुझ' का विकास तुभ्यं से सम्भव नहीं मानते। इसीलिए वे लोग मह्यम् के सादृश्य पर सं० *तुह्यम् रूप की कल्पना करते हैं : सं० तुह्यम् > अप० तुज्झ > तुझ। (२) धीरेन्द्र वर्मा तथा उदयनारायण तिवारी इसे तुभ्यम् से जोड़ते हैं : सं० तुभ्यम् > तुज्झ > तुझ। (३) मेरे विचार में प्राकृत-अपभ्रंश के रूपों से स्पष्ट है कि अंत्य म् वाले रूपों से इसका विकास नहीं है, नहीं तो म् का किसी न किसी रूप में इनमें अवशेष होता। वैदिक संस्कृत तुह्य (संप्रदान एक०) से मुझे इसके विकास की सम्भावना लगती है : वै० सं० तुह्य > प्रा० तुज्ज > अप० तुज्झ > हि० तुझ।

तुझे—(१) वर्मा 'ए' को विकारी 'ए' मानते हैं। (२) मेरे विचार में प्रा० तुज्झे (कर्म, बहु०) से यह निकला है।

तेरा—मम + को से 'मेरा' के विकास के सादृश्य पर तव + केर से 'तेरा' का विकास माना जा सकता है : तव + केर (सं० कृत) > *तवेर (कल्पित रूप) > तेर (+ लिंग-वचन का प्रत्यय)।

'तुम'—तुम की व्युत्पत्ति बहुत विवादास्पद है : (१) कामताप्रसाद गुरु इसे त्वम् से जोड़ते हैं : सं० त्वम् > प्रा० तुम्ह > हि० तुम, किन्तु इस रूप में इसके विकास की सम्भावना नहीं है। (२) प्राकृतों के सम्बन्ध में विचार करते हुए पिशेल ने *तुष्मे रूप (वैदिक युष्मे के आधार पर) की कल्पना की थी। धीरेन्द वर्मा तथा उदयनारायण तिवारी इस सं० तुष्मे से ही तुम्हें होते तुम का विकास मानते हैं। (३) मैंने तुष्मे को लेकर 'हिंदी भाषा' में एक आपत्ति उठाई है। आपत्ति यह है कि संस्कृत में मध्यय पुरुष बहुवचन के सभी रूप य् से प्रारम्भ होते थे, किन्तु पालि में सभी रूप त् से प्रारम्भ होने लगे। अतः केवल एक कल्पित रूप तुष्मे मान लेने से काम नहीं चल सकता। यदि कल्पना करनी है तो संस्कृत में सभी कारकों में त् से प्रारम्भ होने वाले रूपों की कल्पना करनी पड़ेगी। किन्तु एकसाथ सभी कारकों में रूपों की कल्पना समीचीन नहीं लगती, अतः 'तुष्मे' की कल्पना नहीं की जा सकती। मुझे लगता है कि मेरी यह आपत्ति ठीक है, और ऐसी स्थिति में तुम की व्युत्पत्ति अस्पष्ट है, बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि तुम, तुम्हारा आदि में त व्यंजन कहाँ से आ गया, स्पष्ट नहीं है। शेष उम (त् + उम) आदि तो वैदिक 'युष्मे' से स्पष्ट ही सम्बद्ध है। मुझे एक सम्भावना लगती है। सम्भव है पालिकाल के प्रारम्भ में एकवचन के सभी रूपों में प्राप्त त् के प्रभाव से बहुवचन में य के स्थान पर 'त' हो गया हो। किन्तु यह केवल एक सम्भावना है।

तुम्हें--(१) वर्मा प्रा०, अप० 'तुम्हइँ' से मानते हैं। (२) मेरे विचार में पालि, प्रा०, अप० तुम्हें (कर्म) से इसका विकास हुआ है जो वैदिक 'युष्मे' है। अनुनासिकता 'म' का प्रभाव है।

तुम्हारा—इसका विकास, जैसा कि धीरेन्द्र वर्मा ने माना है, प्राकृत तुम्ह + करको > तुम्ह अरओ > तुम्हारा रूप में ज्ञात होता है। इसमें 'करको' तो संस्कृत 'कृतकः' से विकसित ज्ञात होता है, और तुम्ह वैदिक युष्मे, पालि तुम्हे से आया है, किन्तु जैसा कि 'तुम' के प्रसंग में कहा जा चुका है, त कहाँ से आ गया स्पष्ट नहीं है।

आप—तुम के स्थान पर आदर के लिए 'आप' का प्रयोग होता है। इसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्युत्पत्ति के बारे में मुख्यतः दो मत हैं : (१) बीम्स, चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा आदि संस्कृत आत्म>प्रा० अप्प>आप रूप में इसका विकास मानते हैं। मैं इससे सहमत नहीं हूँ। वस्तुतः सं० 'आत्म' से हिन्दी निजवाचक 'आप' का विकास हुआ है, आदर-सूचक 'आप' का नहीं, क्योंकि संस्कृत 'आत्म' में मूलतः निज का भाव है, आदर का भाव नहीं है। (२) मेरे विचार में हिन्दी आप या तो संस्कृत 'आप्त' से विकसित है (आप्त>अप्प>आप) या द्रविड़ भाषाओं में 'प्राप्त' आदरसूचक शब्द अप्प (अप्प> प्रा० अप्प> हि० आप)।

अन्य पुरुष	एक०	बहु०
अविकारी रूप	वह	वे
विकारी रूप	उस	उन

वह—वह की व्युत्पत्ति के बारे में कई मत हैं : (१) कामताप्रसाद गुरु इसे सं० सः से विकसित मानते हैं : सं० सः>प्रा० सो>हिन्दी वह। किन्तु इस रूप में विकास की सम्भावना नहीं है। (२) भंडारकर तथा उदयनारायण तिवारी सं० असौ>पा० असु> प्रा०असो>अहाँ>ओह>वह रूप में इसका विकास मानते हैं। (३) पिशेल ने कुछ ईरानी रूपों के आधार पर सं० में एक *अव मूल की कल्पना की थी। इसके पक्ष में कुछ अतिरिक्त सामग्री चटर्जी को तथा कुछ और सामग्री मुझे मिली। इसके आधार पर इसका विकास होगा : *अवः> *अवो> *वो> ओउ> ओहु>वहु>वह। यों सभी दृष्टियों से विचार करने पर इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध ज्ञात होती है।

उस—(१) धीरेन्द्र वर्मा का कहना है कि यदि अव की कल्पना ठीक है तो अव के षष्ठी एकवचन *अवस्य से यह विकसित हो सकता है : सं० अवस्य>प्रा० अउस्स>उस। (२) उदयनारायण तिवारी इसका विकास 'अमुष्य' से मानते हैं : सं० अमुष्य>पा० अमुस्स>प्रा० अउस्स>उस। दूसरा मत अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है।

वे—इसकी व्युत्पत्ति के बारे में मुख्य मत तीन हैं : (१) चटर्जी कल्पित रूप *अवेभिः (अव का करण बहु०)>*अवहि>वे रूप में इसका विकास मानते हैं। (२) धीरेन्द्र वर्मा इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित मानते हैं। (३) उदयनारायण तिवारी के मतानुसार 'वह+एभिः' से वे विकसित है। वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित ज्ञात होती है।

उन—इसकी व्युत्पत्ति के बारे में मुख्य मत चार हैं : (१) डॉ० धीरेन्द्र वर्मा इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित मानते हैं। (२) किशोरीदास वाजपेयी 'वह+बहुत्व-सूचक न' से 'उन' को निकला मानते हैं, किंतु इस प्रकार के विकास की संभावना नहीं है। (३) उदयनारायण तिवारी के मतानुसार संस्कृत अमुष्याम्>अमूनाम्> अउण>उण्ह>उन रूप में यह विकसित है। (४) मुझे लगता है कि संस्कृत के कर्म बहु० अमून् (प्रा० अमूण, अप० उण्ह, हि० उन्ह>उन) से इसका विकास अधिक संभावित है, क्योंकि उदयनारायण तिवारी के विकास में 'न' कहाँ से आ गया, स्पष्ट नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्हें—(१) डॉ० वर्मा इसे विकृत रूप मानते हैं। (२) मेरे विचार में यह विकृत रूप नहीं हो सकता। यह अप० 'उण्ह' से हमें, तुम्हें के सादृश्य पर बना है।

निश्चयवाचक सर्वनाम

यह दो प्रकार का होता है: दूरवर्ती, निकटवर्ती। दूरवर्ती तो 'वह' है, जिस पर अन्य पुरुष के अन्तर्गत विचार किया जा चुका है। निकटवर्ती 'यह' है जिसके रूप निम्नांकित हैं—

	एक०	बहु०
अविकारी रूप	यह	ये
विकारी रूप	इस	इन

यह—यह के विकास के सम्बन्ध में प्राय: कोई विवाद नहीं है। सभी विद्वान् इसका सम्बन्ध एष: से मानते हैं: संस्कृत एष:>पालि एसो>प्रा० एसो>अप० एसो>एहो, एहु>एह>यह।

इस—'इस' के सम्बन्ध में मुख्य मत चार हैं: (१) बीम्स संस्कृत अस्य> प्राकृत अस्स>इस रूप में इसे विकसित मानते हैं, किंतु 'अ' से 'इ' के विकास की संभावना सामान्यत: नहीं है। (२) धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत अस्य>प्राकृत एअस्स >इस रूप में इसका इतिहास देते हैं। वस्तुत: अस्य से प्राकृत एअस्स का विकास संभव नहीं है। (३) सुनीतिकुमार चटर्जी संस्कृत एतस्य(>पालि एतस्य>प्राकृत एअस्स>इस) से इसे जोड़ते हैं। चटर्जी का मत ठीक लगता है, क्योंकि इसके विरोध में वे बातें नहीं कहीं जा सकतीं जो बीम्स और वर्मा के विरोध में ऊपर कही गई हैं।

इसे—(१) वर्मा 'ए' को विकृत रूप का चिह्न मानते हैं। (२) मेरे विचार में तुझे, मुझे के सादृश्य पर बना है।

ये—(१) ये का विकास चटर्जी संस्कृत एतै: (करण बहु०)>एतेहि> कल्पित रूप *एएहि से मानते हैं। (२) हार्नले तथा धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत एते (प्रथम बहु०)>पालि एते>प्राकृत एए>अप० एइ>ए>ये रूप में मानते हैं। इनमें दोनों ही की समान संभावना है।

इन—इसका सम्बन्ध कई शब्दों से जोड़ा जाता रहा है: (१) किशोरीदास वाजपेयी यह+बहुत्वबोधक न से 'इन' को जोड़ते हैं, किंतु इस रूप में इसके विकास की संभावना नहीं है। (२) धीरेन्द्र वर्मा ने 'इस' पर संज्ञा रूपों के षष्ठी बहु० के प्रत्यय 'आनाम्' के प्रभाव से इनका विकास माना है, किंतु उपर्युक्त की तरह ही, इसकी भी संभावना प्राय: नहीं है। (३) उदयनारायण तिवारी संस्कृत कल्पित रूप *एतांषाम् से इसे जोड़ते हैं। कहना न होगा कि इसमें 'न' का विकास स्पष्ट नहीं है। यद्यपि इस प्रकार कुछ उदाहरण पालि-प्राकृत में मिलते हैं। वस्तुत: इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित है।

इन्हें—(१) वर्मा इसे 'इन्ह' का विकृत कहते हैं, किन्तु आकारांत का विकृत एकारांत होता है। (२) मेरे विचार मे 'इन्ह' (अप० एण से महाप्राणीकरण से) हमें, तुम्हें के सादृश्य पर ऐसा बन गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्नवाचक सर्वनाम

	एक०	बहु०
अविकारी रूप	कौन, क्या	×
विकारी रूप	किस	किन

अविकारी बहुवचन में कौन-कौन, क्या-क्या या कौन लोग आदि का प्रयोग होता है।

कौन--इसका विकास सं० 'कः पुनः' से हुआ है : सं० कः पुनः>पा० को पन>अप० कवण>हि० कौन।

क्या--(१) कामताप्रसाद गुरु 'क्या' को सं० किम् से जोड़ते है। इस विकास में अर्थ के स्तर पर तो समानता है, किंतु 'किम्' से 'क्या' के ध्वन्यात्मक विकास की संभावना नहीं है। (२) प्लाट्स सं० कीदृश>केद्दो>केहो>किहा>किया>क्या रूप में विकास मानते हैं। (३) प्राकृतों में मुझे क्या के अर्थ में किस्सा, कीआ रूप मिले हैं, जिससे क्या का विकास सरलता से हो सकता है, और किस्सा' का सम्बन्ध सं० *'कस्य' से संभावित है। अर्थात् विकास हुआ *किस्य (सं० कस्य के स्थान पर बोलचाल का रूप रहा होगा)+कः (स्वार्थे)>प्रा० किस्सा>*कीसा >किआ>क्या। इसका आशय यह हुआ कि प्राकृत से तो विकास स्पष्ट है, उसके पूर्व कल्पित रूप की भी संभावना हो सकती है। दे० किस।

किस--'किस' की व्युत्पत्ति के बारे में मुख्य मत दो हैं : (१) बीम्स, केलॉग, चटर्जी, धीरेन्द्र वर्मा, उदयनारायण तिवारी इसे संस्कृत 'कस्य' से जोड़ते हैं : संस्कृत कस्य>प्राकृत किस्स>हिन्दी किस। (२) मेरी आपत्ति यह रही है कि 'क' का 'कि' कैसे हो गया। वस्तुतः मेरे विचार में बोलचाल में संस्कृत में एक किस्य रूप भी रहा होगा। इसके पक्ष में दो तर्क हैं : (क) एक तो यह कि पालि में किस्स रूप प्राप्त है जो सं० किस्य से ही निकल सकता है। (ख) दूसरे, मूल-भारोपीय भाषा में 'क' के अतिरिक्त 'कि' मूल की भी संभावना है जो सं० 'किम्', फ़ा० 'चिय, लैटिन quis, जर्मन hui आदि से स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में क से कस्य के समान्तर कि से किस्य का होना सर्वथा संभव है। अर्थात् मेरे अनुसार किस का विकास है : सं० *किस्य, पालि किस्स, अप० किस, हि० किस।

किन—(१) ब्रीम्स तथा धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत 'केषां' के स्थान पर संज्ञा शब्दों (जैसे बालकानां) के सादृश्य पर बने संस्कृत कल्पित रूप *कानां (>प्राकृत केणां>किन) से किन का विकास मानते हैं, किन्तु (२) डॉ० उदयनारायण तिवारी संस्कृत केषाम्>प्राकृत काणं>काण (पालि किस्स के प्रभाव से), किण>किन रूप में इसे विकसित कहते हैं। (३) मेरे विचार में संज्ञा के बालकानाम् जैसे रूपों से प्रभावित बोलचाल की संस्कृत के कल्पित रूप केषानाम् (केषां पर आनाम् के प्रभाव से बना) से इसे (>पा० केसानं>प्रा० केणं>अप० किण>हि०>किन) से यह निकला है। पालि में प्राप्त रूप 'केसानं' जिससे 'किन' के विकास की पूरी सम्भावना है, सं० 'केषानाम्' से ही निकल सकता है और 'केषानाम्' का अस्तित्व उपयुक्त रूप में असम्भव नहीं है। प्रथम दो मतों में आ>ए तथा ष>ण विकास बहुत संभव नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्हें—(१) वर्मा 'किन्ह' में विकारी चिह्न 'ए' से मानते हैं। (२) मेरे विचार में ऐसा संभव नहीं है। अप० किण (+ह) से हमें, तुम्हें आदि के सादृश्य पर किन्हें बना है।

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

	एक०	बहु०
अविकारी रूप	जो	×
विकारी रूप	जिस	जिन

अविकारी रूप बहु० में 'जो-जो' या 'जो लोग' का प्रयोग होता है।

जो—इसकी व्युत्पत्ति के विषय में कोई विवाद नहीं है। सभी लोग इस बात से सहमत हैं कि संस्कृत यः से इसका विकास हुआ है : संस्कृत यः>पालि यो> प्राकृत जो>अपभ्रंश जो>हिंदी जो।

जिस—इसका सम्बन्ध स्पष्ट ही 'यस्य' से है, किंतु इसके विकास के सम्बन्ध में थोड़ा मतभेद है : (१) बीम्स तथा उदयनारायण तिवारी संस्कृत यस्य>प्राकृत जस्स>हिंदी जिस रूप में मानते हैं, तो (२) धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत यस्य>जस्स, जिस्स>जिस रूप में। वस्तुतः समस्या 'इ' के आने की है। (३) मुझे प्राकृत में 'जिस्स' रूप मिला है। लगता है पालि में प्राप्त रूप 'किस्स' के प्रभाव से सं० यस्य, पा० यस्स प्राकृत में जाकर जिस्स, जिस्सा हो गया। अर्थात् विकास हुआ : सं० यस्य>पा० यस्स>प्रा० जिस्स (किस्स के प्रभाव से; ऊपर दे० किस)>हि० जिस।

जिसे—(१) वर्मा : जिस+ए। (२) मेरे विचार में 'जिस' का विकास 'तुझे' आदि के सादृश्य से।

जिन—इसकी व्युत्पत्ति (१) बीम्स तथा वर्मा संस्कृत संबंध कारक बहुवचन के येषां के स्थान पर संज्ञा शब्दों के सादृश्य पर बने कल्पित रूप *यानां (>प्राकृत जाणं>जिन) से मानते हैं। (२) उदयनारायण तिवारी सं० येषाम्> प्राकृत जाणं>हि० जिन रूप में विकास मानते हैं। 'जाणं' से 'जिन' का विकास (आ> इ) सामान्यतः संभव नहीं है। (३) मेरे विचार में संज्ञा शब्दों के बालकानाम् जैसे रूपों से प्रभावित येषां के स्थान पर बोलचाल की संस्कृत में प्रचलित रूप *येषानाम् (>पा० येसानं>जिण, जिण्हं>जिन, जिन्ह) से इसका विकास हुआ है। मेरे अनुमान के पक्ष में ये बातें कही जा सकती हैं : (क) अकारात संज्ञाओं के बहुप्रयोग के कारण ऐसे प्रभाव संभावित हैं। इसे बीम्स, चटर्जी आदि ने अनेक व्युत्पत्तियों में माना है। (ख) येषां पर आनाम् के प्रभाव से येषानाम् रूप बन सकता है। (ग) पालि में प्राप्त रूप येसानं इससे सरलता से निकल सकता है। (घ) येसानं से जिन, जिन्ह का विकास स्पष्ट है।

जिन्हें—(१) वर्मा : विकृत रूप। (२) मेरे विचार में 'जिन्ह' हमें, तुम्हें के सादृश्य से।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिश्चयवाचक सर्वनाम

	एक०	बहु०
अविकारी रूप	कोई, कुछ	×
विकारी रूप	किसी	किन्हीं

अविकारी बहु० में कोई-कोई या कुछ लोग का प्रयोग होता है।

कोई—इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में सभी लोग सहमत हैं : संस्कृत कोऽपि (कः अपि) > पालि को पि > प्राकृत को वि > अपभंश कोई > हि० कोई।

कुछ—कुछ की व्युत्पत्ति विवादास्पद है : (१) वीम्स संस्कृत किंचित् के स्थान पर संभावित प्रयुक्त कल्पित रूप *कञ्चित (कत्+चित) से कुछ का सम्बन्ध जोड़ते हैं। 'च' का 'छ' कैसे हो गया, उन्होंने स्पष्ट नहीं किया है। (२) धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत कश्चिद् > प्राकृत कल्पित रूप *कच्छु > कुछ रूप में इसका विकास देते हैं। इस मत में 'श' के प्रभाव से 'च' से 'छ' के विकास की संभावना तो है, किंतु 'कश्चिद्' और 'कुछ' के अर्थ में अंतर है। (३) मुझे इसका विकास इस रूप में कुछ संभावित लगता है : संस्कृत किंचित् > शिलालेखी प्राकृत किंचि > किंछि (कश्चिद् > कल्पित रूप *कच्छि का प्रभाव) > कल्पित रूप किच्छ > किच्छु (अपभ्रंश की उकार-बहुला प्रवृत्ति) > किछु (भोजपुरी में प्राप्त रूप), कछु (पुरानी हिंदी में प्राप्त) > कुछ। वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति सदिग्ध है। अंतिम मत की संभावना ही हो सकती है।

किसी—प्रमुख मत निम्नांकित हैं—(१) धीरेन्द्र वर्मा संस्कृत कस्यापि से 'किसी' को निकला मानते हैं। (२) उदयनारायण तिवारी संस्कृत कस्यापि (प्राकृत कस्सवि > कस्सइ > किसी) से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। (३) पालि में किस्सापि रूप प्राप्त है, अतः संस्कृत में इसका पूर्व रूप *किस्यापि होगा। इसीलिए मेरे विचार में सं० *किस्यापि > पा० किस्यापि > प्रा० *किस्सवि > अप० *किस्सइ > हि० किसी रूप में इसका विकास हुआ है। ('किस्यापि' के 'किस्य' के लिए ऊपर देखिए 'किस')।

किन्हीं—(१) वर्मा ने इसकी व्युत्पत्ति अनिश्चित मानी है। (२) उदयनारायण तिवारी इसे केषामपि (> *कानापि, प्रा० काणंपि, काणंवि > काणइ > किन्हीं; करण विभक्ति भिः > हि के संयोग से तथा पालि किस्य के प्रभाव से) से जोड़ते हैं। (३) मेरे विचार में केषां के स्थान पर प्रयुक्त केषानाम् (आनाम् के प्रभाव से) से बने रूप *केषांनामपि से इसका विकास अधिक संभव है। तिवारी जी के मत की 'न' की समस्या भी इस रूप से सुलझ जाती है, तथा जिन (दे०), किन (दे०) में व्यक्त संभावनाओं से भी इसका मेल खाता है। यों इसकी भी मात्र संभावना ही हो सकती है। सनिश्चय कुछ कहना कठिन है। यों एक संभावना और भी हो सकती है : 'किसी' आदि रूप तो प्राचीन काल से मिलते हैं, किन्तु किन्हीं का कोई बहुत पुराना प्रयोग मुझे नहीं मिला। असंभव नहीं कि आधुनिक काल में किन+ही के साथ प्रयोग से अभी, जभी या इसी-उसी की तरह 'किन्हीं' रूप बन गया हो। किन्हीं की अनुनासिकता 'न्ह' के कारण है।

निजवाचक सर्वनाम

आप—इसका विकास सं० आत्म से हुआ है; सं० आत्म > प्रा० अप्प > हि० आप।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना—इसका विकास (१) वर्मा जी प्रा० अप्पाणो, अप० अप्पाणु से जोड़ते हैं। (२) पिशेल के अनुसार इसे कल्पित सं० रूप *आत्मानक, प्रा० अप्पणअ से बनना चाहिए। (३) वस्तुतः 'अपना' रूप संबंध कारक का है और आप से संबद्ध, अतः मेरे विचार में 'आप' के मूल 'आत्म' के संबंधकारकीय रूप सं० आत्मनः, प्रा० अप्पणो, अप्पणा, अप० अप्पणा, हि० अपना रूप में इसका विकास काफ़ी स्पष्ट है।

आपस—प्रा० में इसका रूप अप्पस्स मिलता है, अतः सं० में इसका मूल रूप आत्मस्य होना चाहिए, जो मिलता नहीं। लगता है कि षष्ठी एक० के बालकस्य जैसे अकारांत शब्दों के रूपों के प्रभाव से बोलचाल में 'आत्मनः' (षष्ठी एक०) के स्थान पर 'आत्मस्य' रूप प्रचलित रहा होगा। इस तरह मेरे विचार में सं० *आत्मस्य > प्रा० अप्पस्स > हि० आपस रूप में यह विकसित हुआ है। बीम्स, वर्मा, तिवारी आदि ने इसका विकास नहीं दिया है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ८

विशेषण

विशेषणों में परिवर्तन

संस्कृत में विशेषण विशेष्य के लिंग-वचन के अनुसार बदलता है : सुन्दरः नरः, सुन्दरं पुष्पं, सुन्दरी स्त्री। किंतु धीरे-धीरे विभक्तियों के लोप तथा फ़ारसी (जिसमें विशेषण अपरिवर्तित रहता है) के मध्यकाल में प्रभाव के कारण हिन्दी के सभी प्रकार के विशेषण अपरिवर्तित रूप में प्रयुक्त होने लगे। अपवाद हैं तो आकारांत विशेषण जो बहु० या विकारी रूप में एकारात (अच्छे लड़के : अच्छे लड़के को बुलाओ) तथा स्त्रीलिंग में ईकारांत (अच्छी लड़की) हो जाते हैं। यों बढ़िया, घटिया, रसिया, उमदा आदि कुछ आकारांत विशेषण भी हिंदी में ऐसे हैं जो अपरिवर्तित रहते हैं।

विशेषणों के तुलनात्मक रूप

संस्कृत में तर और तम (महत्तर, महत्तम, उच्चतर, उच्चतम) या इयान और इष्ठ (पटु-पटीयान्, गरिष्ठ, बलिष्ठ, ज्येष्ठ) का इन रूपों के लिए प्रयोग होता था : हिन्दी में तर, तम, इष्ठ-युक्त रूप तो हैं, किन्तु इयान वाले नहीं हैं। यों ज्यादातर हिन्दी अपनी अयोगात्मक पद्धति से 'से' और 'सबसे' की सहायता से तरार्थी और तमार्थी भाव व्यक्त करती है : राम से अच्छा, सबसे अच्छा। कभी-कभी फ़ारसी के तर-तरीन (बेहतर—बेहतरीन) भी प्रयुक्त हो जाते हैं।

संख्यावाचक विशेषण

(क) पूर्णांक संख्यावाचक

एक—सं० एक>पा० एक>प्रा०, अप० एक्क>अप० एक>हि० एक। एक के विभिन्न रूप इक (३१, ४१, -हरा, -तरफ़ा आदि), अक (अकेला), ग्य (११) हैं जो एक से ही विकसित हैं : ए>इ>अ। 'ग्य' का ग एक के क का घोषीकृत रूप है तथा य एक के 'ए' से सम्बद्ध है।

दो—सं० द्वौ, पा० द्वे, दुवे, प्रा० दो, अप० बे, वे, हि० दो। स्पष्ट ही पा० तथा अप० के रूप हि० के पूर्व रूप नहीं हैं। सं० द्वौ, प्रा० दो से उसका सम्बन्ध है। दु (धारी)), दू (दूना) दो से विकसित हैं, तो ब, बा, द्वा (द्वादश आदि के) में द के लोप से व से विकसित हैं।

तीन—सं० त्रीणि>पा० तिणि>प्रा० तिण्णि>अप० तिण्ण>हि० तीन। तिन (-तरफ़ा), ते (-हरा, १३, २३), तैं (३३) तीन से ही विकसित हैं। तिर (५३, ६३ आदि), त्रे (५३), त्रि (त्रिपंचाशत् आदि) के विकास हैं।

चार—सं०चत्वारि>पा०, प्रा० चत्तारि>अप०चयारि, चारि> हि०चार। चौ (१४, २४ आदि), चौं (३४, ६४), चौर (८४) आदि चार के विकास न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर सं० चतुर्>चउर>चौर>चौ आदि हैं। चौं की अनुनासिकता ३५, ६५ के प्रभाव के कारण है।

पाँच—स०, पा०, प्रा० पंच>अप० पाँच>हि० पाँच। पँच (-मेल, -गुना), पच (७५, ५५, ८५), पिच (७५, ८५, ९५) पाँच के रूपांतर हैं। 'पिच' की ड पास की संख्याएँ (७३, ८३, ९३) के प्रभाव से है। पंच का प्रा० पन्न>हि० पन (१५) का विकास असामान्य है। पैं (३५, ४५, ६५) पंच में च के लोप और य -श्रुति के आगम से हुआ है : पंच>पयं>पैं।

छ—सं० षट्>प्रा०, अप०>छह>हि० छ, छह। ष से छ के विकास को धीरेन्द्र वर्मा अस्पष्ट मानते हैं। टर्नर षट् से छह के विकास को असंभव मानकर मूल शब्द *क्षट् या क्ष्वट् कल्पित करते हैं। चटर्जी मूल शब्द के रूप में सं० *क्षष् या *क्ष्वष् की कल्पना करते हैं। मेरे विचार में असामान्य होते हुए भी ष से ही छ का विकास हुआ है। वस्तुतः शकट का छकड़ा, शिक्या का छीका, सज्ज का छाज आदि पचासों उदाहरणों (प्राकृत, नेपाली, हिंदी की बोलियों आदि में) में ऊष्म का छ मिलता है। ऐसी स्थिति में सभी शब्दों के लिए कल्पित शब्द बनाना वैज्ञानिक नहीं है, और ष (जो बाद में उच्चारण में श हो गया था) से ही छ निकला है। छः के रूपांतर छ तथा सो (षोडश>सोलह) हैं।

सात—सं० सप्त>पा०, प्रा०, अप० सत्त>हि० सात। सत (१७, २७ आदि) सात का रूपांतर है। सड़ या सर (६७) में ड़, र सत के 'त' (>ट>ड>ड़>र) के विकास हैं।

आठ—सं० अष्ट>पा०, प्रा०, अप० अट्ठ>हि० आठ। अठ (१८,२८ आदि) आठ का रूपांतर है। अड़ या अर (३८, ४८, ६८) में ड़, र आठ के ठ (>ट>ड>ड़>र) के विकास हैं।

नौ—सं०, पा० नव>प्रा०, अप० णव>हि० नव (८९), नौ। निन्या (९९) 'नौ' से सम्बद्ध है, किन्तु इसका विकास अस्पष्ट है। नौ से केवल ८९, ९९ बने हैं। १९, २९, ३९, ४९, ५९, ६९, ७९ में 'उन' का अर्थ 'एक कम'(सं० एकोन>उन) है।

दस—सं० दश>पा० दस> प्रा० दस, दह (स>ह), रह (द>ड>ड़>र), लह (द>ड>ळ>ल), अप० दस तथा अन्य प्राकृत रूप>हिन्दी दस, दह (१४), रह (११, १२, १३, १७, १८), लह (१६)। १५ में द+र (दह+रह) हैं।

बीस—सं० विंशति (मेरे विचार से सं० में मूलतः द्विंशति रहा होगा), पा० वीसति>प्रा० बीसइ>अप० बीस>हि० बीस। ब्बीस (२६), ईस (१९, २२) आदि इसी के रूपांतर हैं। १९=उन (एक कम) +ईस।

तीस—सं० त्रिंशत्>पा० तिंसति>प्रा०, अप० तीस>हि० तीस। २९ =उन+तीस।

चालीस—सं० चत्वारिंशत्>पा० चत्ताळीसति>प्रा० चत्तालीस>अप० चालीस >हि० चालीस। प्रा० चत्तालीस से च के लोप से 'तालीस' (३९, ४१, ४३, ४५,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४७, ४८) तथा त के लोप से 'चालीस' और दोनों के लोप से 'आलीस' (४२, ४४)। ४४, ४२ के 'य' तथा 'व' श्रुति हैं।

पचास--सं० पंचाशत्>पा० पञ्चासा, *पंचासा>प्रा०, अप० पंचास>हि० पचास। 'चास' (४९) 'प' के लोप से। पंचाशत्>पञ्चासा>पणासा>पण> पन (५३, ५५, ५६)> वन (५१, ५२, ५४, ५७, ५८) रूप में पन, वन विकसित हैं।

साठ--सं० षष्ठि>पां०, प्रा०, अप० सट्ठि>अप० सट्ठ>हि० साठ; सं० (५९, ६१) आदि। सड़ (६७) का ड़ ठ>ट>ड>ड़ रूप में विकसित है।

अस्सी--सं० अशीति>प्रा० असीति>प्रा० असीइ>अप० अस्सी>हिंदी अस्सी, आसी (७९, ८१, ८२ आदि)।

सत्तर--सं० सप्तति>पा० सत्तति, सत्तरि>प्रा० सत्तरि>अप०, हि० सत्तर। हत्तर (६९, ७१, ७२ आदि में) में 'ह' स का परिवर्तित रूप है। त का र त>ट> ड>ड़>र रूप में हुआ ज्ञात होता है।

नब्बे--सं०, पा० नवति>प्रा०, अप० णवह>हि०>नब्बे, नब्बे, नबे (९१, ९२ आदि में)।

सौ--सं० शत>पा० सत>प्रा० सत, सअ, सय (य-श्रुति)>अप० सउ (सअ>सव 'व' श्रुति>सउ)>हि० सौ (सउ से), सै (सय से, सैकड़ा में)।

हजार--फ़ारसी से आया है।

लाख--सं० लक्ष>प्रा० लक्ख>हि० लाख, लख (लखपती)।

करोड़--सं०,पा० कोटि>प्रा०, अप० कोडि>हि० करोड़। 'र' कहाँ से आ गया? (१) वर्मा जी इसे अस्पष्ट मानते हैं। कहते हैं कि सम्भव है 'कोटि' के आधार पर गढ़ लिया गया हो। (२) चटर्जी संस्कृत रूप देने की प्रवृत्ति से कोटि से करोड़ मानते हैं। (३) मेरे विचार से दर्जन, श्राप आदि की तरह करोड़ में 'र' का आगम है।

(ख) अपूर्णकबोधक

पाव--सं० पाद>प्रा० पाओ>अप० पाउ>हि० पाव।

चौथाई--सं० चतुर्थिक>प्रा० चउत्थिअ>हि० चौथाई (तिहाई के सादृश्य पर)।

तिहाई--सं० त्रिभागिक>प्रा० तिहाइअ>हि० तिहाई।
आधा--सं० अर्ध>अद्ध, आध, आधा।
पौन--सं० पादोन>प्रा० पाओण>अप० पाउण>हि० पौन, पौना।
सवा--सं० सपाद>प्रा० सवाअ>हि० सवा।
साढ़े--सं० सार्ध>प्रा० सड्ढ>साढ़, साढ़े (विकारी रूप के सादृश्य पर)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डेढ़—सं० द्व्यर्ध या द्विकार्ध, प्रा० दिवड्ढ>अप० दिअड्ढ>हि० डेढ़ ।

ढाई—अर्धतृतीय>अड्ढइअ>ढढ़ाई>ढाई ।

(ग) क्रमसंख्यावाचक

पहला—(१) पिशेल ने 'प्रथिल' की कल्पना की थी। उसी से वर्मा जी पहला को विकसित मानते हैं। (२) उदयनारायण तिवारी सं०प्रथम>प्रा० पढम+इल्ल>पढिल्ल>पहिल रूप में विकास दिखलाते हैं। (३) मुझे अर्धमागधी में इसका रूप मिला है पढमिल्लग जो सं० प्रथम+इल (स्वप्निल, फेनिल आदि का प्रत्यय)+क (स्वार्थे) से संबद्ध जान पड़ता है: प्रथम+इल+क>प्रा० पढमिल्लग>अप० पहिलअ>हि० पहिला, पहला। दूसरे-तीसरे मत वस्तुतः प्रायः एक ही हैं। यही विकास संभावित है।

दूसरा, तीसरा—इनमें 'दू', 'ती' तो 'दो', 'तीन' से सम्बद्ध हैं। 'सरा' को लेकर विवाद है। (१) बीम्स इसे सं० सृतः से जोड़ते हैं: द्विसृतः>दूसरा, त्रिसृतः>तीसरा। (२) चटर्जी 'सर+आ' प्रत्यय मानते हैं। (३) मेरे विचार में सं० तिसृ से स्त्री० में जो रूप तिस्रः, तिसृभिः आदि बनते हैं, उन्हीं के स्र, सृ से तीसरा के 'सर' का सम्बन्ध है। अर्थात् तृतीय के स्थान पर *तिसृतीय से 'तीसरा' बना होगा। 'दूसरा' इसी के सादृश्य पर बना है। वस्तुतः 'सरा' के विषय में सनिश्चय कुछ कहना कठिन है।

चौथा—सं० चतुर्थ>चउत्थ>चौथ (ा)।

पाँचवाँ—सं० पंचम>पाँचव (ाँ)। बीम्स ने इसे पंचतम से माना है, किंतु वह मान्य नहीं है। इसी प्रकार सप्तम से सातवाँ, अष्टम से आठवाँ, शतम से सौवाँ आदि।

छठा—सं० षष्ठ>प्रा० छट्ठ>छठ (ा)। छठाँ, छठवाँ, छवाँ 'पाँचवाँ' के सादृश्य पर बने हैं जो कभी-कभी प्रयुक्त होते सुने जाते हैं।

(घ) सार्वनामिक विशेषण

हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में कुछ ऐसे विशेषण हैं, जो सर्वनाम मूलों पर आधारित हैं तथा जो सर्वनाम, विशेषण एवं क्रियाविशेषण के रूप में काम करते हैं।

सर्वनाम मूल	परिमाणवाचक	गुणवाचक
य (ह), इ	इतना, इत्ता	ऐसा
व (ह), उ	उतना, उत्ता	वैसा
क (कौन, क्या)	कितना, कित्ता	कैसा
ज (जो)	जितना, जित्ता	जैसा
त (तिन, तिस)	तितना, तित्ता	तैसा

परिमाणवाचक

(१) हार्नले, बीम्स, केलॉग, डॉ० वर्मा इनका संबंध इयत्, कियत्, तावत्, यावत् से मानते हैं। इनके प्राकृत रूप एत्तिअ, केत्तिअ, तेत्तिअ, जेत्तिअ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। बीम्स ने 'न' को लघुत्वबोधक प्रत्यय कहा है, जो अपना अर्थ खो चुका है। केलॉग तथा डॉ० वर्मा भी इससे सहमत हैं। इन लोगों में इतना, कितना, तितना, जितना तो लिए गए हैं, किन्तु 'उतना' रह गया है। (२) डॉ० चटर्जी और डॉ० तिवारी इनका सम्बन्ध सं० इयत्तक (>प्रा० एत्तिअ, एत्तअ>हि० इत्ता, इतना; 'न' के सम्बन्ध में डॉ० तिवारी भी बीम्स से सहमत हैं), प्रा० जेत्तिअ; सं० कियत्तक (> प्रा० केत्तिअ) से मानते हैं। 'तितना' को वे इतना आदि के समान सर्वनाम अंग 'ति' से मानते हैं। इसी प्रकार 'उतना' को भी 'इतना' आदि के समान 'उ' में त्तक>त्तिअ >ता, तना ('ना' प्रत्यय) लगाकर माना है। (३) इसमें कोई सन्देह नहीं कि मूलतः ये रूप सं० इयत्, कियत् आदि से ही सम्बन्धित हैं, किन्तु 'न' के सम्बन्ध में मैं उपर्युक्त विद्वानों से सहमत नहीं हूं। बीम्स के आधार पर इसे केलॉग, डॉ० वर्मा तथा डॉ० तिवारी ने लघुत्वबोधक माना है, किन्तु मेरे विचार में यह लघुत्वबोधक न होकर या तो स्वार्थे है या विशेषणात्मक। वस्तुतः यह 'न' अकेला उदाहरण नहीं है। इन रूपों के विकास-काल में इनमें न (हिन्दी इतना, उतना आदि; पंजा० एँन्ना, ओन्ना, किन्ना, जिन्ना; ब्रज इतनौ, उतनौ, कितनौ, जितनौ; कनौ० इतनो, उतनो, कितनो, जितनो; अव० तथा बिहारी यतना, ओतना, जेतना, केतना, तेतना आदि), र (राज० इतरो, उतरो, जतरो, कत्रो, ततरो; लहँदा इत्रा, कित्रा, जित्रा, ओत्रा आदि), ल (प्रा०, अप० के जेत्तिल, तेत्तिल, केत्तिल, केत्तुलु, इत्तुल, इत्तिल आदि; लहँदा इत्तला, कित्तला आदि) तथा क (सिंहली केतेक; अवधी जेतिक, तेतिक, एतिक; भोज० अतेक, ओत्तेक, कतेक, ततेक; चन्द में कितकु, कितोकु; असमिया एतेक, जेंतेंक, केंतेंक, ततेक आदि) प्रत्यय मिल गए हैं। मुझे लगता है कि ये चारों ही या तो स्वार्थे प्रत्यय थे या विशेषणात्मक। सं० में ये चारों विशेषणात्मक (पुरा+न=पुराण, समान; नम्र, कम्र, मुखर, उर्मिल, रोमक आदि) तथा स्वार्थे प्रत्यय (घोटक, बालक, पांडुर, मधुर आदि) रूप में आए हैं। परिनिष्ठत हिन्दी के दोनों (-ना, -त्ता) प्रकार के रूपों की व्युत्पत्ति निम्न प्रकार से मानी जा सकती है--

(क) सं० *इयत्त्यक (सर्वनाम मूल इ+यत्+विशेषण प्रत्यय त्य+क)>इयत्तक पा० *इत्तक>प्रा० इत्तअ>इत्ता; *यत्त्यक>*यत्तक>जेत्तअ, जित्तअ (य, तथा ए इत्तअ के प्रभाव से 'इ')>जित्ता, जेत्ता; *कियत्त्यक>*कियत्तक>पा० कित्तक>प्रा०कित्तअ>केत्तअ, केत्ता, कित्ता; *तत्त्यक>*तत्तक>पा० तत्तक >प्रा० *तत्तअ>प्रा० *तित्तअ, तेत्तअ(सादृश्य)>तेत्ता, तित्ता। 'उत्ता' (ओत्ता भी) हिन्दी-काल में उ, ओ से उपर्युक्त रूपों के सादृश्य पर बना ज्ञात होता है।

(ख) इन रूपों में 'न' प्रत्यय अतिरिक्त आ गया है। यह सं० 'न' प्राकृत में 'ण' होता आधुनिक भाषाओं में 'न' 'ण' हुआ है। सं० इत्तयक>प्रा० एत्तअ+न>इतनो, इतना; *कियत्तक>प्रा० केत्तअ+न>कितनो, कितना; तत्तक>प्रा० तेत्तअ+ न>तितनो, तितना; *यत्तक>प्रा० जेत्तअ+न>जितनो, जितना। 'उतना' 'उ' सर्वनाम से उपर्युक्त रूपों के सादृश्य पर बना है। अंत्य ओ, -आ या तो अन्य रूपों के सादृश्य पर हैं या कः के विकास हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुणवाचक

(१) वीम्स, केलॉग, डॉ० वर्मा, डॉ० तिवारी आदि सभी लोगों ने इनका सम्बन्ध सं० -दृश अंत्य रूपों से माना है, जैसे सं० कीदृश>प्रा० केरिसा> कैसा; सं० यादृश>प्रा० जरिसा>जैसा; सं० एतादृश>प्रा० एदिस, एइस>ऐसा; तादृश>तैसा; *ओतादृश>वैसा । (२) मेरे विचार में इनका विकास कः -युक्त वर्धित रूपों से हुआ है : सं० कीदृश+कः>प्रा० केरिसा>अप० कइसा>कैसा; यादृश+कः>प्रा०, अप०जइसा>जैसा; तादृश+कः>प्रा०, अप० तइसा>तैसा; इदृश या एतादृश+कः>प्रा०, अप० अइसा>ऐसा । यों तादृश, यादृश के सादृश्य पर बने *कादृशकः(>कइसा), आदृशकः (>अइसा) से कैसा, ऐसा के विकास की सम्भावना प्रायः अधिक है । 'वैसा' का प्रयोग अपेक्षाकृत बहुत बाद में मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि यह अन्यों के सादृश्य पर 'व' के आधार पर बना है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय

क्रिया

संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश होते, हिन्दी के विकास में कारकीय रूपों की भाँति ही क्रियारूपों मे भी बहुत अधिक कमी हुई है। निम्नांकित तालिका से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

	गण	पद	वाच्य	प्रयोग	लकार	पुरुष	वचन	लिंग
वैदिकी	१०	२	३	५	११	३	३	×
संस्कृत	१०	२	३	५	१०	३	३	×
पालि	६	१	२	४	८	३	२	×
प्राकृत	१	१	२	२	४	३	२	×
अपभ्रंश	१	१	२	२	४	३	२	×
हिन्दी	१	१	१	३	२	३	२	२

धातु

क्रिया के विभिन्न रूपों में जो तत्त्व समान होता है, उसे धातु कहते हैं। उदाहरण के लिए खाना, खाता, खाया, खाऊँ, खाओ, खाइए, खाइएगा में 'खा' समान रूप से सबमें आया है, अतः इनमें धातु 'खा' है। इसी प्रकार पढ़ना, चलना, सोना आदि में धातु क्रमशः पढ़, चल, सो है।

हिन्दी धातुओं का मूल स्रोत संस्कृत की धातुएँ हैं; जैसे कृ से कर, पठ् से पढ़, या से जा और भू से हो आदि। किन्तु इन तद्भव धातुओं के अतिरिक्त कुछ धातुएँ ऐसी भी हैं जो या तो विभिन्न शब्दों से बना ली गई हैं; जैसे फ़ारसी 'शर्म' से 'शरमा', अँग्रेजी 'फ़िल्म' से 'फ़िल्मा', या संस्कृत 'स्वीकार' से 'स्वीकार' आदि; या अज्ञात स्रोत की (जैसे झाँक, टाँग, झाड़ आदि) हैं। विभिन्न दृष्टियों से हिन्दी धातुओं के मुख्य प्रकार निम्नांकित हैं—

(१) अकर्मक—ऐसी धातु जिसके साथ कोई कर्म न अपेक्षित हो; जैसे दौड़, रो, चल, हँस, नहा आदि।

(२) सकर्मक—ऐसी धातु जिसके साथ कर्म अपेक्षित हो; जैसे खा, पढ़, लिख, मार आदि।

(३) प्रेरणार्थक—सामान्य धातुओं से किसी कार्य के होने या किए जाने का भाव व्यक्त होता है। प्रेरणार्थक से यह व्यक्त होता है कि कोई व्यक्ति किसी को प्रेरित करके काम करवाता है : जैसे 'राम नौकर से काम कराता है' या 'मैं माली से बाग़ सिंचवाता हूँ'। इन वाक्यों में 'करा' तथा 'सिंचवा' प्रेरणार्थक हैं जो क्रमशः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कर' में 'आ' तथा 'सींच' में 'वा' प्रत्यय जोड़कर बने हैं। हिन्दी के इन 'आ' और 'वा' प्रत्ययों का सम्बन्ध संस्कृत से है। संस्कृत में अय् (णिच्) प्रत्यय जोड़कर प्रेरणार्थक की रचना होती है। जैसे बुध् से बोधयति। आकारांत धातुओं में 'अय्' के पूर्व 'प' का आगम हो जाता है। जैसे 'स्ना' से स्नापयति। इस 'अय' से ही हिन्दी के 'आ' प्रत्यय का, तथा 'पय' से 'वा' प्रत्यय का विकास हुआ है।

(४) **नामधातु**—जो धातुएं संज्ञा (हथियाना, फ़िल्माना, शरमाना), सर्वनाम (अपनाना), विशेषण (सठियाना) आदि से बना ली जाती हैं, उन्हें नामधातु कहते हैं। हिन्दी में ऐसी धातुएँ बनाने के लिए आ, इया तथा शून्य प्रत्ययों का प्रयोग होता है—

आ—फ़िल्मा, शर्मा, अलगा।

इया—हथिया, धकिया, बतिया, सठिया।

शून्य—स्वीकार, अपना, बदल।

संस्कृत में नामधातु के लिए आय (कृष्णायते), ईय (पुत्रीयति), तथा य (नदियति) प्रत्ययों का प्रयोग होता है। संस्कृत के 'आय' प्रत्यय से ही हिन्दी 'आ' तथा 'ईय' प्रत्यय से हिन्दी 'इया' का विकास हुआ है। शून्य का विकास प्रत्ययों के लोप के कारण हुआ है।

कृदन्त

'कृदन्त' शब्द कृत+अंत से बना है। संस्कृत में कृत् ऐसे प्रत्ययों को कहते हैं जो धातु में विशेषण तथा संज्ञा की रचना के लिए जोड़े जाते हैं। इस तरह कृदन्त वे शब्द हैं जिनके अन्त में कृत् (कृत+अंत) प्रत्यय आते हैं। हिन्दी में कृदंतों का प्रयोग क्रिया, विशेषण, संज्ञा तथा क्रियाविशेषण के रूप में होता है। हिन्दी क्रिया में कृदंतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसीलिए उनका विवेचन क्रिया के प्रसंग में किया जा रहा है। हिन्दी कृदन्त दो प्रकार के हैं—

(१) **विकारी**—जिनमें लिंग-वचन के अनुसार परिवर्तन होता है।

(२) **अविकारी**—जिनमें लिंग-वचन के अनुसार परिवर्तन नहीं होता।

नीचे दोनों को अलग-अलग लिया जा रहा है—

विकारी कृदन्त

(१) **वर्तमानकालिक कृदन्त या अपूर्ण कृदन्त**—इस कृदन्त की रचना 'धातु+त् + लिंग-वचन का प्रत्यय' से होती है। जैसे—चल+त्+आ= चलता। इसी प्रकार पढ़ती, जाते, सोता, लिखतीं आदि भी वर्तमानकालिक कृदन्त हैं। हिन्दी में वर्तमानकालिक कृदन्त का प्रयोग चार रूपों में होता है: (क) **संज्ञा**—**मरता** क्या न करता? (ख) **विशेषण**—**सोते** साँप को मत छेड़ो। (ग) **क्रियाविशेषण**—राम **दौड़ता** आ रहा है। (घ) **क्रिया**—राम **पढ़ता** है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह हिन्दी में वर्तमानकालिक कृदन्त के लिए त् प्रत्यय का प्रयोग होता है। संस्कृत में वर्तमानकालिक कृदन्त की रचना शतृ और शानच् दो प्रत्ययों के योग से होती है। हिन्दी त् प्रत्यय का सम्बन्ध संस्कृत के शतृ प्रत्यय से है। जैसे सं० चल्+शतृ = चलन्तः (कर्ता, बहु०) > प्रा० चलंतो > चलत् (+लिंग-वचन का प्रत्यय)।

(२) **भूतकालिक कृदंत या पूर्ण कृदंत**—इस कृदन्त की रचना 'धातु+शून्य+लिंग-वचन प्रत्यय' से होती है। जैसे—चल+शून्य+आ=चला। इसी तरह पढ़ा, मरे, गई, लिखीं आदि भी। हिन्दी में भूतकालिक कृदन्त का प्रयोग चार रूपों में होता है: (क) **संज्ञा**—**सोये** को मत जगाओ। (ख) **विशेषण**—**सोये** व्यक्ति को मत जगाओ। (ग) **क्रियाविशेषण**—राम दौड़ा आएगा। (घ) **क्रिया**—राम अभी नहीं **सोया**। संस्कृत में भूतकालिक कृदन्त की रचना क्त तथा क्तवतु प्रत्ययों के योग से होती है। हिन्दी के भूतकालिक कृदन्त के रूपों का विकास संस्कृत के क्त प्रत्यय वाले रूपों से हुआ है। उदाहरणार्थ—सं० चल्+क्त प्रत्यय=चलितः > चलियो > चल्यो > चल्+लिंग-वचन के प्रत्यय (आ, ई, ए, ईं)= चला, चली, चले, चलीं।

(३) **विध्यर्थक कृदंत या क्रियार्थक संज्ञा**—इस कृदन्त की रचना 'धातु+न्+लिंग-वचन के प्रत्यय' से होती है। आज्ञा के रूप में इसमें अंत में केवल 'आ' ही आता है (तुम लिखना), किन्तु अन्य रूपों में आ, ई, ए भी आते हैं। पत्र लिखना है, चिट्ठी लिखनी है, पत्र लिखने हैं। बीम्स ने इन -न् वाले रूपों को संस्कृत के अनीय वाले रूपों से जोड़ा है। जैसे—करणीय > करना। किन्तु अर्थ की दृष्टि से ऐसा सम्भव नहीं लगता। करणीय का अर्थ होगा करने योग्य', जबकि करना का अर्थ यह नहीं है। वस्तुतः इनका विकास संस्कृत के अनमांत रूपों से हुआ है। चलनम् > चलना, पठनम् > पढ़ना। इसका प्रयोग **क्रिया** (तुम **चलना**) तथा **संज्ञा** (**टहलना** अच्छा है) रूप में होता है।

(४) **कर्तृवाचक कृदन्त**—इसकी रचना 'धातु+ने+वाल्+लिंग-वचन प्रत्यय' से होती है। इसका प्रयोग संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के रूप में होता है: (क) **संज्ञा**—**भागने वालों** को पकड़ो। (ख) **विशेषण**—**भागनेवाले** लड़कों को पकड़ो। (ग) **क्रिया**—राम **भागनेवाला** है। इसमें 'ने' तो क्रियार्थक संज्ञा का 'ना' का विकारी (घोड़ा से एक० में घोड़े की तरह) रूप है, तथा 'वाल्' सं० पाल से विकसित है।

अविकारी कृदन्त

(१) **पूर्वकालिक कृदन्त**—इसकी रचना धातु+'कर' या 'के' या 'शून्य' से होती है। (क) राम **खाकर** आया है। (ख) मोहन काम **करके** आया है। (ग) तुम अच्छी तरह **पढ़कर** के आना। (घ) मैं **खा** आया हूँ। पूर्वकालिक कृदंत बनाने के लिए संस्कृत में 'क्त्वा' और 'ल्यप्' प्रत्यय का प्रयोग होता है। कृ धातु में क्त्वा प्रत्यय जुड़ने से रूप बनता है 'कृत्वा'। इस कृत्वा से ही हिंदी के कर तथा के प्रत्ययों का विकास हुआ है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) सं० कृत्वा>प्रा० करित्ता>करिअ>हि० करि>कर।

(ख) सं० कृत्वा>प्रा० करित्ता>करिअ>हि० कइ>कै>के।

'करके' इन्हीं दोनों का योग है। शून्य का विकास प्रत्यय-लोप से हुआ है। पूर्वकालिक कृदन्त कभी तो एक क्रिया से पूर्वकाल में हुई क्रिया को (मैं खाकर आया हूँ) को व्यक्त करता है और कभी क्रिया करने की रीति (वह भागकर आया) को।

(२) **अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त**—इसकी संचरना धातु में 'ते' जोड़कर होती है। इससे अपूर्ण क्रिया का द्योतन होता है : तुम्हें यह पुस्तक लिखते बहुत दिन हो गए। राम को यह काम करते अभी कुछ ही दिन तो हुए हैं। अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त वर्तमानकालिक कृदन्त का ही विकारी रूप हैं; इस तरह विकास या व्युत्पत्ति की दृष्टि से उसी से संबद्ध हैं। अपूर्ण क्रियाद्योतक कृदन्त की आवृत्ति से मध्यकालिक कृदन्त बन जाता है। जैसे मैं आज चलते-चलते तुम्हारे बारे में सोच रहा था।

(३) **पूर्णक्रियाद्योतक कृदन्त**—इसकी रचना धातु में ए जोड़कर होती है। इससे किसी क्रिया के पूर्ण होने का द्योतन होता है : उन्हें मरे बहुत दिन हो गए। मुझे खाना खाए देर हो गई। यह कृदन्त, भूतकालिक कृदन्त का ही विकारी रूप है, अर्थात् भूतकृदन्त के अंतिम आ को ए कर देने से इसकी रचना हो जाती है। विकास की दृष्टि से यह भूतकालिक कृदन्त से ही सम्बद्ध है।

(४) **तात्कालिक कृदन्त**—इसकी रचना धातु में 'ते ही' जोड़कर होती है। इससे तात्कालिकता का बोध होता है : माँ के आते ही बच्चा प्रसन्न हो गया। पानी बरसते ही खेत लहलहा उठे। इसमें 'ते' वर्तमानकालिक कृदन्त का विकारी रूप (चलता-चलते) है तथा 'ही' सं० 'हि' है।

सहायक क्रिया

मोहन गया।

मोहन गया है।

मोहन गया था।

इन वाक्यों में पहले में केवल एक 'गया' क्रियारूप हैं, किंतु दूसरे तथा तीसरे में 'गया' तथा 'है' और 'गया' तथा 'था' दो-दो क्रियारूप हैं। जब क्रिया में एक से अधिक क्रियारूप हों तो प्रायः पहले को 'मुख्य क्रिया' कहते हैं तथा दूसरे को 'सहायक क्रिया' कहते हैं। इन वाक्यों में 'गया' मुख्य क्रिया है तथा 'है' और 'था' सहायक क्रियाएँ हैं।

सहायक क्रिया का प्रयोग संस्कृत में भी हुआ है। 'गच्छति स्म' (जाता था) जैसे प्रयोगों के अतिरिक्त भू, कृ, अस् का कभी-कभी सहायक क्रिया के रूप में प्रयोग होता था। पाणिनि का सूत्र है 'कृञ चाऽनुप्रयुज्यते लिटि' अर्थात् लिट् में (आमन्त में)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृ, भू, अस् का अनुप्रयोग होता है। इसी सूत्र के अनुसार गुप् धातु से जुगोप (उसने रक्षा की) के अर्थ में गोपायाञ्चकार, गोपायाम्बभूव, गोपायामास रूप बनते हैं। कुमारसम्भव में आता है 'लीला कमल पत्राणि गणयामास पार्वती'। इसी परम्परा में हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं में सहायक क्रियाओं का विकास हुआ है।

हिन्दी में क्रिया-रचना में 'हो' सहायक क्रिया के रूपों का प्रायः प्रयोग मिलता है। 'हो' हिंदी की मुख्य सहायक क्रिया है। इसके तीनों कालों के रूप निम्नांकित हैं—

वर्तमान	एक०	बहु०
उत्तम पुरुष	हूँ	हैं
मध्यम पुरुष	है	हो
अन्य पुरुष	है	है

'हो' धातु होने के इन रूपों की व्युत्पत्ति के संबंध में मुख्य मत दो हैं: (१) बीम्स, केलॉग, धीरेन्द्र वर्मा तथा उदयनारायण तिवारी सं० अस् धातु के वर्तमान काल के रूपों से इनका विकास मानते हैं। उदाहरण के लिए वर्मा जी 'हूँ' का विकास देते हैं: सं० अस्मि>प्रा० अम्हि>हि० हूँ। यों बीम्स तथा केलॉग ने यह भी कहा है कि अस् के सामान्य रूपों से इसका विकास न होकर भू के रूपों के सादृश्य पर बने रूपों से हुआ है। उदाहरण के लिए केलॉग 'है' का विकास देते हैं: सं० अस्ति> प्रा० कल्पित रूप अहसि (भवति के सादृश्य पर)>अहइ>अहै>है। (२) मेरे विचार में संस्कृत की भू धातु के वर्तमानकालिक रूपों से ही इन रूपों का विकास हुआ है: सं०, पा० भवामि>प्रा० होमि>अप० *होवि>हौं>हूँ। अपनी मान्यता के समर्थन में मैं तीन बातें कहना चाहूँगा: (क) ये रूप 'हो' धातु के हैं और 'हो' का विकास 'भू' से होगा, न कि अस् से। (ख) बीम्स और केलॉग भी मानते हैं कि अस् के सामान्य रूपों से ये हूँ आदि रूप विकसित नहीं हो सकते। (ग) भू के रूपों से इनका ध्वन्यात्मक विकास हो सकता है। ऐसी स्थिति में मेरे विचार में 'भू' के वर्तमान काल के संस्कृत रूपों से ही इनका विकास हुआ है। इन रूपों की एक यह विशेषता है कि ये वचन और पुरुष के अनुसार बदलते हैं, न कि लिंग के अनुसार।

भूतकाल	एक०	बहु०
तीनों पुरुष	था	थे

स्त्रीलिंग में रूप बनेंगे : थी (एक०), थीं (बहु०)। अर्थात्, ये रूप लिंग और वचन के अनुसार बदलते हैं, पुरुष के अनुसार नहीं। 'था' की व्युत्पत्ति बहुत ही विवादास्पद है। इस सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने नौ मत व्यक्त किए हैं। इतने मतांतर से ही यह बात स्पष्ट है कि इसकी व्युत्पत्ति बहुत स्पष्ट नहीं है। इसके सम्बन्ध में मुख्य मत तीन हैं: (१) बीम्स प्रा० सन्तो>हन्तो>हतो>था रूप में विकास मानते हैं। (२) तेसितोरी *भवन्तकः>होन्तओ>हता>था रूप में। (३) केलॉग, टर्नर, धीरेन्द्र वर्मा आदि 'स्थित' से इसे जोड़ते हैं: स्थित>प्रा० थाइ >था। वस्तुतः 'था' की व्युत्पत्ति संदिग्ध है।

भविष्य	एक०	बहु०
उत्तम पुरुष	होऊँगा	होंगे
मध्यम पुरुष	होगा	होगे
अन्य पुरुष	होगा	होंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये रूप भविष्य के रूप में भी प्रयुक्त होते हैं, किंतु वस्तुतः ये संभावनार्थ के रूप में जो भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों रूप मे आ सकते हैं : (क) कल राम गया होगा (भूत); (ख) इस समय राम सो रहा होगा (वर्तमान); (ग) थोड़ी ही देर बाद राम जाने की तैयारी कर रहा होगा (भविष्य)। इन रूपों में तीन अंश हैं : (१) होऊँ, हूँ, हों, हो—होना अर्थ के द्योतक। (२) ग्—इनके बाद जोड़ा गया है। (३) आ, ए—लिंग-वचन के द्योतक हैं। इनके स्त्रीलिंग में होगी, होंगी आदि रूप बनते हैं। पहले अंश अर्थात् होऊँ, हूँ, हों, हो का विकास भू धातु के वर्तमान काल के रूपों से मानते हैं : भवामि>होऊँ। कहना न होगा कि ये रूप हिंदी में संभावनार्थ के रूप में प्रयुक्त होते हैं। दूसरे और तीसरे अंग, अर्थात् 'गा' का सम्बन्ध गम् धातु के भूतकालिक कृदंत सं० गतः (>प्रा० गदो>गओ>गा) से माना जाता है।

उपर्युक्त तीनों कालों की सहायक क्रियाओं के अतिरिक्त दो अन्य प्रकार की सहायक क्रियाएँ भी प्रयुक्त होती हैं। इनमें **संभाव्य वर्तमान** (होऊँ, हो, हों) का सम्बन्ध तो भू धातु के वर्तमान काल के रूपों से है (जैसे भवामि>होऊँ, भवामः >हों) तथा **संभाव्यभूत** (होता, होते) वर्तमानकाल के कृदंत का रूप है।

काल-रचना

हिन्दी में काल अथवा क्रिया की रचना दो प्रकार की है—

(१) **मूल काल**—जिसमें एक क्रिया रूप हों। जैसे—तुम **जाओ**, वह **गया**। 'जाओ' का विकास सं० के तिङन्ती रूप से हुआ है तथा 'गया' कृदंती रूप (भूत-कालिक कृदंत) है। इस प्रकार मूल काल दो प्रकार का होता है : तिङन्ती, कृदंती। इनमें कृदंतों पर ऊपर विचार हो चुका है। तिङन्त को यहाँ लेना है।

(२) **यौगिक काल**—जिसमें एक से अधिक क्रियारूप हों। जैसे—लड़का **गया है** या गाय घास **चर रही है**। ऐसे क्रियारूपों की रचना **कृदंत+सहायक क्रिया** (गया है, चलता था, जाना होगा), **धातु+कृदंत+सहायक क्रिया** (जा रहा है, पढ़ रहा था) या इन्हीं के मिले-जुले रूपों से होती है। (विस्तार के लिए देखिए 'संरचना' खंड)। यह हिंदी का अपना ढंग है। संस्कृत में प्रायः यौगिक काल नहीं मिलते। इसीलिए इन्हें सीधे संस्कृत से नहीं जोड़ा जा सकता। हाँ, इनके कृदंत तथा सहायक क्रियारूप संस्कृत से विकसित हैं, जैसा कि पीछे हम देख चुके हैं।

मूल काल के तिङन्ती रूप हिंदी में दो प्रकार के हैं—

(अ) **संभावनार्थ (वर्तमान या भविष्य)**

	एक०	बहु०
उ० पु०	चलूँ	चलें
म० पु०	चले	चलो
अ० पु०	चले	चलें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रियर्सन इन रूपों का विकास संस्कृत के वर्तमान के रूपों से मानते हैं; जैसे चलन्ति>चलइँ>चलें (वे); या चलति>चलइ>चले (वह)। वर्मा आदि ने इसमें कुछ आपत्तियाँ उठाई हैं। उनका कहना है कि उत्तम पुरुष एक० (सं० चलामि >चलूँ) तथा बहु० (चलामः>चलें) का विकास इससे संभव नहीं है। बीम्स ने कहा है एक० से बहु० (चलामि>चलें) तथा बहु० से एक० (चलामः>चलूँ) का विकास हुआ है। मेरे विचार में 'चलामि' से 'चलूँ' का विकास तो संभव है, किन्तु 'चलामः' से 'चलें' का विकास संभावित नहीं है। शेष के सम्बन्ध में ग्रियर्सन का मत ठीक है। बीम्स द्वारा दिए गए सुझाव की संभावना नहीं है।

(आ) आज्ञा

(अ) (तू) चल, कर
(आ) (तुम) चलो, करो
(इ) (आप) चलिए, कीजिए

(१) ग्रियर्सन ने अ, आ का विकास सं० वर्तमान के रूपों से माना है: (क) चलसि—चल; (ख) चलथ—चलो। (२) बीम्स इनका विकास सं० के आज्ञा के रूपों से मानते हैं: (क) चल—चल; (ख) चलत—चलो। बीम्स का मत ठीक ज्ञात होता है।

इ के -इए, -जिए का सम्बन्ध सं० के आशीर्लिंग में प्रयुक्त -या- (भूयात्) से है। यह 'या' प्राकृत में इय्य, इए, एज्ज रूप में मिलता है। इय्य, इए से हिंदी 'इए' (चलिए, पढ़िए, लिखिए) का सम्बन्ध है तथा एज्ज से 'जिए' (कीजिए, दीजिए) का।

आज्ञा के 'चलना' और 'चलिएगा' रूप क्रमशः विध्यर्थक कृदंत (दे० ऊपर) और चलिए+गा (सं० गतः) हैं।

वाच्य

कर्तृवाच्य के रूपों का विकास ऊपर दिया गया है। हिंदी कर्म और भाववाच्य 'जा' धातु के रूपों से बनाती है: रोटी खाई जाती है, मुझसे चला नहीं जाता। इनका विकास संस्कृत से नहीं हुआ है।

संयुक्त क्रिया

हिन्दी आदि सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में संयुक्त क्रियाओं के सहारे अनेक बहुत संश्लिष्ट एवं सूक्ष्म भाव व्यक्त किए जाते हैं। इस प्रसंग में डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है: "हिन्दी संयुक्त क्रियाओं की रचना आधुनिक है, अतः इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक विवेचन असम्भव है।" (हिन्दी भाषा का इतिहास, १९४९, पृ० ३०६)। डॉ० चटर्जी ने भी इस प्रसंग में द्रविड़ परिवार के प्रभाव का संकेत करते हुए संस्कृत, प्राकृत को छोड़ सीधे आधुनिक काल पर विचार किया है, जिसका आशय यह है कि वे भी इसे कदाचित् प्राचीन नहीं मानते। प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक डॉ० चटर्जी एवं डॉ० वर्मा के विचारों से सहमत नहीं है। मेरे विचार में आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में प्रयुक्त संयुक्त क्रिया अपने बीज-रूप में संस्कृत में मिलती है और समय के साथ-साथ पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में इसका विकास हुआ है। इस प्रकार हिन्दी भाषा एवं व्याकरण के अन्य अवयवों की भाँति इसका भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपना इतिहास है। हाँ, यह अवश्य है कि संस्कृत में इसका प्रयोग सीमित था, किन्तु आगे बढ़ने पर ज्यों-ज्यों लकारों का लोप होता गया तथा मानव की चिंतन-प्रणाली संश्लिष्ट होती गई, आवश्यकता के अनुसार इसका विकास होता गया। यदि थोड़ी गहराई से देखा जाय तो जिस प्रकार एकाधिक संज्ञाओं या विशेषण-संज्ञा के योग से समास की रचना होती है, उसी प्रकार संयुक्त क्रिया एक प्रकार से **क्रियासमास** है, जिसमें एकाधिक क्रियाओं को मिलाकर विशेष भाव की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रसंग में यह भी स्पष्ट्य है कि **संयुक्त काल** एवं **संयुक्त क्रिया** में रचना के स्तर पर कोई मौलिक भेद नहीं है। दोनों ही में एक क्रिया या प्रक्रिया को व्यक्त करने के लिए एकाधिक धातुओं की सहायता ली जाती है। हाँ, क्रियासमास के सहारे संयुक्त काल में काल की अभिव्यक्ति पर बल होता है (करता है, किया है, किया था) तो संयुक्त क्रिया में भाव पर (कर चुका, चल पड़ा, कर बैठा, चिल्ला उठा, खा गया, कर लिया, कर दिया)।

संस्कृत में संयुक्त क्रिया का प्रयोग अपने प्रारम्भिक रूप में मिलता है। गुप् (गोपायांचकार) आदि धातुओं के साथ सहायक रूप में अस्, कृ, भू धातुओं का प्रयोग पाणिनि के पहले से मिलता है। दो धातुओं का साथ-साथ एक प्रक्रिया या क्रिया के लिए इस प्रकार का प्रयोग वस्तुतः क्रियासमास या संयुक्त क्रिया ही है। आज यद्यपि उसकी ठीक अर्थ-परम्परा प्रायः लुप्त हो चुकी है, किन्तु मेरे विचार में उस समय इस प्रकार के संयुक्त प्रयोग पूर्णतः वैकल्पिक न होकर अर्थ-विशेष पर बल देने के लिए साभिप्राय होते थे।

धातु के साथ धातु के योग भी वैदिक तथा लौकिक दोनों में मिलते हैं। कुछ उदाहरण हैं: दातुमर्हसि (दा+अर्ह्; देना चाहिए), कर्तुमर्हामि (कृ+अर्ह्; कर सकता हूँ), गोदीहं आस्ते (दुह+आस्; गाय दुहता जाता है), स्वरन्नेति (स्वर् या स्वृ+इ=जाना; सस्वर कहता जाता है; आज भी निरंतरता के लिए 'जा' धातु प्रयुक्त होती है, संस्कृत 'इ' में भी वही बात द्रष्टव्य है), प्राप्तुमिच्छति (=पाना चाहता है); न ददौ गन्तुम् (न जाने दिया; सं० धातु 'द' तथा हिन्दी 'दे' का संयुक्त क्रिया में एक अर्थ में प्रयोग द्रष्टव्य है; अभिज्ञानशाकुन्तल में राजा कहते हैं: वाष्पस्तु न ददात्येनां द्रष्टुं चित्रगतामपि, अर्थात् ये आँसू चित्रगत शकुन्तला को भी नहीं देखने देते), कर्तुम् शक्नोति (कर सकता है; यहाँ भी हिन्दी से समानता है।) इस प्रकार संस्कृत में न केवल संयुक्त क्रिया की परम्परा थी, अपितु अनेक प्रयोग तो बिल्कुल आज हिन्दी-जैसे थे। पालि (अट्ठि पतित्व गतं=हड्डी गिर गई; गोचरं गह्लितुं न सक्कोति=गोचर नहीं कर सकता), प्राकृत-अपभ्रंश (ण देइ गन्तुं=जाने नहीं देता, लग्गा चीवराइं विसारिउं=कपड़ा फैलाने लगा) में भी यह परंपरा है तथा जैसा कि उदाहरणों से स्पष्ट है, इनके अनेक प्रयोग हिन्दी में ज्यों-के-त्यों आए हैं।

इस प्रसंग में द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव का प्रश्न भी उठाया गया है। डॉ० चटर्जी इसकी सम्भावना मानते हैं। डॉ० वर्मा इसे सम्भव नहीं मानते। यहाँ इस विषय को बहुत विस्तार से तो नहीं लिया जा सकता, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय आर्यभाषाओं एवं द्रविड़ भाषाओं में इस दृष्टि से अनेक समानताएँ (तमिल अट्टुम=हि० देना, कोळ्ळु=हि० लेना, पो=हि० जाना; कन्नड़ आपेनु=हि०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकना, कोडु=हि० देना; तेलुगु चालुट, नेरु=हि० सकना; मलयालम अट्टे=हि० देना, एड़ियुक =डालना) हैं। किन्तु यह भी उल्लेख्य है कि किसी में भी दूसरे की तुलना में बहुत पुराने प्रयोग नहीं हैं। ऐसी में स्थिति में ऐसे प्रयोगों का विकास दोनों ही परिवारों में स्वतन्त्रतः शुरू हुआ ज्ञात होता है। हाँ, संस्कृत तथा प्राकृत काल में दोनों ही ने दोनों को प्रभावित किया हो तो अचरज नहीं। यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त कुर्दिश (द्रष्टव्य है: मतिरिआली पस्लोज्नमू ग्लागोलू कुर्द्स्कवो यज़िका—अवालियानि समरकंद,'६२), फ़ारसी, पश्तो आदि अनेक अन्य भाषाओं में भी संयुक्त क्रिया का प्रयोग मिलता है। मुसलमानों के आगमन के साथ फ़ारसी भारत में आई और धीरे-धीरे यह पढ़ी-पढ़ाई जाने लगी। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं की अनेक संयुक्त क्रियाएँ विशेषतः संज्ञा+क्रिया एवं विशेषण+क्रिया फ़ारसी के प्रभावस्वरूप आईं: फ़ा० तंग आमदन=हि० तंग आना; आज़ाद करदन=आज़ाद करना; जमा करदन=जमा करना। वस्तुतः अनेक ऐसे मुहावरे भी जो नामिक संयुक्त क्रिया-युक्त हैं, फ़ारसी की देन हैं: आरज़ू करदन=इच्छा करना, दस्त दादन=हाथ देना, जान दादन=जान देना, पुश्त दादन=पीठ देना।

इस प्रकार हिन्दी संयुक्त क्रिया के पीछे मेरे विचार में संस्कृत से पालि, प्राकृत, अपभ्रंश होते आती संयुक्त क्रिया-परम्परा, द्रविड़ प्रभाव तथा फ़ारसी प्रभाव, इन तीनों का ही हाथ है; (विवरण के लिए दे० 'संरचना' खंड)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १०

अव्यय

'अव्यय' का अर्थ है 'जो व्यय न हो'—अर्थात् जो लिंग-वचन आदि के अनुसार 'परिवर्तित' न हो। संस्कृत में कहा गया है : **सदृशं त्रिषु लिंगेषु सर्वासु च विभक्तिषु, वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तद्व्ययम्**। (अर्थात् जो लिंग, विभक्ति, वचन के अनुसार परिवर्तित न हो)। हिन्दी में अधिकांश अव्यय तो परिवर्तित नहीं होते, किन्तु कुछ क्रियाविशेषण अव्यय ऐसे भी हैं जो लिंग, वचन के अनुसार परिवर्तित होते हैं : राम **दौड़ता** आया, सीता **दौड़ती** आई, लड़के **दौड़ते** आए। हाँ, ऐसे शब्द मूलतः क्रियाविशेषण अव्यय न होकर प्रयोगतः क्रियाविशेषण अव्यय होते हैं। अव्यय चार प्रकार के माने गए हैं : क्रियाविशेषण, समुच्चयबोधक, सम्बन्ध-बोधक, विस्मयादिबोधक।

क्रियाविशेषण

हिन्दी में क्रियाविशेषण दो प्रकार के हैं : **सार्वनामिक**, अन्य।

सार्वनामिक क्रियाविशेषण—जो सर्वनामों के योग से बने हों। वे निम्नांकित हैं—

सर्वनाम	सार्वनामिक तत्त्व	काल -ब	स्थान -हाँ	दिशा -धर	रीति -यों
निश्चयवाचक					
१. निकटवर्ती	यह य् इ, अ	अब	यहाँ	इधर	यों
२. दूरवर्ती	वह व, उ	×	वहाँ	उधर	×
प्रश्नवाचक	कौन, क्या क्	कब	कहाँ	किधर	क्यों
संबंधवाचक	जो ज्	जब	जहाँ	जिधर	ज्यों
नित्यसंबंधी	तिस, तिन त्	तब	तहाँ	तिधर	त्यों

इनमें तिधर' का प्रयोग अब नहीं होता। 'क्यों' रीतिबोधक न रह कर 'किसलिए' या 'काहे' के अर्थ का व्यंजक हो गया है।

स्पष्ट ही उपर्युक्त क्रियाविशेषणों की रचना सार्वनामिक तत्त्वों में 'ब', 'हाँ', 'धर', 'यों' जोड़कर हुई है : अर्थात् अ+ब=अब, य+हाँ=यहाँ, इ+धर=इधर, इत्यादि। सार्वनामिक तत्त्वों की व्युत्पत्ति सर्वनाम के प्रसंग में दी जा चुकी है। यहाँ केवल शेषांश ब, हाँ, धर, यों पर विचार किया जा रहा है।

कालवाचक

कालवाचक सार्वनामिक क्रियाविशेषण के कालिक अंश 'ब' की व्युत्पत्ति के बारे में मुख्य मत दो हैं : (१) बीम्स, केलॉग इसे सं० वेला (=समय) से विकसित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानते हैं। (२) चटर्जी वैदिक अव्यय 'एव' (=इस प्रकार) से विकसित मानते हैं। उनका कहना है कि बाद में यह अव्यय ही—अर्थक प्रा० बलात्मक अव्यय *एब्ब (कल्पित रूप) हो गया, और फिर इसमें समय का भाव विकसित हो गया। इसी के सप्तमी रूप से 'बे' विकसित हुआ : एब्बहिं (कल्पित) > बे। अपभ्रंश-काल में इसी में सर्वनाम जुड़ने से वे रूप (जब्बे, तब्बे) बने जिनसे जब, तब आदि का विकास हुआ। इन मतों में पहला ठीक लगता है। उसके पक्ष में चार बातें कही जा सकती हैं : (क) व > ब के कारण 'वेला' से 'बे' और ब का विकास हो सकता है। (ख) अर्थ की दृष्टि से दोनों (वेला = ब) में साम्य है। (ग) प्रयोग की दृष्टि से भी इसकी संभावना है। आजकल के प्रयोग 'इस समय', 'उस समय', 'जिस समय', 'किस समय' या भोजपुरी 'ये बेला' (=इस समय), 'जे बेला' (=जिस समय), 'के बेला' (=किस समय) आदि भी इसी प्रकार के हैं। (घ) आज के रूपों के पूर्व-रूप अपभ्रंश में जब्बे, तब्बे हैं, उनका 'बे' अंश भी वेला से विकसित हो सकता है। इस प्रकार अर्थ, प्रयोग तथा ध्वन्यात्मक विकास तीनों दृष्टियों से यह ठीक है।

स्थानवाचक

इसके स्थानवाचक अंश 'हाँ' की व्युत्पत्ति के विषय में मुख्य मत तीन हैं : (१) बीम्स तथा केलॉग सं० स्थाने > हाँ (तत्स्थाने > तहाँ, यत्थाने > जहाँ) मानते हैं। (२) चटर्जी त्र > हाँ (कुत्र, यत्र, तत्र) मानते हैं। (३) प्राकृत तथा अपभ्रंश में मुझे इनके पुराने रूप कहिं, जहिं, तहिं मिले हैं जिनके विकास पुरानी हिंदी में कहँ, जहँ, तहँ मिलते हैं। प्रा०, अप० रूप में 'इ' है जो न तो स्थाने से निकल सकती है और न त्र से। मुझे लगता है कि इनका विकास सं० सर्वनामों के सप्तमी एकवचन के रूप कस्मिन्, यस्मिन्, तस्मिन् आदि से हुआ है। कहाँ, जहाँ, तहाँ आदि का 'आ' खड़ीबोली के आकारांत रूपों का प्रभाव है। मेरे द्वारा प्रस्तुत व्युत्पत्ति के पक्ष में कई बातें कहीं जा सकती हैं : (क) इन रूपों से ध्वन्यात्मक विकास बहुत स्पष्ट है : सं० कस्मिन > प्रा०, अप० कहिं > प्राचीन हिन्दी कहँ > आधुनिक हिन्दी कहाँ। इसी प्रकार यस्मिन् > जहिं > जहँ > जहाँ, तस्मिन् > तहिं > तहँ > तहाँ आदि। (ख) इस विकास-परम्परा में 'स्थाने' तथा 'त्र' को स्थान देना कठिन है। (ग) प्रा०, अप० के रूपों में प्राप्त 'इ' बहुत निर्णायक तत्त्व है जिसकी सम्भावना केवल -स्मिन् वाले रूपों से ही है। (घ) अर्थ की दृष्टि से स्थाने तथा त्र निश्चय ही स्मिन् की तुलना में निकट के हैं, किन्तु ये शब्द (तस्मिन् आदि) भी बहुत दूर नहीं हैं। इस प्रकार ध्वन्यात्मक विकास प्रा०, अप० रूपों को समाहित करने, प्राचीन तथा आधुनिक प्रयोग तथा अर्थ सभी दृष्टियों से -स्मिन् > हिं > हँ > हाँ रूप में इसके विकास की सम्भावना अधिक है।

दिशावाचक

धर की कई व्युत्पत्तियाँ दी गई हैं : (१) बीम्स इसे सं० मुख + र (लघुत्व-बोधक प्रत्यय), अर्थात् मुखर > म्हर (भोज० एम्हर, ओम्हर) > न्हर > न्धर > धर रूप में विकसित मानते हैं। वस्तुतः म > न का विकास प्रायः होता नहीं, अतः इसे नहीं माना जा सकता। (२) हार्नले सं० इदृश > प्रा० एद्रिह > इदह + र (प्राचीन सप्तमी प्रत्यय) > इधर अर्थात् दृश > दह + र > धर रूप में विकास देते हैं। (३) मुझे 'धर' के विकास की सम्भावना त्र > (कुत्र, यत्र, सर्वत्र आदि में स्थानबोधक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यय) तर>दर>धर रूप में लगती है। यों इसका अर्थ कुछ परिवर्तित हो गया है, अर्थात् स्थान से दिशा। वस्तुतः सभी दृष्टियों से इनमें सनिश्चय किसी भी मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

रीतिवाचक

(१) यों का सम्बन्ध बीम्स सं० के 'वतुप्' प्रत्यय (इदम्+वतुप्=इयत्) प्रत्यय से मानते हैं, किन्तु यह प्रत्यय तो परिमाण का अर्थ देता है, न कि रीति का। (२) चटर्जी वैदिक प्रत्यय 'एव' (=इस प्रकार) के सादृश्य पर बने कल्पित संस्कृत रूप येव, तेव आदि से यों, त्यों का विकास मानते हैं। वस्तुतः इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है जैसा कि वर्माजी ने भी माना है।

अन्य क्रियाविशेषण

(१) सं० अद्य >अज्ज>**आज**; (२) सं० कल्य>कल्ल>**कल**; सं० परश्वः> **परसों**; सं० बहिर>**बाहर**; सं० अभ्यंतर>भीत्तर>**भीतर**; सं० उपरि>उप्पर> **ऊपर**; सं० नीचैः>**नीचे**; सं० आम>**हाँ**; सं० नास्ति>णत्थि>**नहीं**, आदि।

समुच्चयबोधक

सं० अपर>अवर>**और**; **कि** (फ़ा०), **तथा** (सं०), **अथवा** (सं०) व (फ़ा०) आदि।

सम्बन्धबोधक

परसर्गों पर संज्ञा अध्याय में विचार हो चुका है।

विस्मयादिबोधक

हा (सं० हा), **हाय** (सं० हा), **वाह** (फ़ा०), **ओहो** (सं० अहो), ऐं (सं० अइ), हैं (सं० अइ), आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय ११

शब्द-भंडार

किसी भाषा में जिन शब्दों का प्रयोग होता है, उनके समूह को उस भाषा का **शब्द-भंडार** या **शब्द-समूह** कहते हैं। हिन्दी भाषा के शब्द-भंडार में चार प्रकार के शब्द हैं—

(१) तत्सम शब्द

'तत्सम' में 'तत्' का अर्थ है 'वह', अर्थात् 'संस्कृत' और 'सम' का अर्थ है 'समान'। अर्थात् 'तत्सम' उन शब्दों को कहते हैं जो संस्कृत के समान हों अथवा संस्कृत-जैसे हों। उदाहरण के लिए, हिन्दी में कृष्ण, गृह, कर्म, हस्त, धर्म आदि शब्द तत्सम हैं। वस्तुतः ये वे शब्द हैं जो संस्कृत भाषा से बिना किसी ध्वनि-परिवर्तन के आ गए हैं। हिन्दी में स्रोत की दृष्टि से 'तत्सम' शब्द चार प्रकार के हैं: (क) प्राकृतों (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश) से होते आने वाले शब्द; जैसे अचल, अघ, अचला, काल, कुसुम, जन्तु, दण्ड, दम, आदि। (ख) संस्कृत से सीधे हिन्दी में आदि, भक्ति, रीति तथा आधुनिक कालों में लिए गए शब्द; जैसे कर्म, विद्या, ज्ञान, क्षेत्र, कृष्ण, पुस्तक, मार्ग, मत्स्य, मद्य, मेघ, पुष्प, मृग, कुशल, आदि। ऐसे शब्दों की संख्या प्रथम वर्ग से भी बड़ी है। (ग) संस्कृत के व्याकरणिक नियमों के आधार पर हिंदी काल में निर्मित तत्सम शब्द। इस प्रकार के अधिकांश शब्द आधुनिक काल में शब्दों की कमी की पूर्ति के लिए बनाए गए हैं, और बनाए जा रहे हैं। जैसे जलवायु ('आबहवा'), वायुयान ('हवाई जहाज' या 'ऐरोप्लेन'), सम्पादकीय (editorial), प्रवक्ता (lecturer), रेखाचित्र (sketch), प्रभाग (section), नगरपालिका (Municipality), समाचार-पत्र (Newspaper), पत्राचार (correspondence), आदि। ऐसे शब्द इधर पारिभाषिक शब्दों के लिए बहुत बड़ी संख्या में बनाए गए हैं। (घ) अन्य भाषाओं से आए तत्सम शब्द। इस वर्ग के शब्दों की संख्या अत्यल्प है। कुछ थोड़े बंगाली तथा मराठी के माध्यम से आए हैं। इनमें कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो इन भाषाओं में संस्कृत के आधार पर बने हैं। कुछ उदाहरण हैं: **बंगाली**: वक्तृता, उपन्यास, गल्प, कविराज, सन्देश, अभिभावक, निर्भर, तत्वावधान, अभ्यर्थना, आपत्ति, संभ्रान्त, स्वप्निल, उर्मिल, धन्यवाद; **मराठी**: वाङ्मय, प्रगति।

(२) तद्भव शब्द

'तद्भव' में भी 'तत्' का अर्थ है 'वह', अर्थात् संस्कृत और 'भव' का अर्थ है 'उत्पन्न'। अर्थात्, तद्भव वे शब्द हैं जो संस्कृत शब्दों से उत्पन्न हुए हैं। दूसरे शब्दों में ये शब्द संस्कृत या तत्सम शब्दों के, ध्वनि की दृष्टि से, विकसित, परिवर्तित अथवा विकृत रूप हैं। उदाहरण के लिए, कान्ह (कृष्ण), घर (गृह), काम (कर्म), हाथ (हस्त), घड़ा (घट), घोड़ा (घोटक), आदि। ऐसे ही हाथी, आठ, साँप, बहरा, ईख, सेम, ऊँट, सात, आज, जीभ, बहू, दूध, आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) विदेशी, आगत अथवा गृहीत शब्द

'विदेशी शब्द' का मूल अर्थ है 'अन्य देश की भाषा से आए हुए शब्द'। यों किसी भी अन्य भाषा से आए हुए शब्द उस भाषा के लिए प्रायः विदेशी ही होते हैं। किंतु 'विदेशी' नाम में 'दूसरे देश' का अर्थ है, इसलिए 'विदेशी शब्द' को **'आगत शब्द'** या **'गृहीत शब्द'** (loan word), अर्थात् वे शब्द जो किसी अन्य भाषा से ग्रहण किए गए हों, कहना कदाचित् अधिक उपयुक्त है। ये शब्द दो प्रकार के हैं: (क) दूसरे देश की भाषाओं से आए शब्द; जैसे फ़ारसी, अँग्रेजी आदि से। (ख) अपने देश की भाषाओं से आए शब्द; जैसे बंगाली, पंजाबी, द्रविड़ आदि से। हिंदी में किताब (अरबी), कैंची (तुर्की), नमाज़ (फ़ारसी), कोट (अँग्रेजी), अनन्नास (पुर्तगाली), रसगुल्ला (बंगाली), दोसा (द्रविड़) आदि ऐसे ही शब्द हैं। हिंदी में समय-समय पर पश्तो, तुर्की, अरबी, फ़ारसी, पुर्तगाली, अँग्रेज़ी, फ्रांसीसी, डच तथा कई आधुनिक भारतीय भाषाओं से शब्द आते रहे हैं। यहाँ इनकी संक्षिप्त सूची क्रमशः दी जा रही है—

(क) **पश्तो**—ये शब्द पश्तो-भाषी अफ़गानों के संपर्क से आए हैं। हिंदी में आए इन पश्तो शब्दों की ओर प्रायः लोगों का ध्यान कम गया है। डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने 'पठान' और 'रोहिला' दो शब्द दिए हैं। मैंने इस दिशा में थोड़ा काम किया है और मेरा अनुमान है कि हिंदी में पश्तो शब्दों की संख्या १०० से ऊपर है। कुछ उदाहरण हैं: पठान, रुहेला, अटेरन, मटरगश्ती, गुण्डा, तड़ाक, खर्राटा, तहस-नहस, टसमस, खचड़ा, अखरोट, चखचख, पटाखा, डंगर (डाँगर भी), डेरा, गटागट, गुलगपाड़ा, कलूटा, गड़बड़, गँडेरी, लुच्चा, हड़बड़ी, अटकल, बाड़ तथा भड़ास आदि।

(ख) **तुर्की**—तुर्की से संपर्क तथा मुग़ल साम्राज्य की स्थापना से तुर्कों के यहाँ बस जाने से तुर्की शब्द हिंदी में आए। डॉ०धीरेन्द्र वर्मा ने तुर्की शब्दों की अपनी सूची में लगभग ३० शब्द दिए हैं। डॉ० चटर्जी के अनुसार 'हिंदुस्तानी' में १०० से कम तुर्की शब्द हैं। फैलन के कोश में इनकी संख्या लगभग ७० तथा प्लाट्स में लगभग ८० हैं। मेरे विचार में हिंदी भाषा में तुर्की शब्दों की संख्या १२५ से कम नहीं है। कुछ प्रमुख शब्द उर्दू, बहादुर, उज़बक, तुर्क, कलग़ी, चाकू, कैंची, क़ाबू, कुली, ग़लीचा, चकमक, चिक़, तमग़ा, तमंचा, तोप, तोपची, दारोग़ा, बावर्ची, बेगम, चम्मच, मुचलका, लाश, सौग़ात, बीबी, चेचक, सुराग, बारूद, नाग़ा, कुर्ता, कूच, कुमक, कुर्क, नानखताई, खच्चर, सराय, ग़नीमत, चोग़ा आदि हैं।

(ग) **अरबी-फ़ारसी**—अरबी शब्द हिन्दी में सीधे अरबी से न आकर प्रायः फ़ारसी भाषा के माध्यम से आए हैं। इसीलिए इन दोनों को साथ-साथ लेना उचित है। फ़ारसी मुग़ल ज़माने में दरबारी भाषा थी, इसी कारण उसके प्रत्यक्ष और दीर्घ-कालीन संपर्क ने हिन्दी को काफ़ी शब्द दिए। मेरी अपनी गणना के अनुसार हिन्दी में अरबी-फ़ारसी शब्द लगभग छः हजार हैं। कुछ उदाहरण हैं: **धर्म-सम्बन्धी**—रोज़ा, मज़हब, दीन, खुदा, हज, पैगम्बर आदि। **शासन-सम्बन्धी**—सरकार,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तहसीलदार, चपरासी, वकील, माल, दीवान, मुंशी, खज़ांची, हाकिम, इजलास, सिपाही आदि। **सेना-सम्बन्धी**—फ़ौज, हौलदार, हमला, संगीन आदि। **पोशाक-सम्बन्धी**—पाजामा, जुराब, दस्ताना, साफ़ा, शलवार, सदरी आदि। **स्थान-सम्बन्धी**—मुहल्ला, देहात, शहर, तहसील, ज़िला, क़स्बा आदि। **पत्र-व्यवहार-सम्बन्धी**—लिफ़ाफ़ा, पता आदि। **अन्न-फल-मेवा-सब्जी-सम्बन्धी**—बादाम, सेब, मेवा, खूबानी, अनार, अंगूर, नाशपाती, मुनक्क़ा, किशमिश, शहतूत, पिस्ता, शरीफ़ा, सब्ज़ी, पुदीना, शलजम, चुकन्दर आदि। **मिठाई-नमकीन**—बरफ़ी, हलवा, जलेबी, शकरपारा, नमकपारा, कुल्फ़ी, बालुशाही, समोसा आदि। **श्रृंगार-सम्बन्धी**—इत्र, सुर्मा, साबुन, हजामत, आइना, शीशा आदि। **व्यवसायियों के नाम**—बजाज़, दर्ज़ी, सर्राफ़, सईस, बेलदार, दलाल, हलवाई, अत्तार, जिल्दसाज़ आदि। **मकान-सम्बन्धी**—मकान, बुनियाद, दीवार, दरवाज़ा, बरामदा, मेहराब आदि। **बीमारी-सम्बन्धी**—हकीम, नब्ज़, बदहज़्मी, हैज़ा, लकवा, जुकाम, नज़ला, जुलाब, दवा, मरीज़ आदि।

(घ) **पुर्तगाली**—हिन्दी में पुर्तगाली शब्दों की संख्या १०० से कम है। कुछ उदाहरण हैं : अनन्नास, अलमारी, आलपिन, आया, इस्त्री, इस्पात, कप्तान, कमरा, कर्नल, काज, काफ़ी, काजू, गमला, गोभी, गोदाम, चाबी, चाय, तौलिया, पपीता, नीलाम, पादरी, फ़ीता, बाल्टी, बोतल, मिस्त्री, संतरा आदि।

(ङ) **अँग्रेजी**—अँग्रेज़ी के बहुप्रचलित शब्द हिन्दी में लगभग तीन हज़ार हैं। यदि तकनीकी शब्दों को इसमें मिला लें तो यह संख्या दूनी से भी बड़ी हो जाएगी। कुछ उदाहरण हैं : **धातुओं के नाम**—अल्म्युनियम, रोल्डगोल्ड, टिन, निकल, प्लैटिनम इत्यादि। **यंत्रों के नाम**—इंजन, मोटर, मशीन, मीटर आदि। **सवारियों के नाम**—बस, लारी, टैक्सी, स्कूटर, साइकिल, ट्रेन, कार, ट्रक आदि। **चिकित्सा-सम्बन्धी शब्द**—इंजेक्शन, आपरेशन, अस्पताल, डाक्टर, कम्पाउण्डर, थर्मामीटर, ड्रेसिंग आदि। **शिक्षा-सम्बन्धी शब्द**—नर्सरी स्कूल, कालिज, यूनिवर्सिटी, इन्स्टीच्यूट, मास्टर, लेक्चर, रिसर्च स्कालर, रीडर, प्रोफ़ेसर, प्रिंसिपल, चांसलर, फ़ीस आदि। **पोशाक-सम्बन्धी**—पैंट, कोट, बुशशर्ट, सूट, टाई, ओवरकोट, टीशर्ट, लट्ठा, पापलिन, नाइलन, टेरिलीन, टैरिकॉट टेरिसिल्क, कालर, पाकिट, ब्लाउज़ आदि। **शासन तथा न्याय**—कोर्ट, हाईकोर्ट, सुप्रीम-कोर्ट, इंसपेक्टर, डिप्टी कलक्टर, मिनिस्टर, अफ़सर, वारंट, समन, रपट, अपील, डिग्री आदि। **प्रेस-सम्बन्धी**—प्रेस, टाइप, कंपोजिटर, प्रूफ़रीडर, डिमाई आदि। **खेल-सम्बन्धी**—टीम, हाकी, क्रिकेट, फुटबाल, कैरमबोर्ड, ब्रिज, वॉलीबाल, बास्केटबाल, मैच, बैड-मिंटन, टैनिस, टेबलटेनिस आदि। **महीनों के नाम**—जनवरी, फ़रवरी आदि। **सेना तथा युद्ध-सम्बन्धी**—प्लाटून, कम्पनी, कर्नल, मेजर, लेफ्टीनेंट, मशीनगन, टैंक, बम आदि। **पोस्ट-आफ़िस-सम्बन्धी**—पोस्टकार्ड, मनीआर्डर, रजिस्ट्री, बुकपोस्ट आदि। **खानपान-सम्बन्धी**—बिस्कुट, पेस्ट्री, टोस्ट, आइसक्रीम, लेमन, सोडा, चाकलेट, डबल-रोटी, बियर, ब्रांडी, सूप आदि। **कला-सम्बन्धी**—आर्ट, ब्रश, वाटर कलर, आयल पेंट, स्केच, सीनरी, फोटो, फ़िल्म आदि। **श्रृंगार-सम्बन्धी**—क्रीम, वैसलीन, स्नो, पाउडर, नेलपालिश, लिपस्टिक आदि। **भवन-विषयक**—गैलरी, हाल, गैराज, क्वार्टर, फ्लैट आदि। **विशेषण**—सीनियर, जूनियर, फाइन, सुपर-फाइन, प्योर, फैशनेबुल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि। **संख्याबोधक**--फर्स्ट, सेकेंड, थर्ड, सेंचुरी (क्रिकेट), दर्जन (दर्जन, गुरुस, क्रेट) आदि। **क्रिया**--फ़िल्माना, पास करना, फ़ेल करना, किक मारना, हिट मारना, शेव करना, कटिंग करना आदि।

अन्य भाषाओं के शब्द हिन्दी में बहुत कम हैं। कुछ उदाहरण हैं--**फ्रांसीसी**--कार्तूस, कूपन, अंग्रेज़, लाम, फ्रांस, फ्रांसीसी। **डच**--तुरुप (ताश में), बम (गाड़ी का)। **स्पेनी**--अल्पाका। **रूसी**--रूबल, ज़ार, वोदका, सोवियत, स्पुतनिक। **चीनी**--चाय, लीची, चीकू। **जापानी**--रिक्शा। **द्रविड़**--डोसा, इडली, पिल्ला। **मराठी**--चालू, बाड़ा, लागू। **गुजराती**--गरबा, हड़ताल। **बंगाली**--उपन्यास, रसगुल्ला, गल्प, संदेश, चमचम, अभिभावक, आपत्ति, तत्वावधान, संभ्रांत। **पंजाबी**--सिक्ख, छोले, खालसा, भाँगड़ा।

(४) **देशज**--देशज का अर्थ है (देश+ज) जो देश में ही जन्मे हों। वस्तुतः जो शब्द न तो तत्सम हों, न तद्भव और न विदेशी अथवा दूसरी भाषाओं से आए, उन्हें देशज की कोटि में रख दिया जाता है। देशज कहलाने वाले शब्दों को दो वर्गों में रखा जा सकता है : (क) **अज्ञातव्युत्पत्तिक**--जिनकी व्युत्पत्ति का पता न हो। जैसे टट्टू, तेंदुआ, कबड्डी, गड़बड़, घपला, चंपत, चूहा, झंझट, झगड़ा, टीस, टेठ, थोथा, धब्बा, पेड़, भुर्ता आदि। (ख) **अनुकरणात्मक**--जो तत्सम, तद्भव या विदेशी नहीं हैं, अपितु हिंदी काल में अनुकरण के आधार पर बनाए गए हैं। इस वर्ग के अधिकांश शब्द ध्वन्यात्मक होते हैं। जैसे खड़खड़, भड़भड़, खटखट, घमघम, हड़हड़, घड़घड़, चटचट, फटफटिया, टर्राना आदि।

अर्धतत्सम शब्द

तत्सम वर्ग को प्रायः विद्वानों ने दो उपवर्गों में बाँटा है। एक तो उपवर्ग उन शब्दों का है जो तत्सम (या पूर्ण तत्सम) हैं और जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। दूसरे उपसर्ग को अर्धतत्सम कहा गया है। इसके अन्तर्गत वे शब्द आते हैं जो पूरी तरह तत्सम नहीं हैं। उदाहरण के लिए 'कृष्ण' तत्सम है तो 'किशन' अर्धतत्सम। इसी प्रकार चन्दर, करम, कारज अर्धतत्सम हैं और इनके तत्सम रूप चन्द्र, कर्म, कार्य हैं। अर्धतत्सम को तत्सम और तद्भव के संदर्भ में समझना सरल होगा। जैसा कि कहा जा चुका है, तत्सम तो संस्कृत के शब्द हैं। तद्भव वे हैं जो पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में परिवर्तित, विकसित या विकृत होते हिन्दी में आए हैं। अर्धतत्सम वे तत्सम शब्द हैं जो पालि, प्राकृत, अपभ्रंश होते नहीं आए हैं, बल्कि जो हिंदी-काल में संस्कृत से मूलतः तत्सम रूप में लिए गए हैं और जिनमें हिंदी में ही कुछ परिवर्तन हो गए हैं। कुछ उदाहरण हैं--

तत्सम	तद्भव	अर्धतत्सम
चन्द्र	चाँद	चन्दर
कर्म	काम	करम
कृष्ण	कान्ह	किशन, किशुन
कार्य	काज	कारज
अक्षर	आखर	अच्छर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्पष्ट ही अर्धतत्सम तद्भव की तुलना में तत्सम के प्रायः निकट है। वस्तुतः अर्धतत्सम नाम बहुत उपयुक्त नहीं माना जा सकता, क्योंकि तत्समता को आधे, तिहाई, चौथाई रूप में नापा नहीं जा सकता। इसीलिए मैं इन्हें भी तद्भव के अन्तर्गत रखने के पक्ष में हूँ। मेरे विचार में तद्भव के दो भेद होने चाहिए। **पूर्ववर्ती तद्भव** (जिन्हें तद्भव कहा जाता है) तथा **परवर्ती तद्भव** (इसके अन्तर्गत तथाकथित अर्धतत्सम शब्द रखे जाने चाहिए)।

संकर शब्द

हिन्दी में ऐसे भी बहुत से शब्द हैं जो उपर्युक्त वर्गों में किन्हीं भी दो या अधिक के योग से बने हैं। इन्हें **संकर** या **द्विज** शब्द कहा जा सकता है : रेलगाड़ी (अं०+हि०), मालगाड़ी (अर०+हि०), डाकखाना (हि०+फ़ारसी), रेलयात्रा (अं०+सं०), फूलदान (हि०+फ़ा०), राजमहल (हि०+अर०), दलबंदी (सं०+फ़ा०), पावरोटी (पुर्त०+हि०), अँग्रेज़ियत (फ्रां०+अर०)।

हिन्दी शब्द-भंडार पर ऐतिहासिक दृष्टि

हिन्दी का शब्द-भंडार संस्कृत, पालि, प्राकृत अपभ्रंश होते विकसित हुआ है। आदिकालीन हिन्दी-साहित्य का शब्द-भंडार बहुत कुछ अपभ्रंश जैसा है। थोड़ा-सा अन्तर केवल यह है कि भक्ति-आंदोलन के प्रभाव से तत्सम और विदेशों के सम्पर्क से विदेशी शब्दों का प्रतिशत कुछ बढ़ गया है। अतः शेष के प्रतिशत में कुछ कमी हुई है। उस काल में सबसे अधिक शब्द तद्भव थे, इसके बाद तत्सम, फिर विदेशी और सबसे कम देशज। विदेशी शब्दों में पश्तो, तुर्की तथा फ़ारसी (अरबी भी) शब्द थे।

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में शब्द-भंडार के क्षेत्र में उल्लेख्य परिवर्तन निम्नांकित हुए : भक्ति के प्रचार--विशेषतः सगुण भक्ति के कारण लोगों का ध्यान संस्कृत के धार्मिक साहित्य की ओर गया, अतः तत्सम शब्दों के प्रयोग में (मुख्यतः साहित्य में) वृद्धि हुई, यद्यपि इनमें से बहुत से परवर्ती तद्भव (अर्धतत्सम) रूप में आए। मुग़ल शासन, फ़ारसी शिक्षा की व्यवस्था तथा दरबार की भाषा फ़ारसी होने के कारण फ़ारसी (अरबी भी) तथा तुर्की शब्दों की संख्या में काफ़ी वृद्धि हुई। परवर्ती काल में यूरोपीय लोगों से सम्पर्क के कारण कुछ पुर्तगाली, कुछ अँग्रेज़ी तथा कुछ अन्य यूरोपीय भाषाओं के शब्द आए।

शब्द-भंडार की दृष्टि से हिन्दी के आधुनिक काल को कई भागों में बाँटा जा सकता है। १९वीं सदी का शब्द-भंडार परवर्ती मध्ययुग से केवल दो बातों में भिन्न है। एक तो यह कि इस काल में अँग्रेज़ी के काफ़ी शब्द हिन्दी में आ गए और दूसरे यह कि उत्तरार्ध में सांस्कृतिक आंदोलनों के कारण तत्सम शब्दों की प्रवृत्ति कुछ बढ़ने लगी। हरिऔध के प्रियप्रवास एवं निराला के तुलसीदास आदि में इसका ऊर्ध्व बिन्दु मिलता है। छायावाद की इस तत्सम-प्रवृत्ति के बाद प्रगतिवाद ने हमारे शब्द-भंडार को तत्सम से बोलचाल की ओर मोड़ दिया। इधर स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी सभी क्षेत्रों में प्रयुक्त होने के लिए संघर्ष कर रही है, अतः हमें कई हज़ार पारिभाषिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्दावली की आवश्यकता हुई है। इसके लिए हम लोग कुछ शब्द तो अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली से ले रहे हैं और कुछ भारत की अन्य भाषाओं एवं प्राचीन साहित्य से। शेष शब्द संस्कृत धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि के आधार पर बनाए जा रहे हैं। आज का साहित्य शब्द-भंडार की दृष्टि से दो प्रकार का है। उपन्यास, कहानी, नाटक, एवं कविता की भाषा तो प्रायः बोलचाल के काफ़ी निकट है, जिसमें तद्भव एवं विदेशी शब्द भी काफ़ी हैं, किन्तु आलोचना, शोध-प्रबन्ध एवं निबन्ध आदि की भाषा अपेक्षाकृत तत्सम प्रयोगों की ओर अधिक झुकी हुई है। किन्तु ऐसा लगता है कि भविष्य में तत्सम शब्दों का प्रयोग कुछ घटता जाएगा तथा तद्भव और विदेशी शब्दों का बढ़ता जाएगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १२

वाक्य

ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी भाषा के अध्ययन का सबसे दुर्बल पक्ष उसका वाक्य-गठन है। डॉ० वर्मा, डॉ० श्यामसुन्दरदास, डॉ० उदयनारायण तिवारी आदि हिन्दी भाषा के इतिहासकारों ने इस पक्ष को नहीं लिया है। प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक इस दिशा में कार्य कर रहा है, किन्तु अभी तक कार्य पूरा नहीं हुआ है, इसीलिए यहाँ हिन्दी वाक्य-रचना के सम्बन्ध में ऐतिहासिक दृष्टि से पदक्रम, अन्वय तथा वाक्य-भेद की दृष्टि से केवल कुछ सामान्य बातें ही अत्यन्त संक्षेप में दी जा रही हैं।

पदक्रम—भारतीय आर्यभाषाओं में प्राचीन काल से ही प्रायः बहुप्रचलित पदक्रम प्रारम्भ में **कर्ता** तथा अन्त में **क्रिया** है। कर्म आदि अन्य सभी पद बीच में आते हैं। कुछ उदाहरण हैं : विशः क्षत्रियाय बलिं हरन्ति (वैश्य राजा को कर देते हैं) —शतपथ ब्राह्मण; दमनकोऽपि तं प्रणम्य संजीवकशब्दानुसारी प्रतस्थे (दमनक भी उसे प्रणाम कर संजीवक के शब्द का अनुसरण करते चला)—पंचतंत्र; राजपुरिसो चोरस्य एकं हत्थं उभोऽपि च पादे छिन्दति (राजपुरुष चोर का एक हाथ तथा दोनों पैर काटता है)—पालि; तस्स णं सेणियस्स रण्णो धारिणी नामं देवी होत्था (उस राजा सेणिय की धारिणी नाम की दूसरी रानी थी)–प्राकृत; हउं गोरउ हउं सामलउ हउं (मैं गोरा हूँ, साँवला हूँ)–अपभ्रंश; सतगुरि मारग कहिया–गोरख; जे वचन्न विध्धि निध्धि धीर ही सओन षंडिही (जो वचन-रचना की निधि से सज्ञानों के धैर्य को खंडित करती थी)–चंद; तुम मोकौं दूरि करत हौ–कबीर; कंस नृप अक्रूर ब्रज पठाये–सूर; लखन ठाउँ देखरावा–तुलसी। किन्तु यह मात्र बहुप्रचचिल पदक्रम है। संस्कृत बहुत ही संयोगात्मक भाषा थी, अतः उपर्युक्त पदक्रम के उल्लंघन से भी कोई हानि नहीं थी, इसलिए संस्कृत में 'रामः रावणं अहनत्', 'रावणं रामः अहनत्', 'अहनत रामः रावणं', 'अहनत् रावणं रामः' आदि किसी भी रूप में कहने की स्वच्छन्दता थी। वैदिक साहित्य में 'एति चन्द्रमा' (चाँद चलता है), 'यान्ति नक्षत्राणि' (नक्षत्र चलते हैं) जैसे प्रयोग प्रायः मिलते हैं। पालि तथा शिलालेखी प्राकृतों में भी यह स्वच्छन्दता है। अशोक के शिलालेखों में अनेक उदाहरणों में क्रिया आरम्भ में मिलती है : 'इछामि हकं' (मैं इच्छा करता हूँ), 'सर्वत्र च जनस अथ करोमि अहं' (मैं सर्वत्र जनकार्य करता हूँ)। किन्तु आगे जैसे-जैसे प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी में वियोगात्मकता बढ़ती गई, पदक्रम की उपर्युक्त स्वच्छन्दता जाती रही। आज हिन्दी में जोर देने के लिए कभी-कभार उपर्युक्त क्रम में परिवर्तन कर तो लेते हैं ('रावण को राम ने मारा'; पर 'मारा रावण को राम ने' प्रायः नहीं कहते), किन्तु एक सीमा तक और वह भी बहुत कम।

अन्य क्रमों में संस्कृत में **'विशेषण'**, **'विशेष्य'** (सुन्दरः पुरुषः) **'क्रियाविशेषण'**, **'क्रिया'** (शनैर्गच्छति) का विशेष प्रचलन रहा है, जो इसी रूप में पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में होता हिन्दी में भी आया है। यों संस्कृत में इसके उलटे क्रम का भी प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता है किन्तु हिन्दी में 'जाता है धीरे-धीरे' जैसे प्रयोग नहीं चलते। संस्कृत में 'सर्वनाम' 'संज्ञा' के पूर्व आता है, किन्तु बाद में प्रयोग के उदाहरण भी विरल नहीं (इदं फल, फलं इदं) हैं। अशोक के शिलालेखों में भी आता है 'विजिते मम' (मेरे राज्य में)। प्राकृत-अपभ्रंश में भी इसके उदाहरण मिल जाते हैं, किन्तु आधुनिक हिन्दी में प्रथम क्रम ही चलता है। क्रम-विषयक उपर्युक्त सारी बातें हिन्दी गद्य पर आधारित हैं, जिसमें भाषा का क्रम की दृष्टि से अधिक प्रकृत रूप मिलता है। पद्य में क्रम में परिवर्तन सामान्य है।

अन्वय—संस्कृत में वचन तथा पुरुष की दृष्टि से क्रिया, कर्ता के अनुरूप होती है 'बालकः गच्छति', 'बालकौ गच्छतः', 'बालकाः गच्छन्ति', 'अहं गच्छामि'। पालि, प्राकृत आदि में भी यही स्थिति थी। हिन्दी में आकर 'है', 'हैं', आज्ञा आदि कुछ अपवादों को छोड़कर क्रिया न केवल 'वचन' एवं 'पुरुष' अपितु 'लिंग' में भी कर्ता के अनुरूप होती है। यह बात आदिकाल से ही मिलती है ; हाथि रह गई पोथी—गोरख; तब रहि गया पद निरबांन—गोरख। संस्कृत में 'रामः गच्छति', 'सीता गच्छति' है, किन्तु हिन्दी में 'राम जाता है', 'सीता जाती है।' प्रश्न उठता है कि यह लिंग-विधान कहाँ से आया। वस्तुतः संस्कृत में क्रियारूप में लिंगानुसार परिवर्तन नहीं होता था, किन्तु कृदन्तों में लिंगान्तर था : 'गच्छन् बालकः' (चलता बालक), 'गच्छन्ती बालिका' (चलती बालिका)। ये कृदन्ती रूप क्रियारूप में भी प्रयुक्त होते थे। सः गतः (वह गया), सा गता (वह गई)। बहुत प्रचलित तो नहीं है, किन्तु समझने के लिए एक हिन्दी-जैसा उदाहरण संस्कृत से ले सकते हैं; सः कुर्वन् (अस्ति), सा कुर्वन्ती (अस्ति)=वह कर रहा है, वह कर रही है। धीरे-धीरे पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में क्रिया के स्थान पर ये कृदन्ती रूप बढ़ते गए और हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं में बहुत बढ़ गए। परिणाम यह हुआ कि इनके साथ की लिंग-व्यवस्था भी हमें रिक्थ में मिली, जो हिन्दी क्रिया में लैंगिक विधान के लिए उत्तरदायी है।

विशेषण और **विशेष्य** की अनुरूपता भी विचारणीय है। संस्कृत में दोनों में लिंग, वचन, कारक की अनुरूपता अपेक्षित है : 'सुन्दरः पुरुषः', 'सुन्दरी स्त्री', किन्तु हिन्दी में 'सुन्दर पुरुष' 'सुन्दर स्त्री' भी अशुद्ध नहीं है। हिन्दी में केवल आकारान्त विशेषण (अच्छा लड़का, अच्छे लड़कों को, अच्छे लड़के हैं, अच्छी लड़की) में ही परिवर्तन होता है (रूपवान्–रूपवती, आदरणीय–आदरणीया जैसे संस्कृत-प्रभाव अपवाद हैं), अन्यथा अन्य मधुर, सुन्दर, गोल, कटु जैसे अन्यांत शब्द अपरिवर्तित रहते हैं, जो स्वाभाविक विकास के अतिरिक्त फ़ारसी प्रभाव है। आ अन्त्य के साथ क्रिया (चला, चले, चली) तथा सम्बन्ध-रूप (राम का, राम के, राम की, अपना, अपने, अपनी) में भी रूपान्तर होता है। यह व्यवस्था आदिकालीन हिन्दी में प्रायः व्यवस्थित रूप से मिलने लगती है : दिन का बड़ा न हूवा—चुणकरनाथ (१३वीं सदी); जोग नहीं पूता बड़ी बलाइ—गोरख; बड़े बड़े कूले मोटे पेट—गोरख; लै सूती अपना पिय प्यारा—कबीर; ज्यौं कामी को कामिनि प्यारी—कबीर; सबै जीव साईं के प्यारे—कबीर।

वाक्य-भेद—विभिन्न प्रकार के वाक्यों की परम्परा संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में अनुपलब्ध नहीं है। आज के प्रचलित वाक्य-रूप हिन्दी में आदिकाल से ही मिलते हैं : **सरल वाक्य**—पवन ही हरै छतीसौं रोग—गोरख; पुच्छन चन्द गयो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दरबारह--चन्द। **मिश्रित वाक्य :** (क) **संज्ञा उपवाक्य** से युक्त--गोरष कहै सुणौं रे अवधू सुसूपाल थैं डरिये--गोरख; उह मारइ इहु धाइ देखि अरि दन्तह कट्टइ--चन्द; कहै कबीर राजा राम भजन सौं नव निधि होइगी चेरी--कबीर; देखो कपिराज भरत वै आए--सूर; जो कुछ कहहु तुमहिं सब छाजा--तुलसी। (ख) **विशेषण उपवाक्य** से युक्त--जिहि घरि चन्द सूर नहिं ऊगै तिहिं घरि होती उजियारा--गोरख; जे नर भए भगति तैं बाहज तिनतैं सदा डरांन रहिए--कबीर; जे पद-पदुम रमत, पांडव-दल दूत भए, सब काज सँवारे सूरदास तेई पद पंकज त्रिविध ताप दुःख-हरन हमारे--सूर; तुम्ह तौ देहु सरल लिख सोई, जो आचरत मोर भल होई--तुलसी। (ग) **क्रियाविशेषण उपवाक्य** से युक्त--लाष तोला मोल जाये जे एक षिसै बिंद--गोरख; जैसे कँवल पत्र जल बासा, ऐसे-तुम साहेब हम दासा--कबीर; आमिष रुधिर अस्थि अँग जौलौं, तौलौं कोमल चाम--सूर; जब तेहि कीन्ह राम कै निन्दा, क्रोधवंत अति भयउं परिंदा--तुलसी। **जटिल वाक्य**--जत सत किरिया रहणि हमारी, और बलि वाकलि देवि तुम्हारी--गोरख; कोई कहै मैं दाता रे भाई, कोई कहै मैं तपसी--कबीर; मैं तौं एक पुरुष कौं ध्यायौ, अरु एकहि सौं चित्त लगायौ--सूर। (हिन्दी वाक्य-रचना पर फ़ारसी तथा अँग्रेज़ी प्रभावों के लिए अन्तिम अध्याय देखिए।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १३

हिन्दी भाषा पर अन्य भाषाओं का प्रभाव

विश्व में ऐसी कोई भी भाषा न होगी जिस पर किसी-न-किसी रूप में दूसरी भाषाओं का प्रभाव न पड़ा हो। हिन्दी भी इस सामान्य नियम का अपवाद नहीं है। उस पर समय-समय पर संस्कृत आदि प्राचीन; पश्तो, तुर्की, फ़ारसी (अरबी), पुर्तगाली, फ्रांसीसी, स्पैनिश, अँग्रेज़ी, रूसी आदि अन्यदेशीय तथा आस्ट्रिक, द्रविड़, पंजाबी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगाली आदि वर्तमान भारतीय भाषाओं का विभिन्न रूपों में प्रभाव पड़ा है। यहाँ कुछ मुख्य बातें संक्षेप में ली जा रही हैं—

ध्वनि—सामान्यतः कोई भाषा दूसरी भाषाओं से ध्वनि की दृष्टि से प्रभावित नहीं होती। विश्व की अनेकानेक भाषाओं ने दूसरी से शब्द तो लिए हैं, किन्तु ध्वनि के क्षेत्र में प्रायः कम ही प्रभाव मिलता है। इस क्षेत्र में प्रभाव के लिए **दीर्घकालीन** तथा **अत्यन्त गहरा** सम्पर्क एवं शिक्षा आदि के द्वारा उक्त भाषा की **उचित** या कम-से-कम उसके काफ़ी शब्दों की औच्चारणिक जानकारी आवश्यक है। हिन्दी के साथ इस प्रकार का जानकारीयुक्त विशेष सम्पर्क संस्कृत, फ़ारसी तथा अँग्रेज़ी का ही रहा है। उनमें संस्कृत से किसी नई ध्वनि के आने का प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि कुछ अपवादो (ऋ, ॠ, ऌ, ष, आदि) को छोड़कर संस्कृत तथा हिन्दी में प्रायः समान ध्वनियाँ हैं। जो असमानता है, वह ऐसी है जिसका अनुकरण हमारे लिए सम्भव नहीं है। यह उल्लेख्य है कि कोई भाषा दूसरी भाषा से केवल उन्हीं ध्वनियों को लेती है या ले सकती है जो उसके वक्ताओं द्वारा बिना विशेष कठिनाई के उच्चारणीय हो। संस्कृत से उपर्युक्त ध्वनियाँ हिन्दी ले सकती थी, किन्तु प्रथम तीन का स्वरवत् उच्चारण हमारे लिए सम्भव नहीं है तथा 'ष' के स्थान पर हम 'श' (शेष=शेश) या 'स' (स्पष्ट, जैसे शब्द प्रायः हिन्दी-भाषियों के सहज उच्चारण में कस्ट, स्पस्ट हो गए हैं) कहने के आदी हो चुके हैं, अतः ये ध्वनियाँ हिन्दी में नहीं आ सकीं।

फ़ारसी और अँग्रेज़ी में कई ध्वनियाँ ऐसी हैं जो हिन्दी में नहीं हैं, किन्तु उनमें सहज अनुकरणीय केवल छः ही थीं, अतः प्रभाव-स्वरूप वे ही आ सकीं। ये ध्वनियाँ हैं: (१) फ़ारसी से आने वाले पाँच व्यंजन—क़, ख़, ग़, ज़, फ़; (२) अँग्रेज़ी से आने वाला एक स्वर ऑ। अँग्रेज़ी के कई शब्दों में ज़ (सेफ्टीरेज़र) तथा फ़ (ऑफ़िस) ध्वनियाँ हैं, किन्तु इन्हें फ़ारसी से हम पहले से ही ले चुके थे, अतः फिर अँग्रेज़ी से लेने का प्रश्न नहीं उठता। ये नवागत ध्वनियाँ प्रायः फ़ारसी (अरबी) पश्तो, तुर्की तथा अँग्रेज़ी शब्दों में ही प्रयुक्त होती हैं।

उपसर्ग—हिन्दी ने संस्कृत फ़ारसी (उसके द्वारा अरबी) तथा अँग्रेज़ी से कुछ उपसर्ग लिए हैं। यह उल्लेख्य है कि उन्हीं उपसर्गों को पूर्णतः लिया हुआ माना जा सकता है जो हिन्दी के अपने या नवनिर्मित शब्दों के साथ आते हैं। इस प्रकार के उपसर्ग सर्वाधिक तो संस्कत के हैं। संस्कत उपसर्गों में अ (अछूत), अन् (अनपढ़), कु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(कुचाल), उप (उपबोली) आदि तो हिन्दी के अपने शब्दों के साथ भी आते हैं, अतः ये तो हिन्दी के हो ही चुके हैं, अन्य तत्सम उपसर्गों में भी अधिकांश नए शब्दों के निर्माण में हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं, अतः वे भी अपने हैं। फ़ारसी उपसर्गों में केवल वे (बेधड़क, बेढब, बेढंगा) ही हिन्दी के अपने शब्दों के साथ आता है। अन्य सारे प्रायः फ़ारसी-अरबी शब्दों के साथ ही आते हैं। अंग्रेजी के यों तो वाइस, सब, हाफ़, हेड उपसर्गों का प्रयोग हम लोग बोलचाल में तथा लिखने में भी करते हैं, किन्तु ये प्रायः अंग्रेज़ी शब्दों के साथ ही आते हैं। हेडपण्डित, हेडमौलवी, हाफ़कमीज़ जैसे कुछ उदाहरण अपवाद हैं। इस प्रकार अंग्रेज़ी के उपसर्ग हमारे पूर्णतः अपने नहीं हो सके हैं।

प्रत्यय--हिन्दी ने संस्कृत, फ़ारसी (अरबी), अंग्रेजी से प्रत्यय भी लिए हैं। संस्कृत के ज, ता, त्व आदि अनेक प्रत्यय, हिन्दी नए शब्दों के निर्माण में प्रयुक्त कर रही है। 'यूरोपीयता' जैसे शब्दों में 'ता' प्रत्यय कभी-कभार अतत्सम शब्दों के साथ भी आता है। फ़ारसी से लिए जाने वाले प्रत्ययों में आना (घराना), इयत (अंग्रेज़ियत, बोरियत), खोर (घूसखोर), गिरी (बाबूगिरी), ची (मिडिलची), ज़ाद (चचाज़ाद), दान (सिगारदान), दानी (चायदानी, गोंददानी), बाज़(बमबाज़, बैठक-बाज़), वार (व्यौरेवार) आदि प्रमुख हैं। अंग्रेज़ी के डम (गुरुडम), इज्म (जैनिज्म, बुद्धिज्म, शैविज्म), इस्ट (बुद्धिस्ट) आदि कभी-कभी प्रयुक्त होते हैं, किन्तु उपसर्गों की तरह ही ये भी हिन्दी के पूर्णतः अपने नहीं हो सके हैं।

शब्द-समूह--किसी भाषा पर दूसरी भाषाओं का प्रभाव सर्वाधिक शब्द-समूह के क्षेत्र में ही पड़ता है। एक भाषा में दूसरी भाषा के शब्द प्रायः नई वस्तुओं के नाम या नए विचारों एवं नई अभिव्यक्तियों के द्योतक के रूप में आते हैं। अंग्रेज़ी में भारतीय भाषाओं से जाने वाले लगभग दो हज़ार शब्दों में अधिकांश ऐसे ही हैं। हिन्दी में तुर्की, फ़ारसी, पुर्तगाली, अंग्रेज़ी आदि से अनेक शब्द ऐसे आए हैं : तोप, बन्दूक, बारूद, अरगजा, इस्त्री, आलपिन, पेंसिल, इंजन, कैमरा, फ़ैशन आदि। इस वर्ग के शब्द, तत्त्वतः किसी भाषा में उसकी आवश्यकतानुसार, या नए समाज की अभिव्यक्ति में भाषा को समक्ष बनाने के लिए आते हैं। किन्तु इस आवश्यक वर्ग के अतिरिक्त ऐसे भी शब्द भाषाओं में आ जाते हैं, जिन्हें एक भाषा से दूसरी भाषा में ग्रहण करने वाली भाषा की दृष्टि से 'अनावश्यक वर्ग' का कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए हिन्दी ने ऐसे अनेक शब्द भी दूसरी भाषाओं से लिए हैं, जिनके लिए उसके पास प्रायः शब्द थे। उदाहरणार्थ, हज़ार (सहस्र, दस सौ), मुश्किल (कठिन), आसान (सरल), मकान (घर), शहर (नगर), आदमी (पुरुष, व्यक्ति), औरत (स्त्री), बाज़ार (हाट), खूबसूरत (सुन्दर), फ़ौज (सेना), तीर (वाण), कमान (धनुष), दरवाज़ा (द्वार), जंगला (खिड़की), चाबी (कुंजी) तथा बिल्डिंग (इमारत, भवन) आदि। इस वर्ग के शब्द प्रायः अत्यधिक सम्पर्क अथवा शब्ददायी भाषा या उसके बोलने वालों के प्रति किसी प्रकार की उच्च भावना आदि के कारण आ जाते हैं। इन सहज कारणों के अतिरिक्त साहित्यकार कभी-कभी नवीनता, साहित्यिक अभिव्यक्ति की आवश्यकता, अथवा ज्ञान-दर्शन यद्यपि बहुत कम, की दृष्टि से भी प्राचीन अथवा आधुनिक, देशी अथवा विदेशी भाषाओं से शब्द ग्रहण कर लेते हैं।

हिन्दी भाषा अपने जन्म से ही संस्कृत भाषा से इतने अधिक शब्द लेती रही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तथा ले रही है कि उसका ठीक-ठीक लेखा-जोखा करना प्रायः असम्भव-सा है। ग्रीक जिस प्रकार यूरोपीय भाषाओं के लिए कामधेनु है, भारतीय भाषाओं के लिए संस्कृत की भी वही स्थिति है। वस्तुतः अपभ्रंश एवं हिन्दी का समूचा साहित्य जब तक सुसंपादित होकर हमारे सामने नहीं आ जाता, तथा उसकी सुव्यवस्थित शब्दानुक्रमणी तैयार नहीं हो जाती, यह कहना बड़ा कठिन है कि कौन-से संस्कृत शब्द हिंदी को अपने जन्म के समय अपभ्रंश से मिले तथा कौन से उसने बाद में संस्कृत से ग्रहण किए। सच पूछा जाय तो उपर्युक्त अनुक्रमणी तैयार हो जाने पर भी इस प्रश्न का सनिश्चय उत्तर नहीं दिया जा सकता, क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि अपभ्रंश भाषा में प्रयुक्त सभी संस्कृत शब्द अपभ्रंश साहित्य में प्रयुक्त ही हुए हों। बल्कि अधिक आशा तो इसी बात की है कि बहुत अधिक शब्द ऐसे होंगे जो साहित्य में नहीं आ सके होंगे। ऐसी स्थिति में संस्कृत के सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि संस्कृत से हिन्दी ने—विशेषतः भक्तिकाल तथा आधुनिककाल में—बहुत अधिक शब्द लिए हैं, ले रही है तथा लेती रहेगी।

अन्य जिन भाषाओं से हिन्दी ने शब्द लिए हैं, उन्हें दो वर्गों में रखा जा सकता है :

(क) **विदेशी**—पश्तो, तुर्की, फ़ारसी, पुर्तगाली, फ्रांसीसी, स्पैनिश, डच, अंग्रेज़ी, रूसी।

(ख) **देशी**—पंजाबी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बँगला, द्रविड़, मुंडा।

पीछे 'शब्द-समूह' शीर्षक अध्याय में इन भाषाओं से हिंदी में आगत शब्दों पर विचार किया जा चुका है।

रूप—हिन्दी में शब्दों के अतिरिक्त कुछ रूप भी अन्य भाषाओं से आए हैं।

संस्कृत से—संस्कृत से आगत रूपों में सबसे बड़ी संख्या करण एकवचन की है : साधारणतया, मुख्यतया, प्रमुखतया, विशेषतया, सामान्यतया, पूर्णतया, कृपया, अपेक्षया, प्रकृत्या, अगत्या (लाचार होकर); पदेन, येन केन प्रकारेण, पूर्णरूपेण; जन्मना; मनसा वाचा कर्मणा; हठात्, बलात्, संयोगवशात्, दैवात्, प्रसंगात् जैसे पंचमी एकवचन तथा 'पदे-पदे' जैसे कुछ अधिकरण एकवचन भी हिन्दी में कभी-कभी प्रयुक्त होते हैं। विशेषण के तर (सुन्दरतर) एवं तम (सुन्दरतम) वाले रूप तो प्रयुक्त होते हैं, किन्तु कुछ तुलनार्थी विशेषण कुछ अन्तर के साथ हिन्दी में गृहीत हुए हैं। उदाहरणार्थ, संस्कृत में गरीयस्, गरिष्ठ 'गुरु' के तरार्थी एवं तमार्थी रूप हैं। इनमें पहला तो हिन्दी में प्रायः नहीं आता, किन्तु दूसरा आता है। 'गुरु' तो हिन्दी में प्रायः अपने मूल अर्थ में आता है किन्तु तमार्थी 'गरिष्ठ' एक ओर तो तमार्थी न होकर सामान्य है, दूसरे इसका प्रयोग भी भोजन तक सीमित हो गया है। 'उत् (ऊपर)—उत्तर—उत्तम' में 'उत्तर' प्रायः केवल 'बादवाला' या 'जवाब' तथा उत्तम 'अच्छा' अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'त्राहि' जैसे कुछ क्रियारूप भी हिन्दी में स्थान पा चुके हैं। ('शब्द-समूह' अध्याय में तत्सम के अन्तर्गत अन्य प्रकार के प्रभाव देखिए।)

फ़ारसी से—फ़ारसी के माध्यम से कुछ अरबी द्विवचन (तस्निया) के रूप हिन्दी में आ गए हैं। ऐसे रूप उर्दू में तो काफ़ी हैं, किन्तु हिन्दी में अपेक्षाकृत बहुत कम हैं और जो हैं भी, धीरे-धीरे समाप्त हो रहे हैं : वालिदैन, फ़रीकैन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कचहरी की भाषा में इनका प्रयोग अधिक होता रहा है। हिन्दी में कुछ फ़ारसी बहुवचन (आन : साहब-साहबान, मालिक-मालिकान, काश्तकार-काश्तकारान; हा : बार-बारहा (बार-बार) तथा कुछ अरबी नियम के आधार पर बने फ़ारसी-अरबी बहुवचन (आत : काग़ज-काग़जात, ख्याल-ख्यालात, ज़ेवर-ज़ेवरात, मकान-मकानात, बाग़-बाग़ात, देह्यात (इसका एकवचन 'देह' हिन्दी में नहीं आता, तथा 'देहात' हिन्दी में एकवचन है); कुछ अनियमित : हाकिम-हुक्काम, ख़बर-अखबार (एक० में प्रयुक्त), वक्त-औकात (=स्थिति, एक० में प्रयुक्त), वली-औलिया (एक० में प्रयुक्त), अजीब-अजायब (केवल 'अजायबघर' में), क़ायदा--क़वायद (प्रायः केवल 'कसरत' 'पी० टी०' अर्थ में; उर्दू में 'व्याकरण' के अर्थ में भी), जौहर-जवाहर (रत्न के अर्थ में जवाहरात) भी हैं। सं० 'तर', 'तम' की तरह फ़ारसी में तरार्थी एवं तमार्थी 'तर', 'तरीन' का प्रयोग होता है : बद--बदतर-बदतरीन, बेह-बेहतर-बेहतरीन, पेश-पेशतर-पेशतरीन, कम-कमतर-कमतरीन, आदि में, कुछ हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं, यद्यपि कई परिवर्तित अर्थ में।

वाक्य-रचना—हिन्दी वाक्य-रचना मुख्यतः मध्यकाल में फ़ारसी से तथा आधुनिक काल में अंग्रेज़ी से प्रभावित हुई है। नीचे दोनों को अलग-अलग लिया जा रहा है। यह उल्लेख्य है कि कुछ बातें तो निश्चित रूप से इन भाषाओं से आई हैं किन्तु कुछ के आने की सम्भावना मात्र है। एक यह बात भी संकेत्य है कि अभी तक इस दिशा में उतनी गहराई से अध्ययन नहीं हुआ है, जितनी गहराई से अपेक्षित है। इसी कारण यहाँ केवल कुछ बहुत मोटी-मोटी बातें ही दी जा रही हैं।

फ़ारसी-प्रभाव : उल्टा समास--संस्कृत-परम्परा में 'राजा का पुत्र' को 'राजपुत्र' या 'ग्राम का वासी' को 'ग्रामवासी' कहेंगे। फ़ारसी में इसके उल्टे 'आलम का शाह' को 'आलमशाह' न कहकर 'शाहेआलम' कहेंगे। फ़ारसी का यह प्रभाव मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य पर मिलता है। जायसी में 'पत्थर की लीक' के लिए 'पखन-लीक' न आकर 'लीक पखान' (लीक-पखान पुरुष कर बोला) तथा 'रवि की किरन' के लिए 'किरिन-रवि' (भा भिनसार किरिन रवि फूटी) आया है। 'गंग' गजमुक्ता को 'मुकतागज' (स्यारथरी में खुरी पुंछ कंथरे, सिंहथरी मुकतागज पावै) भी इसी परम्परा में कहते हैं। फ़ारसी कचहरियों की भाषा थी, अतः आज भी कचहरियों की भाषा में इसके अवशेष हैं : 'तहसीलदार हमीरपुर का तबादला हो गया' (हमीरपुर के तहसीलदार), 'मेंबरान डिस्ट्रिक्ट बोर्ड', 'सूबा बंगाल' इत्यादि। 'शाहे वक्त', 'शेरे कश्मीर', 'सदरे रियासत', 'सितारे हिन्द', 'रुस्तमे हिन्द' तो शुद्ध फ़ारसी हैं ही।

जो--जो-युक्त उपवाक्यों का वाक्य के आरम्भ में प्रयोग संस्कृत परम्परा का नहीं माना जाता। काल्डवेड इसे द्रविड़ प्रभाव मानते हैं। प्राकृतों में ऐसे प्रयोग होने लगे थे। प्राकृत-पैंगलम् में आता है 'जो चाहहि सो लेहि'। काल्डवेल की बात ठीक लगती है, किन्तु प्राकृतों की तुलना में आधुनिक काल में यह प्रवृत्ति बहुत अधिक है। सम्भवतः हिन्दी आदि में ऐसे प्रयोगों (जो सोया सो खोया, जो जागा सो पाया) की वृद्धि के पीछे फ़ारसी प्रभाव का कुछ हाथ है।

आदर के लिए एकवचन के स्थान पर बहुवचन का प्रयोग—हिन्दी में यह बात सर्वनाम तथा क्रिया में देखी जाती है। फ़ारसी में भी (सर्वनाम तथा सभी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काल की क्रियाओं में) यही बात मिलती है : 'ईशुन मी गूयन्द'=वे कहते हैं; 'शैख सादी मी गूयन्द'—शेख सादी कहते हैं। मेरे विचार में हिन्दी की यह प्रवृत्ति निश्चिततः फ़ारसी प्रभाव के कारण है।

संयुक्त क्रिया—यों तो भारतीय परम्परा में संयुक्त क्रिया सर्वथा नवीन नहीं है, किन्तु हिन्दी की बहुत-सी संयुक्त क्रियाएं, विशेषतः संज्ञा तथा विशेषण से बनने वाली नामिक संयुक्त क्रियाएं फ़ारसी का अनुवाद मात्र हैं। कुछ उदाहरण हैं : तंग कर्दन–तंग करना, नर्म कर्दन—नरम करना, खुश शुदन–खुश होना, पैरवी कर्दन–पैरवी करना, आज़ाद कर्दन—आज़ाद करना, कसम खुर्दन—कसम, शपथ या सौगन्ध खाना, आदि। संस्कृत में 'स्वतन्त्रं करोति' के स्थान पर 'मुंचीत' या 'प्रसन्नं करोति' के स्थान पर 'प्रसादयति' जैसे प्रयोग ही प्रायः चलते हैं। इस प्रकार संज्ञा, विशेषण आदि की सहायता से इस प्रकार की संयुक्त क्रियाएं भी हिन्दी आदि को फ़ारसी की देन हैं।

क्रिया के पूर्व क्रियाविशेषण—हिन्दी वाक्य-गठन की यह एक प्रमुख विशेषता (वह कल आया, वह धीरे-धीरे चल रहा है) उल्लेख्य है कि संस्कृत में क्रियाविशेषण क्रिया के पूर्व भी आता था और बाद में भी है। अंग्रेज़ी में क्रियाविशेषण बाद में ही आता है। फ़ारसी में हिन्दी की तरह ही क्रियाविशेषण क्रिया के पूर्व (ऊ वितुन्दी मी गुफ्त=वह जल्दी-जल्दी बोल रहा था) आता है। हिन्दी की यह प्रवृत्ति भी फ़ारसी का प्रभाव ज्ञात होती है।

और—संस्कृत में 'च' जब एक बार आता है तो उन शब्दों के बाद जिन्हें वह जोड़ता है (परिक्रम्य अवलोक्य च–'घूम और देखकर'; रामो लक्ष्मणश्च–'राम और लक्ष्मण), या फिर एक से अधिक बार (अहश्च रात्रिश्च–'रात और दिन', रामश्च लक्ष्मणश्च–'राम और लक्ष्मण')। हिन्दी में फ़ारसी की तरह (पिदर उ मादर) 'और' शब्दों के बीच में केवल एक बार (बाप और माँ) आता है। हिन्दी में यह प्रवृत्ति मूलतः फ़ारसी से आई ज्ञात होती है, यों इधर कदाचित् अंग्रेज़ी प्रभाव से इसे और बल मिला है।

कि—वाक्यों में 'कि' का प्रयोग या 'कि' से जोड़कर वाक्य-रचना मूलतः भारतीय परम्परा की नहीं है। विक्रमोर्वशीय में आता है—'मइं जाणिअं मिअ लोअणि णिसिअरु कोई हरेइ'। इसी तरह गोरखनाथ में आया है—'गोरष कहै सुणहु रे अवधू जग मैं ऐसैं रहणां'। 'कि' फ़ारसी का शब्द है और इसका वाक्य-रचना में प्रयोग फ़ारसी का प्रभाव है। चूंकि, ताकि, गोकि, बशर्ते कि आदि से युक्त वाक्यों की भी यही स्थिति है।

अंग्रेज़ी प्रभाव—अंग्रेज़ी शिक्षा एवं पठन-पाठन का, फ़ारसी की तुलना में अधिक प्रचार है, इसी कारण वर्तमान हिन्दी वाक्य-गठन इससे अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित है। अंग्रेज़ी प्रभाव के कारण हिन्दी वाक्य-रचना में कुछ बातें तो नई आई हैं और कुछ ऐसी बातें [जैसी 'राम और लक्ष्मण' रूप में दो शब्दों के बीच 'और' का प्रयोग, या यदि कई शब्द हों तो अन्तिम के पूर्व (राम, सीता, भरत 'और' लक्ष्मण) 'और' का आना] फ़ारसी से आ चुकी थीं। अंग्रेज़ी ने उनके प्रयोग को केवल और निश्चितता प्रदान की है। अंग्रेज़ी के कुछ प्रमुख प्रभाव निम्नांकित हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के द्वारा—अंग्रेज़ी 'बाई' के स्थान पर प्रयुक्त। 'यह पुस्तक उनके द्वारा लिखित है' या 'यह लेख शुक्ल जी द्वारा लिखा गया था।' जैसे वाक्य अंग्रेज़ी वाक्यों के अनुवाद हैं। हिन्दी में पुराने प्रयोग थे 'इसे उन्होंने लिखा है' या 'यह लेख शुक्लजी का था' या 'यह लेख शुक्ल जी का लिखा था।'

सम्बन्धवाचक सर्वनाम—सम्बन्धवाचक सर्वनामों के सम्बन्ध में हिन्दी और अंग्रेज़ी पद्धति में अन्तर है। हिन्दी में या तो सम्बन्धवाचक सर्वनाम का प्रयोग न करके कर्तृकृदन्त (पेड़ से गिरने वाला लड़का मर गया) का प्रयोग करते रहे हैं, या फिर सम्बन्धवाचक सर्वनाम का प्रारम्भ में संज्ञा के पूर्व प्रयोग (जो लड़का पेड़ से गिरा था, मर गया) होता है। अंग्रेज़ी में संज्ञा के बाद सम्बन्धवाचक रखने का नियम (वह लड़का जो पेड़ से गिरा था, मर गया–The boy, who fell from the tree, died.) है। अंग्रेज़ी के प्रभाव से आजकल इस प्रकार के वाक्य हिन्दी में भी प्रयुक्त हो रहे हैं: राम, जो कल तक इन बातों से दूर था, आज इनमें रस लेने लग गया है (जो राम...); वह देश, जिसमें दूध की नदियाँ बहती थीं, आज दूध के लिए तरस रहा है (जिस देश में···); वह घर, जिसमें मैं पहले रहा करता था, बिक गया (जिस घर में मैं···)। यह प्रयोग सभी कारकों (वह आदमी जिसने···; वह लड़का जिसे ··; वह लाठी जिससे ; वह अध्यापक जिसका ··) आदि में होता है।

वह का प्रयोग—अंग्रेज़ी में 'द' के प्रयोग के आधार पर 'वह' के कुछ नए प्रयोग भी हिन्दी में चल पड़े हैं। ऊपर के सारे उदाहरणों में 'वह' ऐसा ही है। पुराना प्रयोग था: 'जिस विद्यार्थी को इनाम मिला, बहुत ग़रीब है।' इसके स्थान पर कुछ लोग कहते हैं 'विद्यार्थी जिसे इनाम मिला, बहुत ग़रीब है।' किन्तु कुछ लोग 'The student who···' के 'द' के प्रभाव से 'वह विद्यार्थी जिसे इनाम मिला, बहुत ग़रीब है' कहते हैं। यह 'वह' 'द' का अनुवाद है।

'मैं' के स्थान पर 'वह'—अंग्रेज़ी में कथन (speech) दो प्रकार के होते हैं: प्रत्यक्ष (direct), अप्रत्यक्ष (indirect)। प्रत्यक्ष के 'मैं' के स्थान पर, अन्य पुरुष में, अप्रत्यक्ष कथन में 'वह' का प्रयोग होता है। हिन्दी का अपना प्रयोग 'मैं' का है। अब अंग्रेज़ी के प्रभाव से हिन्दी में भी 'वह' का प्रयोग ही अधिक प्रचलित होता जा रहा है: 'राम ने कहा कि वह जाएगा।' हिन्दी की परम्परा के अनुसार होगा—'राम ने कहा कि मैं जाऊँगा।'

या···या—यह प्रयोग अंग्रेज़ी 'आइदर···ऑर' पर आधारित है। पुराने प्रयोग 'राम या मोहन' के स्थान पर 'या राम या मोहन' अथवा 'या तो राम या मोहन' जैसे प्रयोग आज बहुत सामान्य हैं। संस्कृत में 'या' के स्थान पर 'वा' मिलता है। किन्तु उल्लेख्य है कि 'वा' वाक्य के आरम्भ में कभी नहीं आता। साथ ही 'च' की तरह या तो यह एक से अधिक बार (रामो वा लक्ष्मणो वा—राम या लक्ष्मण) या बाद में (रामो लक्ष्मणो वा) आता है। प्रश्न उठता है कि हिन्दी का पुराना प्रयोग 'राम या मोहन' फिर कहाँ से आया? मेरे विचार में यह प्रयोग फ़ारसी का प्रभाव है। फ़ारसी में हिन्दी की तरह ही (राम या मोहन; राम बूद (था) या मोहन) प्रयोग करते हैं।

और—फ़ारसी प्रभाव के सम्बन्ध में 'और' का उल्लेख किया जा चुका है। उक्त प्रकार का प्रयोग हिन्दी में आया तो फ़ारसी के प्रभाव से, किन्तु जैसा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकेत किया जा चुका है, आधुनिक हिन्दी में उक्त रूप में इसके सुव्यवस्थित एवं निश्चित प्रयोग के पीछे अंग्रेज़ी का भी हाथ है। किन्तु फ़ारसी का हाथ कदाचित् अधिक है। कई शब्द हों तो 'और' का प्रयोग अन्त्य (क़लम, पेंसिल और काग़ज़) शब्द के पूर्व फ़ारसी में भी होता था और फ़ारसी से यह हिन्दी में आया, किन्तु इसका सुव्यवस्थित प्रयोग अंग्रेज़ी प्रचार के बाद मिलता है। अतः मेरे विचार में इसमें अंग्रेज़ी प्रभाव का हाथ अधिक है। 'और' कभी-कभी अंग्रेज़ी में वाक्य के प्रारम्भ में आता है, जब वाक्य पूर्ववर्ती वाक्य से विशेष सम्बन्धित दिखाना हो। हिन्दी' में भी यह प्रवृत्ति है जो अंग्रेज़ी की देन है। कभी-कभी कहानी आदि में प्रारम्भ में ही प्रयुक्त 'और' भी यही है : और सतीश ज़ोर-ज़ोर से गालियाँ दे रहा था···।

विरामचिह्न--आज की अत्यधिक संश्लिष्ट वाक्य-रचना में विरामचिह्न बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। हमारे यहाँ पहले केवल एक पाई (।), दो पाई (।।) या इन्हीं के समानार्थी कुछ अन्य चिह्नों का ही विरामचिह्न के रूप में प्रयोग होता था। हिन्दी में फ़ोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के बाद अंग्रेज़ी के माध्यम से अन्य विरामचिह्न आए। १९वीं सदी की पांडुलिपियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि विरामचिह्न के सम्बन्ध में जानकारी तो लोगों को १९वीं सदी के अन्तिम चरण में प्राप्त हो गई थी, किन्तु इनका व्यवस्थित प्रयोग २०वीं सदीं में प्रारम्भ हुआ। विराम-चिह्न हमारे यहाँ अंग्रेज़ी से आए, अतः उनके प्रयोग में वृद्धि के साथ-साथ जाने या अनजाने रूप में अंग्रेज़ी वाक्यों जैसी रचना, विराम-चिह्नों के व्यवस्थित प्रयोग की दृष्टि से होने लगी। इस प्रकार विराम चिह्नों के माध्यम से भी कुछ प्रभाव पड़ा।

मुहावरे--मुहावरे भाषा में बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। उनके कारण भाषा की अभिव्यक्ति में आकर्षण एवं गाम्भीर्य आते हैं। डॉ० बाहरी ने कहा है (Persian Influence on Hindi, १९६०, इलाहाबाद, पृ० ५९) कि 'संस्कृत में मुहावरे बहुत कम थे। उन लोगों का सीधे शब्दों द्वारा अभिव्यक्ति में विश्वास था।' डॉ० बाहरी के इस मत से मेरी विनम्र असहमति है। भारतीय कविता में लक्षणा तथा व्यंजना का बहुत सहारा लिया गया है और ये लाक्षणिक एवं व्यंजनात्मक प्रयोग मुहावरों से ओतप्रोत हैं। जहाँ अभिधामूलक काव्य है, उसी को सीधे सादे शब्दों या कोशार्थ पर आधारित मुहावराशून्य काव्य कहा जा सकता है। यहाँ इस विषय को विस्तार से लेना सम्भव नहीं है, किन्तु वैदिक तथा लौकिक संस्कृत के कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं: मधुजिह्व (मधुरभाषी), तृणम्मन्ये (नाचीज़ समझना), हिरण्यवर्ण (निष्कपट), लोम्नि लोम्नि (रोम-रोम में), अन्नमिव मन्यते (सामान्य समझना), न इव (नहीं के बराबर), कुंभीम् पर्यादधाति (दूसरे की हँड़िया पर आशा लगाना), द्यून् भूषति (दिनों की शोभा बढ़ाना), पृष्णी अपि श्रृण (कमर तोड़ना), मृत्यु-मुखात्प्रमुच्यते (मौत के मुँह से छूटना), चक्षुर्गच्छति (दृष्टि जाना), खं मुष्टिनापि जिघृक्षन्ति (मुट्ठी में आसमान बन्द करना), प्राणस्य प्राण (प्राणों के प्राण), गाढ-प्रसुप्तः (गाढ़ी नींद में), पुष्पिताम् वाचम् (दिखाऊ बात) आदि। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाएँ भी मुहावरों से भरी-पूरी हैं : भणम्मुद्दिआये जीहाये (खुली जीभ से कहना), मुहेसुमुद्दा (मुँह पर मुहर), मक्कडुघुग्घिऊ (बन्दर-घुड़की), डम्बरइं करेइ (आडम्बर करना) आदि। हिन्दी में आदिकाल से ही मुहावरों का समुचित प्रयोग मिलने लगता है। मुहावरों का सर्वाधिक प्रयोग सूर, तुलसी, प्रेमचन्द तथा मैथिली-शरण गुप्त ने किया है। इस प्रकार हमारी पूरी साहित्यिक परम्परा में मुहावरों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समुचित प्रयोग हुआ है। यों अन्य क्षेत्रों की भाँति मुहावरे के क्षेत्र में भी हिन्दी कई भाषाओं, जैसे पश्तो, तुर्की, फ़ारसी तथा अंग्रेज़ी से प्रभावित हुई है। इन भाषाओं से गृहीत कुछ मुहावरे ये हैं—

पश्तो—टस-से-मस न होना, पानी पर लाठी मारना, तहस-नहस करना, दम-दिलासा देना, हाड़े खाना (प्रार्थना करना), आदि।

तुर्की—पाँचों उँगली घी में होना, डंडे खाना, मुँह से लार टपकना, आँख लड़ना, बाल खिचड़ी होना, आदि।

फारसी : दाँतों तले उँगली दबाना (अंगुश्त ब दन्दाँ), उंगली उठाना (अंगुश्त निहादन), अक़्ल गुम होना (अक़्ल गुम शुदन), कटिबद्ध होना, कमर कसना, कमर बाँधना (कमर बस्तन), रास्ते पर आँखें बिछाना (चश्म ब राह दाश्तन), ख़ून करना (ख़ून करदन), सिर-आँखों पर (चस्म बर सर), पानी-पानी होना (आब शुदन), मुँह में पानी आना (आब दर दहान आमदन), कमर सीधी करना (कमर सीख करदन), बाज़ आना (बाज़ आमदन), आँखें चार या दो-चार होना (चश्म-चहार या दो-चहार शुदन), आँख दिखाना (चश्म नमूदन), तारे गिनना (अख़्तर शुमुर्दन), हाथ से जाना (अज़ दस्त रफ्तन), जान हथेली पर रखना (जान बर कफ़ निहादन), आँख मारना (चश्म ज़दन), जान की बाज़ी लगाना (बाज़ि-ए-जान कर-दन), दाँत दिखाना (दन्दान नमूदन), ज़बान-दराज़ी करना (ज़बान दराज़ करदन), हाथ झाड़ना (दस्त अफ़शान्दन), आग बरसना (आतिश बारीदन), हाथ आना (दस्त आवुर्दन), ज़बान पर लाना (बर ज़बान आवुर्दन), पानी जाना (आब रफ्तन), जान से हाथ धोना (दस्त अज़ जान शुस्तन), ज़बान देना (ज़बान दादन), सर करना (सर करदन), हाथ पर हाथ धरे बैठना (दस्त बर दस्त निशस्तन), तेवर बदलना (तेवर तब्दील करदन), हाथ मलना (दस्त गज़ीदन), आस्तीन चढ़ाना (आस्तीन बर चीदन), दाँत खट्टे करना (दंदाँ तुर्श करदन), हाथ खींचना (दस्त कशीदन), हाथ-पैर मारना (दस्तवपा जदन), आसमान में सूराख करना (आसमान रा सूराख करदन), ज़बान खोलना (ज़बान कुशादन)।

अंग्रेज़ी—प्रकाश डालना (throw light), दृष्टि रखना (keep an eye on), कलेजा मुँह को आना (have one's heart in one's mouth), आँखों में धूल झोंकना (throw dust into one's eyes), दो रायें न होना (निश्चित होना; जैसे (there can't be two opinions) इस सम्बन्ध में दो रायें नहीं हो सकतीं), रंगे हाथों (red handed), रिकार्ड तोड़ना (break the record), खून का प्यासा होना (to get blood thirsty), कीचड़ उछालना (to throw mud), सफ़ेद झूठ (white lie), सफ़ेद हाथी (white elephant), दायाँ हाथ (right hand), कठिन ज़िन्दगी (hard life, पहाड़ों की ज़िन्दगी बड़ी कठिन है), विहंगम दृष्टि (birds eye view, 'सिंहावलोकन' अपना पुराना प्रयोग है); क ख ग जानना (know a b c), आग में ईंधन डालना (To add fuel to flame, 'आग में घी डालना' पुराना प्रयोग है) हवाई किले बनाना (build castle in the air, 'मन के लड्डू खाना' पुराना प्रयोग है), स्वर्ण अवसर (golden opportunity), गहरा सम्बन्ध (deep relation), घड़ियाली आँसू, मगरमच्छ के आँसू (crocodile's tear)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकोक्ति—लोकोक्तियाँ समाज के अनुभवों के सूत्रलेख हैं। बेकन ने ठीक ही कहा है कि किसी राष्ट्र की प्रतिभा, विदग्धता एवं अंतरात्मा का दर्शन उसकी कहावतों के द्वारा ही होता है। संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य में लोकोक्तियों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। कुछ उदाहरण हैं : अग्निनाग्निः समिद्ध्यते (आग से आग भड़कती है), चक्षुर्वै सत्यम् (आँख का देखा सच होता है), अद्यैव कुरु यच्छ्रेयः (श्रेयस्कर कार्य आज ही करो), आम्रं छित्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत्तु का (आम को काट नीम को कौन सेवे), ज्येष्ठः पितृसमो भ्राता (बड़ा भाई बाप बराबर), मित्तो हवे सत्तपदेन होति (सात कदम साथ-साथ चलने पर आदमी मित्र हो जाता है), सीहो न जुप्पइ हलम्मि (सिंह हल में नहीं जोता जाता), इत्यादि। हिन्दी में अनेक लोकोक्तियाँ संस्कृत, पश्तो, तुर्की, फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि से आई हैं।

संस्कृत—बहुत-सी संस्कृत लोकोक्तियाँ अपने मूल रूप में हिन्दी में प्रयुक्त होती हैं : अति सर्वत्र वर्जयेत्, मुंडे-मुंडे मतिर्भिन्ना, विनाभ्यासे विषम् विद्या, प्रथम ग्रासे मक्षिकापातः, विनाशकाले विपरीत बुद्धिः, मक्षिका स्थाने मक्षिका, मौनं सर्वार्थ साधनम्, लोभः पापस्य कारणम्, वचने कि दरिद्रता, सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः, शुभस्य शीघ्रम्, मूलं नास्ति कुतः शाखा। संस्कृत की अनेक लोकोक्तियाँ हिन्दी रूप में भी हिन्दी में प्रयुक्त होती हैं, किन्तु यह कहना कठिन है कि वे पालि, प्राकृत, अपभ्रंश होते हिन्दी को मिली हैं या उन्हें हिन्दी ने सीधे संस्कृत से अनूदित करके ली हैं। जैसे 'जितना तिल उतना तेल'—'यावत्तिलं तथा तैलम्'। कुछ संस्कृत लोकोक्तियाँ हिन्दी में ऐसी भी हैं जिनका कुछ भाग संस्कृत है तथा कुछ नहीं : 'आहारे व्यवहारे लज्जा न कारे'।

पश्तो—घोड़े की लात घोड़ा सहता है, घोड़े के नाल लग रहे थे, मेंढकी ने भी टाँग उठा दी, आसमान का थूका मुँह पर आता है, लोहा तपे नहीं तो बढ़े कैसे, सौ सुनार की एक लुहार की, पहले जान फिर जहान, ऊँट रे ऊँट तेरी कौन-सी कल सीधी, ताली दोनों हाथ से बजती है, दूध का जला मट्ठा फूंककर पीता है।

तुर्की—पाँचों उंगलियाँ बराबर नहीं होतीं, नाम बड़ा दर्शन थोड़े, मुँह से निकली बात कमान से छूटा तीर, आदि।

फ़ारसी—फ़ारसी की अनेक कहावतें तो प्रायः सामान्य ध्वन्यात्मक परिवर्तन के साथ हिन्दी में अपने मूल रूप में प्रयुक्त होती हैं : हिम्हते मर्दां मददे खुदा, माले मुफ्त दिले बेरहम, नीम हकीम खतर-ए-जान, तंदुरुस्ती हज़ार नेमत, देर आयद तुरुस्त आयद, तुख्म तासीर सुहबत असर, नीम मुल्ला खतर-ए-ईमान, एक जान दो कालिब। ऐसी कहावतें भी काफ़ी हैं जो कुछ अनूदित होकर हिन्दी में व्यवहृत होती हैं : मेहमान तीन दिन तक आदर पाता है (मेहमान अज़ीज अस्त मगर ता सेह रोज़), तेतो पाँव पंसारिए जेती लाँबी सौर (व अन्दाज़े गलीम पा दराज़ कुन; यह कहावत तुर्की में भी है जो फ़ारसी प्रभाव है), बद अच्छा बदनाम बुरा (बद बेहतर न बदनाम), एक अनार सौ बीमार (यक अजार सद बीमार), मुल्ला की आवाज़ (दौड़ भी) मस्जिद तक (सदा-ए-मुल्ला ता मस्जिद), नादान दोस्त से दानाँ दुश्मन अच्छा (दुश्मन-ए-दाना बेह अज़ दोस्ते नादाँ), खोदा पहाड़ निकली चुहिया (कोह कन्दन, व मूश (कह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

=तिनका, भी प्राय: चलता है) बरावुर्दन), दूर के ढोल सुहावने (आवाज़े दुहुल अज़ दूर ख़ुश मी नुमायद), आदि।

अंग्रेज़ी--आवश्यकता आविष्कार की जननी है (Necessity is the mother of invention), एक हाथ से ताली नहीं बजती (It requires two hands to clap), रोम एक दिन में नहीं बना था (Rome was not built in a day), भूंकनेवाले काटते नहीं (Barking dogs seldom bite), एक अंडा वह भी गन्दा (But one egg, that too addled), प्रेम और युद्ध में सब कुछ उचित है (All is fair in love and war), बेकार से बेगार भली (Forced labour is better than idleness), योग्यता के लिए सिफ़ारिश की दरकार नहीं (Merit requires no recommendation), खाली दिमाग़ शैतान का घर (An empty mind is devil's workshop), दीवारों के कान होते हैं (Walls have ears)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १४

देवनागरी लिपि और अंक

भारत में लिपि का प्रचार कब हुआ और उसका मूल स्रोत कहाँ था, इसे लेकर विद्वानों में मतभेद है। अधिकांश यूरोपीय विद्वान् यह मानते रहे हैं कि लिपि का प्रयोग और विकास भारत की अपनी चीज़ नहीं है, साथ ही यहाँ लिपि का प्रयोग काफ़ी बाद में हुआ है। किन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। हमारे यहाँ पाणिनि की अष्टाध्यायी में लिपि, लिपिकर, आदि शब्द हैं, जिससे यह स्पष्ट पता चल जाता है कि उनके समय (५वीं सदी ई० पू०) तक लिखने का प्रचार अवश्य हो चुका था। इसके अतिरिक्त भाषा के व्याकरणिक विश्लेषण की जो हमारी समृद्ध परंपरा मिलती है, वह भी लेखन के बिना संभव नहीं। यों तो वैदिक साहित्य (मुख्यतः अथर्ववेद में) भी लेखन के होने के आभास यत्र-तत्र मिलते हैं। ऐसी स्थिति में यह मानना पड़ेगा कि भारत में लेखन का ज्ञान और प्रयोग बहुत बाद का नहीं है, जैसा कि विदेशी विद्वान् मानते रहे हैं।

भारत में प्राचीन लिपियाँ दो मिलती हैं : **ब्राह्मी, खरोष्ठी**। इनमें **खरोष्ठी** तो विदेशी लिपि थी जिसका प्रचार पश्चिमोत्तर प्रदेश में था और जो उर्दू लिपि की तरह दायें से बायें को लिखी जाती थी। इसका विकास सामी आरमेइक लिपि से हुआ था। यह लिपि बहुत वैज्ञानिक और पूर्ण लिपि न होकर मात्र कामचलाऊ लिपि थी। ब्राह्मी लिपि अपनी राष्ट्रीय लिपियों तथा कुछ विदेशी लिपियों की जननी है।

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति और उसका विकास

ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति विवादास्पद है : (१) बूलर तथा वेबर आदि इसे विदेशी लिपि से निकली मानते हैं। उदाहरण के लिए, बूलर ने यह दिखाने का यत्न किया है कि ब्राह्मी के २२ अक्षर उत्तरी सेमेटिक लिपियों से लिए गए तथा शेष उन्हीं के आधार पर बना लिए गए। (२) एडमर्ड थामस ने द्रविड़ों को इस लिपि का बनानेवाला कहा है। (३) शाम शास्त्री पूजा में प्रयुक्त सांकेतिक चिह्नों से इसका विकास मानते थे। (४) कनिंघम आदि के अनुसार आर्यों ने किसी प्राचीन चित्रलिपि के आधार पर इस लिपि को बनाया था। (५) मेरा अनुमान है कि हड़प्पा-मोहनजोदड़ो में प्राप्त लिपि से इसका विकास हुआ है। १९५५ में मैंने दोनों की आंशिक तुलना की थी और अपनी पुस्तक 'भाषाविज्ञान' (दे० 'लिपि' शीर्षक अध्याय में) में सचित्र प्रकाशित भी किया था। ब्राह्मी की उत्पत्ति के बारे में यहाँ पाँच मत दिए गए हैं। इस संबंध में तीन-चार मत और भी हैं, किंतु वास्तविकता यह है कि समवेततः किसी के भी पक्ष में इतने प्रमाण नहीं हैं कि सर्वसम्मति से उसे स्वीकारा जा सके। ऐसी स्थिति में ब्राह्मी की उत्पत्ति का प्रश्न अभी विवादास्पद ही माना जाएगा। भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी का प्रयोग ५वीं सदी ई० पू० से लेकर लगभग ३५० ई० तक होता रहा। इसके बाद इसकी दो शैलियों का विकास हुआ : (१) **उत्तरी शैली**,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) **दक्षिणी शैली**। उत्तरी शैली से चौथी सदी में गुप्त लिपि का विकास हुआ, जो ५वीं सदी तक प्रयुक्त होती रही। गुप्त लिपि से छठी सदी में कुटिल लिपि विकसित हुई जो ८वीं सदी तक प्रयुक्त होती रही। इस कुटिल लिपि से ही ९वीं सदी के लगभग नागरी के प्राचीन रूप का विकास हुआ, जिसे प्राचीन नागरी कहते हैं। प्राचीन नागरी का क्षेत्र भारत है, किन्तु दक्षिणी भारत के कुछ भागों में भी यह मिली है। दक्षिणी भारत में इसका नाम 'नागरी' न होकर 'नंदिनागरी' है। प्राचीन नागरी से ही आधुनिक नागरी, गुजराती, महाजनी, राजस्थानी, कैथी, मैथिली, असमिया, बँगला आदि लिपियाँ विकसित हुई हैं। कुछ लोग कुटिल से ही प्राचीन नागरी तथा शारदा के अतिरिक्त एक और प्राचीन लिपि विकसित मानते हैं, जिससे आगे चलकर असमिया, बँगला, मनीपुरी आदि पूर्वी अंचल की लिपियाँ विकसित मानी जाती हैं। प्राचीन नागरी से १५-१६वीं सदी में आधुनिक नागरी विकसित हुई।

नागरी लिपि

नाम—यह नाम कैसे पड़ा, इस बात को लेकर विवाद है। कुछ मत ये हैं: (१) गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा विशेष रूप से प्रयुक्त होने के कारण यह 'नागरी' कहलाई। (२) प्रमुख रूप से नगरों में प्रचलित होने के कारण इसका नाम 'नागरी' पड़ा। (३) कुछ लोगों के अनुसार ललितविस्तर में उल्लिखित 'नाग लिपि' ही 'नागरी' है, अर्थात् 'नाग' से 'नागर' शब्द का संबंध है। (४) तान्त्रिक चिह्न 'देवनागर' से साम्य के कारण इसे 'देवनागरी' और फिर 'नागरी' कहा गया। (५) 'देवनगर' अर्थात् 'काशी' में प्रचार के कारण यह 'देवनागरी' कहलाई। (६) एक अन्य मत के अनुसार मध्ययुग में स्थापत्य की एक शैली 'नागर' थी, जिसमें चतुर्भुजी आकृतियाँ होती थीं। दो अन्य शैलियाँ 'द्रविड़' (अष्टभुजी या सप्तभुजी) तथा 'वेसर' (वृत्ताकार) थीं। नागरी लिपि में चतुर्भुजी अक्षरों (प, भ, भ, ग) के कारण इसे नागरी कहा गया। उपर्युक्त मतों में कोई भी बहुत साधार नहीं है, अतः 'नागरी' नाम की व्युत्पत्ति का प्रश्न अभी तक अनिर्णीत है।

नागरी लिपि का विकास

नवीं सदी के अब तक के नागरी लिपि के विकास पर अभी तक कोई भी विस्तृत कार्य प्रकाश में नहीं आया। इन पंक्तियों के लेखक ने संक्षेप में 'हिन्दी भाषा' में विचार किया है। यहाँ उसी आधार पर ब्राह्मी से नागरी का विकास अत्यंत संक्षेप में दिया जा रहा है। विकास का चार्ट 'हिन्दी भाषा' से देखा जा सकता है। नागरी लिपि के इस लगभग एक हज़ार वर्षों के जीवन-काल में यों तो प्रायः सभी अक्षरों के स्वरूप में न्यूनाधिक रूप में परिवर्तन हुए हैं, किन्तु इन परिवर्तनों के अतिरिक्त भी कुछ उल्लेख्य बातें नागरी लिपि में आई हैं, जिनकी ओर यहाँ संकेत किया जा सकता है: (क) सबमें महत्त्वपूर्ण बात है फ़ारसी लिपि का प्रभाव। नागरी में नुक्ते या बिन्दु का प्रयोग फ़ारसी लिपि का ही प्रभाव है। फ़ारसी लिपि मूलतः बिन्दु-प्रधान लिपि कही जा सकती है, क्योंकि उसके अनेक वर्ण-चिह्न (जैसे बे-पे-ते-से, रे-ज़े-ड़े, दाल-ज़ाल, तोय-ज़ोय, स्वाद-ज़्वाद, ऐन-ग़ैन, सीन-शीन) बिन्दु के कारण ही उसमें अलग-अलग हैं। नागरी लिपि में ऐसा कोई अंतर प्रायः नहीं रहा है। हाँ, फ़ारसी से प्रभाव ग्रहण करके कुछ परंपरागत तथा नवागत ध्वनियों के लिए नागरी में भी नुक़्ते का प्रयोग होने लगा है। ड-ड़, ढ-ढ़, क-क़, ख-ख़, ग-ग़, ज-ज़, फ-फ़। यही नहीं,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्ययुग में कुछ लोग य-प दोनों को य-जैसा तथा व-ब को व लिखने लगे थे। इस भ्रम से बचने के लिए कैथी लिपि में तो नियमित रूप से तथा कभी-कभी नागरी में भी बिंदु का प्रयोग होता रहा है। (ख) नागरी लिपि पर कुछ प्रभाव मराठी लिपि का भी पड़ा है। पुरानें ऋ, ळ आदि के स्थान अ, ल; या आ, ओ, अु आदि रूप में सभी स्वरों के लिए अ का ही कुछ लोगों द्वारा प्रयोग वस्तुतः मराठी का प्रभाव है। (ग) कुछ लोग नागरी लिपि शिरोरेखा के बिना लिखते हैं। यह गुजराती लिपि का प्रभाव है। गुजराती लिपि शिरोरेखा-विहीन लिपि है। (घ) अंग्रेज़ी के पूर्ण प्रचार के बाद ऑफ़िस, कॉलिज जैसे शब्दों में ऑ को स्पष्टतः लिखने के लिए नागरी लिपि में ऑ का प्रयोग होने लगा है। इसका चन्द्राकार अंश तो पुराने चन्द्रबिन्दु से गृहीत है, किन्तु यह प्रयोग अंग्रेज़ी प्रभाव से आया है। (ङ) नागरी-लेखन में पहले मुख्यतः केवल एक पाई या दो पाइयों का या कभी-कभी वृत्त का विराम के रूप में प्रयोग करते थे। इधर अंग्रेज़ी विरामचिह्नों ने हमें प्रभावित किया है और पूर्ण विराम को छोड़कर सभी चिह्न हमने अंग्रेज़ी से लिए हैं। यों कुछ लोग तो पूर्णविराम के स्थान पर भी पाई न देकर अंग्रेज़ी की तरह बिन्दु का प्रयोग करते हैं। (च) उच्चारण के प्रति सतर्कता के कारण कभी-कभी ह्रस्व ए, ह्रस्व ओ के द्योतन के लिए अब ऍ, ऑ का प्रयोग भी होने लगा है। इस प्रकार फ़ारसी, मराठी, गुजराती, अंग्रेज़ी तथा ध्वनियों के प्रति सतर्कता ने भी नागरी लिपि को प्रभावित, फलतः न्यूनाधिक रूप में परिवर्तित और विकसित किया है।

वैज्ञानिक लिपि के गुण और देवनागरी

विश्व की कोई भी लिपि सभी दृष्टियों से पूर्णतः वैज्ञानिक नहीं है, किंतु पूर्णतः वैज्ञानिक लिपि की कल्पना की जा सकती है और उसके मुख्य गुण गिनाए जा सकते हैं : (१) वैज्ञानिक लिपि को वर्णनात्मक होना चाहिए, आक्षरिक नहीं। अर्थात् उसके लिपिचिह्न भाषा में प्रयुक्त हर व्यंजन तथा हर स्वर के लिए अलग-अलग होने चाहिए। उल्लेख्य है कि नागरी में क, ख, ग आदि व्यंजन-चिह्नों में व्यंजन तथा स्वर मिले हुए हैं, अर्थात् यह वर्णनात्मक नहीं है, आक्षरिक है। (२) लिपि में भाषा-विशेष में प्रयुक्त हर ध्वनि (स्वर, व्यंजन) के लिपि-चिह्न होने चाहिए—न कम, न अधिक। नागरी में दंतोष्ठ्य व के लिए चिह्न नहीं है। (३) एक चिह्न से केवल एक ध्वनि व्यक्त होनी चाहिए, एकाधिक नहीं। नागरी में व से दो ध्वनियाँ व्यक्त होती हैं। (४) एक ध्वनि के लिए केवल एक लिपिचिह्न होना चाहिए, एकाधिक नहीं। हिन्दी भाषा की दृष्टि से एक ही ध्वनि के लिए नागरी में रि-ऋ, श-ष चिह्न आज हैं। (५) लेखन में लिपिचिह्नों को उसी क्रम से आना चाहिए जिस क्रम से उनका उच्चारण किया जाता हो। नागरी में इ, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ की मात्राएँ यथाक्रम नहीं आतीं। (६) दो चिह्नों को एक पढ़े जाने का भ्रम लिपि में नहीं होना चाहिए। नागरी में है : घ-ध, म-भ, रा-ण (आधा ण), ख-रव में भ्रम की गुंजाइश है। इनके अतिरिक्त लेखन, टंकण तथा मुद्रण आदि की व्यावहारिक दृष्टि से भी कई बातें कही जा सकती हैं।

नागरी लिपि में सुधार

नागरी लिपि में सुधार के पूरे इतिहास के लिए प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की पुस्तक 'हिन्दी भाषा' का 'नागरी लिपि' शीर्षक अध्याय देखा सकता है। यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल संक्षेप में कुछ बातें ली जा रही हैं। यों तो नागरी लिपि विश्व की अनेक लिपियों की तुलना में वैज्ञानिक है, किन्तु उसमें काफ़ी कमियाँ भी हैं और सुधार की काफ़ी गुंजाइश है। (१) वैज्ञानिक लिपि की पहली शर्त है कि उसे वर्णनात्मक होना चाहिए, आक्षरिक नहीं। नागरी लिपि आक्षरिक है। वस्तुतः यह कमी नागरी की प्रकृति में है, उसे थोड़े-बहुत परिवर्तन से सुधारना कठिन है। हाँ, वैज्ञानिक लिपि में अपेक्षित अन्य गुणों की दृष्टि से नागरी को सुधारा जा सकता है। (२) वैज्ञानिक लिपि में एक ध्वनि के लिए एक ही चिह्न होना चाहिए, किन्तु नागरी में एक ध्वनि के लिए एकाधिक चिह्न हैं : र, ं, ँ, –; ल = ळ; श-श; अ-अ; ण-ण; त्र-त्र आदि। इसमें र, ल, श, अ, ण को लेकर शेष को छोड़ देने पर यह कमी दूर हो सकती है। (२) आदर्श या वैज्ञानिक लिपि में उन सभी ध्वनियों के लिए अलग-अलग अक्षर होने चाहिए जो उस भाषा में हों, जिसे लिखने में लिपि प्रयुक्त होती हो। इस दृष्टि से नागरी की समस्या थोड़ी अलग है, क्योंकि यह किसी एक भाषा के लिए नहीं, अपितु संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, मराठी, नेपाली तथा सिंधी आदि कई भाषाओं के लिए प्रयुक्त हो रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि इन सभी भाषाओं के ध्वनिग्रामों का निर्धारण करके नागरी में रखे जाने चाहिए। (३) वैज्ञानिक लिपि में अक्षर उसी क्रम से लिखे जाने चाहिए, जिस क्रम से वे बोले जायँ। नागरी लिपि में यों तो उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ की मात्राएँ भी इस दृष्टि से अवैज्ञानिक हैं, क्योंकि वे दाईं ओर न दी जाकर ऊपर-नीचे दी जाती हैं, किन्तु यदि उन्हें छोड़ भी दें तो कम-से-कम 'इ' की मात्रा अवश्य ही परिवर्तित होनी चाहिए; क्योंकि यह अपने स्थान से कभी एक, कभी दो, कभी तीन स्थान पहले (कि, प्रिय, चन्द्रिका) लिखी जाती है। उसके लिए कई सुझाव जैसी ही, इ ई दोनों को लिखना। अंतर के लिए इ के लिए प्रयुक्त ि की खड़ी पाई को छोटा कर देना आदि आए हैं (देखिए 'हिन्दी भाषा')। उनमें किसी को भी माना जा सकता है। 'र' (क्रम, कर्म, ट्रेन) के सम्बन्ध में भी ऐसी गड़बड़ी है। इसके लिए 'र' को ले लेना तथा शेष को छोड़ देना उचित होगा। (४) वैज्ञानिक लिपि में अक्षरों में समानता के कारण भ्रम की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए; हिन्दी में खाना-रवाना, अराड़ा-अराणा अर्थात् ख-रव, रा तथा ण में प्रायः भ्रम होता है। यह भ्रम ख के नीचे के भागों को मिला देने तथा 'ण' को अपना लेने एवं ण को छोड़ देने से दूर हो सकता है। भ-म, ध-घ में भी कभी-कभी भ्रम हो जाता है। इससे बचने के लिए भ तथा ध को घुंडीदार (ध, भ) लिखना चाहिए। (५) नागरी में संयुक्त व्यंजन स्वतन्त्र अक्षर जैसे हैं (श्र, ज्ञ, क्ष, त्र, द्य आदि)। इन्हें छोड़ 'श्र' आदि रूपों में संयुक्त व्यंजन लिखे जा सकते हैं। (६) वैज्ञानिक लिपि में लेखन की एकरूपता भी आवश्यक है। हिन्दी में शिरोरेखा, बिन्दी (क़ानून-कानून, अख़बार-अखबार, गरीब-गरीब फ़ायदा-फायदा, ज़रूर-जरूर), चन्द्रकार (हां-हाँ) तथा अनुस्वार (पम्प-पंप) के प्रयोग में एकरूपता नहीं है। इस संबंध में एक पद्धति स्वीकार कर लेनी चाहिए।

नागरी अंक

उर्दू, रोमन आदि विदेशी लिपियों को छोड़कर, नागरी तथा शेष सभी लिपियों (बँगला, गुजराती, आदि) के अंक ब्राह्मी के अंकों से विकसित हैं। इन अंकों की दो शैलियों के प्रयोग मिलते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीन शैली

इस शैली का प्रचार अशोक के समय से लेकर ४थी सदी तक था। इस शैली के अंक अपनी आकृति में तो नवीन शैली से भिन्न थे ही, एक मुख्य और महत्त्वपूर्ण अंतर यह था कि पहले लोगों को शून्य का पता नहीं था, अतः उसका व्यवहार नहीं होता था। इसका परिणाम यह था कि १ से ९ तक की संख्याओं की तरह ही १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९०, १०० आदि के लिए अलग-अलग चिह्न थे। अर्थात् १, २, ३ आदि के साथ शून्य रखकर ये संख्याएँ नहीं लिखी जाती थीं।

हमारे अंकों की उत्पत्ति विवादास्पद है : (१) प्रिंसेप का कहना है कि ये अंक उन शब्दों के प्रथम अक्षर से विकसित हैं जो शब्द इन अंकों को व्यक्त करते थे। अर्थात् 'एक' के 'ए' से १ का विकास हुआ है। बूलर ने इस मत को असमीचीन कहा है। (२) कुछ लोग इन्हें विदेशी अंकों से विकसित मानते रहे हैं, किन्तु इस अनुमान में भी कोई दम नहीं है। मेरा अपना विचार है कि एक, दो, तीन का विकास तो एक अँगुली, दो अँगुली, तीन अँगुली के चिह्न से हुआ है। शेष सीधी और वक्र रेखाओं से यादृच्छिक ढंग से बना लिए गए हैं। इस मेरे अनुमान का आधार अशोककालीन अंक-चिह्न है, जो इस पुस्तक में दिए गए प्रारंभिक अंक-चिह्नों में देखे जा सकते हैं -

नवीन शैली

अंकों की नवीन शैली का प्रयोग ५वीं सदी से होने की संभावना है, यद्यपि शिलालेख आदि में प्राचीन शैली का प्रयोग इसके बाद तक भी चलता ही रहा। 'शून्य' भारतीय गणितज्ञों की अभूतपूर्व खोज थी जो ४थी-५वीं सदी में हुई होगी। हमारे लिए यह गर्व का विषय है कि पूरे विश्व को शून्य की संकल्पना देने का श्रेय भारत का है। भारतीयों द्वारा शून्य के प्रयोग ने पूरे विश्व के गणितीय ज्ञान में क्रांति

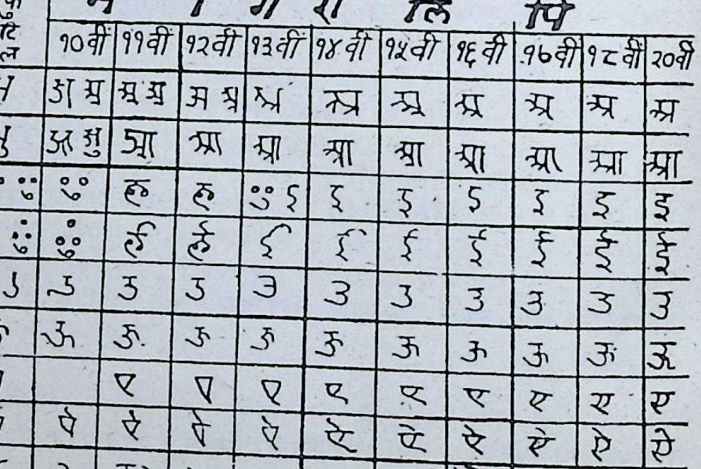

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ला दी। भारत से नवीन शैली का प्रयोग अरबों ने सीखा और फिर उनसे यूनान ने और फिर यूनानियों से पूरे यूरोप ने। प्राचीन शैली में १०, २०, ३० आदि के लिए जो अलग चिह्न थे, नवीन शैली में उन्हें छोड़ दिया गया और शून्य की सहायता से १, २, ३, आदि से संख्याएँ लिखी जाने लगीं।

अब भारत नागरी अंकों को छोड़कर अंतर्राष्ट्रीय अंकों को अपनाता जा रहा है।

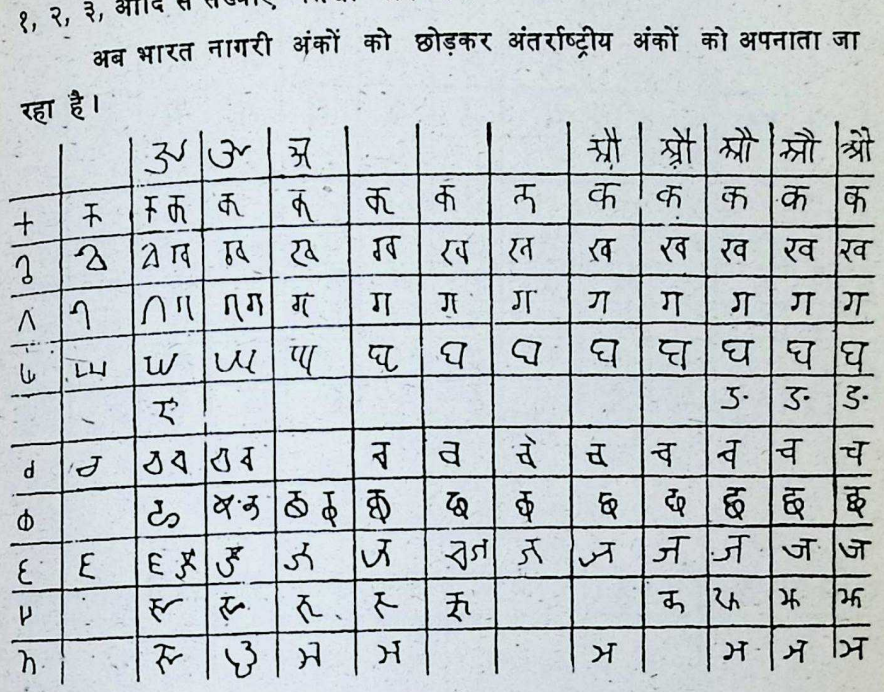

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

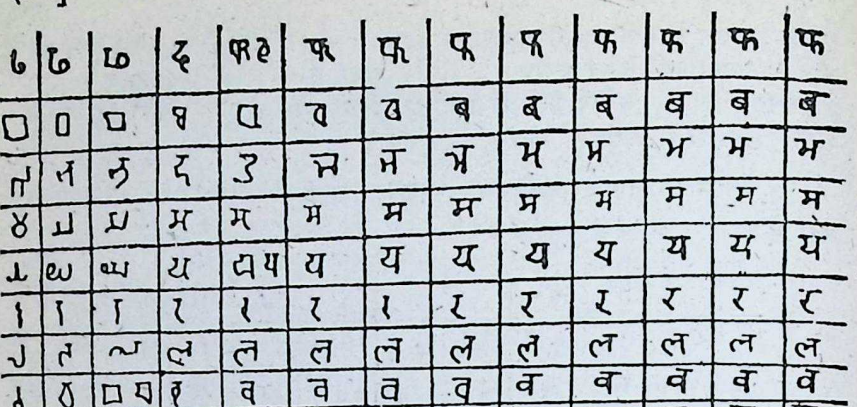

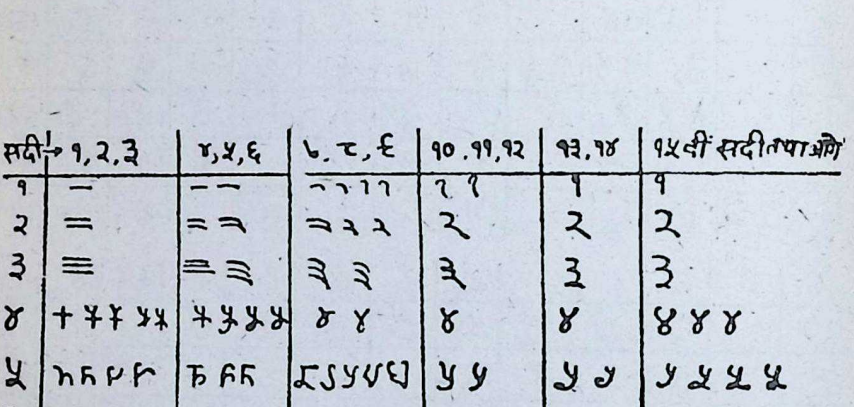

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय खण्ड

हिन्दी भाषा की संरचना

१५—ध्वनि-संरचना
१६—रूप-संरचना
१७—वाक्य-संरचना
१८—शब्द-रचना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १५

ध्वनि-संरचना

हिन्दी की स्वनिम-व्यवस्था

हिन्दी में सामान्यतः दस स्वरों का प्रयोग होता है। दस स्वर हैं : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। 'ऋ' का लेखन में स्वर-जैसा प्रयोग होता है, किन्तु उच्चारण में हिन्दी में वह 'रि' (ऋतु-रितु) है, अर्थात् व्यंजन 'र' और स्वर 'इ' का योग। ऐसे ही 'अं' और 'अः' भी वस्तुतः स्वर नहीं हैं, ये स्वर और व्यंजन के योग हैं : अं=अ+ं तथा 'अः'=अ+ः। अनुस्वार तथा विसर्ग व्यंजन हैं। कुछ लोग ऑ (कॉफ़ी, डॉक्टर) का भी हिन्दी में प्रयोग करते हैं, अतः उनकी हिन्दी भाषा में स्वरों की संख्या ग्यारह हो जाती है।

हिन्दी व्यंजनों की संख्या लगभग बयालीस है : क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ, ड, ड़, ढ, ढ़, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल, व, श, स, ह। न्ह, म्ह, ल्ह भी अलग व्यंजन हैं। ये न, म, ल के महाप्राण हैं। कुछ लोग क़, ख़, ग़, ज़, फ़ का भी प्रयोग करते हैं। 'ष' का लेखन में प्रयोग होता है, किन्तु वह उच्चारण में 'श' है, अतः उसे अलग ध्वनि नहीं माना जा सकता। क्ष (क्+ष्), त्र (त्+र्), ज्ञ (ज+ञ अथवा ग्+यँ अथवा ग्+य) संयुक्त व्यंजन हैं।

इनके अतिरिक्त बोलने में बलाघात, अनुतान, दीर्घता, अनुनासिकता तथा विवृति (संहिता या संगम) का भी प्रयोग होता है।

यहाँ पहले हमें यह देखना है कि इन ध्वनियों में कौन-कौन स्वनिम (ध्वनि-ग्राम) हैं, और कौन-से स्वनिम न होकर उपस्वन (संध्वनि) हैं।

पहले थोड़ी सैद्धांतिक चर्चा कर लें कि स्वनिम और उपस्वन हैं क्या ?

स्वनिमविज्ञान (ध्वनिग्रामविज्ञान)

स्वनिमविज्ञान (phonemics) वह विज्ञान है जिसमें किसी भाषा में प्रयुक्त स्वनिमों (ध्वनिग्रामों) तथा उनसे संबद्ध पूरी व्यवस्था पर विचार करते हैं। इसके अन्तर्गत स्वनिम (ध्वनिग्राम) तथा उपस्वन (संध्वनि) का निर्धारण, उपस्वन का वितरण, स्वर और व्यंजन स्वनिमों का उस भाषा में प्रयुक्त संयोग एवं अनुक्रम, प्राप्त खंड्येतर स्वनिमों (अनुतान, बलाघात, दीर्घता, अनुनासिकता, संहिता) की व्यवस्था तथा रूपिमों के मिलने पर घटित होने वाले स्वनिमिक परिवर्तन आदि स्वनिमिक व्यवस्था से संबद्ध सारी बातें आती हैं।

स्वनिम (ध्वनिग्राम) और उपस्वन (संध्वनि)—स्वनिमविज्ञान-विषयक अपनी बात स्वनिम (phoneme) तथा उपस्वन (allophone) को समझने-समझाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से शुरू की जा सकती है। हिन्दी में एक ध्वनि है 'ल'। यदि हम 'उलटा', 'लो' 'ले' तथा 'ला', इन चार शब्दों का सावधानी से उच्चारण करें और जीभ की स्पर्श स्थिति पर ध्यान दें तो हमें स्पष्ट तो जाएगा, ल[५] (उलटा का) के उच्चारण में जीभ उलट जाती है, ल[२] (लो) दाँत की ओर थोड़ा आगे से उच्चरित होता है, ल[३] (ले) और आगे से तथा ल[४] (ला) और भी आगे से। 'अर्थात् 'ल' ध्वनि के इन शब्दों में चार प्रतिनिधि (ल[१], ल[२], ल[३], ल[४]) हैं और चारों के उच्चारण-स्थान एक-दूसरे से कुछ-कुछ भिन्न हैं। दूसरे शब्दों में 'ल' तो एक सामान्य ध्वनि है, जिसके वास्तविक रूप में प्रयुक्त रूप चार हैं। ये प्रयुक्त रूप और भी अधिक हो सकते हैं, अगर हम और भी अधिक हिन्दी शब्द लें।

उपर्युक्त बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वास्तविक रूप में उच्चारण और श्रवण ल[१], ल[२], ल[३], तथा ल[४] का होता है, अर्थात् इन चारों की सत्ता भौतिक है। इनकी तुलना में 'ल' की सत्ता भौतिक नहीं है। उसकी सत्ता मात्र मानसिक है। 'ल' के विभिन्न रूपों (एक, दो, तीन, चार) के आधार पर एक मुखिया के रूप में 'ल' को सामान्य 'ल' स्वीकार कर लिया जा सकता है। संक्षेप में 'ल' स्वनिम है तथा ल[१], ल[२], ल[३], ल[४] उसके उपस्वन हैं। **निष्कर्ष : (१) स्वनिम की सत्ता मानसिक होती है, तथा उपस्वन की सत्ता भौतिक। (२) स्वनिम जाति होता है तथा उपस्वन व्यक्ति।** यहाँ 'ल' जाति है तो ल[१], ल[२] आदि व्यक्ति। यदि 'ल' को एक परिवार कहें तो उस परिवार के चार सदस्य हैं। जैसे किसी आदर्श परिवार के सदस्यों में मतैक्य होता है, वे एक-दूसरे के विरोधी या व्यतिरेकी नहीं होते; वैसे ही ल[१], ल[२], ल[३], ल[४] में भी मतैक्य है। ल[१] केवल 'ट' के पहले आएगा, ल[२] ओ के पहले, ल[३] ए के पहले, तथा ल[४] आ के पहले, अर्थात् उनमें मतैक्य है। उनके हिन्दी में आने की एक सुनिश्चित व्यवस्था है, अर्थात् वे अनुमेय हैं। साथ ही वे 'ल' परिवार की दृष्टि से एक-दूसरे के पूरक हैं। चारों मिलकर एक परिवार बना रहे हैं। ऐसी स्थिति को भाषाविज्ञान में परिपूरक वितरण (complimentary distribution) में होना कहते हैं, जहाँ एक-दूसरे में विरोध न हो, बल्कि हर एक के प्रयोग की स्थिति अलग-अलग, अव्यतिरेकी (अविरोधी) हो। यहाँ ल[१] के स्थान पर ल[२] नहीं आ सकता, न ल[२] के स्थान पर ल[१] ...आदि; अतः ल[१], ल[२], ल[३], ल[४] परिपूरक वितरण में हैं, अर्थात् एक-दूसरे के अव्यतिरेकी (अविरोधी) हैं। इसके विपरीत 'ल' और 'क' एक-दूसरे के व्यतिरेकी या विरोधी हैं, क्योंकि 'आली' के पहले दोनों आ सकते हैं : ल+आली=लाली, क+आली=काली। जो ध्वनियाँ या स्वन इस प्रकार एक-दूसरे के व्यतिरेकी या विरोधी होते हैं, उन्हें स्वनिम कहते हैं। ऐसे ही 'नाली' और 'लाली' से स्पष्ट है कि 'न', 'ल' स्वनिम हैं, क्योंकि ये व्यतिरेकी या विरोधी हैं, अतः उपस्वन नहीं हैं। निष्कर्षतः (३) किसी भाषा के स्वनिम अपने वितरण में एक-दूसरे के व्यतिरेकी (विरोधी) होते हैं (लाली-काली, लाली-नाली, लग-जग आदि), किन्तु उपस्वन (जैसे ल[१], ल[२], ल[३], ल[४]) एक-दूसरे के व्यतिरेकी न होकर परिपूरक वितरण में होते हैं। जहाँ एक आता है, वहाँ दूसरा कदापि नहीं आता। (४) स्वनिम अननुमेय होते हैं, अर्थात् यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि कौन स्वनिम कहाँ आएगा, किन्तु परिपूरक वितरण के कारण उपस्वन अनुमेय होते हैं, उनका अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरण से लिए हमने देखा कि ल[१] 'ट' के पहले आता है तो ल[२] ओ के पहले और ऐसे ही ल[३] या ल[४] भी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने चार प्रकार के 'ल' की चर्चा की। अब यदि 'लो' के ल[२] के स्थान पर ल[१], ल[३] या ल[४] का उच्चारण प्रयासपूर्वक करें तो भी 'लो' के अर्थ में अन्तर नहीं आएगा, अर्थात् उपस्वन (संध्वनि) अर्थभेदक नहीं होते। इसके विपरीत 'ला' में ल के स्थान पर 'क' (को), 'स' (सो), 'द' (दो) या 'ह' (हो) आदि किसी भी स्वनिम को रख को दें तो अर्थ बदल जाएगा, अर्थात् स्वनिम में अर्थ में अंतर लाने की क्षमता होती है। अर्थात् (५) स्वनिम अर्थभेदक होते हैं, किन्तु उपस्वन अर्थभेदक नहीं होते। इस प्रकार के लाली-काली, लाली-नाली, लो-दो, लग-पग आदि जिन शब्द-जोड़ों से दो ध्वनियों (स्वनों) की अर्थभेदकता स्पष्ट होती है, उन्हें भाषाविज्ञान में **न्यूनतम युग्म** (minimal pair) अथवा 'न्यूनतम विरोधी युग्म' कहते हैं। ऐसा जोड़ा या युग्म जिसके शब्दों के अर्थ अलग-अलग हों तथा जिनमें ध्वनि के स्तर पर न्यूनतम; अर्थात् केवल एक का विरोध हो। अर्थात् 'लाली-काली' न्यूमतम युग्म है, क्योंकि इन दोनों शब्दों के दो अर्थ हैं, और ध्वनि के स्तर पर दोनों में एक ही अन्तर है–एक में 'ल' है तो दूसरे में 'क'। यह ध्यान देने की बात है कि किसी भाषा में जिन दो ध्वनियों के न्यूनतम युग्म मिल जाते हैं, उस भाषा में वे दोनों ध्वनियाँ (स्वन) स्वनिम होते हैं, उपस्वन नहीं।

संक्षेप में—

स्वनिम	उपस्वन
(१) जाति के समान	व्यष्टि या व्यक्ति के समान
(२) परिवार	परिवार का एक सदस्य
(३) मानसिक सत्ता	भौतिक सत्ता
(४) अर्थभेदक	अर्थभेदक नहीं
(५) भाषा में महत्वपूर्ण	अमहत्वपूर्ण
(६) आपस में व्यतिरेकी या व्यतिरेकी वितरण वाले	आपस में परिपूरक वितरण वाले
(७) अननुमेय	अनुमेय

ऊपर वितरण के दो भेद किए गए : (क) **व्यतिरेकी या विरोधी वितरण**—जहाँ एक ही स्थिति में दो आएँ और दोनों के आने से अर्थ बदल जाय। (ख) **परिपूरक वितरण**—जहाँ एक स्थिति में दो न आएँ। वितरण का एक भेद और होता है। (ग) **मुक्त वितरण**—जहाँ एक स्थिति में दो स्वन (ध्वनि) मुक्त रूप से आएँ, किन्तु अर्थ में अन्तर न हो। उदाहरण के लिए, बहुत से हिन्दी शब्दों में बहुत से लोगों के उच्चारण में क-क़ (क़ानून-कानून) या ग-ग़ (गरीब-ग़रीब) मुक्त वितरण (free variation) में हैं। बिना अर्थ बदले कोई भी आ सकता है। इस प्रकार आने वाली ध्वनियाँ (स्वन) मुक्त परिवर्त (free variant) कहलाती हैं।

स्वनिम (ध्वनिग्राम) के भेदोपभेद—स्वनिम दो प्रकार के होते हैं : (क) **खंड्य** (segmental) **स्वनिम**—जिन्हें अलग-अलग खंडित किया जा सके। इनकी स्वतंत्र सत्ता होती है। (ख) **खंड्येतर** (supra-segmental) **स्वनिम**—इन्हें अलग-अलग खंडित नहीं किया जा सकता। ये प्रायः एकाधिक खंड्य स्वनिम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर आधारित होते हैं। साथ ही सामान्यतः इनका अलग उच्चारण संभव नहीं है। ये खंड्य स्वनिमों के साथ ही आते हैं। खंड्य स्वनिम के दो उपभेद तथा खंड्येतर के पाँच उपभेद होते हैं--

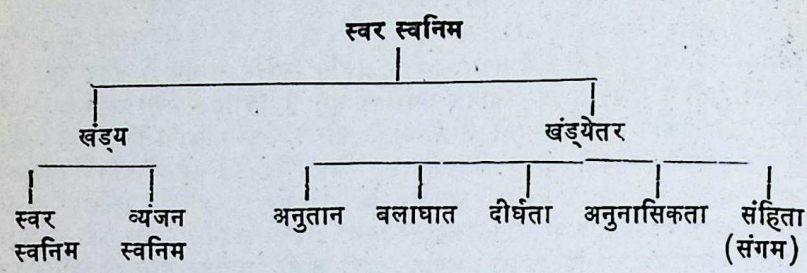

हिन्दी स्वनिम (ध्वनिग्राम)

स्वर स्वनिम--हिन्दी भाषा में दस स्वर अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ स्वनिम हैं, क्योंकि इनके न्यूनतम युग्म हिन्दी में मिलते हैं--

	ई	इ	ए	ऐ	अ	आ	औ	ओ	उ	ऊ
ई	–	मिल	मेल	मैल	मल	माल	तौर	कोट	सुर	कूट
		मील	मील	मील	मील	मील	तीर	कीट	सीर	कीट
इ	–	–	मेल	मैल	मल	माल	तौल	मोल	पुल	ऊन
			मिल	मिल	मिल	मिल	तिल	मिल	पिल	इनं
ए	–	–	–	मैल	मल	माल	तौल	मोल	सुर	तूल
				मेल	मेल	मेल	तेल	मेल	सेर	तेल
ऐ	–	–	–	–	पर	पार	ग़ौर	मोल	सुर	फूल
					पैर	पैर	गैर	मैल	सैर	फैल
अ	–	–	–	–	–	माल	तौल	मोल	कुल	फूल
						मल	तल	मल	कल	फल
आ	–	–	–	–	–	–	तौल	मोल	कुल	ऊन
							ताल	माल	काल	आन
औ	–	–	–	–	–	–	–	लोटना	लुटा	लूट
								लौटना	लौटा	लौट
ओ	–	–	–	–	–	–	–	–	लूटा	लूट
									लोटा	लोट
उ	–	–	–	–	–	–	–	–	–	सूर
ऊ	–	–	–	–	–	–	–	–	–	सुर

अर्थात् ये आपस में व्यतिरेकी हैं तथा अर्थभेदक हैं।

व्यंजन स्वनिम—हिन्दी के अधिकांश व्यंजनों के उपर्युक्त प्रकार से न्यूनतम युग्म मिल जाते हैं। सबको तो अलग-अलग लेना स्थानाभाव के कारण यहाँ संभव नहीं है, किन्तु उदाहरण के लिए कुछ न्यूनतम युग्म देखे जा सकते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कड़ा—खड़ा—गड़ा—घड़ा
चला—छला—जला—झला
टाट—ठाट—डाट—डोल—ढोल
तान—थान—दान—धान
पली—फली—बली—भली
यह—रह—लह—वह
साल—शाल—हाल
कुमार—कुम्हार
कान—कान्ह
आला—आल्हा आदि।

इस प्रकार देखें तो ये व्यंजन स्वनिम सिद्ध होते हैं—

क, ख, ग, घ
च, छ, ज, झ
ट, ठ, ड, ढ
त, थ, द, ध
प, फ, ब, भ
य, र, ल, व
स, श, ह
न्ह, म्ह, ल्ह

शेष कुछ विवादास्पद हैं, जिन पर आगे विचार किया जा रहा है—

कुछ विवादास्पद व्यंजन स्वनिम

(क) नासिक व्यंजन—ऊपर 'न–न्ह,' 'म–म्ह' के अलग-अलग स्वनिम होने का संकेत न्यूनतम युग्मों द्वारा दिया जा चुका है। शेष में 'म–न' (माला–नाला) तो स्पष्ट स्वनिम हैं। 'ण–न' की समस्या थोड़ी जटिल है। बहुत से लोग 'ण' को 'न' (गुण-गुन, प्राण-प्रान) कहते हैं, इस प्रकार कई शब्दों में ये 'मुक्त परिवर्त' हैं, किन्तु अणु (कण), अनु (एक उपसर्ग) न्यूनतम युग्म हिन्दी में प्राप्त हैं, अतः ण–न को भी एक सीमा तक स्वनिम माना जा सकता है। जहाँ तक शेष नासिक्य व्यंजनों का प्रश्न है, 'न' स्वनिम है तथा उसके ङ, ञ, न—ये तीन उपस्वन हैं—

स्वनिम	उपस्वन	वितरण
न	ङ	(१) क, ख, ग, घ के पूर्व (अंक, शंख, अंग, जंघा) (२) अपवादतः वाङ्मय, पराङ्मुख में
	ञ	च, छ, ज, झ के पूर्व (चंचल, वांछा, मंजु, झंझा)
	न	अन्यत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) ड-ड़—पहले ये दोनों 'ड' स्वनिम के दो उपस्वन थे, क्योंकि परिपूरक वितरण में थे—

ड़— (१) मध्य में दो स्वरों के बीच (घोड़ा)
(२) अन्त में स्वर के बाद (पहाड़)

ड— अन्यत्र—अर्थात् : (१) आदि में (डाली)
(२) मध्य में रूपिम सीमा पर (अडिग); अनुनासिक स्वर के बाद (डोंडी); दीर्घ रूप में (गड्डी); तथा संयुक्त व्यंजन के सदस्य रूप में (गड्ढा)।

अब रेडियो, रोड, सोडा, कोड आदि अंग्रेज़ी शब्दों के आने के कारण मध्य (घोड़ा-सोडा) तथा अन्त (जोड़-रोड) में दोनों व्यतिरेकी हो गए हैं, अतः आदि में परिपूरक वितरण में होने के बावजूद ये दोनों अब स्वनिम माने जा सकते हैं।

(ग) ढ-ढ़—सामान्यतः ये एक स्वनिम (ढ) के दो उपस्वन जैसे ही हैं—

ढ़—आदि में नहीं, मध्य में दो स्वरों के बीच (पढ़ाई) तथा अन्त में स्वर के बाद (गढ़)।

ढ—अन्यत्र : आदि में (ढाल), तथा मध्य में रूपिम सीमा (बेढब) पर या संयुक्त के सदस्य-रूप (गड्ढा) में, या अनुनासिक स्वर के बाद (मेंढक)।

किन्तु 'औढरदानी' जैसे कुछ शब्दों में 'ढ' के 'ढ़' की स्थिति में आने के कारण तथा ड-ड़ की व्यवस्था के सादृश्य के आधार पर, कई स्थितियों में परिपूरक वितरण के बावजूद, ढ-ढ़ को भी अलग-अलग स्वनिम माना जा सकता है।

केन्द्रीय (Central) स्वनिम तथा परिधीय (Peripheral) स्वनिम—जो स्वनिम भाषा में सामान्य रूप से अर्थभेदक तथा व्यतिरेकी होते हैं, उन्हें केन्द्रीय या मुख्य स्वनिम कहते हैं, किन्तु जो कुछ सीमित लोगों द्वारा, सीमित शब्दों या सीमित परिस्थितियों में प्रयुक्त होते हैं, वे **परिधीय या गौण स्वनिम कहलाते हैं**।

ऊपर जो स्वनिम दिए गए, वे हिन्दी के प्रायः केन्द्रीय स्वनिम हैं। इसके विपरीत ऑ, क़, ख़, ग़, ज़, फ़ परिधीय हैं, क्योंकि (क) इनका प्रयोग बहुत कम लोगों द्वारा होता है; (ख) सामान्य भाषा में ये व्यतिरेकी न होकर मुक्त परिवर्त हैं, अर्थात् इनके स्थान पर क्रमशः आ, क, ख, ग, ज, फ आ सकते हैं; (ग) सामान्य भाषा में ये अर्थभेदक नहीं हैं—क़ानून-कानून, ख़बर-खबर, जहाज़-जहाज आदि।

किन्तु जो थोड़े-से लोग इन स्वनों (ध्वनियों) का प्रयोग करते हैं, उनकी भाषा में ये अर्थभेदक तथा व्यतिरेकी हैं, क्योंकि इनके न्यूनतम युग्म मिलते हैं—

ऑ—आ : कॉफ़ी—काफ़ी, बॉल—बाल, हॉल-हाल
क—क़ : ताक़ (आला)—ताक (देख)
ख—ख : खाना—ख़ाना, खैर (कत्था)—ख़ैर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग—ग़ . गौर—ग़ौर, बाग—बाग़, बेगम-बेग़म

ज—ज़ : जरा—ज़रा, सजा—सज़ा, राज—राज़

फ़—फ़ : फन—फ़न

अतः उनकी भाषा में ये छः भी स्वनिम हैं।

खंड्येतर स्वनिम—चूंकि इनका अलग से उच्चारण नहीं हो सकता, अतः इन्हें स्वनिम (ध्वनिग्राम) न कहकर स्वनिमिक (ध्वनिग्रामिक) कहना कदाचित् अधिक समीचीन होगा, यद्यपि बहुत से लोग इन्हें स्वनिम कहते हैं। हिन्दी में खंड्येतर स्तर पर बलाघात, अनुतान, दीर्घता, अनुनासिकता तथा संहिता (संगम) स्वनिमिक (ध्वनिग्रामिक) हैं, क्योंकि इनके न्यूनतम युग्म उपलब्ध हैं—

बलाघात :	मुझे एक खिड़की वाला मकान चाहिए।
	मुझे **एक** खिड़की वाला मकान चाहिए।
अनुतान :	राम गया।
	राम ग़या ?
	राम गया !
दीर्घता :	बला–बल्ला, लगी–लग्गी, आसन–आसन्न, बचा–बच्चा।
अनुनासिकता :	सास–साँस, गोद–गोंद, सवार–संवार
संहिता (संगम) :	सिरका–सिर का, तुम्हारे–तुम हारे, होली–हो ली।

आक्षरिक संरचना—'अक्षर' एक अथवा एकाधिक ध्वनियों की उस इकाई को कहते हैं जिसका उच्चारण एक झटके (एक हृत्स्पन्द) से होता है तथा जिसमें एक स्वर अवश्य होता है। इसके पहले या बाद में एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते हैं, नहीं भी।

अक्षर में 'स्वर' शीर्ष (peak) या केन्द्रक (nucleus) होता है तथा सुनने में अधिक मुखर होता है। उसके पूर्व के व्यंजन पूर्वगह्वर (onset) तथा बाद के व्यंजन परगह्वर (coda) कहलाते हैं। ये अपेक्षाकृत कम मुखर होते हैं—

आ (शीर्ष)

(पूर्वगह्वर) र् म् (परगह्वर)

अक्षर दो प्रकार के होते हैं : (क) **बद्धाक्षर** (closed syllable)—जिसके अंत में व्यंजन हो; जैसे राम्, रोक्, आज्। (ख) **मुक्ताक्षर** (open syllable)—जिसके अंत में स्वर हो; जैसे जा, ले, दो।

अनेक अन्य भाषाओं की तरह हिंदी में एकाक्षरी शब्द सर्वाधिक हैं। यदि 'स' को स्वर तथा 'व' को व्यंजन मानें तो हिंदी में एकाक्षरी शब्द निम्नांकित प्रकार के मिलते हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप	उदाहरण
स	आ
व स	जा, खा, गा, रो, जी
स व	आज्, ईख्, अब्
स व व	अन्त्, अस्त्
व व स	क्या
स व व व	अस्त्र्, इन्द्र
व व व स	स्त्री
व स व	नाम्, हम्, कुल्
व स व व	कान्त्, पस्त्, वक्त्
व स व व व	शस्त्र्, वस्त्र्
व व स व	द्वेष्, द्वीप्
व व स व व	क्षिप्र्, व्यस्त्
व व स व व व	कृच्छ्र, स्वास्थ्य्
व व व स व	स्त्रैण
व स व व व व	वर्त्स्य

कोष्ठक को विकल्पद्योतक मानकर हिन्दी के उपर्युक्त सभी एकाक्षरी शब्दों की आक्षरिक संरचना को संक्षेप में यों रखा जा सकता है—

(व व व) स (व व व व)

अर्थात् हिन्दी में अक्षर में स्वर का शीर्ष रूप में आना आवश्यक है। उसके पूर्व एक, दो या तीन व्यंजन आ सकते हैं तथा अंत में एक, दो, तीन या चार व्यंजन।

उपर्युक्त के आधार पर यह भी कह सकते हैं कि 'हिन्दी की आक्षरिक संरचना' या 'हिन्दी के एकल अक्षर की संरचना' उपर्युक्त प्रकार की होती है। इसे शीर्ष तथा पूर्व और परगह्वर की दृष्टि से चार वर्गों में रखा जा सकता है: (१) मात्र शीर्ष वाला (आ, ओ); (२) पूर्वगह्वर+शीर्ष(ला, क्या, स्त्री); (३) शीर्ष +परगह्वर (आज, आप्त, आर्द्र); (४) पूर्वगह्वर+शीर्ष+परगह्वर (काम, शान्त, वस्त्र, क्रम, स्वास्थ्य, स्त्रीत्व)।

भाषाओं में एकाधिक अक्षरों के भी शब्द होते हैं। उदाहरण के लिए, हिन्दी में द्वयक्षरी (अभी, गणित, प्रकार), त्र्यक्षरी (अवारा पढ़ाई, उत्साहित), चतुरक्षरी (अभिनंदन, कठिनाई) तथा पंचाक्षरी (अनिर्वचनीयता, बहाइएगा, अन्धानुकरण) शब्द मिलते हैं।

एकाधिक अक्षरों के शब्द के उच्चारण में ठीक अक्षर-विभाजन आवश्यक है। अर्थात् 'वक्–ता' न कि 'व–क्ता' अथवा 'प–थिक' न कि 'पथ्–इक'। ग़लत आक्षरिक विभाजन से उच्चारण तो अशुद्ध हो ही जाता है, कभी-कभी अर्थ भी प्रभावित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है: 'ना–प–ता'—'नाप–ता', 'म–धुर्–ता'—'म–धु–र–ता,' "मा–नव–ता' —'मान–व–ता' आदि।

अक्षर-विभाजन के नियम हर भाषा के अपने होते हैं, इसलिए विदेशी भाषा के शब्दों के उच्चारण में अक्षर-विभाजन-सम्बन्धी अशुद्धियाँ प्रायः हो जाती हैं।

अक्षर-विभाजन लेखन या वर्तनी के आधार पर न होकर उच्चारण के आधार पर होना चाहिए : उपन्यास (उ–पन्–न्यास्), अभ्यास (अब्–भ्यास्), व्याख्यान (व्याक्–ख्यान्), वाक्यांश (वाक्–क्यांश्), लगभग (लग्–भग्), भारद्वाज (भारद्–द्वाज)।

अक्षर-विभाजन जहाँ से होता है, वहाँ थोड़ी देर मौन होता है जिसे 'अल्प-कालिक संगम' (संहिता) की संज्ञा दी जा सकती है।

हिन्दी में अक्षर-विभाजन के नियम निम्नांकित हैं—

(१) शब्द के प्रारम्भ में एक या एकाधिक जितने भी व्यंजन हों, आगामी स्वर के साथ मिलकर अक्षर की रचना करते हैं : (क) कमल (क–मल्); (ख) प्रेमी (प्रे–मी), त्यागी (त्या–गी), क्रमिक (क्र–मिक्), प्यारा (प्या–रा); (ग) स्त्रैणता (स्त्रैण्ता)।

(२) शब्द के अन्त में एक या अधिक जितने भी व्यंजन हों, पूर्ववर्ती स्वर के साथ मिलकर अक्षर की रचना करते हैं : (क) अत्याचार (अत्–त्या–चार), सोया-बीन (सो–या–बीन्), काल्पनिक (काल्–प–निक्); (ख) विभक्त (वि-भक्त्), अन्यत्र (अन्–न्यत्र्), उपवाक्य (उप–वाक्य); (ग) सुस्वास्थ्य (सु–स्वास्थ्य), निर्वस्त्र (निर्–वस्त्र), उपलक्ष्य (उप–लक्ष्य)।

(३) शब्द के बीच का मूल व्यंजन आगामी स्वर के साथ जाता है : गला (ग–ला), सादा (सा–दा), पीता (पी-ता), बेटी (बे–टी)।

(४) शब्द के बीच में यदि एक से अधिक व्यंजन एकसाथ आएं तो वे चाहे व्यंजन-अनुक्रम हों या संयुक्त व्यंजन, पहला व्यंजन अपने पूर्ववर्ती स्वर के साथ जाता है, तथा बाद के व्यंजन (वे एक हों या अधिक) परवर्ती स्वर के साथ जाते हैं : (क) चलता (चल–ता), शारदा (शार–दा), भीगती (भीग–ती); (ख) (i) वक्ता (वक्–ता), आत्मा (आत्–मा), अन्दर (अन्–दर), शिक्षार्थी (शिक्–षार–थी; (ii) यक्ष्मा (यक्–ष्मा), आर्द्रता (आर्–द्रता)।

इस प्रसंग में यह बात भी ध्यान देने की है कि न्ह, म्ह, ल्ह संयुक्त व्यंजन न होकर मूल हैं, ये क्रमशः न, म, ल के महाप्राण रूप हैं। वर्तनी के भ्रम में पड़कर कन्हैया (क–न्हैया), कुम्हार (कु–म्हार), तुम्हारा (तु–म्हा–रा), आल्हा (आ–ल्हा) जैसे शब्दों का आक्षरिक विभाजन उपर्युक्त नियम के अनुसार (अर्थात् कन्–हैया, कुम्–हार, तुम्–हारा, आल्–हा) नहीं करना चाहिए।

(५) शब्द के मध्य में (स्वर-पूर्व) य, र, ल, व के पूर्व कोई व्यंजन हो तथा दोनों मिलकर संयुक्त व्यंजन बनाते हों तो—

(क) उसके अल्पप्राण होने पर उच्चारण में उसका दीर्घ या द्वित्व रूप हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है : अन्याय (अन्–न्याय), विद्या (विद्–या), उपन्यास (उ–पन्–न्यास), विक्रम (विक्–क्रम), बिक्री (बिक्–क्री), पुत्रेष्टि (पुत्–त्रेष्टि), सत्रांत (सत्–त्रांत), अम्लान (अम्–म्लान), भारद्वाज (भा–रद्–द्वाज), विद्वान् (विद्-द्वान्), अन्वय (अन्–न्वय)।

(ख) उसके महाप्राण होने पर उच्चारण में उसके पूर्व उसी का एक अल्पप्राण रूप आ जाता है : विख्यात (विक्–ख्यात), अध्यापक (अद्–ध्या–पक), अभ्यास (अब्–भ्यास), अध्ययन (अद्–ध्य–यन)।

इस तरह इन 'क' 'ख' दोनों ही स्थितियों में तीन व्यंजन के गुच्छ हो जाते हैं, अतः उपर्युक्त चौथा नियम लागू होता है, अर्थात् पहला व्यजन पूर्ववर्ती स्वर के साथ उच्चरित होता है तथा शेष परवर्ती के साथ।

ब्रम्हा, नन्हाँ, खम्हा जैसे साँचे के शब्द अपवादतः उच्चारण में ब्रम्म्हा, नन्न्हा, खम्म्हा हैं और इनमें आक्षरिक विभाजन क्रमशः ब्रम्–म्हा, नन्–न्हा, खम्–म्हा रूप में होता है। यह उल्लेख्य है कि उच्चारण की यह विशेषता केवल संयुक्त व्यंजनों के पूर्व आती है, व्यंजन-अनुक्रम (विधवा, अथवा, सधवा, कमरा) के पूर्व नहीं।

एकाक्षरी शब्दों में यदि अंत में कोई 'अ' का उच्चारण करे, जैसा कि बहुत से संस्कृत परम्परा के लोग करते हैं, तो वह दो अक्षर का शब्द हो जाता है और उसमें भी यह विशेषता आ जाती है : उम्र (उम्–म्र), सभ्य (सब्–भ्य), अन्य (अन्–न्य), किन्तु सामान्यतः इनका उच्चारण एकाक्षरी ही होता है और तब द्वित्व नहीं होता और न अल्पप्राण का आगम ही होता है। हाँ, व्यंजन में थोड़ी दीर्घता अवश्य आ जाती है।

आर्थिक या व्याकरणिक दो भाषिक इकाइयाँ मिलती हैं तो यह आवश्यक नहीं कि दोनों की सीमा पर ही आक्षरिक विभाजन हो, कभी तो दोनों मिलकर एक अक्षर (विज्ञ, अज्ञ, अज) बन जाते हैं, कभी दोनों की सीमा पर आक्षरिक विभाजन होता है (सुन्दर–ता, डाक–खाना, राम–राज्य, डाक–गाड़ी, अ–सह्य, स–पूत, क–पूत) और कभी मूल इकाइयों के आक्षरिक विभाजन से, उनसे बने शब्द का आक्षरिक विभाजन बदल जाता है (जा–पान्+ई—जा–पा–नी; अ–ति+उ–क्ति—अत्–त्यु–क्ति; अन्+आ–चार—अ–ना–चार; अ–ति+आ–चार—अत्–त्या–चार; ज़ि–ला+अ–धीश---ज़ि–ला–धीश; घो–ड़ा+दौड़—घुड़–दौड़) और कभी-कभी अक्षर की संख्या में भी परिवर्तन हो जाता है। उदाहरण के लिए, 'ज़िला+अधीश' में चार अक्षर हैं तो 'जिलाधीश' में तीन या 'घोड़ा+दौड़' में तीन हैं तो 'घुड़दौड़' में दो। इसका कारण यह है कि उन इकाइयों के मिलने से जो नया शब्द बनता है, उस पर उस भाषा के आक्षरिक साँचे के अनुसार फिर से आक्षरिक विभाजन के नियम लागू होते हैं।

हिन्दी के लगभग पूरे शब्द-भंडार का, आक्षरिक विभाजन की दृष्टि से, उच्चारण प्रायः एक होता है, किन्तु अपवादतः कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित उच्चारण में आक्षरिक विभाजन की दृष्टि से अंतर है। उदाहरण के लिए, 'आमदनी' को 'आम–द–नी' भी बोलते हैं, 'आ–मद–नी' भी। इसी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'मतलबी' 'मत–ल–बी' भी बोला जाता है और 'म–तल–बी' भी या 'छिपकली' का उच्चारण 'छिप–क–ली' भी होता है 'छि–पक–ली' भी।

बलाघात

बोलने में प्रायः ऐसा देखा गया है कि उच्चरित भाषिक इकाई के हर भाग पर बराबर जल नहीं दिया जाता। वाक्य में कभी एक शब्द पर बल अधिक दिया जाता है, तो कभी दूसरे पर, या अक्षर में कभी एक ध्वनि का उच्चारण अधिक बल-युक्त होता है तो कभी दूसरे का। बोलने में इस बल को ही 'बलाघात' (stress) कहते हैं। अस्फोटित स्पर्श जैसे पाप् का 'प्' जैसे कुछ अपवादों को छोड़ दें, तो मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि उच्चारण के हर अंश पर कुछ-न-कुछ बलाघात अवश्य होता है. किन्तु भाषाविज्ञान में बलाघात की बात तुलनात्मक आधार पर की जाती है। अर्थात्, जब हम कहते हैं कि अमुक शब्द के अमुक अक्षर पर बलाघात है, तो उसका वास्तविक अर्थ यह होता है कि उस शब्द के अन्य अक्षरों की तुलना में उस अक्षर पर बलाघात अधिक है। बलाघात उस शक्ति का परिणाम होता है जिससे उच्चार के किसी खंड का उच्चारण किया जाता है। यह शक्ति मूलतः दो बातों पर आधारित है : (क) उसके उच्चारण में फेफड़ों से हवा कितनी शक्ति से आ रही है; (ख) उसके उच्चारण के समय उच्चारण-अवयवों में कितना तनाव है।

इसका आशय यह हुआ कि जब हम यह कहते हैं कि अमुक शब्द के अमुक अक्षर पर बलाघात है तो इसका अर्थ यह होता है कि उसके उच्चारण के समय उच्चारण-अवयवों को अपेक्षाकृत अधिक दृढ़ रखा जा रहा है।

भाषाशास्त्रियों ने प्रायः बलाघात के प्रसंग में अक्षर-बलाघात का ही उल्लेख किया है, जो शब्द के किसी एक अक्षर पर होता है, जैसे 'कायर' में 'का' पर या 'दलाल' में 'लाल्' पर। मैं प्रारम्भ से ही इस मत का रहा हूँ कि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करें तो बलाघात ध्वनि, अक्षर, शब्द, वाक्यांश तथा वाक्य स्तर पर होता है। (विस्तार के लिए देखिए मेरी पुस्तक भाषाविज्ञान का 'ध्वनिविज्ञान' अध्याय) यहाँ केवल दो लिए जा रहे हैं।

आक्षरिक बलाघात—हिन्दी में आक्षरिक बलाघात निरर्थक या अध्वनि-ग्रामिक है। इसके कारण शब्द के अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसका सम्बन्ध भाषा के सहज उच्चारण से है। प्रायः हर शब्द में इसका स्थान निश्चित है, इस तरह यह अनुमेय है।

हिन्दी में बलाघात अक्षर-विभाजन और अक्षर की ह्रस्वता-दीर्घता से सम्बद्ध है। अक्षर-विभाजन पर पीछे विचार किया जा चुका है। हिन्दी अक्षर ह्रस्वता-दीर्घता की दृष्टि से चार प्रकार के होते हैं—

(क) ह्रस्व—यह केवल ह्रस्व स्वर का होता है। इसके पूर्व एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते हैं, नहीं भी। उदाहरण के लिए 'इसी' में 'इ' (केवल ह्रस्व स्वर), 'किसी' में 'कि' (व्यंजन + ह्रस्व स्वर), 'कृपा' में 'क्रि' (व्यंजन + व्यंजन + ह्रस्व स्वर) ह्रस्व अक्षर हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) **मध्यम**—इसमें दो प्रकार के अक्षर आते हैं : (१) जिनमें ह्रस्व स्वर हो तथा उसके बाद एक व्यंजन हो। स्वर के पूर्व एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते हैं, नहीं भी। उदाहरण के लिए 'उसका' में 'उस' (ह्रस्व स्वर+व्यंजन), 'किसका' में 'किस' (व्यंजन+ह्रस्व स्वर+व्यंजन), 'सर्वप्रियता' में 'प्रिय' (व्यंजन +व्यंजन+ह्रस्व स्वर+व्यंजन)। (२) केवल दीर्घ स्वर हो। उसके पूर्व एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते हैं, नहीं भी। जैसे 'ऐतिहासिक' में 'ऐ' (केवल दीर्घ स्वर), 'कहा' में 'हा' (व्यंजन+दीर्घ स्वर) तथा 'व्यापारी' में 'व्या' (व्यंजन+ व्यंजन+दीर्घ स्वर) आदि।

(ग) **दीर्घ**—इसमें भी दो प्रकार के अक्षर आते हैं : (१) जिनमें ह्रस्व स्वर हो तथा उसके बाद संयुक्त या दीर्घ (द्वित्व) व्यंजन हो। स्वर के पूर्व एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते हैं, नहीं भी। उदाहरण के लिए 'अर्थयुक्त' में 'अर्थ' (ह्रस्व स्वर+व्यंजन+व्यंजन) तथा 'युक्त' (व्यंजन+ह्रस्व स्वर+व्यंजन+व्यंजन) या 'अव्यक्त' में 'व्यक्त' (व्यंजन+व्यंजन+ह्रस्व स्वर+व्यंजन+व्यंजन) आदि। (२) जिनमें दीर्घ स्वर हो तथा उसके बाद मूल व्यंजन हो। स्वर के पूर्व एक या अधिक व्यंजन आ भी सकते हैं, नहीं भी। जैसे 'आबपाशी' में 'आब' (दीर्घ स्वर +व्यंजन) या 'राजधानी' में 'राज' (व्यंजन+दीर्घ स्वर+व्यंजन) या 'त्यागपूर्ण' में 'त्याग' (व्यंजन+व्यंजन+दीर्घ स्वर+व्यंजन) आदि।

(घ) **अतिदीर्घ**—इसमें दीर्घ स्वर तथा उसके बाद संयुक्त या दीर्घ (द्वित्व) व्यंजन आते हैं। स्वर के पूर्व व्यंजन आ भी सकता है, नहीं भी। उदाहरण के लिए 'आप्त' (दीर्घ स्वर+व्यंजन+व्यंजन), 'अपरिहार्य' में 'हार्य' (व्यंजन+दीर्घ स्वर +व्यंजन+व्यंजन), व्याप्त (व्यंजन+व्यंजन+दीर्घ स्वर+व्यंजन+व्यंजन) या 'सुस्वास्थ्य' में 'स्वास्थ्य' (व्यंजन+व्यंजन+दीर्घ स्वर+व्यंजन+व्यंजन+ व्यंजन) आदि।

एकाक्षरी शब्द में तो बलाघात उसी अक्षर पर होता है, अतः समस्या केवल एकाधिकाक्षरी शब्दों की है। उनके लिए निम्नांकित नियम दिए जा सकते हैं—

(१) यदि किसी शब्द के सभी अक्षर ह्रस्व, मध्यम, दीर्घ या अति दीर्घ हों तो बलाघात उपांत्य, अर्थात् अन्तिम से पहले वाले अक्षर पर होता है **क**–टु, स–**मि**–ति, आ–**भा**–री, सा–**ला**–ना, **कम्**–बल, **अर्थ**–युक्त, **रोज़**–गार।

(२) यदि एक ही अक्षर मध्यम हो, और शेष ह्रस्व हों तो बलाघात मध्यम पर (कि–**सी**, अ–**मिट**, प–रि–**चित**); यदि एक ही अक्षर दीर्घ हो और शेष लघु या मध्यम हों तो बलाघात दीर्घ पर (क–**पूत**, अ–**पार**, अ–**भिन्न**, स्व–**तन्त्र**, आ–**नन्द**, सा–**कार**); और यदि एक ही अक्षर अति दीर्घ हो तथा शेष ह्रस्व, मध्यम या दीर्घ हों तो बलाघात अति दीर्घ पर (अ–प–रि–**हार्य**, अव्–**व्याप्त**, पंच–**पात्र**) होता है।

(३) यदि शब्द के एकाधिक अक्षर अतिदीर्घ हों और उनमें कोई एक उपांत्य हो तो बलाघात उसी पर होगा। यदि उनमें उपांत्य कोई न हो तो बलाघात उसके पूर्व निकटतम अतिदीर्घ पर होता है। यदि अतिदीर्घ कोई न हो तो उसके पूर्व

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकटतम दीर्घ पर बलाघात होता है। इसी प्रकार यदि अतिदीर्घ तथा दीर्घ न हो तथा एकाधिक मध्यम हों तो उपांत्य मध्यम पर या यदि उपांत्य मध्यम नहीं तो उसके निकटतम पूर्व मध्यम पर बलाघात होता है। उदाहरणार्थ : **संस्**–कार, **रोज़**–गार, **रे**–डि—यो, का–**री**–ग–री, स—**फ़ा**–या, **वार**–दात, **पा**–वस, **सौन्**–दर्य, सन्–श–**या**–लु, आ–**सक्**–ति, अ–ना–**वृष्**–टि, **उल्**–लू, आ–**कस्**–मिक, **वा**–टि–का।

यहाँ एक बार फिर इस बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि हिन्दी प्रदेश काफ़ी बड़ा है और उसमें अन्य अनेक भाषिक नियमों की तरह बलाघात में भी पूर्णतः एकरूपता नहीं है। किन्तु समवेततः हिन्दीभाषी जनता के काफ़ी बड़े भाग के आज के उच्चारण में बलाघात के ये हीं नियम मुझे मिले हैं।

हिन्दी में बलाघात ऐसे तो ध्वनि, अक्षर, शब्द, वाक्यांश तथा वाक्य—इन पाँच स्तरों पर है, किन्तु वह ध्वनिग्रामिक केवल शब्द स्तर पर ही है। वाक्य में प्रयुक्त विभिन्न शब्दों पर बल देने से विभिन्न प्रकार के अर्थ (निश्चय, आधिक्य, भी, आज्ञा, तुलना आदि) निकलते हैं। **यों बलाघात के साथ-साथ ऐसे वाक्यों में अनुतान तथा संगम (संहिता) में भी अन्तर पड़ता है।** इस दृष्टि से वाक्यों के कुछ न्यूनतम विरोधी युग्म या समूह यहाँ देखे जा सकते हैं (मोटे टाइपों में शब्द बलाघातित हैं)—

१—(क) उस किराएदार को **एक** खिड़की वाला मकान चाहिए।
(ख) उस किराएदार को एक **खिड़की** वाला मकान चाहिए।
(क) जिसमें एक खिड़की हो; (ख) खिड़कीयुक्त, हवादार)।

२—(क) कम-से-कम **इलायची** लो।
(ख) **कम-से-कम** इलायची लो।

इलायची के स्थान पर पान, पानी, सौंफ़, शर्बत, मिठाई आदि अन्य अनेक शब्दों का भी इसी प्रकार प्रयोग हो सकता है।

३—(क) आज **कम-से-कम** बोलूँगा।
(ख) आज कम-से-कम **बोलूँगा**।

४—(क) **दवा** खाने के बाद पीना।
(ख) दवा **खाने** के बाद पीना।

५—(क) राम आया और खाना खाकर चला गया।
(ख) राम आया **और** खाना खाकर चला गया।

पाँचवें में विरोध बलाघात-परिवर्तन में न होकर बलाघात न होने (क) तथा होने (ख) में है। क में 'और' का अर्थ है तथा (and), किन्तु ख में 'और' का अर्थ है 'और ज्यादा' (more) अथवा 'दूसरा'।

६— कभी-कभी बलाघात एक शब्द पर होने पर अनिश्चय (अंग्रेज़ी a) तथा बलाघात दूसरे शब्द पर होने पर निश्चय (अंग्रेज़ी the) का भाव भी आ जाता है—

(क) तुमने **पौधे** उखाड़े हैं (plants)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख) तुमने पौधे उखाड़े हैं। (the plants)।

७--(क) यह तो बहुत भद्दा है।
(ख) यह तो बहुत भद्दा है।

(ख में 'बहुत'=बहुत ही। ऐसे ही एक—एक ही : एक आदमी आया है—एक आदमी आया है।

अनुतान (सुरलहर)

अनुतान या सुरलहर सुरों के उतार-चढ़ाव या आरोह-अवरोह का क्रम है जो एकाधिक ध्वनियों की भाषिक इकाई के उच्चारण में सुनाई पड़ता है।

राम गया। (सामान्य कथन)
राम गया ? (प्रश्न)
राम गया ! (आश्चर्य)

ऐसे ही विभिन्न अनुतानों में 'अच्छा' शब्द से 'हाँ' (तुम भी आना, अच्छा, आ जाऊँगा), आश्चर्य (वह पास हो गया--अच्छा !!), अनिच्छा (शाम को मेरे साथ चाय पिया—अ च्छा) आदि के भाव व्यक्त होते हैं।

अनुतान मूलतः स्वर-तन्त्रियों के प्रति सेकेण्ड कंपन में कमी-वेशी से उच्चारण में उत्पन्न उतार-चढ़ाव है, किन्तु इसके अतिरिक्त उसका सम्बन्ध बलाघात, मात्रा तथा संगम (संहिता) से भी है। ये चारों मिलकर मुख्यतः निम्नांकित तीन काम करते हैं : (१) वाक्यों के समूह को वाक्यों में, वाक्य को उपवाक्य तथा पदबंध में और पदबंध को और छोटी इकाइयों में तोड़ते हैं; (२) अभिव्यक्ति को उत्तर, सामान्य कथन, आज्ञाद्योतक, प्रश्नद्योतक तथा अनिच्छाद्योतक आदि बनाते हैं; (३) अभिव्यक्ति के विभिन्न भागों या अंशों को अर्थ के धरातल पर आपस में सम्बद्ध करते हैं।

१ को निम्न सुर, २ को सामान्य सुर तथा ३ को उच्च सुर का प्रतीक मान कर कुछ मुख्य हिन्दी अभिव्यक्तियों की अनुतान-अभिरचना यहाँ देखी जा सकती है :

(१) मकान अच्छा है। (सामान्य कथन)
(२) मकान अच्छा है। (सामान्य कथन) : २ ३ १
(३) (क) राम आ गया ? (प्रश्न) : २ ३ ३
(ख) राम आ गया क्या ? (प्रश्न) : २ ३ २
(४) राम आ गया ! (आश्चर्य) : ३ ३ १
(५) नमस्कार (अभिवादन) : १ २ ३

हिन्दी संधियाँ

हिन्दी में 'सन्धि' शब्द का प्रयोग सामान्यतः संस्कृत संधियों के लिए किया जाता है। जैसे अ+अ=आ (सर्वाधिक), ई+इ=ई (कवीन्द्र), उ+उ=ऊ (गुरूपदेश) आदि। हिन्दी के सभी व्याकरणों में इनके उदाहरण दिए होते हैं। किन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके अतिरिक्त हिन्दी की अपनी भी सन्धियाँ होती हैं। मुख्य सन्धियाँ यहाँ दी जा रही हैं।

हिन्दी की अपनी सन्धियाँ दो प्रकार की हैं : (क) एक तो वे जो केवल बोलने में मिलती हैं, और जिनका लिखने में प्रयोग नहीं होता। (ख) दूसरी वे जो उच्चारण के साथ-साथ लेखन में भी मिलती हैं। यहाँ दोनों को अलग-अलग लिया जा रहा है।

केवल उच्चारण में प्रयुक्त कुछ प्रमुख हिन्दी संधियाँ

(१) अल्पप्राण अघोष स्पर्श एवं स्पर्श-संघर्षी व्यंजन घोष के पूर्व आने पर घोष हो जाते हैं, अर्थात् क्, च्, ट्, त्, प् क्रमशः ग्, ज्, ड्, द्, ब् हो जाते हैं :-

	लिखित रूप	उच्चरित रूप
क् का ग्	डाक़घर	डाग्घर
च् का ज्	पहुँच जाऊँगा	पहुँज्जाऊँगा
ट् का ड्	ठाट-बाट	ठाड्बाट
त् का द्	मतदाता	मद्दाता
प् का ब्	धूपबत्ती	धूब्बत्ती

(२) अल्पप्राण घोष स्पर्श एवं स्पर्श-संघर्षी व्यंजन अघोष के पूर्व आने पर अघोष हो जाते हैं :

ग् का क्	नागपुर	नाक्पुर
ज् का च्	आजकल	आच्कल
द् का त्	बदतमीज़	बत्तमीज़
ब् का प्	अबकी	अप्की

(३) महाप्राण अघोष, अघोष के पूर्व आने पर अल्पप्राण अघोष हो जाते हैं :

ख् का क्	लेखपाल	लेक्पाल
छ् का च्	पूछताछ	पूच्ताछ
थ् का त्	हाथ-पाँव	हात्पाँव

(४) महाप्राण अघोष, घोष के पूर्व अल्पप्राण घोष हो जाते हैं :

ख् का ग्	भूख लगी	भूग्लगी
थ् का द्	साथ दो	साद्दो

(५) त्, थ्, द्, ध् ध्वनियाँ च्, ज्, स्, ज़्, श् के पूर्व उन्हीं के समान तथा छ्, झ् के पूर्व च्, ज् हो जाती हैं :

त्+च=च्च	बातचीत	बाच्चीत
त्+ज़=ज्ज़	बहुत ज़ोर से	बहुज्ज़ोर से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्+श्=श्श	बहुत शोर है	बहुश्शोर है
थ्+च्=च्च	साथ चल	साच्चल
द्+छ्=च्छ	गोंदछू	गोंच्छू
घ्+स्=स्स	आध सेर	आस्सेर

लेखन में प्रयुक्त संधियाँ

ये तीन प्रकार की होती हैं—

(क) **परिवर्तन**—ये दो प्रकार के होते हैं—

(१) **ह्रस्वीकरण**

आ का अ	खाट+इया=खटिया	काठ+पुतली=कठपुतली
	कान+कटा=कनकटा	आधा+खिला=अधखिला
	काला+मुँहा=कलमुँहा	पानी+घाट=पनघट
ई का इ	विद्यार्थी+यों=विद्यार्थियों	कापी+आँ=कापियाँ
	भीख+आरी=भिखारी	लड़की+आँ=लड़कियाँ
ऊ का उ	दूध+मुँहा=दुधमुँहा	मूँछ+कटा=मुँछकटा
	टूटी+पूँजिया=टुटपुँजिया	लूट+एरा—लुटेरा
	डाकू+ओं= डाकुओं	भालू+ओं=भालुओं
ए का इ	खेल+वाड़=खिलवाड़	जेठ+आनी=जिठानी
	एक+साठ=इकसठ	एक+तीस=इकतीस
ओ का उ	घोड़ा+दौड़--घुड़दौड़	दो+अन्नी=दुअन्नी
	दो+गुना=दुगुना	सोना+आर=सुनार
	लोहा+आर=लुहार	दो+बारा=दुबारा

अर्थात्—

आ का अ
ई, ए का इ
ऊ, ओ का उ

(२) **महाप्राणीकरण**—अल्पप्राण के बाद 'ह' आने पर दोनों मिलकर महाप्राण हो जाते हैं :

अब+ही=अभी, जब+ही=जभी, तब+ही=तभी, सब+ही=सभी, कब+ही=कभी।

(ख) **लोप**—यह कई प्रकार का होता है—

(१) आ के बाद ह आने पर दोनों का लोप हो जाता है: यहाँ+ही=यहीं, कहाँ+ही=कहीं, वहाँ+ही=वहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) स के बाद ह आने पर ह का लोप हो जाता है : इस+ही=इसी, जिस+ही=जिसी, किस+ही=किसी, उस+ही=उसी ।

(३) आ का लोप—घोड़ा+दौड़=घुड़दौड़
घोड़ा+ए=घोड़े
लड़का+ओं=लड़कों

(४) ई का लोप—पानी+घाट=पनघट

(ग) आगम—यह दो प्रकार का होता है—

(१) य—कवि+ओं=कवियों
हाथी+ओं=हाथियों

(२) व—साधु+ओं=साधुवों
भालू+ओं—भालुवों

लिखने में प्रायः 'वो' के स्थान पर 'ओ' लिखते हैं, किन्तु उच्चारण में थोड़ा-बहुत अंश 'व' का अवश्य होता है ।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १६

रूप-संरचना

(अ) संज्ञा

संज्ञाएं चार प्रकार की होती हैं : (क) व्यक्तिवाचक (जैसे राम, आगरा, ताजमहल, चेतक आदि); (ख) जातिवाचक (जैसे आदमी, नगर, भवन, घोड़ा आदि); (ग) भाववाचक (जैसे सुंदरता, मिठास, शत्रुता आदि); (घ) क्रियार्थक संज्ञा (जैसे चलना, खाना, पीना आदि; प्रयोग—**टहलना** अच्छा है)।

गणना की दृष्टि से संज्ञाएं दो प्रकार की होती हैं : (क) **गणनीय**—जैसे लड़का, मकान, केला, पेड़। गणनीय संज्ञाओं के बहुवचन बनते हैं तथा इनके साथ संख्यावाचक विशेषण (दो लड़के, कई मकान) आते हैं। (ख) **अगणनीय**—इनकी गणना नहीं हो सकती; जैसे पानी, अच्छाई, दया आदि। इनके सामान्यतः बहुवचन के रूप नहीं होते और न तो इनके साथ संख्यावाचक विशेषण ही आते हैं।

संज्ञा शब्दों के कारकीय रूप

हिन्दी में कारकीय रूप तीन प्रकार के होते हैं : (क) **अविकारी रूप**—जिनके साथ कारक-चिह्न (परसर्ग) न लगें; जैसे 'राम गया' में राम; या 'मैंने फूल देखा' में 'फूल' आदि। (ख) **विकारी रूप**—जिनके साथ कारक-चिह्न (परसर्ग) अवश्य लगें; जैसे 'लड़के ने फूल तोड़ा' में 'लड़के' या 'अपने मित्र को बुलाओ' में 'मित्र'। (ग) **सम्बोधन रूप**—जिसका प्रयोग संबोधन में हो; जैसे 'ओ मोहन' में 'मोहन' या 'ऐ लड़के' में 'लड़के' या 'हे भाई' में 'भाई' आदि। **अविकारी** रूप को **मूल** रूप तथा **विकारी** को **विकृत** या **तिर्यक्** रूप भी कहा जाता है।

कारकीय रूप-रचना की दृष्टि से हिन्दी में कुल चार प्रकार के संज्ञा शब्द हैं। इनके रूप तथा उनमें लगने वाले प्रत्यय नीचे दिए जा रहे हैं—

(१) **आकारांत पुल्लिंग**—(जैसे घोड़ा)

	रूप		प्रत्यय	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
अविकारी	घोड़ा	घोड़े	शून्य	ए
विकारी	घोड़े	घोड़ों	ए	ओं
संबोधन	घोड़े	घोड़ो	ए	ओ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पुल्लिग वर्ग में लड़का, बच्चा, गदहा (गधा), रुपया, कुत्ता, चूहा, बेटा, चीता, कीड़ा, साला, पर्दा, दरवाज़ा, बग़ीचा आदि अधिसंख्य आकारांत शब्द आते हैं। अपवाद ये हैं—

(क) **तत्सम शब्द**—पिता, विधाता, राजा, योद्धा, महात्मा, वक्ता, नेता, विजेता, दाता, त्राता, भ्राता, परमात्मा, ब्रह्मा, श्रोता, विक्रेता, युवा, कर्ता।

(ख) **पुनरुक्तिवाले शब्द**—नाना, दादा, मामा, बाबा, चाचा, काका, जीजा, लाला।

(ग) **वांत, यांत सामान्य तद्भव शब्द**—अगुवा, मुखिया, अँखुवा, मनुवाँ, जिया, हिया।

(घ) **कुछ विदेशी शब्द**—दारोग़ा, अब्बा, अल्ला, आक़ा, मौला, मुल्ला, मियाँ।

(ङ) **कुछ पारिभाषिक शब्द**—दादरा, अल्फ़ा, गामा, गुणा।

(च) **कुछ स्थानवाचक शब्द**—महाद्वीपों (अमरीका; आस्ट्रेलिया, एशिया, अफ्रीका), देशों (कनाडा, अर्जेन्टाइना, गाइना) तथा वांत (जैसे गोवा) एवं यांत (जैसे अयोध्या, गया) भारतीय नगरों के नाम।

इन सबके विकारी रूप बनाने में 'आ' के स्थान पर 'ए' नहीं करते तथा जिनके बहुवचन संभव हैं, 'ओं', 'ओ' अलग से जोड़ते हैं, 'आ' के स्थान पर नहीं। अर्थात्, इनके रूप दूसरे वर्ग (आगे देखिए) 'अन्य पुल्लिग' की तरह बनते हैं।

(२) **अन्य पुल्लिग**—(जैसे व्यंजनांत मित्र, इकारांत कवि, ईकारांत साथी, उकारांत साधु तथा ऊकारांत डाकू आदि)

	रूप		प्रत्यय	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
अविकारी	मित्र, कवि, साथी, गुरु, डाकू	मित्र, कवि, साथी, गुरु, डाकू	शून्य	शून्य
विकारी	मित्र, कवि, साथी, गुरु, डाकू	मित्रों, कवियों, साथियों, गुरुओं, डाकुओं	शून्य	ओं
संबोधन	मित्र, कवि, साथी, गुरु, डाकू	मित्रो, कवियो, साथियो, गुरुओ, डाकुओ	शून्य	ओ

(३) **इकारांत**—(जैसे जाति), **ईकारांत** (जैसे लड़की), **इयांत** (जैसे गुड़िया) **स्त्रीलिंग**।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	रूप		प्रत्यय	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
अविकारी	जाति, लड़की, गुड़िया	जातियाँ, लड़कियाँ, गुड़ियाँ	शून्य	आँ
विकारी	जाति, लड़की, गुड़िया	जातियों, लड़कियों, गुड़ियों	शून्य	ओं
संबोधन	जाति, लड़की, गुड़िया	जातियो, लड़कियो, गुड़ियो	शून्य	ओ

(४) **अन्य स्त्रीलिंग**—(जैसे व्यंजनांत पुस्तक, आकारांत माता, उकारांत ऋतु, ऊकारांत बहू तथा औकारात गौ आदि)

	रूप		प्रत्यय	
	एक०	बहु०	एक०	बहु०
अविकारी	पुस्तक, माता, ऋतु, बहू, गौ	पुस्तकें, माताएँ, ऋतुएँ, बहुएँ, गौएँ	शून्य	एँ
विकारी	पुस्तक, माता, ऋतु, बहू, गौ	पुस्तकों, माताओं, ऋतुओं, बहुओं, गौओं	शून्य	ओं
संबोधन	पुस्तक, माता, ऋतु, बहू, गौ	पुस्तको, माताओ, ऋतुओ, बहुओ, गौओ	शून्य	ओ

मूल शब्दों में प्रत्यय जोड़कर रूप-रचना करने में निम्नांकित ध्वन्यात्मक परिवर्तन करने पड़ते हैं : (१) आकारांत पुल्लिग संज्ञा में शून्य के अतिरिक्त कोई भी प्रत्यय जोड़ा जाय तो अंतिम 'आ' का लोप हो जाता है। जैसे घोड़ा+ए=घोड़+ए=घोड़े। इसी प्रकार घोड़ों, घोड़ो आदि में भी। (२) ईकारांत, ऊकारांत संज्ञा शब्द में शून्य प्रत्यय को छोड़कर कोई भी प्रत्यय जोड़ा जाय तो अंत्य 'ई', 'ऊ' क्रमशः 'इ, उ' में परिवर्तित हो जाते हैं। जैसे 'साथी+ओं'=साथि+ओं (साथियों); डाकू+ओं=डाकु+ओं=डाकुओं। इसी प्रकार लड़कियों, लड़कियो, बहुएँ, बहुओं, बहुओ आदि में भी। (३) ह्रस्व इ के बाद आँ, ओं, ओ प्रत्यय जोड़ें तो 'य' का आगम हो जाता है। जैसे 'कवि+ओ'=कवियो, 'साथी+ओं'='साथियों, 'जाति+आँ'='जातियाँ' तथा 'लड़की+ओं'='लड़कियों' आदि। (४) इयांत स्त्रीलिंग शब्द में आँ, ओं, ओ प्रत्यय जोड़ने पर 'या' का लोप हो जाता है और शब्द इकारांत रह जाता है। जैसे 'गुड़िया+आँ='गुड़ियाँ', 'गुड़िया+ओं'='गुड़ियों', 'गुड़िया+ओ'='गुड़ियो'। यहाँ 'य' का आगम तीसरे नियम से हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी के बहुवचन-प्रत्ययों का रूपिमिक विश्लेषण

रूपिमिक विश्लेषण की सैद्धांतिक चर्चा के लिए प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की पुस्तक 'भाषाविज्ञान' के रूपविज्ञान अध्याय के अंतर्गत 'रूपिमविज्ञान' शीर्षक देखा जा सकता है।

हिंदी में बहुवचन के लिए यों तो अपवादतः लोग, सब, गण, जन आदि शब्दों का भी प्रयोग होता है, किंतु प्रत्यय रूप में केवल छः ही आते हैं। इनमें सर्वाधिक प्रयुक्त प्रत्यय 'ओं' है, अतः उसे बहु० का रूपिम माना जा रहा है। शेष उपरूप हैं। वितरण इस प्रकार है—

रूपिम	उपरूप	वितरण
—ओं	१. —ओं	—सपरसर्ग रूप के लिए सभी शब्दों में; जैसे घरों, घोड़ों, कवियों, हाथियों, साधुओं, भालुओं, पुस्तकों, लताओं, गुड़ियों, शक्तियों, लड़कियों, वस्तुओं, बहुओं, गौओं आदि।
	२. —ओ	—संबोधन में सभी शब्दों (घोड़ो, कवियो, साधुओ आदि) के साथ।
	३. —ए	—अपरसर्ग रूप के लिए आकारांत पु० शब्दों (जैसे घोड़े, लड़के, बेटे) के साथ।
	४. —एँ	—अपरसर्ग रूप के लिए व्यंजनांत (किताबें), आकारांत (माताएँ), उकारांत (वस्तुएँ), ऊकारांत (बहुएँ), औकारांत (गौएँ) स्त्री शब्दों के साथ।
	५. —आँ	—अपरसर्ग रूप के लिए इकारांत (जातियाँ), ईकारांत (नदियाँ) तथा इयांत (गुड़ियाँ) शब्दों के साथ।
	६. —०	—अपरसर्ग रूप के लिए व्यंजनांत (घर), इकारांत (कवि), ईकारांत (हाथी), उकारांत (साधु) तथा ऊकारांत (भालू) पु० शब्दों के साथ।

(आ) सर्वनाम

सर्वनाम के कारकीय रूपों की संरचना

सर्वनाम के संबोधन के रूप नहीं होते। सर्वनाम के विश्लेषण को कई रूपों में रखा जा सकता है—

(क)

	मूल रूप	विकृत रूप	जोड़े जाने वाले कारक-चिह्न	सम्बन्ध रूप
पुरुषवाचक				
उत्तम पुरुष :				
एकवचन	मैं	मैं मुझ	ने को, ए, से, में, पर	मेरा
बहुवचन	हम	हम	ने, को, एँ, से, में, पर	हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यम पुरुष :

एकवचन	तू	तू	ने	तेरा
		तुझ	को, ए, से, में, पर	
बहुवचन	तुम	तुम	ने, को, से, में, पर	तुम्हारा
		तुम्ह	एँ	

अन्य पुरुष :

एकवचन	वह	उस	ने, को, ए, से, का, में, पर
बहुवचन	वे	उन्हों	ने
		उन	को, से, का, में, पर
		उन्ह	एँ

निश्चयवाचक

निकटवर्ती :

एकवचन	यह	इस	ने, को, ए, से, का, में, पर
बहुवचन	ये	इन्हों	ने
		इन	को, से, का, में, पर
		इन्ह	एँ

प्रश्नवाचक

एकवचन	कौन, क्या	किस	ने, को, ए, से, का, में, पर
बहुवचन	कौन-कौन	किन्हों	ने
	क्या-क्या	किन	को, से, का, में, पर
		किन्ह	एँ

सम्बन्धवाचक

एकवचन	जो	जिस	ने, को, ए, से, का, में, पर
बहुवचन	जो-जो	जिन्हों	ने
		जिन	को, से, का, में, पर
		जिन्ह	एँ

कुछ लोग उन्होंने, इन्होंने, किन्होंने, जिन्होंने आदि के स्थान पर उनने, इनने, किनने, जिनने आदि का प्रयोग करते हैं, यद्यपि ये मानक रूप नहीं हैं।

अनिश्चयवाचक (सजीव)

एकवचन	कोई	किसी	ने, को, से, का, में, पर
बहुवचन	कोई-कोई	किन्हीं	ने, को, से, का, में, पर

अनिश्चयवाचक (निर्जीव)

एकवचन	कुछ	कुछ	को, से, का, में, पर
दोनों वचन (सजीव)	कुछ	कुछ	ने, को, से, का, में, पर

काफ़ी प्रयोगों में 'कुछ' अनिश्चित संख्या का द्योतन करता है।

(ख) हिंदी के सर्वनाम अपनी संरचना की दृष्टि से पाँच प्रकार के हैं--

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष

	मूल रूप	विकृत रूप				
	ϕ	ने	को	ए	से, में, पर	क
एक०	मैं–	मै–	मुझ–	मुझ–	मुझ–	मे–
	तू	तू–	तुझ–	तुझ–	तुझ–	ते–
		ने	को	एँ	से, में, पर	क
बहु०	हम	हम–	हम–	हम–	हंम–	हमा–
	तुम	तुम–	तुम–	तुम्ह–	तुम–	तुम्हा–

इस वर्ग के सर्वनामों के संबंध में यह बात ध्यान देने की है : (क) एकवचन में विकृत रूप तीन-तीन हैं : ने के साथ मैं–तू; को-ए-से के साथ मुझ-तुझ; तथा क के साथ मे, ते; तो बहुवचन में उत्तम पुरुष के विकृत रूप दो हैं : हम-हमा, जबकि मध्यम पुरुष के तीन हैं : तुम-तुम्ह-तुम्हा ।

(२) अन्यपुरुष, निश्चयवाचक (दूरवर्ती, निकटवर्ती), संबंधवाचक, तथा प्रश्नवाचक (सजीव)

	ϕ	ने	को	ए	से, में, पर	क
एक०	वह	उस–	उस–	उस–	उस–	उस–
	यह	इस–	इस–	इस–	इस–	इस–
	जो	जिस–	जिस–	जिस–	जिस–	जिस–
	कौन	किस–	किस–	किस–	किस–	किस–
	ϕ	ने	को	एँ	से, में, पर	क
बहु०	वे	उन्हों–	उन–	उन्ह--	उन–	उन
	ये	इन्हों--	इन--	इन्ह--	इन--	इन--
	जो	जिन्हों--	जिन--	जिन्ह--	जिन--	जिन--
	कौन	किन्हों–	किन--	किन्ह--	किन--	किन–

इस वर्ग के सर्वनामों में ये बातें ध्यान देने की हैं कि एकवचन में विकृत रूप एक-एक ही हैं : उस, इस, जिस; किंतु बहुवचन में तीन-तीन हैं : उन, उन्ह, उन्हों आदि । साथ ही इसके संबंध और प्रश्नवाचक के मूल रूप दोनों वचनों में समान होते हैं ।

(३) प्रश्नवाचक (निर्जीव) तथा अनिश्चयवाचक (सजीव)

	ϕ	ने	को	ए	से, में, पर	क
एक०	क्या	+	किस--	किस--	किस--	किस--
	कोई	किसी--	किसी--	+	किसी--	किसी--
		ने	को	एँ	से	क
बहु०	क्या	+	किन--	किन्ह--	किन--	किन--
	कोई	किन्हीं--	किन्हीं–	+	किन्हीं--	किन्हीं–

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वर्ग के सर्वनाम मूल रूप एकवचन तथा बहुवचन में समान होते हैं। साथ ही इनके सभी संदर्भों में आने वाले विकृत रूप समान होते हैं। एक बात और। प्रश्नवाचक के एकवचन तथा बहुवचन में 'ने' वाले रूप नहीं होते तो अनिश्चयवाचक के -ए और -एँ वाले रूप नहीं होते।

(४) आदरसूचक तथा अनिश्चयवाचक (निर्जीव)

दोनों वचन ०	ने	को	ए	से, में, पर	क
आप	आप–	आप–	+	आप–	आप–
कुछ	कुछ–	कुछ–	+	कुछ–	कुछ–

इनमें मूल तथा विकृत दोनों ही रूप समान होते हैं।

(५) निजवाचक

दोनों वचन ०	ने	को	ए	से, में, पर	क
आप	+	आप	+	+	आप

इस वर्ग में एक ही सर्वनाम है। यह भी मूल और विकृत दोनों रूपों में एक ही रहता है। हाँ, एक अंतर अवश्य है कि संबंध के रूप में प्रत्यय जोड़ने पर इसका 'आ' अ हो जाता है : आप+न्+आ/ई/ए=अपना, अपनी, अपने।

से, में, पर के साथ इसका सीधे योग नहीं होता। इनके साथ, यह आप-से-आप, अपने आपमें, अपने आप से रूपों में आता है।

सर्वनामों की रूप-रचना के सम्बन्ध में निम्नांकित बातें ध्यान देने की हैं—

(१) लोग, सब—हिन्दी में कई सर्वनामों के बहुवचन के रूपों का प्रयोग एकवचन में होता है। उदाहरणार्थ 'हम' का प्रयोग प्रायः एकवचन में, अर्थात् 'मैं' के, स्थान पर होता है; 'तुम' का प्रयोग सर्वदा एकवचन में ही होता है; 'वे' तथा 'ये' भी आदरार्थ एकवचन के लिए आते हैं। इसीलिए स्पष्टता के लिए बहुवचन में प्रायः 'हम लोग', 'हम सब'; 'तुम लोग', 'तुम सब'; 'वे लोग', 'वे सब'; 'ये लोग', 'ये सब' का प्रयोग होता है। सामान्यतः 'लोग' का प्रयोग दो-तीन या कुछ अधिक के लिए होता है और 'सब' का प्रयोग काफ़ी अधिक के लिए। 'वे' तथा 'ये' के साथ इन रूपों में एक दूसरे प्रकार का अन्तर भी है। 'वे लोग' तथा 'ये लोग' में 'वे सब' तथा 'ये सब' की तुलना में कुछ आदर का भाव है। कौन, जो, कोई (कोई-कोई लोग) तथा आप (आदरार्थ) के साथ प्रायः केवल 'लोग' ही आता है, 'सब' (कभी-कभी आप-सब) नहीं। '··लोग' या '··सब' मूल रूप हैं : हम लोग जा रहे थे; वे सब आ रहे थे। विकृत रूप 'ओं' जोड़ कर बनता है: हम लोगों ने देखा था, उन सबों ने पूछा था। 'सब' का प्रयोग विकृत रूप में कभी-कभी बिना 'ओं' के भी होता है : हम सबने देखा। विकृत रूप में 'लोग' या 'सब' के पूर्व के सर्वनाम का भी विकृत रूप ही आता है : हम–तुम–उन–इन–किन–जिन लोगों ने।

(२) वस्तुएँ, चीजें—'क्या' के साथ बहुवचन के लिए प्रायः 'वस्तुएँ', 'चीजें' जोड़ते हैं।

(३) पुनरुक्ति—कुछ सर्वनामों का बहुवचन पुनरुक्ति से भी बनाया जाता है : जो-जो, कौन-कौन, कोई-कोई।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) नई पीढ़ी उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष में मुझ, तुझ, हम, तुम के आधार पर रूप-रचना न करके सम्बन्ध के रूपों के आधार पर कर्म, संप्रदान, अपादान, तथा अधिकरण कारक की रचना करती है : मेरे को (मुझको), तेरे से (तुझसे), हमारे में (हम में), तुम्हारे पर (तुम पर)।

(५) निजवाचक का मूल रूप 'आप' उत्तम, मध्यम तथा अन्य तीनों के साथ आता है : मैं आप चला जाऊँगा, तुम आप चले जाना, वह आप चला जाएगा। इसके प्रयोग का विश्लेषण यों हैं--

को,में,पर, क	**न**	**से**
अपने–		अपने (–)
अपने आप–	आप–	अपने आप (–)
		आप ०
		आप–आप

अर्थात्, इसके 'सम्बन्ध' के रूप तीन प्रकार के हैं : '**अपना**—**अपने का**—**अपने आप** का तो ध्यान रखो'। से– अर्थ वाले रूप छः प्रकार के हैं : 'यह काम वह **अपने**—**अपने से**—**अपने आप**—**अपने आप से**—**आप**—**आप से आप** कर लेगा'। को, से, में, पर के साथ दो-दो प्रकार के रूप हैं : अपने को—अपने आप को।

(६) स्वयं, खुद, निज निजवाचक ही हैं। 'स्वयं' तथा 'खुद' का प्रयोग 'अपने आप' अर्थ में बिना परसर्ग के (मैं स्वयं/खुद कर लूँगा) होता है। साथ ही ये को, से, में, पर तथा 'का' के साथ भी आते हैं। 'निज' का प्रयोग 'निज का' तथा 'निजी' रूप में होता है : यह मेरा **निज का**—निजी काम है।

(७) 'कौन' सामान्यतः 'मानव' तथा बड़े जीवों के लिए आता है : आज भापण देने कौन आ रहा है ? रात में खेत कौन चर जाता है ? यों इसके अन्य प्रकार के प्रयोग भी मिलते हैं : मेरा कबूतर तो पिजड़े में है, दाने कौन चुग गया ? इन प्यालों में कौन (–सा) लोगे ? 'क्या' प्रायः निर्जीव के लिए आता है : क्या खाओगे ? चावल या रोटी ? यों सजीव के लिए भी कुछ प्रयोग मिलते हैं : क्या हुआ है लड़का या लड़की ? क्या काट रहा है ? मच्छर है क्या ? क्या बोल रहा है, साँड या कोई और जानवर ? प्रश्नवाचक के चिह्न के रूप में 'क्या' सर्वनाम नहीं है : क्या तुम भी चलोगे ? तुम भी क्या आदमी हो ? ऐसे ही 'कोई' सजीव के लिए है तो 'कुछ' निर्जीव के लिए। यों अन्य प्रकार के प्रयोग भी मिलते हैं। खाने के लिए कोई चीज़ है ? 'कुछ कहते हैं कि वह मर गया' जैसे वाक्यों में कुछ सर्वनाम न होकर अनिश्चयबोधक संख्यावाचक विशेषण है। 'कुछ मुझे भी दे दो' में यह विशेषण है।

(८) कुछ–'कुछ' एक० तथा बहु० दोनों है : खाने के लिए क्या लोगे–खिचड़ी या खीर ? कुछ भी दे दो ; जो चीजें मैंने मँगवाई थीं, आ गई हैं क्या ? हाँ कुछ आ गई हैं, कुछ आज आ जाएँगी। पर यहाँ यह संख्यावाचक विशेषण है, जिसके विशेष्य 'चीजें' का लोप हो गया है। कभी-कभी दूसरे प्रकार के भी प्रयोग मिलते हैं—क्या लोगे चावल, रोटी या पराठे ? पूछते क्या हो, सभी कुछ दे दो। 'कुछ' के साथ परसर्गों का भी प्रयोग है : कुछ-का-कुछ, उन सबको दे दिया ? हाँ कुछ दे दिया, किन्तु कुछ ने लिया ही नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ई) हिन्दी सर्वनाम का रूपिमिक विश्लेषण

रूपिम	उपरूप	वितरण
मैं (एक०)	(क) मुझ	+(संज्ञा) कारकचिह्न(–ने)
	(ख) में	+रा
	(ग) मैं	अन्यत्र
हम (बहु०)	(क) हमा	+रा
	(ख) हम	अन्यत्र
तू (एक०)	(क) तुझ	+(संज्ञा) कारकचिह्न(–ने)
	(ख) ते	+रा
	(ग) तू	अन्यत्र
तुम (बहु०)	(क) तुम्हा	+रा
	(ख) तुम्ह	+एँ
	(ग) तुम	अन्यत्र
वह (एक०)	(क) उस	+(संज्ञा) कारकचिह्न
	(ख) व	+हाँ, ऐसा, ऐसे
	(ग) उ	+धर, तना
	(घ) त	+ब, यों, इतना, इधर
	(ङ) वह	अन्यत्र
वे (बहु०)	(क) उन	+(संज्ञा) को, से, का, में, पर +संज्ञा+ने
	(ख) उन्ह	+एँ
	(ग) उन्हों	+ने
	(घ) वे	अन्यत्र
यह (एक०)	(क) इस	+(संज्ञा) कारकचिह्न
	(ख) य	+हाँ, ओं
	(ग) ऐ	+सा, से
	(घ) अ	+ब
	(ङ) इ	+धर, तना
	(च) यह	अन्यत्र
ये (बहु०)	(क) इन	+(संज्ञा)को, से, का, में, पर +संज्ञा+ने
	(ख) इन्ह	+एँ
	(ग) इन्हों	+ने
	(घ) यें	अन्यत्र
जो (एक०)	(क) जिस	+(संज्ञा) कारकचिह्न
	(ख) ज	+ब, हाँ, ऐसा, ऐसे, यों
	(ग) जि	+तना, धर
	(घ) जो	अन्यत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो (बहु०)	(क) जिन	+ (संज्ञा) को, से, का, में, पर + संज्ञा + ने
	(ख) जिन्ह	+ एँ
	(ग) जिन्हों	+ ने
	(घ) जो	अन्यत्र
कौन (एक०)	(क) किस	+ (संज्ञा) कारकचिह्न
	(ख) क	+ ब, हाँ, ऐसा, ऐसे, यों
	(ग) कि	+ तना, धर
	(घ) कौन	अन्यत्र
कौन (बहु०)	(क) किन	+ (संज्ञा) को, से, का, में, पर + संज्ञा + ने
	(ख) किन्ह	+ एँ
	(ग) किन्हों	+ ने
कोई (एक०)	(क) किसी	+ (संज्ञा) ने, को, से, में, पर
	(ख) कोई	अन्यत्र
कोई (बहु०)	(क) किन्हीं	+ (संज्ञा) ने, को, से, में, पर
	(ख) कोई	अन्यत्र

उपर्युक्त तालिका में निम्नांकित बातें ध्यान देने की हैं--

(१) 'संज्ञा' शब्द कोष्ठक में रखने का अर्थ यह है कि वह शब्द आ भी सकता है, नहीं भी।

(२) 'कारकचिह्न' का अर्थ ने, को, ए (मात्र एकवचन में), से, का, में, पर है।

(३) '–ने' का अर्थ है ने को छोड़कर।

(४) 'त' 'य' 'ज' 'क' के बाद 'ब' ('य' के बाद यह नहीं आता) तथा 'हाँ' आने पर तो ये ज्यों-के-त्यों रहेंगे, किन्तु और कुछ आने पर इनके 'अ' का लोप हो जाएगा।

(इ) विशेषण

विशेषण संरचना की दृष्टि से दो प्रकार के होते है : रूढ़ (जैसे लाल, गोल, कोमल, सफेद आदि जिनमें एक ही सार्थक भाषिक इकाई होती है), यौगिक (जैसे दयालु='दया+आलु', सामाजिक='समाज+इक', रंगीन='रंग+ईन' आदि। इनमें एकाधिक सार्थक इकाइयाँ होती हैं)।

विशेषण पाँच प्रकार के होते हैं : (क) **गुणवाचक** (जैसे अच्छा, बुरा, लाल आदि); (ख) **संख्यावाचक** (जैसे एक, चार, आधा, सवा, पहला, दोनों आदि); (ग) **परिमाणवाचक** (जैसे कुछ, दो गज़, पाँच बीघा आदि); (घ) **सार्वनामिक**--ये या तो सवनाम के आधार पर बने होते हैं (जैसे 'कौन' से कैसा, कितना, कितने, 'जो' से जैसा, जितना, जितने आदि) या मूलतः सर्वनाम (वह लड़का, यह काम, मुझ ग़रीब को) ही होते हैं। (ङ) **सम्बन्धवाचक** ('राम का बेटा' में 'राम का'; 'अपना काम' में 'अपना'; इसी प्रकार मेरा, तुम्हारा, उसका आदि भी)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेषण की रचना निम्नांकित रूपों में होती है : **उपसर्ग से** (उप० + संज्ञा --बेईमान, निर्लज्ज, सफल; उप० + विशेष—सुकोमल; उप० + धातु—सजग; उप० + प्रत्यय—विज्ञ, प्रज्ञ, अज्ञ); **प्रत्यय** से (संज्ञा + प्रत्यय—बनावटी, दयालु; विशे० + धातु + प्रत्यय—उड़ाऊ, भुलक्कड़; सर्वनाम + धातु--इतना, वैसा; विशेषण + प्रत्यय—अपनेवाला, कालेवाला; क्रिया वि० + प्रत्यय—ऊपरवाला) तथा **समास** से (दुनाली, लखपती)।

विशेषणों में रूपांतरण

विशेषण रूपांतरण की दृष्टि से दो प्रकार के होते हैं। और फिर पहले के दो भेद होते हैं--

(क) **आकारांत विशेषण**— (अ) चिह्नित (marked)—जैसे अच्छा; (आ) अचिह्नित (unmarked)—जैसे बढ़िया।

(ख) **अन्य विशेषण**—लाल, सुंदर (व्यंजनांत); अति (इकारांत); भारी (ईकारांत); दयालु (उकारांत); चालू (ऊकारांत)।

इनमें केवल चिह्नित आकारांत विशेषणों में ही रूपांतरण होता है--अच्छा लड़का, अच्छे लड़के, अच्छी लड़की। शेष (अचिह्नित आकारांत तथा अन्य विशेषण) अपरिवर्तित रहते हैं : बढ़िया इमारत, उमदा मकान, बढ़िया घोड़े, लाल कपड़ा, लाल कपड़े, लाल स्याही।

रूपांतर वाले आकारांत विशेषणों की प्रयोग की स्थिति यह है--

पुल्लिंग

	एक०	बहु०
अविकारी रूप	–आ + संज्ञा	–ए + संज्ञा
विकारी रूप	–ए + संज्ञा	–ए + संज्ञा
संबोधन रूप	–ए + संज्ञा	–ए + संज्ञा

उदाहरण—लंबा लड़का गया; लंबे लड़के गए; लंबे लड़के को बुलाओ; लंबे लड़कों को बुलाओ; ऐ लंबे लड़के; ए लंबे लड़को।

स्त्रीलिंग

	एक०	बहु०
अविकारी रूप	–ई + संज्ञा	–ई + संज्ञा
विकारी रूप	–ई + संज्ञा	–ई + संज्ञा
संबोधन रूप	–ई + संज्ञा	–ई + संज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण—अच्छी लड़की गईं; अच्छी लड़कियाँ गईं; अच्छी लड़की को बुलाओ; ऐ अच्छी लड़की, ऐ अच्छी लड़कियो।

यह ध्यान देने की बात है कि आकारांत संज्ञा की तरह ये आकारांत विशेषण विकारी रूप बहुवचन में ओंकारांत नहीं बनते। अकेले विशेषण ओंकारांत हो जाते हैं किन्तु तब वे विशेषण न होकर संज्ञा का काम करते हैं: मैंने **अच्छों-अच्छों** को देखा है।

चिह्नित आकारांत विशेषण में बड़ा, छोटा, अच्छा, बुरा, लंबा, पीला, कच्चा, काला, हरा आदि सभी सामान्य आकारांत विशेषण आते हैं। इनमें उपर्युक्त प्रकार से रूपांतरण होता है।

अपवाद

(क) अचिह्नित आकारांत में अपवाद आकारांत विशेषण आते हैं, जिनमें ई, ए वाले परिवर्तन नहीं होते। इन्हें पाँच वर्गों में रखा जा सकता है—

(१) **यांत**—सींकिया, टुट (टट) पूँजिया, पुरबिया, रसिया, घटिया, बढ़िया, लफाड़िया, झंझटिया, कानपुरिया, बंबइया, ननिया, ममिया, चचिया, बखेड़िया, तइया, ददिया, फुफिया, मौसिया, दिवालिया, काइयाँ, केसरिया, मखनिया, दूधिया, चूतिया, सवाया आदि।

(२) **वांत**—महकौवा, जुड़वाँ, सवा, भगवा, ढलुवा, ढलवाँ, उठौवा, गेरुवा, गेहुवाँ।

(३) **संस्कृत तत्सम**—महा, हर्ता, कर्ता (-धर्ता)।

(४) फ़ारसी-अरबी शब्द जिनमें मूलतः अंत में 'आ' न होकर 'अः' था तथा हिन्दी में आकर 'आ' हो गया: खुलासा, सोफ़ियाना, सालाना, शायराना, आवारा, संजीदा, मौजूदा, शर्तिया, शौकिया, दुतरफ़ा, एकतरफ़ा, नाकारा, लापता, बचकाना, माहाना, क़ातिलाना, सूफ़ियाना, बहशियाना, अहमक़ाना, ज़नाना, मरदाना, खुफ़िया, जिन्दा, मुर्दा, मज़ाकिया।। 'ताज़ा' भी इसी वर्ग में है। इसमें भी परिवर्तन नहीं होता (ताज़ा फल, ताज़ा सब्जी, ताज़ा खबर), किन्तु कुछ लोग ताज़ा-ताज़ी-ताज़े बोलते हैं, जो ग़लत है।

(५) **अन्य**—(१) तद्भव—आगबबूला, चौकन्ना, छुट्टा, पोंगा, इकट्ठा।
(२) विदेशी—तनहा, आला।

(ख) ऊपर कहा गया है कि सामान्यतः व्यंजनांत विशेषणों में परिवर्तन नहीं होता, किन्तु कुछ तत्सम विशेषण अपवाद हैं, जिनके स्त्रीलिंग रूप संस्कृत में अलग होते हैं, और हिंदी में भी उनका प्रयोग होता है: श्रीमान-श्रीमती, विद्वान्-विदुषी, महान्-महती, रूपवान-रूपवती, गुणवान-गुणवती, सुन्दर-सुन्दरी, कुरूप-कुरूपा, शीलवान-शीलवती आदि।

(ग) प्रायः लोग खारा-खारी-खारे तथा सुनहरा-सुनहरी-सुनहरे बोलते हैं, किन्तु ये दोनों ही विशेषण मात्र 'खारी' और 'सुनहरी' हैं: 'खारी पानी' 'सुनहरी मौक़ा'। 'खारी' शब्द में 'ई' प्रत्यय लिंग-वचन का न होकर विशेषण का है: खार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क्षार)+ई। 'संस्कृत' 'क्षारीय' से इसका सम्बन्ध है। इसीलिए 'जापानी' (जापान +ई) का जैसे 'जापाना' या 'जापाने' नहीं हो सकता, उसी प्रकार 'खारा' और 'खारे' भी नहीं बन सकता। 'सुनहरी' के पक्ष में इस प्रकार का कोई कारण नहीं दिया जा सकता। पुल्लिग के साथ भी इसका 'सुनहरी' ही रहना सुशिक्षित लोगों के मानक प्रयोग पर आधारित है। बहुत से पंजाबीभाषी 'भारी' का 'भारा' (जैसे भारा बदन) बोलते हैं। यह भी 'खारा' की तरह ही अशुद्ध है। इसमें भी 'ई' लिंग-वचन का प्रत्यय नहीं है जिसे 'आ', 'ए' किया जा सके। यह विशेषण का प्रत्यय (भार+ई) है, और विशेषण का प्रत्यय परिवर्तित नहीं होता है। 'बासी' को पुल्लिग में 'बासा' कर देना भी इसी तरह अशुद्ध है।

तुलना

सामान्यतः मूल विशेषण के प्रयोग में स्पष्ट रूप से तुलना का भाव नहीं आता, किन्तु वास्तविकता यह है कि हर विशेषण तुलना पर ही आधारित होता है। उदाहरणार्थ, 'मोहन पढ़ने में तेज़ है' वाक्य में 'तेज़' एक सामान्य विशेषण है, किंतु 'तेज़ी' का निर्धारण निश्चित रूप से तुलना पर ही आधारित है। 'तेज़ है' का आशय है 'अन्य विद्यार्थियों', 'अपने सहपाठियों, 'अपने दोस्तों' या 'अन्यों' आदि की तुलना में। ऐसे विशेषण जिनमें तुलना का स्पष्ट उल्लेख न हो, मूलावस्था के विशेषण कहे जाते हैं। जिन विशेषणों में दो में तुलना हो, उत्तरावस्था के (राम मोहन से तेज़ है) तथा जिनमें सभी से तुलना हो, उत्तमावस्था के (राम सबसे तेज़ है) कहे जाते हैं।

हिंदी में तुलना की तीन पद्धतियाँ प्रचलित हैं—

(क) हिन्दी की अपनी अयोगात्मक पद्धति--'हिन्दी' संस्कृत आदि संयोगात्मक भाषाओं की तुलना में अयोगात्मक भाषा है, अतः उसकी अपनी तुलना-पद्धति भी अयोगात्मक है। वह संस्कृत आदि की तरह एक संयोगात्मक रूप या शब्द (उच्चतम पद) का प्रयोग न करके अयोगात्मक पदबंध (सबसे ऊँचा पद) का प्रयोग करती है। उत्तरावस्था में इसके लिए 'से' (राम से अच्छा), 'की अपेक्षा', 'की बनिस्बत', 'की तुलना' में, 'के मुक़ाबिले' आदि का प्रयोग होता है तो उत्तमावस्था में 'सबसे' (राम सब से अच्छा है), 'सब में', 'सब की अपेक्षा', 'सब से ज्यादा' (सब से ज्यादा शरारती), 'सबसे अधिक', 'सबसे कम' आदि का प्रयोग होता है।

(ख) संस्कृत की संयोगात्मक पद्धति--संस्कृत में तुलना के लिए दो प्रकार के प्रत्यय लगाकर शब्द बनाए जाते हैं: (क) उच्चतर–उच्चतम; (ख) कनीयस् —कनिष्ठ। पहले में क्रमशः 'तर' (तरप् प्रत्यय) तथा 'तम' (तमप् प्रत्यय) का प्रयोग है तो दूसरे में 'ईयस्' (ईयसुन् प्रत्यय) तथा 'इष्ठ' (इष्ठन् प्रत्यय) का। हिंदी ने संस्कृत से 'तर' और 'तम' प्रत्यय की परम्परा ही ली है। इसका कारण यह है कि इन प्रत्ययों के जुड़ने के बाद भी शब्द, अर्थ और संरचना के स्तर पर, पारदर्शी रहते हैं (उच्च–उच्चतर–उच्चतम, निम्न–निम्नतर–निम्नतम, निकृष्ट–निकृष्टतर–निकृष्टतम, कटु–कटुतर–कटुतम, अतः हिंदी की प्रकृति से मेल खाते हैं। दूसरी परम्परा तो हिंदी ने नहीं ली, किंतु उस परम्परा के कुछ प्रचलित शब्द मुख्यतः उत्तमावस्था वाले लिए हैं: कनिष्ठ, गरिष्ठ, वरिष्ठ, श्रेष्ठ, ज्येष्ठ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किंतु कठिनाई यह है कि इनकी रचना तथा इनके अर्थ पारदर्शी नहीं हैं, अतः हिंदी ने इन सभी को प्रायः मूलावस्था का विशेषण मान लिया है और इनमें तर-तम जोड़कर श्रेष्ठ–श्रेष्ठतर–श्रेष्ठतम (या सर्वश्रेष्ठ) जैसे प्रयोग चल पड़े हैं। लगता है कि संस्कृत में भी इन शब्दों के साथ कुछ इस तरह की कठिनाई थी। मुझे महाभारत में सर्वश्रेष्ठ का प्रयोग मिलता है, जो इस बात का प्रमाण है। पारदर्शिता की यह कठिनाई 'उत्तम' के साथ भी रही है, इसीलिए हिंदी में 'सर्वोत्तम' का प्रयोग होता है। यों यह शब्द भी परवर्ती संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है।

(ग) फ़ारसी की संयोगात्मक पद्धति––फ़ारसी में तर–तरीन प्रत्यय का प्रयोग होता है। हिंदी ने यह परम्परा तो नहीं ली है, किंतु इस परम्परा के कुछ शब्द (जैसे ज्यादातर, बदतर, बेहतर तथा बेहतरीन आदि) अवश्य लिए हैं।

प्रविशेषण––जो विशेषण किसी विशेषण की विशेषता बतलाएँ (बहुत अच्छा लड़का; निहायत गंदा घर), उन्हें प्रविशेषण कहा जा सकता है। हिंदी में दो प्रकार के प्रविशेषण हैं : (क) जो मूलतः विशेषण हैं किंतु प्रविशेषण का भी काम करते हैं : बड़ा, बहुत, अधिक। (ख) जो मूलतः ही प्रविशेषण हैं तथा विशेषण के रूप में कभी नहीं आते : निहायत, निपट, निरा अत्यंत, बेहद।

(ई) क्रिया

क्रिया वह पद (गया) अथवा पदों का समूह (गया है) है जिससे किसी कार्य (वह लकड़ी काट रहा है), घटना (वह गिर गया) अथवा अस्तित्व (वह घर पर है) का बोध हो, या जो योजक का कार्य (मोहन सुंदर है) करे।

धातु

क्रिया धातुओं से बनती है। दूसरे शब्दों में 'धातु' क्रिया के मूल रूप को कहते हैं। उदाहरण के लिए पढ़ता, पढ़ा, पढ़ी, पढ़ो, पढ़िए, पढ़िएगा, पढ़ना आदि क्रिया-रूप हैं। इन सभी में 'पढ़' आया है, अतः यह धातु हैं। 'पढ़' धातु में ही ता, आ, ई, ओ आदि जोड़कर पढ़ता, पढ़ा, पढ़ी, पढ़ो आदि रूप बने है। क्रिया का सामान्य रूप 'ना'-युक्त होता है : पढ़ना, खाना, जाना, लिखना, पीना, दौड़ना, तैरना आदि। सामान्य रूप से 'ना' निकालने पर धातु का पता चल जाता है : पढ़, खा, जा, लिख, पी, दौड़, तैर। यों सामान्यतः ना-युक्त रूप को ही धातु कहते हैं। जैसे––करना। आज्ञा के अर्थ में तू के साथ हिन्दी में क्रिया के धातु-रूप का ही प्रयोग होता है : तू पढ़, तू जा, तू बैठ। इस प्रकार धातु का पता तीन प्रकार से लगाया जा सकता है—(१) एक क्रिया के विभिन्न रूपों में समान तत्व खोज कर। (२) सामान्य क्रियारूप में से 'ना' निकाल कर। (३) क्रिया का 'तू' के साथ आज्ञा-रूप में प्रयोग करके। हिन्दी में धातुएँ रचना, कर्म और पूरक आदि के आधार पर कई वर्गों में रखी जा सकती हैं। रचना के आधार पर धातुएँ मूलतः दो प्रकार की हैं : मूल धातु, यौगिक धातु।

मूल धातु––मूल धातु उसे कहते हैं जो किसी अन्य शब्द या धातु आदि से न बनी हो, अर्थात् रचना के स्तर पर जिसमें एक ही सार्थक इकाई हो। जैसे––चल, पढ़, जा, रो, बैठ आदि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यौगिक धातु—वह धातु जो किसी अन्य शब्द या धातु आदि से बनी हो, अर्थात् जिसमें रचना के स्तर पर एकाधिक सार्थक इकाइयाँ हों। हिन्दी में यौगिक धातुएँ कई प्रकार की हैं : (क) **द्विधातुक धातु**—जिसमें दो धातुएँ एक में मिलकर एक धातु बन गई हों। हिन्दी में ऐसी केवल एक ही धातु है 'ला' (ले+ आना)। (ख) **नामधातु**—जो संज्ञा (शर्मा, हथिया) अथवा विशेषण (गर्मा) आदि से बनी हो। (ग) **नामिक धातु**—जो संज्ञा, विशेषण आदि क्रियेतर शब्दों में क्रिया कर (दे० आगे) जोड़ कर बनी हो, जैसे सुनाई पड़, दाखिल हो, याद कर। (घ) **ध्वन्यात्मक (अथवा अनुकरणात्मक) धातु**—जो ध्वनियों के अनुकरण पर बने शब्दों के आधार पर बनी हो; जैसे खटखटा, भड़भड़ा। (ङ) **साधित सकर्मक धातु**—जो अकर्मक धातु में कुछ जोड़ कर बनी हो; जैसे उठ से उठा, चल से चला। (च) **प्रेरणार्थक धातु**—जो अकर्मक (उठ से उठवा) अथवा सकर्मक (लिख से लिखवा) धातुओं से बनाई गई हो। (छ) **समस्त धातु**—जिसमें दो धातुओं से द्वन्द्व समास बना लिया गया हो, तथा जो दोनों इकाइयों का अर्थ, एक का अर्थ, अथवा कोई अलग अर्थ दे। इसमें कभी-कभी तो दो अविरोधी अर्थवाली धातुएँ होती हैं (जैसे पढ़-लिख, खेल-कूद, सोच-समझ), कभी विरोधी अर्थवाली धातुएँ होती हैं (जैसे कह-सुन) तो कभी पर्याय धातुएं (चल-फिर, लीप-पोत, मार-पीट) और कभी एक सार्थक और दूसरी निरर्थक धातु (देख-भाल, रो-धो)। (ज) **संयुक्त धातु**—जिस धातु में एक मुख्य धातु होती है तथा दूसरी रंजक धातु। उदाहरण के लिए—लिख मार, आ टपक, आ मर। इनमें लिख, टपक, आ मुख्य धातुएँ हैं तथा मार, टपक, मर रंजक धातुएं। रंजक धातुएं उन्हें कहते हैं जो मुख्य क्रिया पर अपना रंग चढ़ा देती हैं। उपर्युक्त उदाहरणों में 'मार' मुख्य धातु पर असावधानी का, 'टपक' असमानता का तथा 'मर' वक्ता के आक्रोश का रंग चढ़ा रही है।

धातुओं के इन भेदों से बनने वाली क्रियाएं क्रमशः **मूल क्रिया, द्विधातुक क्रिया, नामधातुक क्रिया, नामिक क्रिया, ध्वन्यात्मक** (अथवा अनुकरणात्मक) **क्रिया, सकर्मक क्रिया, प्रेरणार्थक क्रिया, समस्त क्रिया,** तथा **संयुक्त क्रिया** कहलाती हैं।

धातुओं के ये भेद रचना के आधार पर थे। कर्मकता के आधार पर धातुओं के मूलतः दो भेद होते हैं : **अकर्मक** (जिसका कोई कर्म न हो, जैसे चल, बैठ) और **सकर्मक**। फिर सकर्मक के दो उपभेद होते हैं: **एककर्मक** (जिसका एक कर्म हो; जैसे देख, सुन, पढ़,) तथा **द्विकर्मक** (जिसके दो कर्म हों, जैसे लिख—राम **मोहन** को **पत्र** लिखता है, सुना—मैंने **बच्चे** को **कहानी** सुनाई)। द्विकर्मक धातु का पहला कर्म प्राणिवाचक होता है जिसे **गौण कर्म** कहते हैं, तथा दूसरा कर्म अप्राणिवाचक होता है जिसे **मुख्य कर्म** कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरणों में मोहन तथा बच्चा गौण कर्म हैं तो पत्र और कहानी मुख्य कर्म। कुछ धातुएँ कभी एककर्मक (राम **पत्र** लिख रहा है) होती हैं, तो कभी द्विकर्मक (राम अपने **मित्र** को **पत्र** लिख रहा है।) गौण कर्म के साथ कारकचिह्न (ए—उसे, इसे; एँ—उन्हें, इन्हें; को—मित्र को) अवश्य आता है, किंतु मुख्य कर्म के साथ नहीं।

पूरक के आधार पर धातुओं के दो भेद होते हैं : **पूरकापेक्षी, अपूरकापेक्षी**। पूरकापेक्षी धातु के दो भेद होते हैं : अकर्मक और सकर्मक। अकर्मक के पूरक को **कर्तृपूरक** (मोहन मंत्री है) तथा सकर्मक के पूरक को **कर्मपूरक** (जनता पार्टी ने श्री रेड्डी को राष्ट्रपति बनाया) कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य क्रिया

हिंदी क्रिया में कभी तो एक क्रियापद होता है (**राम गया**) और कभी एकाधिक क्रियापद (मैंने वह काम **कर दिया** है)। जब क्रिया में एकाधिक पद हों तो उसका मुख्य अर्थद्योतक अंश, जो प्रायः सबसे पहले होता है, **मुख्य क्रिया** कहलाता है और शेष अंश **सहायक क्रिया**। ऊपर के वाक्य के 'कर दिया है' में 'करना' मुख्य क्रिया है तथा 'देना' और 'होना' सहायक क्रिया।

मुख्य क्रिया उन सभी धातुओं से बनती है, जिनकी ऊपर चर्चा (मूल, द्विधातुक, नामधातुक, नामिक आदि) की जा चुकी है। इसके मुख्यतः चार प्रकारों का उल्लेख किया जा सकता है : (क) **कार्यद्योतक क्रिया**--जिससे किसी कार्य के किए जाने का द्योतन हो; जैसे राम **पढ़** रहा है; मोहन **खा** रहा है। (ख) **घटना-द्योतक क्रिया**—जिससे किसी घटना का द्योतन हो; जैसे राम **गिर** गया। (ग) **अस्तित्व-द्योतक क्रिया**—जिससे अस्तित्व का द्योतन हो; जैसे मोहन कमरे में **है**; मैं बाहर **था**। यह क्रिया काल का भी द्योतन साथ-साथ करती है। (घ) **सम्बन्धद्योतक अथवा योजक** (Link Verb) **क्रिया**—जो दो को जोड़ने का काम करे; जैसे राम डाक्टर है, मोहन बीमार था। यह क्रिया सम्बन्ध के साथ-साथ काल का भी द्योतन करती है : राम पहले डाक्टर था, अब अभिनेता है।

सहायक क्रिया

सहायक क्रिया उस क्रिया को कहते हैं जो क्रिया पदबन्ध में मुख्य न होकर किसी-न-किसी रूप में सहायक मात्र (लड़का गिर **गया**) होती है। हिन्दी में सहायक क्रियाएँ निम्नांकित छः प्रकार की होती हैं : (क) **कालद्योतक सहायक क्रिया**—यह काल का द्योतन करती है। हिन्दी में 'होना' क्रिया के रूपों से काल का द्योतन होता है; जैसे है, था आदि। 'राम जा रहा है' तथा 'राम जा रहा था' में स्पष्ट है कि 'है' से वर्तमान काल का द्योतन हो रहा है तो 'था' से भूतकाल का। वाक्य में ऐसी क्रिया के रूप को **काल-चिह्नक** (टेंस मार्कर) कहते हैं। ऊपर के वाक्यों में 'है' और 'था' काल-चिह्नक हैं। (ख) **वाच्यद्योतक सहायक क्रिया**—यह वाच्य का द्योतन करती है। हिन्दी में 'जा' ऐसी ही धातु है जिससे वाच्यद्योतक क्रिया बनती है। इससे कर्म और भाववाच्य का द्योतन होता है : पुस्तक पढ़ी **जाती** है (कर्मवाच्य); अब तो यह दृश्य देखा नहीं जाता (भाववाच्य)। (ग) **पक्षद्योतक सहायक क्रिया**--जिससे क्रिया की पूर्णता-अपूर्णता-सातत्यता आदि का द्योतन हो। हिन्दी में 'रहना' सातत्य पक्ष (वह खा रहा है) की सहायक क्रिया है। (घ) **वृत्तिक क्रिया** (Modal Verb)--यह सहायक क्रिया अपने रूप के प्रति वक्ता की मनोवृत्ति (mood) या उसका दृष्टिकोण व्यंजित करती है। हिन्दी में चाहिए, चुकना, पाना, पड़ना, सकना तथा होना ऐसी क्रियाएँ हैं। उदाहरण के लिए, 'तुम्हें जाना पड़ेगा', 'तुम्हें जाना होगा' तथा 'तुम्हें जाना चाहिए' में वक्ता प्रथम दो में अनिवार्यता या बाध्यता तथा अंतिम में औचित्य या आवश्यकता व्यंजित कर रहा है। ऐसे ही 'चुकना' से समाप्ति तथा 'पाना' और 'सकना' से 'सामर्थ्य' आदि। (ङ) **रंजक क्रिया** (Explicator, Vector या Intensifier)--इस वर्ग की सहायक क्रिया मुख्य क्रिया पर अपना रंग चढ़ा देती है, इसीलिए इसे रंजक क्रिया कहते हैं। उदाहरण के लिए, 'मैंने काम कर लिया' में 'लेना', 'मैंने पत्र लिख दिया' में 'देना', 'वह कहाँ से आ मरा' में 'मरना' तो 'तुमने यह क्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिख मारा' में 'मारना' आदि। हिन्दी में रंजक धातुओं की संख्या लगभग बीस है।
(च) क्रियाकर (Verbalizer)—वह सहायक क्रिया जो किसी संज्ञा या विशेषण आदि से मिलकर क्रिया का निर्माण करे; जैसे 'दाखिल होना' में 'होना', 'याद करना' में 'करना', 'दिखाई देना' में 'देना', 'सुनाई पड़ना' में 'पड़ना' या 'मोल लेना' में 'लेना' आदि। हिन्दी में मुख्य क्रियाकर ये ही हैं।

यौगिक क्रिया

मुख्य और सहायक क्रिया के अतिरिक्त यौगिक क्रिया का भी उल्लेख इस प्रसंग में किया जा सकता है। इसमें दो क्रियाएँ साथ में आती हैं और दोनों का अलग-अलग अर्थ होता है। ये क्रियाएँ एक के बाद दूसरी आती हैं तथा दोनों आंतरिक संरचना में मुख्य क्रिया के रूप में काम करती हैं। बाह्य संरचना में इनके बीच 'कर' का लोप होता है; जैसे ले जाना, कर देखना, जा लेटना, आ पहुँचना, जा पहुँचना, मार भगाना, लिख भेजना आदि। इनमें पहली एक प्रकार से पूर्वकालिक कृदन्त होती है।

अकर्मक-सकर्मक

कुछ धातुएँ अकर्मक होती हैं और कुछ सकर्मक। कुछ सकर्मक धातुएँ मूलतः अकर्मक से बनी होती हैं; जैसे चल से चला, उठ से उठा, बैठ से बैठा आदि। सामान्यतः यह समझा जाता है कि अकर्मक से ही सकर्मक धातुएं बनती हैं, किन्तु वास्तविकता यह है कि यदि कुछ धातुएँ मूलतः अकर्मक होती हैं और उनसे सकर्मक धातुएँ बनती हैं तो दूसरी ओर कुछ धातुएं मूलतः सकर्मक होती हैं और उनसे अकर्मक धातुएँ भी बनती हैं। उदाहरण के लिए 'देख' मूलतः सकर्मक धातु है। देखे जाने के लिए कोई-न-कोई देखने वाला और कुछ-न-कुछ दिखाई पड़ने वाला होना ही चाहिए। 'दिख' उसी से बनी अकर्मक धातु है : यहाँ से कुतुबमीनार दिखती है। स्पष्ट है कि यहाँ 'दिखने' में मूल धातु की सकर्मकता स्पष्ट है—कोई देखेगा तभी वह दिखेगी। इस प्रकार बज (कहीं हारमोनिम बज रहा है), सिल (कपड़े सिल गए), बँध (सामान बँध गया) आदि भी सकर्मक से बनीं अकर्मक धातुएं हैं।

कुछ अकर्मक-सकर्मक धातुएँ अर्थ के स्तर पर ही संबद्ध होती हैं, किन्तु रूप के स्तर पर नहीं। जैसे कर (सकर्मक)—हो (अकर्मक)।

सकर्मक से अकर्मक बनाने के लिए 'आ' का 'अ' (बाँध-बँध), ई का इ (सी-सिल), ए का इ (देख-दिख) तथा ओ का उ (रोक-रुक) आदि करते हैं या अंत्य 'आ' को निकाल (उड़ा-उड़, चला-चल) देते हैं। कभी-कभी इनके अतिरिक्त व्यंजन भी जोड़ (सी-सिल) देते हैं।

अकर्मक से सकर्मक बनाई जाने वाली धातुएँ प्रायः प्रथम प्रेरणार्थक होती हैं, अतः उनकी रचना की चर्चा प्रेरणार्थक के प्रसंग में की जायगी।

नाम धातु

नाम धातु उन्हें कहते हैं जो क्रिया या धातु के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार के शब्द के आधार पर बनी होती हैं। हिन्दी में नाम धातुएँ मुख्य रूप से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रियाविशेषण से बनती हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा से—

हाथ	हथियाना (इया जोड़कर)
लाज	लजाना (आ जोड़कर)
दुःख	दुखाना (आ जोड़कर)
झूठ	झुठलाना (ला जोड़कर)
शर्म	शर्माना (आ जोड़कर)
रंग	रंगना (शून्य जोड़कर, अर्थात् बिना कुछ जोड़े)
फटकार	फटकारना (शून्य जोड़कर)
खर्च	खर्चना (शून्य जोड़कर)
धिक्कार	धिक्कारना (शून्य जोड़कर)

सर्वनाम से—

अपना	अपनाना (शून्य जोड़कर)

विशेषण से—

गर्म	गर्माना (आ जोड़कर)
आधा	अधियाना (इया जोड़कर)

क्रियाविशेषण से—

ऊपर	उपराना (आ जोड़कर)

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि नाम धातु बनाने के लिए निम्नलिखित पद्धतियाँ हिन्दी में चलती हैं—

मूल	योग	परिवर्तन	नामधातु
१. खर्च	शून्य	×	खर्चना
२. गर्म	आ	×	गर्माना
३. लाज	आ	आ>अ	लजाना
४. हाथ	इया	आ>अ	हथियाना
५. आधा	इया	आ>अ	अधियाना
६. हरा	इया	आ>अ	हरियाना
७. झूठ	ला	ऊ>उ	झुठलाना
८. सीख	आ	ई>इ	सिखाना

अकर्मक से सकर्मक तथा सकर्मक से अकर्मक

अकर्मक से सकर्मक बनाने की मुख्य प्रक्रियाएँ

(व=व्यंजन, स=ह्रस्व स्वर, सः=दीर्घ स्वर)

एकाक्षरी : (१) वसः→वस+ला (जी–जिला)
(२) वसः→वस+आ (चू–चुआ–चुवा)
(३) सव→सव+आ (उड़–उड़ा)
(४) वसव→वसव+आ (गिर–गिरा)
(५) वसःव→वसव+आ (घूम–घुमा, भाग–भगा, खेल–खिला)
(६) वसव→वसःव (रुक–रोक)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्व्यक्षरी : (१) वसवसः→वसव+ला (नहा–नहला)
(२) वसवसव→वसवव+आ (चमक–चमका)
(३) वसवसव→वसवसःव (निकल–निकाल)

अर्थात्, पहले अक्षर का स्वर दीर्घ हो तो उसे ह्रस्व कर देते हैं, तथा या तो अंत में 'आ' अथवा 'ला' जोड़ देते हैं, या फिर बीच के ह्रस्व स्वर को दीर्घ (निकल-निकाल) कर देते हैं।

सकर्मक से अकर्मक बनाने की मुख्य प्रक्रियाएँ

एकाक्षरी : (१) वसःव→वसव (काट-कट, पीस-पिस, लूट-लुट, घेर-घिर, रोक-रुक, तौल-तुल)
(२) वसःव→वसव (व्यंजन-परिवर्तन भी; बेच-बिक)
(३) वसःव→वसःव (स्वर तथा व्यंजन-परिवर्तन; छोड़-छूट, तोड़-टूट)

अर्थात्, या तो दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर देते हैं, या ह्रस्व करने के साथ-साथ व्यंजन-परिवर्तन (बेच-बिक) भी करते हैं, या फिर स्वर और व्यंजन दोनों को परिवर्तित कर (तोड़-टूट) देते हैं।

यह ध्यान रखने की बात है कि रुक (हवा रुक गई) तथा उड़ (कबूतर उड़ गया) आदि कुछ धातुएँ एक ओर तो मूलतः अकर्मक हैं, दूसरी ओर मूल सकर्मक (ड्राइवर गाड़ी रोक रहा है, वह पतंग उड़ा रहा है) से अकर्मक।

हिन्दी में कुछ अकर्मक-सकर्मक धातुएँ ऐसी भी हैं जो रूप के स्तर पर तो अलग-अलग हैं, किन्तु अर्थ के स्तर पर अकर्मक-सकर्मक हैं : आ-ला, आ-बुला, जा-भेज, कह-रख, हो-कर।

कुछ धातुएँ ऐसी भी होती हैं जो कभी तो अकर्मक और कभी सकर्मक रूप में काम करती हैं। जैसे पढ़ (वह पढ़ता है=स्कूल जाता है; वह पुस्तक पढ़ता है); खुजला (हाथ खुजला रहा है; वह अपना हाथ खुजला रहा है); घिस (टायर घिस गया; पुजारी चंदन घिस रहा है) आदि।

यही नहीं, मूलतः अकर्मक धातुओं का सकर्मक प्रयोग (वह हँसता है–वह अजीब हँसी हँसता है; राम सो रहा है=राम गहरी नींद सो रहा है) तथा सकर्मक धातुओं का अकर्मक प्रयोग (मैंने बात सुनी=आपरेशन के बाद अब वह सुन लेता है) भी होता है।

कुछ धातुओं का यह निश्चय करना कठिन है कि वे मूलतः अकर्मक (कबूतर उड़ रहा है) हैं या सकर्मक (पतंग उड़ रही है)। ऐसे ही—पता नहीं कैसे दीवाल फट गई है; पुस्तक फटी है, यह तुम्हारी ही शरारत है।

प्रेरणार्थक धातु और क्रिया

प्रेरणार्थक धातु उस धातु को कहते हैं जिससे बनने वाली क्रिया किसी और की प्रेरणा से सम्पन्न होती है। उदाहरण के लिए, 'बीमार दवा पीता है' में 'पी'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धातु से बनने वाली क्रिया 'पीता', किसी अन्य की प्रेरणा से सम्पन्न नहीं हो रही है, बीमार स्वयं पीता है, इसीलिए न तो 'पी' धातु प्रेरणार्थक है, और न उससे बनने वाली क्रिया 'पीता' प्रेरणार्थक है। इसके विपरीत 'कंपाउन्डर बीमार को दवा पिलाता है' वाक्य में 'कंपाउन्डर' प्रेरणा दे रहा है, और 'बीमार' दवा पी रहा है। अर्थात्, इस वाक्य में प्रयुक्त 'पिला' प्रेरणार्थक धातु है तथा उससे बनने वाली 'पिलाता' क्रिया प्रेरणार्थक क्रिया है। इसमें प्रेरक 'एक' (कंपाउन्डर) है, अतः यह प्रथम प्रेरणार्थक है। इसकी तुलना में 'डाक्टर कंपाउन्डर से मरीज को दवा पिलवाता है' वाक्य में 'डाक्टर' कंपाउन्डर को प्रेरित कर रहा है, तथा 'कंपाउन्डर' मरीज़ को। इस तरह इसमें दो प्रेरक हैं, अतः 'पिलवा' धातु द्वितीय प्रेरणार्थक है तथा 'पिलवाता है' द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया। अर्थात्—

मूल क्रिया	—बीमार दवा **पीता** है।
प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया	—कंपाउन्डर बीमार को दवा **पिलाता** है।
द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया	—डाक्टर कंपाउन्डर से मरीज़ को दवा **पिलवाता** है।

केलॉग, गुरु आदि हिंदी के परंपरागत वैयाकरणों ने प्रेरणार्थक क्रिया का विवेचन रूप-रचना के स्तर पर ही किया है, किंतु वास्तविकता यह है कि इसका विवेचन **रूप-रचना** और **वाक्य-रचना** दोनों ही स्तरों पर किया जाना चाहिए। यहाँ दोनों स्तरों पर अत्यंत संक्षेप में विश्लेषण करने का यत्न किया जा रहा है। **यह संकेत्य है कि रूप-रचना के स्तर पर प्रेरणार्थक धातु का विश्लेषण अपेक्षित है, तो वाक्य-रचना के स्तर पर प्रेरणार्थक क्रिया का।**

प्रेरणार्थक धातु : रूप-रचना के स्तर पर

हम देख चुके हैं कि हिंदी में प्रेरणार्थक धातुएं दो प्रकार की (प्रथम प्रेरणार्थक, द्वितीय प्रेरणार्थक) होती हैं। उन दोनों के लिए कुछ प्रत्यय जोड़े जाते हैं तथा कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन किए जाते हैं—

मूल धातु	प्रथम प्रेरणार्थक धातु		द्वितीय प्रेरणार्थक धातु	
	प्रत्यय	धातु	प्रत्यय	धातु
चल	+आ	चला	+वा	चलवा
पी	+ला	पिला	+लवा	पिलवा

(क) बच्चा **चलता** है।

(ख) नौकर बच्चे को **चलाता** है।

(ग) पिता नौकर से बच्चे को **चलवाता** है।

(क) बच्ची दूध **पीती** है।

(ख) आया बच्ची को दूध **पिलाती** है।

(ग) माँ आया से बच्ची को दूध **पिलवाती** है।

प्रेरणार्थक धातु बनाने के लिए निम्नांकित प्रक्रियाएँ की जाती हैं—

(१) **प्रत्यय-योग**—प्रत्यय है शून्य, 'आ', 'वा', 'ला', 'लवा'। इनमें प्रथम प्रेरणार्थक के हैं 'आ', 'ला', 'शून्य' तथा द्वितीय के 'वा' 'लवा'। यथा—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिख	लिखा	लिखवा
चल	चला	चलवा
कह	कहला	कहलवा

(२) प्रत्यय-योग तथा ध्वनि-परिवर्तन—इसके दो भेद हैं—

(क) स्वर-परिवर्तन

घूम	घुमा	घुमवा
भीग	भिगा	भिगवा
जी	जिला	जिलवा
पी	पिला	पिलवा
रुक	रोक	रुकवा
तुल	तोल	तुलवा
खुल	खोल	खुलवा

अंतिम तीन में प्रथम प्रेरणार्थक के लिए शून्य प्रत्यय जोड़ा गया है।

(ख) स्वर तथा व्यंजन परिवर्तन

टूट	तोड़	तुड़वा
फूट	फोड़	फुड़वा
छूट	छोड़	छुड़वा
बिक	बेच	बिकवा

यों वास्तविक रूप में इस वर्ग में मूल धातु प्रथम प्रेरणार्थक है। उससे एक ओर टूट, फूट, छूट, बिक बने हैं तो दूसरी ओर 'वा' वाले रूप; या यह भी माना जा सकता है कि 'टूट' आदि से 'वा'-वाले रूप।

प्रेरणार्थक धातु : प्रथम प्रेरणार्थक शब्द-स्तर पर, द्वितीय रूप-स्तर पर

कुछ धातुएँ ऐसी भी हैं जिनके प्रथम प्रेरणार्थक शब्द-स्तर पर मिलते हैं, प्रत्यय जोड़कर या ध्वनि-परिवर्तन करके उनकी रचना नहीं होती। हाँ, उनके द्वितीय प्रेरणार्थक प्रत्यय से बनते हैं। उदाहरणार्थ : आ—ला—लिवा, आ—बुला—बुलवा, जा—भेज—भिजवा, रह—रख—रखवा, हो—कर—करा, करवा।

प्रेरणार्थक क्रिया : वाक्य-स्तर पर

तीन वाक्य लें—

(क) बच्चा शीशी का दूध पी रहा है।

(ख) माँ बच्चे को शीशी का दूध पिला रही है।

(ग) माँ आया से बच्चे को शीशी का दूध पिलवा रही है।

इन वाक्यों में 'क' में एक कर्ता है : 'बच्चा'। 'ख' में 'माँ' **प्रेरक कर्ता** है और 'बच्चा' **प्रेरित कर्ता**। बच्चा माँ की प्रेरणा से दूध पी रहा है। 'ग' में एक ओर तो 'माँ' **प्रेरक कर्ता** है तो 'आया' **प्रेरित कर्ता**; दूसरी ओर 'आया' **प्रेरक कर्ता** है तो 'बच्चा' **प्रेरित कर्ता**। अर्थात्—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

	कर्ता		
मूल क्रिया			
प्रथम प्रेरणार्थक	प्रेरक कर्ता	→	प्रेरित कर्ता
द्वितीय प्रेरणार्थक	प्रेरक कर्ता	→	प्रेरित कर्ता
			प्रेरक कर्ता→प्रेरित कर्ता

अर्थात्, द्वितीय प्रेरणार्थक में एक कर्ता प्रेरित और प्रेरक दोनों होता है। उपर्युक्त 'ग' वाक्य में 'आया' की यही स्थिति है। इस प्रकार के कर्ता को 'प्रेरित-प्रेरक,' 'प्रेरित-प्रेरक कर्ता' या 'मध्यस्थ कर्ता' कहते हैं।

वाक्य-स्तर पर एक बात और भी ध्यान देने की है कि मूल क्रिया के वाक्य में बाह्य और आंतरिक दोनों स्तरों पर एक वाक्य होता है—

बच्चा चलता है।

प्रथम प्रेरणार्थक में आंतरिक स्तर पर दो वाक्य होते हैं—

बाह्य—नौकर बच्चे को चलाता है।

आंतरिक—नौकर प्रेरणा देता है+बच्चा चलता है।

द्वितीय प्रेरणार्थक में आंतरिक स्तर पर तीन वाक्य होते हैं—

बाह्य—माँ नौकर से बच्चे को चलवाती है।

आंतरिक—माँ नौकर को प्रेरणा देती है+नौकर बच्चे को प्रेरणा देता है+बच्चा चलता है।

अर्थात्, मूल क्रिया आंतरिक स्तर पर भी एक ही होती है। प्रथम प्रेरणार्थक क्रिया आंतरिक स्तर की दो क्रियाओं से बनी होती है तथा द्वितीय प्रेरणार्थक क्रिया चार क्रियाओं से। उदाहरणार्थ 'माँ बच्चे को कहानी सुना रही है' में 'सुना' (प्रथम प्रेरणार्थक)=कहना (माँ का)+सुनना (बच्चे का)। 'माँ बच्चे को नौकर से कहानी सुनवा रही है' में सुनवा=कहना (माँ का)+सुनना (नौकर का)+कहना (नौकर का)+सुनना (बच्चे का)—माँ ने नौकर से कहा कि बच्चे को कहानी सुनाओ, नौकर ने **सुना** और वह कहानी कहने लगा, बच्चे ने कहानी **सुनी**।

हिन्दी धातुएं : अकर्मक, सकर्मक तथा प्रेरणार्थक की दृष्टि से

अकर्मक-सकर्मक-प्रेरणार्थक की दृष्टि से हिन्दी धातुओं के मुख्यतः छः वर्ग बनते हैं—

१. मूल अकर्मक (चल, उठ, हँस)--प्रथम प्रे० (चला, उठा, हँसा)–द्वितीय प्रे० (चलवा, उठवा, हँसवा)।

२. मूल सकर्मक (देख)–अक० (दिख)–प्र० प्रे० (दिखा)–द्वि० प्रे० (दिखवा, दिखलवा)।

३. मूल सकर्मक (बना, कर)–अक० (बन, हो)–द्वि० प्रे० (बनवा, करा, करवा)।

४. मूल सकर्मक (खा, पी)–प्र० प्रे० (खिला, पिला)–द्वि० प्रे० (खिलवा, पिलवा)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५. मूल सकर्मक (धो, रख)–अक० (धुल, रह)–द्वि०प्रे० (धुलवा, रखवा)।

६. मूल सकर्मक (कह, भेज)–द्वि० प्रे० (कहला, भिजवा)।

कृदंत

हिन्दी क्रिया में कृदंतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कृदंत दो शब्दों से मिलकर बना है : 'कृत्+अंत'। अर्थात्, कृदंत ऐसे शब्दों को कहते हैं जिनके अंत में 'कृत्' प्रत्यय हो। कृत् प्रत्यय उन प्रत्ययों को कहते हैं जो धातु में जोड़े जाते हैं। इस प्रकार धातु में जब कोई प्रत्यय जोड़कर किसी शब्द की रचना होती है तो उसे उसे कृदंत कहते हैं।

हिन्दी में मुख्य कृदंत निम्नलिखित हैं—

(१) **वर्तमानकालिक कृदंत**—यह धातु में त् जोड़ने से बनता है। प्रयोग के लिए इस त् के बाद लिंग-वचन के प्रत्यय आ, ई, ए, ई जोड़े जाते हैं। जैसे—

धातु		वर्त० प्रत्यय		लिंग-वचन
चल्	+	त्	+	आ–चलता
पढ़्	+	त्	+	ई–पढ़ती
आ	+	त्	+	ए–आते
रो	+	त्	+	ई–रोतीं

इसे **अपूर्ण कृदंत** भी कहते हैं।

इसका प्रयोग निम्नांकित रूपों में होता है—

संज्ञा—**मरते** को क्या मारना ?

विशेषण—**मरते** आदमी को क्या मारना ?

क्रिया—**जाता** तो मैं भी **लाता**।

क्रियाविशेषण—राम **दौड़ता** जा रहा है।

(२) **भूतकालिक कृदंत**—इसके लिए धातु में शून्य (अर्थात् कुछ नहीं) जोड़ा जाता है, किन्तु साथ ही लिंग-वचन के प्रत्यय भी जोड़े जाते हैं। जैसे—

धातु		भूत० प्रत्यय		लिंग-वचन
चल्	+	शून्य	+	आ–चला
पढ़्	+	शून्य	+	ई–पढ़ी
दौड़्	+	शून्य	+	ए–दौड़े
लिख्	+	शून्य	+	ई–लिखीं

'अ', 'आ', 'इ', 'ओ' के बाद लिंग-वचन का 'आ' जोड़ा जाता है, तो उसके पूर्व 'य्' आ जाता है—

ग+य्+आ–गया

खा+य्+आ–खाया (आया, पाया, लाया आदि भी)

पि+य्+आ–पिया (किया, लिया, दिया, सिया आदि भी)

सो+य्+आ–सोया (रोया, टोया, खोया, बिलोया, पोया आदि भी)

ई, ऊ के बाद 'आ' जोड़ते हैं तो 'ई' का 'इ' और 'ऊ' का 'उ' हो जाता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पी+आ–पि+य–पिया

छू+आ–छुआ

अपवादस्वरूप कुछ धातुओं के रूप सामान्य से अलग बनते हैं––

धातु	पुल्लिग एक०	पुल्लिग बहु०	स्त्रीलिंग एक०	स्त्रीलिंग बहु०
कर्	किया	किए, किये	की	कीं
जा	गया	गए, गये	गई	गईं
ले	लिया	लिए, लिये	ली	लीं
दे	दिया	दिए, दिये	दी	दीं
पी	पिया	पिए, पिये	पी	पीं
सी	सिया	सिए, सिये	सी	सीं

इसे पूर्ण कृदंत भी कहते हैं।

इसका प्रयोग निम्नांकित रूपों में होता है––

संज्ञा — मरे को क्या मारना ?

विशेषण — मरे आदमी को क्या मारना ?

क्रिया — राम गया।

क्रियाविशेषण — राम दौड़ा आया है।

(३) क्रियार्थक संज्ञा––इसके लिए धातु में न् जोड़ते हैं। न् के बाद लिंग-वचन के प्रत्यय आ, ई, ए आते हैं। जैसे––

चल+न्+आ–चलना

कर+न्+ई–करनी

खा+न्+ए–खाने

क्रिया का यह रूप संज्ञा की तरह प्रयुक्त होता है, अतः यह नाम पड़ा है। आज्ञा के लिए भी इसका प्रयोग होता है, इसी कारण इसे विध्यर्थक कृदन्त भी कहते हैं।

संज्ञा — सवेरे टहलना अच्छा है।

क्रिया — तुम कल सवेरे आना।

उसे जाना पड़ा।

राम को आना चाहिए।

(४) पूर्वकालिक कृदन्त––इसके लिए धातु में कर (वह खाकर आएगा), के (काम करके आएगा), करके (खा करके गया है), शून्य (वह देख आया है) जोड़ा जाता है। 'कर' धातु के साथ 'कर' न जोड़कर 'के' जोड़ते हैं (अन्य धातुओं के साथ 'के' का प्रयोग मानक नहीं माना जाता।

ज़ोर देने के लिए कभी-कभी 'कर' तथा 'के' दोनों का प्रयोग करते हैं––

उसे देख करके तो आना।

शून्य का प्रयोग प्रायः कम ही होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वकालिक कृदन्त को **पूर्वकालिक क्रिया** भी कहते हैं। इसका प्रयोग मूल क्रिया से पूर्व होने वाली क्रिया बताने के लिए होता है। जैसे—

वह **खाकर** आएगा।
राम **रोकर** गया है।
मेरा सामान **खरीदकर** लाना।
वह काम **करके** गया है।

कभी-कभी पूर्वकालिक कृदन्त रीतिबोधक क्रियाविशेषण का भी काम करता है—

राम **दौड़कर** आया है।

यहाँ 'दौड़कर' को पूर्वकालिक क्रिया के रूप में लिया जाय तो एक अर्थ होगा तथा रीतिबोधक क्रियाविशेषण के रूप में लिया जाय तो दूसरा अर्थ होगा।

सहायक क्रिया

हिंदी की सर्वाधिक प्रमुख सहायक क्रिया 'हो' है जिसके रूप कालद्योतन (राम जा रहा है, राम जा रहा था), अस्तित्वद्योतन (कमरे में है), सम्बन्धद्योतन (राम डाक्टर है), तथा संभावनाद्योतन (वह होगा) आदि का काम करते हैं। इसके रूप निम्नांकित हैं—

वर्तमान

	एकवचन	बहुवचन
उत्तम पुरुष	हूँ/हूँ/हूँ	हैं
मध्यम पुरुष	हो	हो
अन्य पुरुष	है	हैं

'हो' के उपर्युक्त रूपों में लिंग की दृष्टि से परिवर्तन नहीं होता।

भूत

	पुल्लिग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	था	थे	थी	थी
म० पु०	था	थे	थी	थीं
अ० पु०	था	थे	थी	थीं

अकेले आने पर ये रूप में अस्तित्ववाचक क्रिया (राम घर में था) अथवा सम्बन्धद्योतक क्रिया (मोहन तब बीमार था) का काम करते हैं।

'हो' के इन रूपों में पुरुष की दृष्टि से परिवर्तन नहीं होता।

संभावनार्थ (एक)

	पुल्लिग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	हूँगा, होऊँगा	होंगे	हूँगी	होंगी
म० पु०	होगा	होगे	होगी	होंगी
अ० पु०	होगा	होंगे	होगी	होंगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये रूप भी मुख्य क्रिया के साथ हों तो सहायक क्रिया का काम करते हैं—राम गया होगा (भूत); किन्तु अकेले आने पर ये अस्तित्ववाची क्रिया का काम करते हैं—राम इस समय घर में होगा (वर्तमान); या योजक क्रिया का—राम इस घटना के बारे में जब कल सुनेगा तो बहुत दुःखी होगा (भविष्य)।

संभावनार्थ (दो)

	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	हूँ या होऊँ	हों
म० पु०	हो	हो
म० पु० आदरार्थ (आप)	हों	हो
अ० पु०	हो	हों

इसका भी प्रयोग उपर्युक्त रूपों में वर्तमान, भविष्य तथा भूत तीनों में होता है—यदि इस समय वे वहाँ बैठे हों तो बुला लाओ (वर्तमान); यदि वे कल वहाँ न हों तो तुम किससे पूछोगे (भविष्य); यदि कल वे न रहे हों तो (भूत)।

संभावनार्थ (तीन)

	पुल्लिग		स्त्रीलिंग	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
उ० पु०	होता	होते	होती	होतीं
म० पु०	होता	होते	होती	होतीं
अ० पु०	होता	होते	होती	होतीं

यह उपर्युक्त रूपों (सहायक क्रिया, अस्तित्ववाची क्रिया, संबंधद्योतक क्रिया) में भूत तथा वर्तमान में प्रयुक्त है—यदि कल मैं वहाँ रहा होता तो मज़ा चखा देता (भूत); यदि इस समय यहाँ वे होते तो मेरी यह दुर्दशा न होती (वर्तमान)।

क्रिया के रूप से निश्चय, संभावना, संदेह आदि का भाव प्रकट होता है। इस भाव या रीति को ही **अर्थ, प्रकार** या **वृत्ति** कहते हैं। हिन्दी में इसके पाँच भेद हैं—

(१) **निश्चयार्थ**—जिससे निश्चित सूचना मिले। कथन, वर्णन, प्रश्न, निषेध आदि इसके अन्तर्गत आते हैं। जैसे—मोहन गया, फूल खिले हैं, क्या तुम कल जाओगे ?, मैं नहीं जाऊँगा। सभी कालों में निश्चयार्थ का प्रयोग होता है।

(२) **संभावनार्थ**—अनुमान, संभावना, इच्छा, सम्मति, कर्त्तव्य, आशीर्वाद आदि में इसका प्रयोग होता है। संभावनार्थ तीनों कालों में आता है: शायद आज वहाँ बारिश हो रही है, संभव है वे कल आए हों, मैं चाहता हूँ कि वे अपने काम की ओर ध्यान दें।

(३) **संदेहार्थ**—जिससे संदेह व्यक्त हो। जैसे—राम शायद ही मिले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) **आज्ञार्थ**—जिससे सामान्य आज्ञा, निषेधाज्ञा, उपदेश, प्रार्थना आदि का बोध हो। जैसे—तुम जाओ, आप आइए, माँ-बाप का आदर करो, बुरों का साथ मत पकड़।

(५) **संकेतार्थ**—जिससे शर्त प्रकट हो, एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निर्भर करता हो अथवा दो घटनाओं में कार्य-कारण सम्बन्ध हो। जैसे—वह पढ़ता तो पास होता। यह तीन प्रकार का होता है: (क) यदि तुम जाते तो तुम्हारा काम हो जाता। (ख) यदि वह जाता होता तो ऐसा न होता। (ग) यदि मैं गया होता तो वह मार देता।

वाच्य

क्रिया के जिस रूप से यह पता चलता है कि उसमें कर्ता की प्रधानता है या कर्म की या भाव की, उसे वाच्य कहते हैं।

गिरीश घर गया।
किरन कमीज़ सिलती है।
राजीव स्कूल से आ रहा है।

ऊपर के वाक्यों में कर्ता (गिरीश, किरन, राजीव) की प्रधानता है। इसके अन्य रूपांतर होंगे—

राधा घर गई।
राम कमीज़ सिलता है।
लड़के स्कूल से आ रहे हैं।
लड़कियाँ स्कूल जा रही हैं।

ऐसी क्रिया कर्तृवाच्य की क्रिया कहलाती है।

कर्तृवाच्य क्रिया के उस रूप को कहते हैं जिससे कर्ता की प्रधानता का पता चले। हिन्दी में ज्यादातर कर्तृवाच्य की क्रियाओं का ही प्रयोग होता है। नीचे के वाक्यों को ध्यान से पढ़िए और ऊपर के वाक्यों से तुलना कीजिए—

दंगे में मोहन मारा गया।
अखबार पढ़े जाते हैं।
वहाँ की सारी दूकानें लूट ली जाएँगी।
खीर खाई जाएगी।
एक-दो दिन में विवाह की तैयारी कर ली जाएगी।

इन वाक्यों में कर्म (मोहन, अखबार, दूकानें, खीर, तैयारी) की प्रधानता है। ऐसी क्रियाएँ कर्मवाच्य की कहलातीं हैं।

कर्मवाच्य क्रिया के उस रूप को कहते हैं जिससे कर्म की प्रधानता का पता चले। कर्मवाच्य की क्रिया प्रायः वहाँ प्रयुक्त होती है जहाँ कर्म पर बल होने के कारण कर्ता को प्रकट करना अनावश्यक हो या उसका पता न हो। सरकारी आदेशों में भी इसी का प्रयोग होता है जहाँ कर्ता महत्त्वपूर्ण नहीं होता: सर्वसामान्य को सूचना दी जाती है कि..... कल निर्णय सुनाया जाएगा, इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मवाच्य की क्रिया में पाँच बातें होती हैं—(क) क्रिया में एक से अधिक क्रियापद होते हैं। (ख) सहायक क्रिया के रूप में 'जाना' क्रिया के रूपों का प्रयोग होता है। (ग) वाक्य का उद्देश्य कर्म होता है। (घ) मुख्य क्रिया सकर्मक होती है। (ङ) क्रिया लिंग-वचन में कर्म का अनुसरण करती है।

भाववाच्य क्रिया के उस रूप को कहते हैं जिससे भाव पर बल का पता चलता है। इसमें प्रधानता भाव की होती है।

उदाहरणार्थ—

राम से चला नहीं जाता।
सीता से चला नहीं जाता।
लड़कों से चला नहीं जाता।
लड़कियों से चला नहीं जाता।

भाववाच्य में पाँच बातें ध्यान देने की हैं: (क) क्रिया में एक से अधिक क्रियापद होते हैं। (ख) सहायक क्रिया के रूप में 'जाना' क्रिया के रूपों का प्रयोग होता है। (ग) मुख्य क्रिया अकर्मक होती है। यदि मूलतः वह सकर्मक हो तो भी वह अकर्मक रूप में ही आती है--उससे खाया नहीं जाता। (४) क्रिया लिंग--वचन में किसी के अनुसार न होकर सदा ही पुल्लिंग एकवचन में होती है। (५) भाववाच्य का प्रयोग शक्यता अथवा अशक्यता प्रकट करने के लिए ही प्रायः होता है।

'चलो सोया जाए' जैसे प्रयोग भी भाववाच्य के ही हैं। भाववाच्य के कुछ अन्य उदाहरण हैं—समस्याएँ इतनी उलझी हैं कि कुछ समझ में नहीं आता; कमज़ोरी के कारण उससे खाया भी नहीं जाता; अब सहा नहीं जाता।

हिन्दी में सर्वाधिक प्रयोग कर्तृवाच्य का तथा सबसे कम भाववाच्य का होता है।

प्रयोग

प्रयोग से यहाँ आशय है 'क्रिया का प्रयोग'। क्रिया तीन रूपों में प्रयुक्त होती है। कभी तो वह कर्ता का अनुसरण करती है जिसे 'कर्तरि प्रयोग' कहते हैं; कभी कर्म का अनुसरण करती है जिसे 'कर्मणि प्रयोग' कहते हैं और कभी 'कर्ता' या 'कर्म' किसी का भी प्रयोग न करके अपरिवर्तित रहती है जिसे 'भावे प्रयोग' कहते हैं।

(१) **कर्तरि प्रयोग**—जब क्रिया लिंग-वचन या वचन-पुरुष की दृष्टि से कर्ता का अनुसरण करे। ऐसा निम्नांकित स्थितियों में होता है—

(क) **अकर्मक क्रिया के आने पर**—मोहन गया; राधा गई; आदमी गए; औरतें गईं।

(ख) **एककर्मक क्रिया के आने पर, जब कर्ता के साथ 'ने' का प्रयोग न हो**—मोहन रोटी खाता है; राधा चावल खाती है; आदमी रोटियाँ खाते हैं; औरतें चावल खाती हैं।

(ग) **द्विकर्मक क्रिया के आने पर, जब कर्ता के साथ 'ने' का प्रयोग न हो**—मोहन राधा को चिट्ठी लिखता है; राधा मोहन को पत्र लिखती है; लड़के लड़कियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चिट्ठी लिखते हैं; लड़कियाँ लड़कों को पत्र लिखती हैं। यहाँ गौण कर्म के साथ ए (उसे) अथवा एँ (उन्हें) आते हैं।

(घ) **अस्तित्ववाचक क्रिया के आने पर**—मोहन है; मैं हूँ; तुम हो; वे हैं; राम था; सीता थी; लड़के थे; लड़कियाँ थीं।

(ङ) **अस्तित्ववाचक क्रिया के पूरक के साथ आने पर**—मोहन लड़का था; सीता लड़की थी; मैं अध्यापक हूँ; तुम डाक्टर हो।

(२) **कर्मणि प्रयोग**—जब क्रिया लिंग-वचन की दृष्टि से कर्म का अनुसरण करे। ऐसा निम्नांकित स्थितियाँ में होता है—

(क) **जब कर्ता के साथ 'ने' हो तथा सकर्मक क्रिया के भूतकालिक कृदंत का प्रयोग हो** — मोहन ने रोटी खाई; सीता ने आम खाया; लड़कों ने एक रोटी खाई; लड़कों ने कई रोटियाँ खाईं; लड़कियों ने एक आम खाया; लड़कियों ने कई आम खाए।

(ख) **जब कर्मवाच्य हो, बल कर्म पर हो, कर्ता पर न हो तथा सकर्मक क्रिया भूतकालिक कृदंत रूप में हो**— दंगे में मोहन मारा गया; दंगे में लड़की मारी गई; दंगे में लड़के मारे गए; दंगे में लड़कियाँ मारी गईं।

(ग) **जब कर्ता के साथ 'से' या 'के द्वारा' या 'द्वारा' हो और सकर्मक क्रिया भूतकालिक कृदंत रूप में हो**—डाकू के द्वारा चौकी लूटी गई; डाकुओं के द्वारा चौकी लूटी गई; सेना के द्वारा एक शहर लूट लिया गया; सेना के द्वारा कई शहर लूट लिए गए; सीता से यह काम नहीं किया जा सका; मोहन से यह लड़ाई नहीं लड़ी जा सकी।

(३) **भावे प्रयोग**—जब क्रिया न तो कर्ता का अनुसरण करे और न कर्म का, बल्कि हमेशा पुल्लिग, अन्य पुरुष, एकवचन रहे। ऐसा निम्नांकित स्थितियों में होता है—

(क) **जब कर्ता के साथ ने तथा कर्म के साथ को, ए अथवा एँ हो**—उस लड़की ने शेरों को देखा; उन शेरों ने लड़कियों को देखा; उन लड़कियों ने उन्हें (उन मछलियों को) देखा; उन लड़कियों ने उसे (उस बिल्ली को) देखा।

(ख) **सामर्थ्य अथवा असामर्थ्य-द्योतन में अकर्मक या कर्म के बिना प्रयुक्त सकर्मक क्रिया के साथ, साथ में जाना क्रिया के कोई रूप भी**—

१–राम से चला नहीं जाता; सीता से चला नहीं जाता; लड़कों से चला नहीं जाता, लड़कियों से चला नहीं जाता।

२–अब तो सहा नहीं जाता; अब तो देखा नहीं जाता।

३–अब तो राम से खाया नहीं जाता; अब तो सीता से खाया नहीं जाता; अब तो लड़कों से खाया नहीं जाता; अब तो लड़कियों से खाया नहीं जाता।

'३' में सकर्मक क्रिया है, किन्तु यदि 'कर्म' का प्रयोग कर दें, तो क्रिया कर्मणि प्रयोग की हो जाएगी—अब तो लड़कियों से ये आम नहीं खाए जाते; अब तो लड़कों से ये रोटियाँ खाई नहीं जातीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाच्य और प्रयोग

दोनों को स्पष्टतः समझ लेना चाहिए। वाच्य का सम्बन्ध प्रधानता (कर्ता, कर्म अथवा भाव का) से, तथा प्रयोग का सम्बन्ध क्रिया के कर्ता अथवा कर्म के अनुरूप होने अथवा तटस्थ रहने से है। निम्नांकित कुछ उदाहरण ऊपर की बातों को स्पष्ट कर देंगे—

(क) कर्तृवाच्य किन्तु कर्मणि प्रयोग —राम ने रोटी खाई।
(ख) कर्तृवाच्य किन्तु भावे प्रयोग —उन सभी लड़कों ने उन सभी चित्रों को बड़े ध्यान से देखा।
(ग) कर्मवाच्य और कर्मणि प्रयोग —पिताजी से बात बन जाएगी।
(घ) भाववाच्य और भावे प्रयोग —अब तो रहा नहीं जाता।
(ङ) कर्तृवाच्य और कर्तरि प्रयोग —राधा पत्र पढ़ रही है।

पक्ष

क्रिया कभी तो पूर्णता व्यक्त करती है, कभी अपूर्णता, और कभी नित्यता तो कभी सामान्यता आदि। क्रिया की उस क्षमता को ही पक्ष (aspect) कहते हैं, जिससे पूर्णता-अपूर्णता, नित्यता-सामान्यता आदि व्यक्त होती हैं।

हिन्दी क्रिया के मूलतः दो पक्ष हैं: (१) अपूर्ण पक्ष; (२) पूर्ण पक्ष।

(१) **अपूर्ण पक्ष**—इसके दो भेद हैं: (क) नित्य; (ख) सातत्य।

(क) **नित्य अपूर्ण पक्ष**—इसका द्योतक 'त्' है, अर्थात् वर्तमानकालिक कृदंत में यह पक्ष है: राम पढ़ता है। यह **स्वभाव** (मोहन झूठ बोलता है, सीता चोरी करती है), **सामान्य नियम** (दो और दो चार होते हैं), **ऐतिहासिक वर्तमान** (इतने में क्या देखते हैं कि सामने नंगी तलवार लिए वह खड़ा है), **पहले से अन्त तक होने वाली घटना** (वह अनेक वर्षों से वहाँ पढ़ता था, पढ़ाता था), **आगे घटने वाली घटना** (तुम्हारे बाप को आने दो तो तुम्हें मैं मज़ा चखाता हूँ) आदि को व्यक्त करता है। नित्य अपूर्ण पक्ष भी दो प्रकार का होता है: (i) सामान्य, (ii) विशिष्ट।

(i) **सामान्य नित्य अपूर्ण**—यह दो प्रकार का होता है। एक तो वह जो अस्तित्ववाचक क्रिया में परिवर्तनीय है—

राम चोरी करता है —राम चोर है।
श्याम लिखता है —श्याम लेखक है।
मोहन पढ़ता है —मोहन विद्यार्थी है।

दूसरा वह है जो इस प्रकार परिवर्तनीय नहीं है, और नित्य नियम है—

चार और चार आठ होते हैं; पानी गर्म करने से भाप बन जाता है; सूरज पूरब में निकलता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सामान्य के स्थान पर इसी अर्थ में सातत्य (रहा है) नहीं आता। (तुलना कीजिए नीचे का विशिष्ट नित्य अपूर्ण)।

(ii) **विशिष्ट नित्य अपूर्ण**--यह नाटक में मंच-विषयक व्यवस्था आदि के निर्देश के लिए आता है—रोशनी मद्धिम हो जाती है; दरवाजा खुलता है; रोशनी जल जाती है; फ़ोन की घंटी बजती है।

इसके स्थान पर सातत्य (रहा है) आ सकता है। सच पूछा जाए तो यह सातत्य को ही व्यक्त करता है।

(ख) **सातत्य अपूर्ण पक्ष**--इसका द्योतक 'रह्' है। यह कथन के समय की बात को व्यक्त करता है: राम जा रहा है, मोहन खा रहा है, इस समय वह नहा रहा है, अभी तो वह काम कर रहा है। यह 'रह्' मुख्य क्रिया (राम उस घर में रहता है) तथा रंजक सहायक क्रिया (राम वहाँ रहता रहा है) से भिन्न है तथा मुख्य क्रिया के धातु-रूप के साथ ही (वह खा रहा है, राम वहाँ रह रहा है) आता है। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि एकसाथ दो पक्ष कभी नहीं आते। अतः 'वह आता रहा है' जैसे वाक्यों में 'त्' पक्ष के रहते 'रह्' को पक्ष नहीं माना जा सकता।

(२) **पूर्ण पक्ष**—यह पूर्णता को व्यक्त करता है। इसका चिह्न शून्य है, अर्थात् भूतकालिक कृदंत में यह पक्ष मिलता है: राम दौड़ा, सीता दौड़ी, लड़के दौड़े। कहना न होगा कि इनमें आ, ई, ए लिंग-वचन के द्योतक हैं। अर्थात् दौड़+पूर्ण पक्षद्योतक 'शून्य'+लिंग-वचन का प्रत्यय 'आ'=दौड़ा।

क्रियापद-रचना

हिन्दी में क्रियापद दो प्रकार के होते हैं—

एक क्रियारूप वाले--राम गया।
एकाधिक क्रियारूप वाले—राम गया है।

एक क्रियारूप वाले क्रियापद पाँच प्रकार के होते हैं—

(१) केवल कृदन्त	राम गया, राम जाता···।
(२) केवल अस्तित्ववाची क्रिया	राम घर पर है। मोहन अस्पताल में था।
(३) केवल योजक या सम्बन्ध-द्योतक क्रिया	राम बीमार है। कृष्ण नेता था।
(४) केवल आज्ञा रूप	तुम चलो। आप चलिए।
(५) केवल संभावनार्थ रूप	यदि वह चले तो बताना।

एकाधिक क्रिया वाले क्रियापद अनेक प्रकार के होते हैं, जिनमें मुख्य क्रिया—

(१) धातु	—राम पढ़ रहा है।
(२) वर्तमानकालिक कृदन्त	—मोहन पढ़ता है।
(३) भूतकालिक कृदन्त	--महेश ने पत्र पढ़ा है।
(४) क्रियार्थक संज्ञा	—शीला को पढ़ना पड़ेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन चारों रूपों में आती है। उसके बाद सहायक क्रियाएँ अनेक प्रकार से तथा अनेक प्रकार की आ सकती हैं।

हिन्दी में प्रयुक्त कुल क्रियापद मुख्यतः निम्नांकित प्रकार के होते हैं—

वर्तमान	भूत	भविष्य या संभावनार्थ
है	था	होगा
पढ़ता है	पढ़ता था	पढ़ता होगा
पढ़ रहा है	पढ़ रहा था	पढ़ रहा होगा
पढ़ा है	पढ़ा था	पढ़ा होगा
पढ़ता रहा है	पढ़ता रहा था	पढ़ता रहा होगा
पढ़ता	पढ़ा	—
पढ़ना है	पढ़ना था	पढ़ना होगा
पढ़ने वाला है	पढ़ने वाला था	पढ़ने वाला होगा
पढ़ने को है	पढ़ने को था	पढ़ने को होगा
पढ़ना चाहिए	पढ़ना चाहिए था	पढ़ना चाहिएगा
पढ़ो, पढ़िए, पढ़ें	पढ़ता	पढ़ना, पढ़िएगा, पढ़े

उपर्युक्त क्रियापदों का कालों के अनुसार विभाजन अत्यन्त मोटे रूप में किया गया है। वस्तुतः हिन्दी में ऐसे काफ़ी क्रियापद हैं जिनका प्रयोग एकाधिक कालों में होता है—

राम इस ओर देख रहा है। (वर्तमान)

राम परसों घर जा रहा है। (भविष्य)

राम गिरा और बेहोश हो गया। (भूत)

बचाओ, राम गिरा (यह वाक्य राम को गिरते देखकर कहा गया है)। (वर्तमान)

कल को मैं गिरा तो कौन ज़िम्मेवार होगा। (भविष्य)···आदि।

वृत्तिक क्रिया (Modal Verb)

मुख्य, रंजक, पक्षद्योतक, वा यद्योतक, कालद्योतक, सम्बन्धद्योतक तथा अस्तित्वद्योतक के अतिरिक्त जो क्रिया वाक्य में प्रयुक्त होती है, उसे वृत्तिक क्रिया कहते हैं। इससे वक्ता के दृष्टिकोण का पता चलता है। हिंदी में चुकना, पाना, पड़ना, होना, सकना तथा चाहिए वृत्तिक क्रियाएँ हैं। इनकी विशेषताएँ हैं : (१) ये प्रेरणाद्योतक वाक्यों में मुख्य क्रिया के साथ नहीं आतीं, जब कि अन्य आ सकती हैं। उदाहरण के लिए 'आओ सो लें' अथवा 'चलो देख लिया जाए' तो होंगे, किन्तु 'आओ सो चुकें/पाएँ/पड़ें/सकें' आदि नहीं। (२) मुख्य क्रिया के साथ इनके आने पर आज्ञा के रूप नहीं बन सकते। उदाहरणार्थ 'अभी कर लो', 'यहीं सो जाओ'; किन्तु 'अभी कर चुको/पाओ/पड़ो/हो/सको' नहीं। हिन्दी वृत्तिक क्रियाओं के उदाहरण इस प्रकार हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे जा चुके थे।
मैं नहीं जा पाया।
उन्हें जाना पड़ेगा।
राम को आना होगा।
मुश्किल से मैं सो सका।
अब तुमको परिश्रम करना चाहिए।

संयुक्त क्रिया

मुख्य क्रिया और रंजक क्रिया के योग से संयुक्त क्रियाओं की रचना होती है। संयुक्त क्रिया में रंजक क्रिया मुख्य क्रिया पर अपना रंग चढ़ा देती है, इसीलिए उसे रंजक क्रिया कहते हैं। हिन्दी में मुख्य रंजक क्रियाएँ तथा उनकी रंजक विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

(१) आना—अतिशयताबोधक (भूख लग आई)
(२) उठना—अचानकताबोधक (मरीज़ चिल्ला उठा, काँप उठी)
(३) करना—अभ्यासबोधक (वह वहाँ जाया करता है)
(४) खाना—अतिशयताबोधक (साँप ने काट खाया)
(५) चलना—(क) पूर्णप्रायताबोधक (फोड़ा बह चला है); (ख) सातत्य-बोधक (काम करते चलो)
(६) चाहना—पूर्णप्रायताबोधक (दस बजा चाहते हैं)
(७) जाना—(क) समाप्तिबोधक (गिर गया, मर गया); (ख) सातत्य-बोधक (मैं बात कहता गया)
(८) टपकना—आकस्मिकताबोधक (आ टपका)
(९) डालना—समाप्तिबोधक (डाकुओं ने मार डाला)
(१०) देना—(क) परबोधक (काम कर दिया); (ख) अतिशयताबोधक (मार दिया); (ग) अनुमतिबोधक (उसे बोलने दो)
(११) धमकना—तिरस्कारबोधक (आ धमका)
(१२) निकलना—सफलताबोधक (दुकान चल निकली)
(१३) बनना—अलगावबोधक (चलता बना)
(१४) बैठना—आकस्मिकताबोधक (मार बैठा)
(१५) पड़ना—आकस्मिकताबोधक (रो पड़ा)
(१६) मरना—अप्रियताबोधक (असमय ही वहाँ वह भी आ मरा)
(१७) मारना—अगंभीरताबोधक (यह क्या लिख मारा)
(१८) रहना—अतिशयताबोधक (कहीं रंग गिर रहा है तो कहीं स्याही)
(१९) लगना—आरंभबोधक (जाने लगा है)
(२०) लेना—स्वबोधक (काम कर लिया)

उपर्युक्त रंजक क्रियाओं की मुख्य विशेषताएँ हैं : (१) रंजक क्रिया के रूप में आने पर ये अपने मूलार्थ का द्योतन नहीं करतीं। (२) इनमें काफ़ी ऐसे हैं जिनके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने पर नकारात्मक वाक्य प्रायः नहीं बनते। (३) सभी रंजक क्रियाएँ सभी मुख्य क्रियाओं के साथ नहीं आतीं; जैसे आ धमकना, जा धमकना, आ मरना, चलता बनना, जा मरना, खा मरना, पी मरना, ले मरना, लिख मारना, कह मारना आदि तो बनेगीं, किंतु लिख धमकना, सो मरना, पढ़ता बनना, ले मारना आदि नहीं। (४) ने का प्रयोग कुछ ही के साथ होता है, सब के साथ नहीं।

संयुक्त क्रिया में मुख्य क्रिया चार रूपों में आती है: (१) धातु रूप में (कह बैठा, रो उठा, दे दिया, ले लिया); (२) वर्तमानकालिक कृदंत रूप में (वे लिखते गए, चलता बना); (३) भूतकालिक कृदंत रूप में (आया जाता है, दस बजा चाहते हैं); (४) क्रियार्थक संज्ञा रूप में (पढ़ने लगा है, आने दो)।

नामिक क्रिया

इसके दो अंश होते हैं। पहला अंश संज्ञा या विशेषण होता है तथा दूसरा क्रिया का, जिसे क्रियाकर (verbalizer) कहते हैं, क्योंकि यह पूर्ववर्ती शब्द से मिलकर क्रिया का निर्माण करता है; जैसे स्वीकार करना, याद होना, अच्छा लगना, दिखाई देना, सुनाई पड़ना। इनमें करना, होना, लगना, देना, पड़ना क्रियाकर हैं। इनकी मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित हैं: (क) नामिक क्रिया के दोनों अवयव (क्रियेतर शब्द तथा क्रियाकर) मिलकर एक इकाई होते हैं। (ख) इनके स्थान पर एक क्रिया आ सकती है: स्वीकार करना=स्वीकारना=मानना। (ग) अर्थ के स्तर पर इनमें एक क्रियाभाव होता है, एक संज्ञा या विशेषण तथा एक क्रिया का भाव नहीं। (घ) अनुवाद में प्रायः इनके लिए एक क्रिया आती है: क्षमा करना—to forgive, आयोजित करना—to organize, विसर्जित करना—to disperse, बन्द करना—to close, याद करना—to memorize, स्वीकार करना—to accept, पसंद करना—to like आदि। (ङ) क्रियाकर के पूर्व आने वाले संज्ञा या विशेषण से वाक्य के किसी अन्य शब्द से उतना सम्बन्ध नहीं होता, जितना क्रियाकर से होता है। (च) क्रिया के पूर्व आने वाले इन शब्दों में कुछ ऐसे होते हैं जो किसी अन्य संदर्भ में स्वतन्त्र रूप से आ ही नहीं सकते; जैसे दिखाई देना/पड़ना, सुनाई पड़ना/देना, याद करना, मालूम करना/होना आदि में दिखाई, सुनाई, याद, मालूम आदि। (छ) जो संज्ञा शब्द आते हैं, उन्हें कर्म नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिए, दिखाई देना, दाखिल करना, अंगीकार करना, स्वीकार करना, याद करना, पसंद करना आदि में सकर्मक क्रियाकर 'देना', 'करना' का पूर्ववर्ती शब्दों को कर्म नहीं माना जा सकता, क्योंकि कर्म इसके पूर्व आएगा—राम को एक चिड़िया दिखाई पड़ी, मैंने एक विद्यार्थी दाखिल किया, यह चीज मुझे पसंद है, वह बात उसे याद है।

यौगिक क्रिया

वह क्रिया-पदबन्ध जिसमें दो क्रियारूप हों तथा दोनों अपना मूल अर्थ दें। जैसे—वह सामान **दे गया** है, वह अपना लड़का **ले गया**, मैं उनसे बातें **कर आया** हूँ। मूलतः यौगिक क्रिया में पहली क्रिया पूर्वकालिक कृदंत होती है और 'कर,' 'के' आदि के लोप से इसका निर्माण होता है: दे कर गया=दे गया, लेकर गया=ले गया, करके आया=कर आया। यौगिक क्रिया की मुख्य विशेषताएँ तीन हैं:

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) इसमें दोनों ही क्रियाएँ एक प्रकार से मुख्य क्रिया होती हैं। (ख) दोनों जिस क्रम से आती हैं, उनकी क्रिया भी उसी क्रम से होती है। अर्थात् 'वह सामान दे आया' का अर्थ है 'सामान दिया और तब आया'। (ग) यौगिक क्रियावाले वाक्य का निर्माण आंतरिक संरचना के दो वाक्यों से होता है : वह सामान दे आया = उसने सामान दिया + वह आया (सामान देने के बाद)। यौगिक क्रिया के कुछ अन्य उदाहरण हैं : आ फँसना, आ गिरना, आ टपटना, उखाड़ फेंकना, कर दिखाना, खींच निकालना, खोज निकालना, जा सोना, जा बैठना, जा घेरना, जा बसना, ढूँढ़ लाना, ढूँढ़ निकालना, ले आना, लिख भेजना, सोच निकालना, ले डूबना, ले भागना, कर भागना, मार भगाना।

(उ) अव्यय

संस्कृत में अव्यय उन शब्दों को कहा गया है जो लिंग-वचन आदि के अनुसार परिवर्तित न (अ + व्यय) हों। हिन्दी में ऐसी बात नहीं है, जैसा कि हम आगे देखेंगे। अव्यय में क्रियाविशेषण, सम्बन्धसूचक, समुच्चयबोधक तथा विस्मयादिबोधक आते हैं।

क्रियाविशेषण

ये क्रिया की विशेषता बतलाते हैं : राम **धीरे-धीरे** चल रहा है, मैं आज **खूब** दौड़ा, वह **शाम तक** रहेगा। यह विशेषता **रीति** (ऐसे, धीरे-धीरे), **सादृश्य** (पागलों-सा चलता है), **परिमाण** (बहुत बोलता है), **क्रम** (बारी-बारी से आओ), **गुण** (अच्छा गाता है), **दिशा** (उधर जाओ), **स्थान** (वहाँ बैठो), **काल** (अभी चलो), **निषेध** (न, नहीं, मत), **अवधि** (कल तक आ जाओ), **कारण** (इसलिए आया कि·····), **साधन** (अपने हाथ से करूँगा) तथा **तुलना** (उससे अधिक तुम बोलते हो) आदि अनेकानेक प्रकार की हो सकती हैं।

(क) **एकस्थानीय : द्विस्थानीय**—स्थान की दृष्टि से क्रियाविशेषण दो प्रकार के होते हैं : एकस्थानीय (जब वह आया था मैं पढ़ रहा था) तथा द्विस्थानीय (जब वह आया **तब** मैं पढ़ रहा था; ऐसे ही जब-जब·····तब-तब, जब तक·····तब तक, से·····तक, से···तक के लिए, आदि)।

(ख) **क्रियाविशेषण शब्द : क्रियाविशेषणेतर शब्द**—कुछ शब्द तो मूलतः क्रियाविशेषण होते हैं, जैसे आज, अब, वहाँ, यों, ऊपर आदि। इसके विपरीत कुछ शब्द मूलतः कुछ और कुछ, अर्थात् क्रियाविशेषणेतर होते हैं और केवल प्रयोगतः ही क्रियाविशेषण का काम करते हैं : (क) **विशेषण** : अध्यापक **अच्छा** पढ़ाते हैं; मैंने उसे **बहुत** डाँटा; वह कुछ **ऊँचा** सुनता है; शीला बड़ा **मीठा** बोलती है। (ख) **सर्वनाम** : चोर वहाँ **अपने आप** आ गया; पहले तो वह **कुछ** हँसा। (ग) **संज्ञा** : मोहन **सबेरे** आएगा; मैं अपने **हाथ से** करूँगा।

क्रियाविशेषणों में परिवर्तन

सामान्यतः तो क्रियाविशेषण अपरिवर्तनीय होते हैं, किन्तु वर्तमानकालिक कृदंत तथा भूतकालिक कृदंत जब क्रियाविशेषण का कार्य आकारांत रूप में करते हैं तो उनमें लिंग-वचन के अनुसार परिवर्तन होता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) **वर्तमानकालिक कृदंत**—लड़का **दौड़ता** आ रहा है; लड़की **दौड़ती** आ रही है; लड़के **दौड़ते** आ रहे हैं। (रीतिबोधक क्रियाविशेषण)।

(ख) **भूतकालिक कृदंत**—लड़का **दौड़ा** आया। लड़की **दौड़ी** आई; लड़के **दौड़े** आए। (रीतिबोधक क्रियाविशेषण)।

उपर्युक्त दोनों ही कृदंतों में 'हुआ' लगाने पर भी इसी प्रकार परिवर्तन होते हैं—लड़का **दौड़ता हुआ** आया; लड़की **दौड़ती हुई** आई; लड़का **दौड़ा हुआ** आया; लड़की **दौड़ी हुई** आई।

आकारांत विशेषण जब क्रियाविशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं तो कुछ लोग उनमें भी लिंग-वचन के अनुसार परिवर्तन करते हैं—राम **अच्छा** गाता है; सीता **अच्छी** गाती है, लड़के **अच्छे** गाते हैं।

किन्तु इस प्रकार के परिवर्तन अशुद्ध हैं। शुद्ध प्रयोग होगा—राम **अच्छा** गाता है, सीता **अच्छा** गाती है, लड़के **अच्छा** गाते हैं। अर्थात् आकारान्त विशेषणों में परिवर्तन नहीं होता।

क्रियाविशेषण की रचना शब्द-रचना के अंतर्गत ली गई है।

प्रक्रियाविशेषण—विशेषण के प्रसंग में प्रविशेषण की चर्चा हो चुकी है। जो शब्द क्रियाविशेषण की विशेषता बतलाएँ, उन्हें प्रक्रियाविशेषण कहा जा सकता है—

राजीव **बहुत** अच्छा गाता है।
गिरीश **कुछ** ऊँचा सुनता है।
किरन मुकुल की तुलना में **अधिक** तेज़ी से दौड़ती है।
तुम तो **बिल्कुल** गंदा लिखते हो।
सुमन **निहायत** साफ़ लिखती है।
सौरभ **बहुत** ज्यादा बोलता है।

सम्बन्धसूचक

इसमें मुख्यतः ने, को, से, में, पर आदि परसर्ग आते हैं जिन्हें मूल सम्बन्ध-सूचक कहते हैं। इनमें कुछ के योग से संयुक्त सम्बन्धसूचक बनते हैं—

(क) **कालवाचक**—के पहले, से पहले, के पूर्व, से पूर्व, के उपरान्त, के बाद, के आगे, से आगे, के पीछे, के पश्चात्। (ख) **स्थानवाचक**—के पहले, से पहले, के आगे, से आगे, के भीतर, के बीच, के ऊपर, के पास, के निकट। (ग) **दिशावाचक**—की ओर, की तरफ़, के प्रति। (घ) **साधनवाचक**—के द्वारा, के सहारे, की मार्फ़त, की ज़बानी, के बल-बूते, के बूते। (ङ) **कारणवाचक**—के कारण, के मारे, की वजह से। (च) **निमित्तवाचक**—के लिए, के निमित्त, के हेतु।

प्रयोग की दृष्टि के मुख्यतः दो प्रकार के सम्बन्धसूचक हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) जो संज्ञा या संज्ञा-रूप के बाद आते हैं; जैसे – ने, को, से, में, तक आदि। जैसे–राम को मारो, घोड़े पर चढ़ो, उन तक मेरी पहुँच नहीं।

(ख) जो कभी पहले और कभी बाद में आते हैं; जैसे –सिवा, बिना, मारे। जैसे – सिवा उनके यह काम कोई नहीं कर सकता, या उनके सिवा यह काम कोई नहीं कर सकता।

इन दोनों में पहले प्रकार के सम्बन्धसूचक अव्ययों के भी दो भेद हो सकते हैं––

(अ) जो अकेले आते हैं; जैसे– ने, को, में, पर, का। जैसे – राम ने मारा, घर में है, छत पर कूदो।

(आ) जो किसी और सम्बन्धसूचक अव्यय के साथ आते हैं। इस प्रकार के सम्बन्धसूचक बहुत-से हैं। ये प्रायः के, से, की इन तीन कारक-चिह्नों के बाद आते हैं।

'के' के बाद––आगे, पीछे, पहले, पूर्व, अनन्तर, भीतर, बीच, पास, निकट, बिना, बदले, सहारे, कारण, मारे आदि। जैसे—उनके आगे, काम के अनन्तर, घर के भीतर आदि।

'से' के बाद––'के' के बाद आने वाले सम्बन्धसूचक अव्ययों में कुछ 'से' के बाद भी आते हैं और प्रायः वही अर्थ देते हैं, पर साथ ही 'के' के बाद आने वाले अव्ययों में अनन्तर, बाद, पश्चात्, उपरान्त, बीच, सहारे तथा मारे आदि बहुत-से ऐसे हैं जो 'से' के बाद नहीं आते। 'से' के बाद आने वाले सम्बन्धसूचकों में प्रमुख पीछे, दूर, पहले, पूर्व, निकट, नीचे, बाहर आदि हैं। 'से' के बाद आने वाले प्रायः सभी सम्बन्धसूचक अव्यय 'के' के बाद भी आते हैं।

'की' के बाद—अपेक्षा, तरह, भाँति, नाईं, तरफ़, ओर, ख़ातिर, मार्फ़त, ज़बानी तथा जगह आदि। जैसे–उनकी तरफ़ जाओ, राम की ओर देखो, तथा सीता की जगह कौन है, आदि।

सर्वनामों में 'के', 'की' के स्थान पर 'रे', 'री'; 'ने', 'नी' (मेरे, तुम्हारे, तुम्हारी; अपने, अपनी) आते हैं। उनके साथ भी 'के' और 'की' के ही नियम लागू होते हैं।

समुच्चयबोधक

जो अव्यय दो शब्दों (पदों), पदबंधों (फ्रेज़) अथवा उपवाक्यों (क्लॉज़) को जोड़ते हैं, उन्हें समुच्चयबोधक कहते हैं। उदाहरण के लिए, 'राजीव और गिरीश खेल रहे हैं' में 'और' समुच्चयबोधक है जो 'राजीव' और 'गिरीश' को जोड़ रहा है।

समुच्चयबोधक दो प्रकार के होते हैं–– (i) समानाधिकरण, (ii) व्यधिकरण।

समानाधिकरण – मुख्य शब्दों, पदबंधों (फ्रेजों) या उपवाक्यों को जोड़ने वाले शब्दों को समानाधिकरण समुच्चयबोधक अव्यय कहते हैं। ये चार प्रकार के होते हैं—(१) संयोजक, (२) विकल्पबोधक, (३) विरोधबोधक, (४) कारण-बोधक। इन्हें क्रमशः यहाँ लिया जा रहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) **संयोजक**—दो शब्दों, पदबंधों या वाक्यांशों को, जो समुच्चयबोधक मिलाए या उनमें संयोजन प्रकट करे, उसे समुच्चयबोधक संयोजक अव्यय कहते हैं। मुख्य समुच्चयबोधक संयोजक हैं—और, तथा, एवं, व।

(२) **विकल्पबोधक**—जो दो या अधिक वस्तुओं में किसी एक का ग्रहण या दोनों का त्याग करता है, उसे विकल्पबोधक संयोजक अव्यय कहते हैं। मुख्य विकल्प-बोधक हैं—या, अथवा, चाहे-चाहे, न कि, नहीं तो, या–या, क्या–क्या, न–न आदि।

(३) **विरोधबोधक**—उन शब्दों को विरोधबोधक संयोजक अव्यय कहते हैं जो दो में, दूसरे को विरोधी कारण के रूप में रखकर प्रथम का निषेध करते हैं। जैसे—पर, परन्तु, किन्तु, लेकिन, मगर। ये सभी पर्याय हैं: वह आता मगर/ पर/ परन्तु/ किन्तु/ लेकिन खाली नहीं था। इनमें, हिन्दी की साहित्यिक शैली में 'किन्तु' का प्रयोग ही अधिक चलता है।

(४) **कारणबोधक**—इसमें दो ऐसे वाक्यों को जोड़ते हैं जिनमें एक का कारण दूसरे में दिया गया हो। कारणवाचक समुच्चयबोधक में अतः, इसलिए, इस-लिए कि, अतएव, चूंकि, कारण कि, क्यों कि, इस वास्ते, सो, इस कारण, के फलस्व-रूप, परिणामतः, फलतः, तथा, नहीं तो आदि आते हैं। कुछ प्रयोग हैं: मैं अस्वस्थ हूँ, अतः आज नहीं जाऊँगा; मोहन कल नहीं आया, क्योंकि उसे कुछ काम था; छात्र पूरे वर्ष बीमार था, फलतः पास नहीं हो सका। कभी-कभी 'अस्तु' का भी इस अर्थ में प्रयोग करते हैं। बल देने के लिए 'इसीलिए' का प्रयोग किया जाता है: वह हमेशा शैतानी करता है, इसीलिए उसे कोई नहीं पसन्द करता।

व्यधिकरण—आश्रृत उपवाक्यों को जोड़ते हैं। इनके तीन भेद हैं—

(१) **शर्तबोधक**—इसके अन्तर्गत वे समुच्चयबोधक आते हैं जो शर्त प्रकट करें: जो.....तो, यदि..... तो, अगर.....तो। जैसे—यदि तुम परिश्रम करते तो अवश्य पास हो जाते; अगर वह आया तो मैं उसे तुम्हारे पास लाऊँगा।

(२) **स्पष्टीकरणबोधक**—जैसा कि नाम से स्पष्ट है, ये समान अर्थ का बोध कराकर अथवा समानता द्वारा स्पष्टीकरण करते हैं: अर्थात्, यानी, मानो, जैसे, जैसे कि, यहाँ तक कि। उदाहरणार्थ—वह बछिया का ताऊ है, अर्थात् मूर्ख है; ओस क्या गिरी है मानो मोती बिछे हैं, मैं जानता हूँ कि वह आएगा नहीं; बहुत मूर्ख है, यहाँ तक कि जिस डाली पर बैठा होता है, उसे भी काटने से नहीं हिचकता।

(३) **उद्देश्यबोधक**—जो उद्देश्य का बोध कराएँ। ऐसे समुच्चयबोधकों में कि, ताकि, जिससे, जो आदि आते हैं: तुम परिश्रम करो ताकि अच्छे अंकों से उत्तीर्ण हो सको।

विस्मयादिबोधक

इनसे हर्ष, शोक, विस्मय आदि मनोभाव व्यक्त होते हैं। जैसे वाह, हाय, अरे, उफ़ आदि। विस्मयादिबोधक प्रायः वाक्य के अंश नहीं होते। वे अपने आप में आश्चर्य, घृणा, प्रशंसा, शोक आदि के बोधक स्वतंत्र इकाई होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १७

वाक्य-संरचना

वाक्य पदों के समूह की उस इकाई को कहते हैं जो व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण हो तथा जिसमें एक क्रिया अवश्य हो।

वाक्य के बारे में पाँच बातें ध्यान देने की हैं : (१) इसमें एक से अधिक पद (या शब्द) होते हैं। (२) वास्तविक प्रयोग में संदर्भ के अनुसार कभी-कभी गौण शब्दों को छोड़कर केवल उस एक शब्द या उन कुछ शब्दों के वाक्य भी मिलते हैं, जो प्रश्न या विषय से सीधे संबद्ध होते हैं और जिनके आधार पर पूरे वाक्य की कल्पना श्रोता या पाठक सहज ही कर लेता है। वक्ता या लेखक भी पूरे वाक्य में से ही एक या कुछ पदों को वाक्य का उस प्रसंग में प्रतिनिधि मानकर प्रयोग करता है। (३) वाक्य व्याकरणिक दृष्टि से पूर्ण होता है, अर्थात् व्याकरणिक दृष्टि से उसमें कोई कमी नहीं रहती; कर्ता, क्रिया या अन्य अपेक्षित शब्द पूरे होते हैं। जैसे 'राम घर' या 'राम जा रहा' आदि में कमी है, अतः ये वाक्य नहीं हैं। यदि प्रयुक्त वाक्य में अपेक्षित अवयवों की कमी होती है (जैसे—और तुम्हारा ?) तो आसन्न प्रसंग से उसकी पूर्ति हो जाती है। उदाहरण के लिए 'और तुम्हारा' का अर्थ हो सकता है 'तुम्हारा नाम क्या है ?' (४) अर्थ या भाव की दृष्टि से वाक्य में पूर्णता हो भी सकती है, नहीं भी। (५) हर वाक्य मे एक क्रिया अवश्य होती है।

उद्देश्य-विधेय

वाक्य के दो अंग होते हैं—

(क) **उद्देश्य**—वाक्य का वह अंश उद्देश्य कहलाता है, जिसके बारे में वाक्य के शेष अंश में कुछ कहा गया हो। नीचे के वाक्यों में काले टाइप के अंश उद्देश्य हैं—

लड़का गया।

कुत्ता मर गया।

छात्र पास हो गए।

उद्देश्य में केन्द्रीय शब्द (प्रायः कर्ता) के साथ उसके विस्तार भी आ सकते हैं—

उस व्यक्ति का लड़का गया।

मोहन का कुत्ता मर गया।

उस स्कूल के सभी छात्र पास हो गए।

(ख) **विधेय**—वाक्य का वह अंश विधेय होता है, जो वाक्य के उद्देश्य के बारे में सूचना देता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़का गया।

कुत्ता मर गया।

छात्र पास हो गए।

विधेय के केन्द्र में क्रिया होती है तथा उसके साथ उसके विस्तार भी आ सकते हैं—

लड़का आज गया।

कुत्ता धीरे-धीरे मर गया।

छात्र अन्तिम परीक्षा में पास हो गए।

पदबंध (Phrase)

वाक्य पदों (जिन्हें सामान्य भाषा में शब्द कहते हैं) से बना होता है। जब एक से अधिक पद एक में बंधे हों तथा वे सभी मिलकर या बंधकर एक व्याकरणिक इकाई (जैसे संज्ञा, विशेषण, क्रियाविशेषण आदि) का काम कर रहे हों, तो उस 'बंधी इकाई' को पदबंध कहते हैं। उदाहरण के लिए दो वाक्य लें—

वहाँ पेड़-पौधे हैं।

सुरेश के बँगले के चारों ओर पेड़-पौधे हैं।

पहले वाक्य में 'वहाँ' स्थानवाचक क्रियाविशेषण है। दूसरे वाक्य में 'सुरेश के बंगले के चारों ओर' भी स्थान ही बता रहा है, अतः यह भी स्थानवाचक क्रियाविशेषण है। रचना की दृष्टि से स्पष्ट है कि 'वहाँ' एक पद है, किन्तु 'सुरेश के बंगले के चारों ओर' में कई पद हैं, यह कई पदों की एक इकाई है, अतः 'वहाँ' तो पद है, किन्तु यह 'सुरेश के बंगले के चारों ओर' 'पदों का समूह' अर्थात् 'पदबंध' है। दूसरे शब्दों में 'वहाँ' यदि 'क्रियाविशेषण पद' है, तो यह पदबंध 'क्रियाविशेषण पदबंध' है।

जितने प्रकार के पद होते हैं, उतने ही प्रकार के पदबंध भी हो सकते हैं। वाग्भाग (Parts of Speach) आठ हैं, अतः पदबंध भी कुल आठ प्रकार के हो सकते हैं—

(१) संज्ञा पदबंध—जो पदबंध किसी संज्ञा का काम करे, उसे संज्ञा पदबंध कहते हैं। जैसे 'रात-रात भर जागकर और भूखे-प्यासे रहकर काम करने वाला बीमार नहीं पड़ेगा तो क्या स्वस्थ रहेगा।' इस वाक्य में काले टाइप का अंश 'पदों का समूह' है तथा संज्ञा का काम कर रहा है, अतः यह संज्ञा पदबंध है। संज्ञा पदबंध मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं: (क) जिसका अन्तिम शब्द 'विशेषण' हो। जैसे 'रात-रात भर जागकर और भूखे-प्यासे रहकर काम करने वाला'। इसमें 'करने वाला' विशेषण है। ऐसे संज्ञा पदबंध प्रायः पूरी की पूरी एक इकाई होते हैं। (ख) दूसरे प्रकार का संज्ञा पदबंध वह होता है जिसका अन्तिम शब्द संज्ञा होता है तथा उसके पहले के सारे शब्द उसी के विस्तार होते हैं, या उसी की विशेषता बतलाते हैं। जैसे 'ऊँचे-ऊँचे महलों में रहने वाले धनी-मानी व्यक्ति ग़रीबों का दुःख-दर्द क्या जानें?' यहाँ 'व्यक्ति' संज्ञा है, और उसके पूर्व के सारे शब्द किसी-न-किसी रूप में 'व्यक्ति' की विशेषता से ही संबंधित हैं। (ग) जिसका अन्तिम शब्द क्रियार्थक संज्ञा होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे रोज़-रोज़ आपस में लड़ना कोई अच्छी बात थोड़े न है। इसमें भी, पहले के सारे शब्द किसी-न-किसी रूप में अन्तिम शब्द (यहाँ लड़ना) की विशेषता बतलाने वाले या विस्तार होते हैं।

संज्ञा आठ कारकों में आ सकती है, अतः संज्ञा पदबंध भी आठों में आ सकता है—

कर्ता—**इतनी लगन से कला की साधना करने वाला कलाकार** अवश्य सफल होगा।

कर्म—**पुलिस की गोली से घायल बच्चों** को अस्पताल भेज दिया गया है।

पूरक—राम ने विभीषण को **लंका का राजा** बनाया।

करण—**थोड़ी ही और ईंटों से** मेरा काम चल जाएगा।

सम्प्रदान—**इतने धनी-मानी व्यक्ति को** दान देने से क्या लाभ ?

अपादान—**पहाड़ की इतनी ऊँची चोटी से** वह गिरा कि उसकी हड्डी-पसली का भी पता नहीं चल सका।

सम्बन्ध—**अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र** राम ने रावण को मारा।

अधिकरण—**इतनी उच्च अट्टालिकाओं वाली विशाल नगरी में** उस ग़रीब के लिए मरने का भी स्थान न था।

सम्बोधन—**ओ रौरव नरक के कीड़े**, तुम्हें यह सब सोचते क्या शर्म भी नहीं आती।

इनमें करण, अपादान तथा अधिकरण के पदबंधों को क्रियाविशेषण पदबंध तथा सम्बन्ध के पदबंध को विशेषण पदबंध कहना कदाचित् अधिक उचित है, क्योंकि ये वस्तुतः इन्हीं का काम करते हैं।

(२) **सर्वनाम पदबंध**—जो पदबंध सर्वनाम का काम करे, उसे सर्वनाम पदबंध कहते हैं। जैसे—'**मौत से इतनी बार जूझ कर बच जाने वाला मैं** भला मर सकता हूँ ?' में काले टाइप का अंश सर्वनाम पदबंध है। इसमें अंत में या प्रारम्भ में प्रायः सर्वनाम आता है : **तकदीर का मारा वह** वहीं आ गया; **मुझ अभागे ने** भी वही ग़लती की। कभी-कभी सर्वनाम पद दो खंड में बँटकर आरंभ तथा अन्त में आता है तथा बीच में विशेषता बताने वाले शब्द उस पदबंध के अंश होते हैं। जैसे—**मुझ काम करने वाले को** भी तुम टल्लेबाज़ कहते हो। इसमें 'मुझ...को' सर्वनाम है, तथा 'काम करने वाले' उसकी विशेषता बताने वाला विशेषण। सर्वनाम पदबंध का प्रयोग अन्य पदबंधों की तुलना में बहुत कम होता है।

(३) **विशेषण पदबंध**—जो पदबंध प्रत्यक्षतः किसी संज्ञा की अथवा किसी सर्वनाम के माध्यम से परोक्षतः किसी संज्ञा की विशेषता बतलाता है, उसे विशेषण पदबंध कहते हैं। जैसे—**परिश्रम न करने वाले** लड़के अच्छे अंक नहीं पा सकते। यहाँ 'परिश्रम न करने वाले' विशेषण पदबंध है। विशेषण की तरह ही विशेषण पदबंध के भी स्वरूप, आकार, काल, स्थान, रंग, दशा, गुण, परिमाण, संख्या आदि की दृष्टि से अनेक भेदोपभेद हो सकते हैं। कुछ उदाहरण हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप—शरत पूनों के चाँद-सा सुन्दर मुखड़ा किस को नहीं मोह लेगा ?

काल—बाबा आदम के ज़माने के फ़ैशन मुझे नहीं चाहिए।

स्वरूप—सारस की तरह लम्बी गर्दन बड़ी अजीब लगती है।

रंग—कुन्द के ताज़ा फूल के समान धवल दंत-पंक्ति काले चेहरे में चमक रही थी।

परिमाण—लगभग हाथ भर का लंबा चाकू उसके हाथ में था।

संख्या—तादाद में उतने ही लड़के वहाँ भी थे।

कहा जाता है कि सर्वनाम के पहले विशेषण नहीं आता। सामान्यतः तो यह ठीक है, किन्तु कभी आता ही न हो, ऐसी बात भी नहीं। ऐसे वाक्य कभी-कभार मिल जाते हैं : बेचारा वह क्या कर सकता था ? इसी प्रकार विशेषण पदबंध भी कभी-कभी सर्वनाम के पहले आते हैं : उस शहर में सांप्रदायिक कटुता फैलाने वाले जो भी मिले, पकड़ लिए गए।

विशेषण पदबंध का प्रयोग सभी भाषाओं की तरह हिन्दी में भी सबसे अधिक होता है और यह प्रायः संज्ञा, सर्वनाम या क्रियाविशेषण पदबन्ध का अंग बन कर आता है।

(४) क्रिया पदबंध—बहुत से लोग क्रिया पदबन्ध की सत्ता स्वीकार नहीं करते। इसमें कोई संदेह नहीं कि क्रिया पदबन्ध अपनी संरचना में अन्य पदबन्धों की तरह नहीं होता, उसकी संरचना अन्यों से भिन्न होती है, किन्तु जब एक पद की भी क्रिया होती है (जैसे 'राम गया') तो उसकी तुलना में एक से अधिक पदों की क्रिया (वह तो दिनों-दिन फलता-फूलता चला जा रहा है) को क्रिया पदबंध नाम देना उचित ही है। इसमें पहला पद तो मुख्य क्रिया का, अर्थात् क्रिया पदबन्ध का केन्द्र होता है तथा बाद वाले पद किसी-न-किसी रूप में उसी की सहायता करते हैं, और इस रूप में उसके विस्तार होते हैं। उदाहरणार्थ—लड़का दौड़ रहा है, तितलियाँ पुष्परस पी रही होती हैं, उसका कहा मान लिया जा सकता है। क्रिया पदबन्ध दो, तीन, चार या पाँच पदों के होते हैं। इनमें पाँच का प्रयोग बहुत ही कम होता है।

(५) क्रियाविशेषण पदबन्ध—जो पदबन्ध क्रियाविशेषण का कार्य करे। जैसे, मोहन तो गुस्से में बड़े जोरों से दाँत पीसता हुआ आ रहा है। अर्थ के आधार पर इस पदबन्ध के भी कई भेद हो सकते हैं—

स्थान—उस मकान की तीसरी मंजिल पर रोज़गार का दफ्तर है।

दिशा—अँधेरे में टिमटिमाती धुँधली रोशनी की तरफ वह चुपचाप चला गया।

समय—यह इमारत मुगल बादशाह शाहजहाँ के जमाने में बनी थी।

अवधि—आगामी महीने के अन्तिम सप्ताह तक मैं अवश्य आ जाऊँगा।

अधिकता—सीता जरूरत से ज्यादा बोलती है।

रीति—चोट खाए हुए साँप की तरह फुफकारता हुआ वह फिर युद्ध में पिल पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुलना--हरीश **मोहन से ज्यादा तेज** दौड़ता है।

मुख्य पदबन्ध तो ये पाँच ही हैं, किन्तु निम्नांकित तीन का भी पदबन्धात्मक प्रयोग कभी-कभी होता है--

(६) **सम्बन्धबोधक पदबन्ध**--के बाहर, की ओर, के भीतर से, में से।

(७) **समुच्चयबोधक पदबन्ध**--इसलिए कि, क्योंकि।

(८) **विस्मयादिबोधक पदबन्ध**--बाप रे बाप, दइया रे दइया, अरे बाप रे, हाय री किस्मत !

पदबन्ध की रचना के सम्बन्ध में कुछ बातें ऊपर आ चुकी हैं। सामान्य रूप से कुछ और बातें भी ध्यान देने की हैं--

(१) किसी भी संज्ञा के पूर्व उसका विस्तार आ सकता है। संज्ञा का विस्तार **विशेषण** (जैसे अच्छा लड़का), **सम्बन्ध कारकीय रूप** (जैसे **तुम्हारा** बेटा, **राम की** माँ), **अधिकरण कारकीय रूप** (**कमरे में** शोर, **बोलने में** तेज़ी), **सम्प्रदान कारकीय रूप** (**लुटाने के लिए** धन) आदि से होता है।

(२) सर्वनाम के पूर्व उसका विस्तार आ सकता है। यह मुख्यतः विशेषण (बेचारा वह क्या करेगा) होता है।

(३) किसी भी विशेषण के पूर्व उसका विस्तार आ सकता है। विशेषण का विस्तार **प्रविशेषण** (**बहुत** अच्छा मौक़ा), प्रविशेषण+ही (**बहुत ही** अच्छा), **तुलनात्मक प्रयुक्त पद** (**फूल से** कोमल, **सबसे** स्वार्थी) तथा **अधिकरण कारकीय रूप** (**खाने में** स्वादिष्ट) आदि हो सकते हैं।

(४) किसी भी क्रियारूप के पूर्व उसका विस्तार आ सकता है। क्रियारूप का विस्तार **क्रियाविशेषण** (**धीरे-धीरे** बोलता है, **घर में** लड़ता है, **लाठी से** मारता है, **देर से** आता है), क्रिया के सकर्मक होने पर **कर्म** (**खाना** खाकर, **पत्र** लिखेगा); धातु के अकर्मक होने पर पूरक रूप में **विशेषण** (**स्वस्थ** होने पर, **सफल** होकर) अथवा **संज्ञा** (**पुरुष** होकर ऐसी बातें करते हो) आदि होते हैं।

(५) क्रियाविशेषण के पूर्व उसका विस्तार आ सकता है। क्रियाविशेषण का विस्तार **प्रक्रियाविशेषण** (**बहुत** धीरे-धीरे बोलता है), **प्रक्रियाविशेषण+ही** (**बहुत ही** धीरे-धीरे लिख रहा है) तथा **तुलना** (**बीमार की तरह** धीरे-धीरे) आदि होते हैं।

(६) जैसा कि कहा गया है, विस्तार प्रायः पूर्व होते हैं, किन्तु कुछ प्रकार के विस्तार बाद में भी आ सकते हैं : वह **बेचारा** क्या करे, **लड़का बेचारा** क्या करे, **करूँगा काम** किन्तु आज नहीं, **कहानी एक दीन** की।

वाक्य के प्रकार

(क) रचना के आधार पर

(१) सरल वाक्य

जैसा पीछे कहा जा चुका है, भाषा की मूल इकाई वाक्य है। वाक्य में ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति सोचता है, वाक्य में ही अपने को व्यक्त करता है, और वाक्य-रूप में ही व्यक्ति किसी कथन को समझता है। वाक्य में भी मूल **सरल वाक्य** होते हैं।

जिस वाक्य में एक ही उद्देश्य और एक ही विधेय हो, उसे सरल वाक्य कहते हैं। जैसे 'विद्यार्थी पढ़ता है' एक सरल वाक्य है। इसमें 'विद्यार्थी' उद्देश्य है और 'पढ़ता है' विधेय है। यदि किसी वाक्य में एक मे अधिक 'उद्देश्य' या 'विधेय' हों तो इसका अर्थ यह हुआ कि वह वाक्य एकाधिक सरल वाक्यों से मिल कर बना है। उदाहरण के लिए 'राम और मोहन जा रहे हैं' मूलतः 'राम जा रहा है' तथा 'मोहन जा रहा है' इन दो सरल वाक्यों से मिलकर बना है। इसी तरह 'राम गाता-बजाता है' भी दो सरल वाक्यों से मिलकर बना है : 'राम गाता है' तथा 'राम बजाता है'। यों इस प्रकार के सरल वाक्यों से इस तरह बने वाक्य भी सरल वाक्य कहलाते हैं, क्योंकि इनमें संयुक्त या मिश्रित वाक्य-संरचना नहीं है, अर्थात् एकाधिक उपवाक्य नहीं हैं।

हिन्दी में सरल वाक्य मुख्यतः निम्नांकित प्रकारों के होते हैं--

(१) अकर्मकीय--सौरभ हँसता है। (इसमें कर्म नहीं होता)

(२) एककर्मकीय--सौरभ फल खाता है। (इसमें एक कर्म होता है)

(३) द्विकर्मकीय--सौरभ दीनू को पत्र लिखता है। (इसमें दो कर्म होते हैं)

(४) कर्तृपूरकीय--सौरभ सुन्दर है। श्वेता डॉक्टर है। (इसमें विशेषण अथवा संज्ञा कर्ता का पूरक होता है)

(५) कर्मपूरकीय--सौरभ दीनू को मूर्ख बनाता है। (इसमें विशेषण अथवा संज्ञा कर्म के पूरक होते हैं)

इनमें आगे उद्देश्य और विधेय के विस्तार भी हो सकते हैं तथा इनके प्रश्न-वाचक, निषेधात्मक तथा निषेध-प्रश्नवाचक रूपान्तर भी हो सकते हैं। जैसे 'क्या सौरभ हँसता है', 'सौरभ नहीं हँसता', 'क्या सौरभ नहीं हंसता' आदि।

(२) उपवाक्य

जब दो या अधिक सरल वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य बना देते हैं तो उस एक वाक्य में जो वाक्य मिले होते हैं, उन्हें उपवाक्य कहते हैं। वस्तुतः उनके मिलने से बना बड़ा वाक्य जब 'वाक्य' है तो उसके भीतर के छोटे वाक्य 'उपवाक्य' नाम के उचित ही अधिकारी हैं। उदाहरण के लिए 'राम आया और मोहन गया' वाक्य में दो उपवाक्य हैं : 'राम आया', 'मोहन गया'। इसी प्रकार 'मैं चाहता हूँ कि वह घर चला जाए' वाक्य में भी दो उपवाक्य हैं : 'मैं चाहता हूँ', 'वह घर चला जाए'।

उपवाक्य दो प्रकार के होते हैं : (i) आश्रित उपवाक्य, (ii) प्रधान उपवाक्य।

(i) आश्रित उपवाक्य

जो उपवाक्य दूसरे उपवाक्य के आश्रित हो, अर्थात् प्रधान न होकर गौण हो, उसे आश्रित उपवाक्य कहते हैं। जैसे 'उस व्यक्ति को कोई नहीं पसन्द करता,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो झूठ बोलता है' वाक्य में दो उपवाक्य हैं, 'उस व्यक्ति को कोई नहीं पसन्द करता' तथा 'जो झूठ बोलता है।' इसमें 'जो झूठ बोलता है' उपवाक्य आश्रित उपवाक्य है, क्योंकि यह दूसरे उपवाक्य के आश्रित है। यह वाक्य दूसरे उपवाक्य की संज्ञा, 'व्यक्ति' की विशेषता बतला रहा है।

आश्रित उपवाक्य तीन प्रकार के होते हैं--

(i) **संज्ञा उपवाक्य**--यह संज्ञा अथवा संज्ञा पदबन्ध (कर्म, पूरक आदि) के स्थान पर आता है। उदाहरण के लिए 'संतोष कब चाहता है कि वह डाकू बने' वाक्य लें। इसमें 'चाहना' सकर्मक क्रिया है, जिसका कर्म है 'वह डाकू बने'। यह 'वह डाकू बने' 'डाकू बनना' के स्थान पर आया है: संतोष 'डाकू बनना' कब चाहता है? ऐसे ही, 'तुम्हें यह सुनकर खुशी होगी कि **मुझे पुरस्कार मिला है**', 'मेरे इस परिश्रम का उद्देश्य है कि **परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करूँ**' में काले टाइप के अंश संज्ञा उपवाक्य हैं। ये क्रमशः संज्ञा के स्थान पर आए हैं, **मुझे पुरस्कार मिलना** सुनकर तुम्हें खुशी होगी, मेरे इस परिश्रम का **उद्देश्य परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करना** है। संज्ञा उपवाक्य प्रायः 'कि' से जुड़ा होता है।

(ii) **विशेषण उपवाक्य**--जो सीधे किसी संज्ञा, अथवा पर्वनाम के माध्यम से किसी संज्ञा की विशेषता बतलाए। यह विशेषण के स्थान पर आता है: वह विद्यार्थी स्कूल छोड़कर चला गया, **जो खेल में बहुत अच्छा था**; उस पुस्तक का नाम क्या है, **जिसकी तुम प्रशंसा कर रहे थे; जो स्वयं निर्धन** है, वह दूसरों की सहायता क्या करेगा? काले टाइप के अंश (उपवाक्य) क्रमशः 'विद्यार्थी', 'पुस्तक' तथा 'वह' की विशेषता बतला रहे हैं, अतः विशेषण उपवाक्य हैं। विशेषण उपवाक्य सम्बन्धवाचक विशेषण 'जो' के 'ज' अंशयुक्त शब्दों (जो, जिसे, जैसा, जितना आदि) के द्वारा प्रधान उपवाक्य से जुड़ा होता है तथा उसका विशेष्य प्रधान उपवाक्य में होता है।

(iii) **क्रियाविशेषण उपवाक्य**--यह प्रधान उपवाक्य की क्रिया की विशेषता (स्थान, समय, रीति, कारण आदि विषयक) बतलाता है: **जब भी उस भिखारी को देखता हूँ**, मेरा मन करुणा से भर जाता है; मोहन ऐसे चल रहा है, **जैसे कोई पागल चल रहा हो; जहाँ भी जाना चाहो**, चले जाओ; तुम्हारा कहना वह नहीं मानेगा, **क्योंकि उसे उतनी अक्ल नहीं है**। क्रियाविशेषण उपवाक्य क्रियाविशेषण के स्थान पर आते हैं: **उस भिखारी को देखने पर** मेरा मन करुणा से भर जाता है; मोहन **पागल की तरह** चल रहा है; **अपनी पसंद की जगह पर** चले जाओ; **अक्ल न होने के कारण** वह तुम्हारा कहना नहीं मानेगा।

(ii) प्रधान उपवाक्य

जैसा कि ऊपर हमने देखा, वाक्य में जो उपवाक्य आश्रित होकर संज्ञा-रूप में पूरक या कर्म का काम करता है, संज्ञा उपवाक्य होता है; जो दूसरे उपवाक्य के किसी संज्ञा शब्द की विशेषता बतलाता है, विशेषण उपवाक्य होता है तथा जो दूसरे उपवाक्य की क्रिया की विशेषता बतलाता है, क्रियाविशेषण उपवाक्य होता है। इसके विपरीत किसी वाक्य का ऐसा उपवाक्य, जो दूसरे के आश्रित नहीं होता, प्रधान उपवाक्य कहलाता है। संज्ञा उपवाक्य प्रधान उपवाक्य का ही कर्म अथवा पूरक होता है, विशेषण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की ही किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा की विशेषता बतलाता है तथा क्रियाविशेषण उपवाक्य प्रधान उपवाक्य की क्रिया का ही स्थान, काल, रीति, कारण आदि बतलाता है। नीचे के वाक्यों के काले टाइप के अंश प्रधान उपवाक्य हैं—

मेरे इस परिश्रम का उद्देश्य है कि परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करूँ।

उस पुस्तक का नाम क्या है, जिसकी तुम प्रशंसा कर रहे थे।

जब भी उस भिखारी को देखता हूँ, **मेरा मन करुणा से भर जाता है**।

(३) मिश्र वाक्य

जब दो या अधिक सरल वाक्यों को एक वाक्य में इस प्रकार से जोड़ा गया हो कि उनमें कोई एक प्रधान हो तथा शेष आश्रित हों, तो उसे मिश्र वाक्य कहते हैं। 'जो सज्जन होता है, उसका सभी लोग आदर करते हैं' एक मिश्र वाक्य है। इसमें 'उसका सभी लोग आदर करते हैं' प्रधान उपवाक्य है तथा 'जो सज्जन होता है' आश्रित उपवाक्य। मिश्र वाक्य के आश्रित उपवाक्य, संज्ञा उपवाक्य, विशेषण उपवाक्य या क्रियाविशेषण उपवाक्य होते हैं। इस प्रकार ऊपर आश्रित उपवाक्य के 'अन्तर्गत' जितने भी 'वाक्य' उदाहरणस्वरूप दिए गए हैं, सभी मिश्र वाक्य के उदाहरण हैं।

(४) संयुक्त वाक्य

जब एक से अधिक सरल वाक्यों को मिलाकर एक वाक्य बनाया गया हो तथा वे समान स्तर के हों, अर्थात् कोई न तो प्रधान हो और न कोई आश्रित हो, तो उस वाक्य को संयुक्त वाक्य कहते हैं। जैसे 'राम गया लेकिन सीता आ गई' संयुक्त वाक्य है जिसमें 'राम गया' तथा 'सीता आ गई' ये दो सरल वाक्य इस प्रकार जोड़े गए हैं कि दोनों में कोई भी मुख्य या गौण नहीं है, दोनों समान स्तर के हैं।

संयुक्त वाक्य दो प्रकार के होते हैं—

(i) **एकसमुच्चयबोधकीय**—जिनमें एक समुच्चयबोधक अव्यय जोड़ा गया हो। जैसे—

मुझे वहाँ जाना था, **अतः** सवेरे उठना पड़ा।

गिलास हाथ से गिरा **और** टूट गया।

इसमें और, तथा, एवं, व, बल्कि, अपितु, प्रत्युत, वरन, अथवा, या, लेकिन, परन्तु, किन्तु, अतएव, इसलिए, अतः आदि समुच्चयबोधक अव्ययों का प्रयोग होता है।

(ii) **द्विसमुच्चयबोधकीय**—जिनमें दो समुच्चयबोधक के जोड़े प्रयुक्त किए गए हों। जैसे—

जब तुम चलोगे, तभी मैं भी चलूंगा।

न तुम पढ़ाओगे, न वह पढ़ेगा।

इसमें जब ..... तभी, न. . . . न, जहाँ. . . . वहाँ, जहाँ. . . . तहाँ, या. . . .नहीं तो, या तो. . . .या, जितना. . . .उतना, जैसे. . . . वैसे, चाहे . . . .तो भी आदि जोड़े समुच्चयबोधक रूप में आते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधारभूत वाक्य-रूपांतरित वाक्य

हर भाषा में कुछ आधारभूत वाक्य होते हैं जो साधारण, अनिषेध,बोधक, अप्रश्नबोधक और कर्तृवाच्य होते हैं। जैसे, राम पुस्तक पढ़ता है। संयुक्त, मिश्रित, निषेध-बोधक, प्रश्नबोधक, कर्म और भाववाच्य वाक्य रूपांतरित वाक्य होते हैं, जो आधारभूत वाक्यों के आधार पर ही कुछ जोड़, घटा या/तथा परिवर्तन करके बनाए जाते हैं। हिंदी में 'राम पढ़ता है और सीता खेलती है,' 'राम तब पढ़ता है जब सब सो जाते हैं,' 'राम नहीं पढता,' 'क्या राम पढ़ता है ?' 'पुस्तक पढ़ी जाती है,' 'राम से नहीं पढ़ा जाता', जैसे रूपांतरित वाक्य पूर्व-संकेतित आधारभूत वाक्य पर ही आधारित हैं। (विस्तार के लिए देखिए लेखक की पुस्तक 'हिंदी भाषा की संरचना।')

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १८

शब्द-रचना

हिन्दी में शब्द-रचना उपसर्ग, प्रत्यय तथा समास के आधार पर होती है। यहाँ संक्षेप में इन्हें लिया जा रहा है।

उपसर्ग

उपसर्ग उस भाषिक इकाई को कहते हैं जिसका भाषा-विशेष में स्वतन्त्र प्रयोग न होता हो, किन्तु जिसे विभिन्न प्रकार के शब्दों के आरम्भ में जोड़कर शब्दों की रचना की जाती हो। जैसे—कु+कर्म=कुकर्म। यहाँ 'कु' उपसर्ग है। हिन्दी में तीन प्रकार के उपसर्गों का प्रयोग होता है—

तत्सम उपसर्ग—जो संस्कृत से ज्यों-के-त्यों हिन्दी में ले लिए गए हैं। जैसे—अति, अधि, अनु, अप, अभि, अव, आ, उत्, उप, दुः, निः, परा, परि, प्र, प्रति, बहु, वि, सम्, सह, सु आदि।

तद्भव उपसर्ग—जो संस्कृत के उपसर्गों या शब्दों से ध्वनि की दृष्टि से कुछ परिवर्तित होकर विकसित हुए हैं तथा जिनका हिन्दी में स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता किन्तु शब्द-रचना के लिए जो प्रयुक्त किए जाते हैं। जैसे—औ, क, दु, नि, पर, स आदि।

विदेशी उपसर्ग—जो उपसर्ग विदेशी भाषाओं से आए हों। हिन्दी में विदेशी उपसर्ग मुख्यतः केवल फ़ारसी तथा अरबी के हैं। जैसे—अल, दर, ब, बा, ले आदि। आगे हिन्दी में प्रयुक्त मुख्य उपसर्ग अर्थ और प्रयोग के उदाहरणों के साथ दिए जा रहे हैं—

अ : (१) प्रतिकूल—अहित, अधर्म; (२) रहित, हीन—अदृश्य, अज्ञान, अशांत, अबोध, अथाह; (३) निषेध—अपेय, अखाद्य।

अधि : (१) अधिक—अधिमास; (२) श्रेष्ठ—अधिपति, अधिनायक, अध्यात्म; (३) अधिकारपूर्वक—अधिग्रहण।

अन : (१) अतीत या परे—अनगिनत, अनमोल; (२) अभाव—अनाचार, अनमेल, अनपढ़; (३) प्रतिकूल—अनरीति।

अनु : (१) प्रत्येक—अनुदिन, अनुक्षण; (२) समान—अनुरूप; (३) बाद का—अनुवाद; (४) पीछे—अनुचर, अनुगमन, अनुकरण।

अंतः-अन्तर्-अंतस् : (१) भीतर—अंतस्सलिला, अंतस्साक्ष्य, अंतर्दशा, अंतःकरण; (२) सभी—अंतर्राष्ट्रीय; (३) बाहर—अंतर्जातीय।

अप : (१) बुरा—अपशब्द, अपकीर्ति; (२) अनुचित—अपव्यय, अपहरण; (३) विपरीत—अपमान; (४) नीचे—अपकर्ष, अपभ्रंश।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अव : (१) घटना—अवमूल्यन; (२) अभाव—अवचेतन; (३) उलट—अवगुण; (४) नीचे— अवरोहण, अवनत ।

आ : (१) ऊपर—आरोहण; (२) तक—आजानु, आसमुद्र, आभरण; (३) आदि से अन्त तक—आजीवन; (४) आदि से अब तक—आजन्म ।

आवि-आविर्-आविष् : बाहर—आविर्भाव, आविर्भूत, आविष्कार ।

उत : (१) अधिक—उत्तप्त; (२) मुक्त—उद्दंड; (३) प्रकट—उद्घोष; (४) ऊपर—उत्कर्ष ।

उप : (१) नीचे—उपमंत्री, उपप्रधान, उपसभापति; (२) गौण—उपपुराण; (३) दूसरा—उपनाम, उपपति; (४) अनुकूल पक्ष में—उपकार; (५) पहले— उपसर्ग; (६) और आगे—उपभेद ।

कु : (१) बुरा—कुकर्म, कुमार्ग, कुपात्र, कुचाल; (२) अशुभ—कुदिन, कुबोल ।

ग़ैर : निषेध—ग़ैरहाज़िर, ग़ैरसरकारी ।

दर : में—दरअस्ल, दरम्यान ।

दु : बुरा—दुकाल, दुराज ।

दुर्-दुः-दुष्-दुस् : (१) बुरा—दुर्दिन, दुर्दशा, दुर्गुण, दुष्कर्म, दुश्चरित्र; (२) कठिन—दुर्बोध, दुर्गम, दुर्निवार, दुस्तर; (३) अभाव—दुर्बल ।

ना : नहीं—नापसंद, नाउम्मीद, नालायक ।

नि : (१) नहीं— निडर, निपूता, निकम्मा, निहत्था, निरोगी; (२) पूर्णतः—निखालिस (क्षेत्रीय तथा अमानक प्रयोग); (३) समूह—निकर; (४) नीचे—निपतित; (५) आदेश—निदेश ।

निर : नहीं, निषेध—निरर्थक, निराहार, निरंकुश, निरपराध ।

पर : (१) बाद का—परवर्ती, परसर्ग; (२) दूसरा—परलोक, परपुरुष; (३) प्र, पूर्व का—परदादा, परपोता; (४) दूसरे का—परोपकार; (५) दूसरे को—परोपदेश ।

परा : विपरीत—पराजय ।

परि : (१) आसपास, चारों ओर—परिभ्रमण, परिक्रमा; (२) पूरी तरह—परिपक्व, परिपूर्ण; (३) अधिक—परिश्रम ।

पुनः-पुनर् : फिर—पुनर्जन्म, पुनरुक्ति, पुनर्विभाजन ।

प्र : (१) विशेष—प्रख्यात; (२) ऊपर, पहले के—प्रपितामह; (३) नीचे बाद का—प्रपौत्र; (४) बड़ा—प्राचार्य, प्राध्यापक, प्रबल; (५) उप—प्रभेद, प्रभाग ।

प्रति : (१) विरुद्ध—प्रतिरोध, प्रतिवाद, प्रतिस्पर्धा; (२) सामने—प्रत्यक्ष; (३) बदले में—प्रत्युपकार ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब : (१) सहित, साथ—बख़ूबी, बख़ैरियत; (२) के द्वारा—बज़रिये; (३) से—ख़ुद-ब-ख़ुद; (४) तुलना में—बनाम; (५) अनुसार, मुताबिक—बदस्तूर।

बद : बुरा—बदबू, बदनाम, बदक़िस्मत।

बर : (१) पर, ऊपर—बरवक्त; (२) अलग—बरतरफ़; (३) निश्चय—बरक़रार।

बहिः-बहिष्-बहिर् : बाहर का—बहिरंग, बहिष्कार, बहिःसाक्ष्य।

बा : (१) सहित, के साथ—बाक़ायदा, बाअदब; (२) वाला—बाआबरू।

बिला : बिना—बिलानाग़ा, बिलाशक।

बे : (१) बिना, रहित—(i) बेईमान, बेरहम, बेचारा, बेइज़्ज़त, बेक़ायदा, बेबुनियाद; (ii) बेढंगा, बेखटके, बेडौल, बेजोड़, बेढब; (२) स्वार्थे—बेफ़ज़ूल (क्षेत्रीय तथा अमानक प्रयोग)।

ला : बिना, रहित—लाइलाज, लापता, लापरवाह, लाजवाब, लावारिस।

वि : (१) बिना—वियोग; (२) आधिक्य—विकराल; (३) विशेष—विगत; (४) स्वार्थे—विभाग; (५) विपरीत—विक्रय; (६) दूसरा—विदेश, विकल्प।

स : (१) सहित—सपरिवार, सजीव, सकुशल; (२) एक ही का—सगोत्र, सजातीय; (३) अच्छा, सु—सपूत।

सत्-सद् : (१) अच्छा—सदाचार, सत्कर्म, सद्गति, सद्गुण, सच्चरित्र, सज्जन; (२) सच्चा—सद्गुरु।

सं : (१) सम्यक् रूप से—संयुक्त, संतोष, संस्तुति, संयोग; (२) स्वार्थे—संप्राप्ति।

सर : (१) मुख्य—सरपंच; (२) स्वार्थे—सरहद।

सह : साथ—सहगमन, सहचर, सहभाषा, सहगामी, सहकारी।

सु : (१) अच्छा—सुगन्ध, सुवसर, सुयश, सुपात्र, सुव्यवस्थित; (२) सुन्दर—सुदर्शन, सुकेशी; (३) सरल—सुकर, सुगम; (४) बहुत—सुदीर्घ, सुसम्पन्न; (५) शुभ—सुसमाचार, सुघड़ी, सुदिन।

स्व : (१) अपना—स्वदेश, स्वराज्य, स्वतन्त्र, स्वभाव; (२) स्वार्थे—स्वरूप; (३) अपने, स्वयं—स्वचालित।

हम : (१) एक—हमराह, हमवतन, हमउम्र; (२) समान—हमदर्द।

प्रत्यय

प्रत्यय उस भाषिक इकाई को कहते हैं जिसका प्रयोग स्वतन्त्र रूप से न हो, और जिसे किसी और भाषिक इकाई के अन्त में जोड़कर शब्द-रचना की जाय। जैसे : सुन्दर+ता=सुन्दरता। यहाँ 'ता' प्रत्यय है। हिन्दी में चार प्रकार के प्रत्ययों का प्रयोग होता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्सम—जैसे ता, आलु, जीवी, इक, ई, शः, अनीय, तः, इष्ठ, आ, इमा ।

तद्भव—जैसे आई, आहट, एरा, नी, आइन, आलू आदि ।

देशज—जैसे अक्कड़, अंकू, अड़, आटा आदि ।

विदेशी—जैसे आना, इयत, मंद आदि ।

हिन्दी के व्याकरणों में प्रत्यय के 'कृत्' और 'तद्धित' दो वर्ग बनाए गए हैं। वस्तुतः यह वर्गीकरण संस्कृत का है और हिन्दी पर लागू नहीं होता, क्योंकि ऐसे भी प्रत्यय हैं जो 'कृत्' और 'तद्धित' दोनों ही रूपों में प्रयुक्त होते हैं। जैसे : 'आई'। एक तरफ़ तो यह धातु में जोड़ा जाता है (सिलाई, खुदाई, लड़ाई, पढ़ाई, चढ़ाई, आदि), अतः कृत् प्रत्यय है और दूसरी ओर अन्य शब्दों में भी जोड़ा जाता है (खुदाई, कठिनाई, सफ़ाई, चतुराई), अतः यह तद्धित प्रत्यय भी है। वस्तुत. हिन्दी प्रत्ययों के इस प्रकार के वर्गीकरण की कोई उपयोगिता नहीं है और न कोई औचित्य ही है।

यहाँ हिन्दी के कुछ मुख्य प्रत्यय दिए जा रहे हैं—

अन्त (किया हुआ)—गढ़न्त, रटन्त ।

अक्कड़ (वाला)—घुमक्कड़, पियक्कड़ ।

आ (स्त्री० प्रत्यय)—माननीया, आदरणीया, प्रिया, सुता ।

आई (भाववाचक संज्ञा का प्रत्यय)—पढ़ाई, लिखाई, बुराई, भलाई, कमाई ।

आऊ (वाला)—कमाऊ, बिकाऊ, पंडिताऊ, टिकाऊ ।

आड़ी (वाला)—खिलाड़ी, जुआड़ी ।

आना (परम्परा, दण्ड, प्रति)—घराना, जुर्माना, रोज़ाना, सालाना ।

आनी (स्त्री० प्रत्यय)—जिठानी, देवरानी, मास्टरानी, मेहतरानी ।

आपा (भाववाचक संज्ञा का प्रत्यय)—बुढ़ापा, रँड़ापा, मुटापा ।

आर (करने वाला)—सुनार, लुहार, कुम्हार, चमार ।

आरी (करने वाला)—पुजारी, भिखारी ।

आलु (वाला)—दयालु, लज्जालु, श्रद्धालु, कृपालु ।

आलू (करने वाला)—झगड़ालू ।

आवट (भाववाचक संज्ञा का प्रत्यय)—मिलावट, बुनावट, बनावट, रुकावट ।

आस (इच्छावाचक संज्ञा का प्रत्यय)—छपास, लिखास ।

आहट (भाववाचक संज्ञा का प्रत्यय)—घबराहट, भलमनसाहत, चिल्लाहट ।

इक (विशेषण का प्रत्यय)—भाषिक, दैनिक, सामाजिक, साहित्यिक, व्यावहारिक, वैदिक, नैतिक, भौगोलिक, पौराणिक (इसे जोड़ने में प्रथम अक्षर के अ को आ; इ, ई, ए को ऐ तथा उ, ऊ, ओ को औ कर देते हैं)।

इत (युक्त)—पुष्पित, आधारित, पुलकित, हर्षित ।

इन (स्त्री० प्रत्यय)—जुलाहिन, साँपिन, जमादारिन, लुहारिन ।

इमा (भाववाचक संज्ञा का प्रत्यय)—महिमा, कालिमा, लालिमा, नीलिमा ।

इयत (भाववाचक संज्ञा का प्रत्यय)—आदमियत, इन्सानियत, असलियत, खासियत ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इयल (वाला)—दढ़ियल, लठियल, मरियल, सड़ियल।

इया (लघुत्वबोधक तथा स्त्री प्रत्यय)—लुटिया, बुढ़िया, चुहिया, खटिया: (वाला)—पुरबिया, कनौजिया, दीवालिया, कलकतिया, बम्बइया।

इल (वाला)—फेनिल, उर्मिल, जटिल।

ई (स्त्री प्रत्यय)—घोड़ी, लड़की, नानी, चाची; (वाला)—घमंडी, लालची, ऊनी, सूती, जापानी, राजस्थानी, हिन्दुस्तानी रूसी; (भाववाचक संज्ञा का प्रत्यय)—मास्टरी, प्राफ़ेसरी, अफ़सरी, चौड़ाई, सफ़ेदी।

ईय (वाला)—स्वर्गीय, भारतीय, शासकीय।

ईला (वाला)—सुरीला, पथरीला, चमकीला, खर्चीला।

ऊ (वाला)—टालू, चालू, जानमारू।

एरा (वाला)—चचेरा, ममेरा, लुटेरा, सँपेरा।

कार (लिखने या बनाने वाला)—साहित्यकार, कहानीकार, नाटककार, चित्रकार, मूर्तिकार; (वाला)—जानकार।

ख़ोर (खानेवाला)—सूदख़ोर, घूसख़ोर, रिश्वतख़ोर, हरामख़ोर।

गी—ज़िंदगी, नामज़दगी, मेहरबानगी।

गर (वाला)—जादूगर, रफ़ूगर, बाज़ीगर।

ची (वाला)—तबलची, तोपची, अफ़ीमची, मशालची, खजांची।

ज (जन्मा हुआ)—जलज, पंकज, वारिज, अनुज, अंडज, स्वेदन।

जीवी (जीनेवाला)—दीर्घजीवी, अल्पजीवी, परजीवी, बुद्धिजीवी।

ज्ञ (जानने वाला)—विशेषज्ञ, मर्मज्ञ, अल्पज्ञ, अज्ञ, विज्ञ, प्रज्ञ।

तम (सबसे अधिक)—सुन्दरतम, श्रेष्ठतम, उच्चतम।

तर (तुलना में ऊँचा, बड़ा अथवा छोटा आदि)—उच्चतर, गुरुतर, निम्नतर।

तः (क्रियाविशेषण का प्रत्यय)—अंशतः, मूलतः, स्वतः, यथार्थतः, सामान्यतः, वस्तुतः।

तया (क्रियाविशेषण का प्रत्यय)—सामान्यतया, मुख्यतया, साधारणतया।

ता (भाववाचक संज्ञा का प्रत्यय)—सुन्दरता, कोमलता, आवश्यकता, प्राचीनता, नवीनता, लघुता, ममता।

त्व (भाववाचक संज्ञा का प्रत्यय)—महत्त्व, कवित्व, सतीत्व, अमरत्व, व्यक्तित्व।

दान (आधार)—इत्रदान, गुलदान, पीकदान, क़लमदान।

दार (वाला)—दूकानदार, ईमानदार, मालदार, खुशबूदार।

नाक (वाला)—ख़तरनाक, ख़ौफ़नाक, दर्दनाक, शर्मनाक।

पन (भाववाचक संज्ञा का प्रत्यय)—बचपन, कालापन, पागलपन।

बाज़ (वाला)—चालबाज, पतंगबाज़, मुकदमेबाज, धोखेबाज़, बटेरबाज़।

मंद (वाला)—अक्लमंद, दौलतमंद, ज़रूरतमंद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य (भाववाचक संज्ञा का प्रत्यय)—शौर्य, लालित्य, सौंदर्य, आधिक्य।
वान (वाला)—गुणवान, दयावान, धनवान, बलवान।
सार (वाला)—खाक़सार, शर्मसार।

समास

'समास' दो शब्दों से मिलकर बना है : सम् (पास) + आस (रखना, बैठाना) = समास। 'समास' उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें दो या अधिक शब्द मिलाकर उनके बीच के सम्बन्धसूचक आदि शब्दों का लोप करके नया शब्द बनाते हैं। जैसे—दही में का या दही में पड़ा हुआ बड़ा = दहीबड़ा, घोड़ा-युक्त गाड़ी = घोड़ा-गाड़ी। समास के दोनों पदों (शब्दों) को क्रमशः पूर्वपद तथा उत्तरपद कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरणों में 'दही' तथा 'घोड़ा' पूर्वपद हैं और 'बड़ा' तथा 'गाड़ी' उत्तर-पद। दोनों को मिलाकर **सामासिक पद** अथवा **समस्तपद** कहते हैं।

उत्तरपद और पूर्वपद के बीच में या तो योजक-चिह्न लगाना चाहिए। (जैसे सुख-दुःख, माता-पिता) या उन्हें मिलाकर एक में लिखना (दहीबड़ा, घोड़ागाड़ी) चाहिए। इन्हें अलग-अलग लिखना (सुख दुख, दही बड़ा, घोड़ा गाड़ी) ग़लत हैं।

अपने यहाँ पूर्वपद और उत्तरपद की सापेक्षिक प्रधानता के आधार पर समस्त पदों का वर्गीकरण किया गया है—

(१) पूर्वपद प्रधान—अव्ययीभाव
(२) उत्तरपद प्रधान—तत्पुरुष (कर्मधारय और द्विगु भी इसी में हैं)
(३) दोनों पद प्रधान—द्वंद्व
(४) दोनों पद अप्रधान—बहुब्रीहि (इसमें कोई तीसरा अर्थ प्रधान होता है)।

इस प्रकार समास मूलतः चार प्रकार के होते हैं। तत्पुरुष के ही दो उप-भेदों (कर्मधारय और द्विगु) को मिलाकर प्रायः छः समास कहे जाते हैं।

(१) **अव्ययीभाव**—इस समास में दो शब्दों से मिलकर जो शब्द बनता है, अव्यय (क्रियाविशेषण) का काम करता है, इसीलिए इसका नाम अव्ययीभाव है। अव्ययीभाव समास में पहला शब्द प्रधान होता है। उदाहरण : यथा + शक्ति = यथा-शक्ति, प्रति + दिन = प्रतिदिन। ऐसे ही यथासम्भव, यथाशीघ्र, यथास्थान, अनुदिन, एकाएक, धड़ाधड़, भरपेट, हाथोंहाथ आदि। संस्कृत अव्ययीभाव समासों में पहला शब्द अव्यय और दूसरा संज्ञा या विशेषण होता है, किन्तु इस समास के हिन्दी उदाहरणों में पहला शब्द अव्यय न होकर प्रायः संज्ञा होता है। जैसे—रातोंरात, घरघर, हाथों-हाथ, दिनोंदिन।

कई पुस्तकों में इस समास के कुछ और उदाहरण आजन्म, बेखटके, आजीवन, आमरण, व्यर्थ आदि दिए गए हैं। हिन्दी मे इन्हें समास मानना अशुद्ध है, क्योंकि इनमें 'आ', 'वि' हिन्दी में उपसर्ग हैं, शब्द या पद नहीं। यह ध्यान देने की बात है कि 'आ', 'वि' आदि का हिन्दी शब्द की तरह स्वतन्त्र प्रयोग नहीं होता।

(२) **तत्पुरुष**—तत्पुरुष समास में पहला शब्द प्रायः संज्ञा या विशेषण तथा दूसरा सर्वदा संज्ञा होता है। इसमें दूसरा शब्द प्रधान होता है। 'तत्पुरुष'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तत्+पुरुष=वह आदमी) इसका एक अच्छा उदाहरण है। इसी आधार पर इसका यह नाम पड़ा है। पहले शब्द के भेद के आधार पर इस समास के तीन भेद होते हैं—

(क) यदि पहला शब्द संख्यावाचक विशेषण हो और समस्त पद-समूह का बोध कराए तो समास को **द्विगु** कहते हैं। जैसे—त्रिभुवन (तीन भुवन, पहला शब्द संख्यावाचक विशेषण, दूसरा संज्ञा), पंचवटी, छप्पय, त्रिलोक, चौमासा, नवग्रह, पंचतत्त्व, अठवारा, चवन्नी, त्रिफला, चौराहा, अठन्नी, पंसेरी, दुअन्नी, सप्तसिन्धु, दोपहर। 'द्विगु' का अर्थ है 'दो गायों या बैलों का समूह'। यह 'द्विगु' शब्द इसका एक अच्छा उदाहरण है, इसी आधार पर यह नया पड़ा है।

(ख) जिसमें विशेषण-विशेष्य अथवा उपमेय-उपमान हो, उसे कर्मधारय कहते हैं: विशेषण-विशेष्य—नीलकमल, सज्जन, महात्मा, महाजन, शुभागमन, नीलगाय, खुशबू, बदबू। उपमेय-उपमान—चरण-कमल (कमल-रूपी चरण), मृगनयन (मृग के समान नयन), चन्द्रमुख (चन्द्रमा के समान मुख), कमलनयन (कमल के समान नयन)। कर्मधारय का एक भेद मध्यम पदलोपी कर्मधारय होता है जिसमें मध्य का पद लुप्त हो जाता है: बनमानुष (बन में रहने वाला मनुष्य), घृतान्न (घृत-मिश्रित अन्न), गोबरगणेश (गोबर से बना गणेश), बैलगाड़ी (बैलों से खींची जाने वाली गाड़ी), गुरुभाई (गुरु के सम्बन्ध से भाई)। कर्मधारय के कुछ अन्य उदाहरण हैं: महाराजा, अल्पसंख्यक, अन्धविश्वास, अकालमृत्यु, परमानन्द, नराधम, शीतोष्ण। 'कर्मधारय' नाम में 'कर्म' का अर्थ है 'भेदक क्रिया' और 'धारय' का अर्थ है 'धारण करने वाला', अर्थात् कर्मधारय विशेषण की तरह भेदक क्रिया को धारण करता है, वह विशेषण की तरह संज्ञा की विशेषता बतलाता है। कहना न होगा कि विशेषण भी भेदक होता है। 'काला घोड़ा' में 'काला' शब्द 'घोड़ा' को अन्य घोड़ों से अलग कर रहा है। कर्मधारय में एक शब्द दूसरे की विशेषता बतलाता है।

(ग) तत्पुरुष के तीसरे भेद को व्यधिकरण तत्पुरुष या संक्षेप में केवल तत्पुरुष ही कहते हैं। इसमें पहला शब्द संज्ञा होता है, दूसरा शब्द (पद या खण्ड) प्रमुख होता है, और समास करने पर दोनों शब्दों के बीच के कारक-चिह्न या विभक्ति का लोप हो जाता है। लोप तथा पहले के शब्द के कारक के आधार पर इसके छः भेद होते हैं—

(१) **कर्मतत्पुरुष**—इसमें कर्म के कारक-चिह्न का लोप होता है। जैसे—ग्रन्थ-कर्ता (ग्रन्थ को करने वाला), जलपिपासु (जल को पीने की इच्छा रखने वाला), चिड़ीमार (चिड़ियों को मारने वाला), गँठकटा (गाँठ को काटने वाला), मुँहतोड़ (मुँह को तोड़ने वाला), गिरहकट (गिरह को काटने वाला), स्वर्गगत (स्वर्ग को गया हुआ), परलोकगमन।

(२) **करण तत्पुरुष**—कपड़छन (कपड़े से छना), तुलसीकृत (तुलसी द्वारा किया हुआ), गुणहीन (गुण से हीन), ईश्वरदत्त (ईश्वर से दिया हुआ), रेखांकित (रेखा से अंकित), हस्तलिखित (हस्त से लिखित), मनमाना (मन से माना), धन-हीन (धन से हीन), कष्टसाध्य, मदमाता, गुणयुक्त।

(३) **सम्प्रदान तत्पुरुष**—रसोईघर (रसोई के लिए घर), देशभक्ति (देश के लिए भक्ति), हथकड़ी (हाथ के लिए कड़ी), राहखर्च (राह के लिए खर्च),

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदक्षिणा (गुरु के लिए दक्षिणा), डाकगाड़ी (डाक के लिए गाड़ी), हवन-सामग्री, रोकड़बही, आरामकुर्सी।

(४) **अपादान तत्पुरुष**--ऋणमुक्त (ऋण से मुक्त), जातिभ्रष्ट (जाति से भ्रष्ट), पदच्युत (पद से च्युत), भयभीत (भय से भीत), देशनिर्वासित (देश से निर्वासित), देशनिकाला, विद्याहीन, धर्मभ्रष्ट।

(५) **सम्बन्ध तत्पुरुष**--रामानुज (राम का अनुज), सेनापति (सेना का पति), देवालय (देव का आलय), विद्यार्थी (विद्या का अर्थी), गंगातट, देवमूर्ति, जलपान, पशुपति, चायबगान, पनचक्की।

(६) **अधिकरण तत्पुरुष**--देशाटन (देश में अटन), घुड़सवार (घोड़े पर सवार), हरफ़नमौला, (हर फ़न में मौला), दानवीर (दान में वीर), गृहप्रवेश (गृह में प्रवेश), आपबीती (आप पर बीती), शरणागत, कविराज, वनवास, कानाफूसी।

नञ् तत्पुरुष--जिसमें अभाव या निषेध अर्थ में शब्द के पूर्व अ या अन् हो। जैसे—अभाव, अलौकिक, अन्याय, अनाथ, अनाश्रित, असुन्दर, अपूर्ण, अनुदार, असम्भव, अहित। संस्कृत में यह समास था, किन्तु हिन्दी में समास नहीं माना जा सकता, क्योंकि 'अ', 'अन्' हिन्दी में उपसर्ग हैं। उनका शब्द की तरह स्वतंत्र प्रयोग नहीं होता।

अलुक् समास--तत्पुरुष के जिन समस्त पदों में पूर्वपद में विभक्ति-चिह्न का लोप नहीं होता, उन्हें अलुक् समास कहते हैं। ये संस्कृत तत्सम शब्दों में ही मिलते हैं। विश्वंभर (विश्व को भरने वाला), सहसाकृत (एकदम से किया), वाचस्पति (वाणी का पति), मनसिज (मन में उत्पन्न), खेचर (आकाश में घूमने वाला)।

(३) **द्वन्द्व**—जिस समास में दो या तीन संज्ञाएँ हों और बीच से 'और', 'तथा' या इसी अर्थ के किसी दूसरे शब्द को निकालकर जोड़ दिया गया हो। इसमें दोनों पद प्रधान होते हैं। जैसे--माँ-बाप (माँ और बाप), भाई-बहन (भाई और बहन), अन्न-जल (अन्न और जल), सुख-दुःख (सुख और दुःख), तन-मन-धन, पाप-पुण्य, दाल-रोटी, चावल-दाल, काम-काज, नर-नारी, सीता-राम।

इसके तीन भेद होते हैं—

(क) **इतरेतर द्वन्द्व**—इस समास में योगसूचक समुच्चयबोधक अव्यय 'और' का लोप होता है : राधा-कृष्ण, राम-लक्ष्मण, गाय-बैल, सुख-दुःख, दाल-भात, सीता-राम, नाक-कान।

(ख) **वैकल्पिक द्वन्द्व**—इस समास में विकल्पसूचक समुच्चयबोधक 'या' 'अथवा' आदि का लोप रहता है। यह समास परस्पर-विरोधी भावों के बोधक शब्दों के योग से बनता है : शुद्धाशुद्ध, धर्माधर्म, छोटा-बड़ा, भला-बुरा, थोड़ा-बहुत।

(ग) **समाहार द्वन्द्व**—इस समास में प्रयुक्त पदों के अर्थ के अतिरिक्त उसी प्रकार का और भी अर्थ सूचित होता है : सेठ-साहूकार, घर-द्वार, दाल-रोटी, खाना-पीना, रुपया-पैसा, साँप-बिच्छू, कहा-सुनी, घास-फूस, नमक-रोटी।

प्रतिध्वनि वाले शब्द भी इसी में आते हैं। जैसे—आस-पास, अड़ोस-पड़ोस,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीड़-भाड़, पुस्तक-उस्तक। कभी-कभी शब्दों की पुनरुक्ति के द्वारा भी ऐसे सामासिक पद बनाए जाते हैं : भाग-दौड़, देखा-देखी।

(४) बहुव्रीहि—जिस समास में कोई भी शब्द प्रधान न हो और दोनों मिलकर किसी एक संज्ञा के विशेषण हों तथा उसी को व्यक्त करें, उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। जैसे : नीलकंठ—नीला है कंठ जिसका, अर्थात् शिव; अनन्त—जिसका अन्त न हो, अर्थात् ईश्वर; दशानन—दस हैं आनन जिसके, अर्थात् रावण; पीताम्बर (कृष्ण), चक्रधर (विष्णु), गजानन (गणेश), चतुर्भुज (विष्णु), घनश्याम (कृष्ण), इकतारा, बारहसिंहा। 'बहु+व्रीहि' (=बहुत धानों वाला=संपन्न) इसका अच्छा उदाहरण है, इसी कारण यह नाम पड़ा है।

सामासिक शब्दों में अर्थभेद के कारण कभी-कभी समास-भेद भी हो जाता है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

रसोईघर—रसोई के लिए घर (सम्प्रदान तत्पुरुष)
रसोई का घर (सम्बन्ध तत्पुरुष)

नीलाम्बर—नीला कपड़ा (कर्मधारय)
नीला है कपड़ा जिसका (बहुव्रीहि)

पनचक्की—पानी से चलने वाली पक्की (करण तत्पुरुष)
पानी की चक्की (सम्बन्ध तत्पुरुष)

हिन्दी में प्रायः दो शब्दों का समास होता है। 'तन-मन-धन', 'मनसा-वाचा-कर्मणा' या 'हर-फ़न-मौला'—जैसे तीन या अधिक शब्दों के समास अपवाद-स्वरूप ही मिलते हैं।

समास में ध्वनि-परिवर्तन

(क) हिन्दी समासों में यदि प्रथम शब्द का पहला स्वर दीर्घ हो तो वह प्रायः ह्रस्व ('आ' का 'अ'; 'ऊ', 'ओ' का 'उ' तथा 'ई', 'ए' का 'इ') हो जाता है। जैसे—दुगुना (दो), पंचमेल (पाँच), सतनजा (सात), कनकटा (कान), नकटा (नाक), दुधमुँहा (दूध), मुँछमुड़ा (मूँछ), घुड़सवार (घोड़ा) आदि।

(ख) इसी प्रकार पहले शब्द के अन्तिम स्वर का कभी-कभी लोप भी हो जाता है। जैसे—घुड़दौड़ (घोड़ा), पनचक्की (पानी), कपड़छन (कपड़ा), अधपका (आधा) तथा छुटभैया (छोटा) आदि।

यों इन दोनों के अपवाद भी मिलते हैं : जैसे—घोड़ागाड़ी, काफीहाउस, हाथी-खाना आदि। वस्तुतः अपवाद वे शब्द हैं, जिनके दोनों सदस्य पूरी तरह मिलकर एकाकार नहीं हुए हैं।

भाववाचक संज्ञाओं की रचना

भाववाचक संज्ञाएँ दो प्रकार की होती हैं : मूल (जैसे दया) तथा यौगिक (जैसे सुन्दरता)। यहाँ यौगिक भाववाचक संज्ञाओं की रचना ली जा रही है।

भाववाचक संज्ञाएँ निम्नांकित चार प्रकारों से बनती हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क) जातिवाचक संज्ञा से—मित्र–मित्रता, आदमी–आदमियत, मनुष्य–मनुष्यत्व, शत्रु–शत्रुता, पशु–पशुत्व, लड़का–लड़कपन।

(ख) विशेषण से—खट्टा–खटास, मीठा–मिठास, सुन्दर–सुन्दरता, सर्द–सर्दी, ठंडा–ठंडक, धार्मिक–धार्मिकता, राष्ट्रीय–राष्ट्रीयता, विद्वान्–विद्वत्ता।

(ग) क्रिया से—उतरना–उतार, लिखना–लिखाई, कमाना–कमाई, धुलना–धुलाई, सिलना–सिलाई, काटना–कटाई, कातना–कताई, छटपटाना–छटपटाहट, बहना–बहाव।

(घ) सर्वनाम से—अपना–अपनत्व, अपनापा, मम–ममता, ममत्व, अहं–अहंकार, आप–आपा।

विशेषणों की रचना

विशेषण दो प्रकार के होते हैं: मूल (जैसे सुन्दर, लाल, सफ़ेद) तथा यौगिक (जैसे जापानी, साप्ताहिक, चालू)। यहाँ यौगिक विशेषणों की रचना ली जा रही है।

हिन्दी में विशेषण की रचना प्रत्यय, सम्बन्ध-चिह्न तथा उपसर्गों आदि की सहायता से होती है। कुछ को उदाहृत किया जा रहा है—

संज्ञा+आ : भूख–भूखा, नील–नीला, प्यास–प्यासा, ठंड–ठंडा।

संज्ञा+आलु : कृपा–कृपालु, दया–दयालु, शंका–शंकालु, ईर्ष्या–ईर्ष्यालु।

संज्ञा+आ+पद : हास्य, विवाद।

संज्ञा+इक : इक प्रत्यय जोड़ने में प्रायः पहले अक्षर के स्वर को निम्नांकित रूप में परिवर्तित कर देते हैं: अ>आ : समाज—सामाजिक, पक्ष—पाक्षिक, शरीर—शारीरिक, नगर—नागरिक, धर्म—धार्मिक, अर्थ—आर्थिक, कल्पना—काल्पनिक। इ>ऐ : दिन—दैनिक, इतिहास—ऐतिहासिक। ई>ए : नीति—नैतिक। ए>ऐ : सेना—सैनिक, देह—दैहिक, वेद—वैदिक। उ>ओ : पुराण—पौराणिक। ऊ>औ : मूल—मौलिक, भूगोल—भौगोलिक, भूत—भौतिक। ओ>औ : लोक—लौकिक। अपवादतः कुछ शब्दों में स्वर अपरिवर्तित भी रहते हैं: क्रम—क्रमिक; आ, ऐ, औ आदि अन्य स्वर हों तो अपरिवर्तित रहते हैं: आत्मा—आत्मिक, साहित्य—साहित्यिक।

संज्ञा+इत : अंक—अंकित, अनुवाद—अनुवादित (संस्कृत व्याकरण के अनुसार शुद्ध शब्द अनूदित), पुष्प—पुष्पित, फल—फलित, अपमान—अपमानित।

संज्ञा+इया : कलकत्ता—कलकतिया, बम्बई—बम्बइया, पूरब—पुरबिया, कनौज—कनौजिया।

संज्ञा+ई : चीन—चीनी, जापान—जापानी, देश—देशी, लालच—लालची, अभिमान—अभिमानी, पाप—पापी, कोढ़—कोढ़ी, ज्ञान—ज्ञानी, साहस—साहसी, शहर—शहरी, देहात—देहाती, धन—धनी, दुःख—दुःखी, सुख—सुखी।

संज्ञा+ईय : भारत—भारतीय, तट—तटीय, जाति—जातीय, पूर्व—पूर्वीय, स्वर्ग—स्वर्गीय, स्मरण—स्मरणीय, यूरोप—यूरोपीय, स्थान—स्थानीय, ईश्वर—ईश्वरीय।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संज्ञा + ईला : रंग—रंगीला, चमक—चमकीला, रस—रसीला।

संज्ञा + एरा : मामा—ममेरा, चाचा—चचेरा, फूफा—फुफेरा, मौसा—मौसेरा, लूट—लुटेरा।

संज्ञा + ईन : कुल – कुलीन, रंग—रंगीन, नमक—नमकीन, शौक—शौकीन, काल—कालीन (पुराकालीन)।

संज्ञा + का : राम—राम का, भारत—भारत का, आदमी—आदमी का, पशु—पशु का।

संज्ञा + नीय : निन्दा—निन्दनीय, दया—दयनीय, विश्वास—विश्वसनीय, आदर—आदरणीय।

संज्ञा + मय : सुख—सुखमय, दुःख—दुःखमय।

संज्ञा + वाला : पैसा—पैसेवाला, रुपए—रुपएवाला, रिक्शा—रिक्शेवाला, दूध—दूधवाला, गाड़ी—गाड़ीवाला, चाट—चाटवाला।

संज्ञा + शील, शाली : क्षमा—क्षमाशील, क्रिया—क्रियाशील, विनय—विनयशील, भाग्य—भाग्यशाली, प्रतिभा—प्रतिभाशाली, शक्ति—शक्तिशाली, बल—बलशाली।

निः + संज्ञा : लज्जा—निर्लज्ज, धन—निर्धन, भय—निर्भय, दया—निर्दय, बल—निर्बल, जन—निर्जन, दोष—निर्दोष।

ला + संज्ञा : जवाब—लाजवाब, वारिस—लावारिस, पता—लापता, इलाज—लाइलाज।

दु + संज्ञा : नाली—दुनाली, धार—दुधारी।

बे + संज्ञा : ईमान—बेईमान, चारा—बेचारा, होश—बेहोश, क़सूर—बेक़सूर।

स + संज्ञा : फल—सफल, जल—सजल, जीव—सजीव, चेत—सचेत।

दुः + संज्ञा : जन—दुर्जन, बल—दुर्बल।

क्रिया + आ : कट्—कटा (कटा पेड़), फट्—फटा (फटा कपड़ा)।

क्रिया + त, आ, ई, ए : बह—बहता (पानी), दौड़—दौड़ता (लड़का)।

क्रिया + ओड़, ओड़ा : हँस—हँसोड़, भग—भगोड़ा।

क्रिया + अक्कड़ : भूलना—भुलक्कड़, पीना—पियक्कड़।

क्रिया + वाला : खाना—खानेवाला, ठगना—ठगनेवाला।

क्रिया + आऊ : खाना—खाऊ, उड़ाना—उड़ाऊ।

क्रिया + ऊ : (प्रथम अक्षर में 'अ' का 'आ' हो जाता है) : चलना—चालू, लगना—लागू।

सर्वनाम + रा, का, ना : मेरा, तेरा, हमारा, तुम्हारा, उसका, उनका, इसका, इनका, अपना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वनाम + वाला : अपना—अपनेवाला, तेरा—तेरेवाला।

सर्वनाम + सा : तुम-सा, उस-सा, मुझ-सा, तुझ-सा, ऐसा, वैसा, जैसा, कैसा।

सर्वनाम + ना, ने : इतना, उतना, जितना, कितना, इतने, उतने, जितने, कितने।

विशेषण + वाला : लाल—लालवाला, काला—कालेवाला, बड़ा—बड़ावाला, बड़ेवाला।

समस्त पद : दो विशेषणों के मेल से—टेढ़ा-मेढ़ा, चलता-फिरता, चलता-पुरज़ा।

क्रियाविशेषणों की रचना

रचना की दृष्टि के क्रियाविशेषण दो प्रकार के होते हैं : मूल (कल, आज, ऊपर) तथा यौगिक। यहाँ यौगिक क्रियाविशेषण लिए जा रहे हैं—

(१) **सर्वनाम + प्रत्यय** (हाँ, ब, घर, यों, ऐसे)—

सर्वनाम	सर्वनाम अंश	स्थान	काल	दिशा	रीति
यह	य, अ, इ, ऐ	यहाँ	अब	इधर	यों, ऐसे
वह	व, उ	वहाँ	—	उधर	वैसे
जो	ज	जहाँ	जब	जिधर	ज्यों, जैसे
कौन	क	कहाँ	कब	किधर	कैसे
तिस	त	तहाँ	तब	तिधर	त्यों, तैसे

(२) **संज्ञा तथा सर्वनाम + परसर्ग**—घर में, मज़े में, रास्ते में, झूठ-मूठ में, रात में, दिन में, आसमान पर, घोड़े पर, हाथ पर, समय पर, मौक़े पर, मजे से, ज़ोर से, धीरे से, आहिस्ते से, तेज़ी से, विनम्रता से, कमाल का, सवेरे का, गज़ब का, आखिर को, बाद को, अंत को !

(३) **संज्ञा + प्रत्यय**—तत्त्वतः, अन्ततः, अंशतः, शब्दशः अक्षरशः, ज़ोरदार। श्रद्धापूर्वक, ध्यानपूर्वक, न्यायपूर्वक, विनयपूर्वक, आखिरकार।

(४) **संज्ञा + निपात**—अनन्तकाल तक, घर तक, रात तक, शहर तक, घड़ी भर, जीवन भर, दिन भर, जी भर, पल भर, पेट भर, मृत्यु-पर्यन्त, जीवन-पर्यन्त।

(५) **संज्ञा + पूर्वकालिक कृदन्त**—कृपा करके, भक्ति कर के, धर्म करके, मेहरबानी करके, समय पाकर, घर जाकर, स्कूल आकर के।

(६) **द्विरुक्त संज्ञा**—अंगुल-अंगुल, जौ-जौ, क़दम-क़दम, शहर-शहर, घर-घर, नगर-नगर, तिल-तिल, गाँव-गाँव, घर-घर, दिन-दिन, रात-रात, पग-पग, सवेरे-सवेरे सुबह-सवेरे, क्षण-क्षण।

(७) **असमान संज्ञा द्विरुक्त**—साँझ-सवेरे, दिन-रात, घर-बाहर, देश-विदेश।

(८) **सप्रत्यय द्विरुक्त**—हाथों-हाथ, दिनों-दिन, रातों-रात, घरों-घर।

(९) **सशब्द द्विरुक्त**—रू-ब-रू, क्षण-प्रति-क्षण, दिन-प्रति-दिन।

(१०) **संज्ञा + शब्द**—समयानुसार, आज्ञानुसार, इच्छानुसार, आवश्यकतानुसार, कथनानुसार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(११) **द्विरुक्त विशेषणह**—एकाएक, ठीक-ठीक, साफ़-साफ़, ऊँच-नीच, भला-बुरा, उल्टा-सीधा, एक-एक, साथ-साथ, थोड़ा-थोड़ा, थोड़ा-बहुत।

(१२) **विशेषण+परसर्ग**—मुफ्त में, बेकार में, व्यर्थ का, बेकार का।

(१३) **विशेषण+प्रत्यय**—अधिकतर, ज्यादातर, अन्यत्र, सर्वत्र, एकत्र, मजबूरन, ज़बरन, नीचे, दाएँ, बाएँ, खड़े, धीमे, धीरे, मुख्यतः, संभवतः, अधिकांशतः, प्रत्यक्षतः, परोक्षतः, साधारणतया, मुख्यतया, प्रमुखतया।

(१४) **विशेषण में 'तरह', 'भाँति', 'प्रकार' शब्दों के मेल से**—अच्छी तरह, बुरी तरह, भली-भाँति, ठीक प्रकार, ठीक तरह।

(१५) **विशेषण में 'तरह', 'प्रकार' शब्दों के आगे 'से' परसर्ग के मेल से**—अच्छी तरह से, ठीक प्रकार से, बुरी तरह से, ठीक तरह से।

(१६) **सार्वनामिक विशेषणों की द्विरुक्ति से**—कितना-कितना, कैसा-कैसा, कैसी-कैसी, कैसे-कैसे, जैसी-जैसी, जैसे-तैसे, ऐसा-वैसा, जैसे-जैसे।

(१७) **क्रियाविशेषण में संज्ञा के मेल से**—यथाक्रम, यथाशक्ति, हरदम, हर-घड़ी, प्रतिदिन, प्रतिपल।

(१८) **क्रियाविशेषण के दोहरे प्रयोग से**—धीरे-धीरे, ठीक-ठीक, आगे-पीछे, आर-पार, आमने-सामने, संग-संग, साथ-साथ, खड़े-खड़े, कल-परसों, हौले-हौले, यदा-कदा, रोज़-रोज़, पहले-पहल, तरह-तरह, ज़रा-ज़रा, आस-पास।

(१९) **क्रियाविशेषण के दोहरे प्रयोग के बाद पूर्वकालिक कृदंत के मेल से**—ज्योंज्यों करके, त्यों-त्यों करके।

(२०) **क्रियाविशेषण+परसर्ग**—कल को, आज को, कब का।

(२१) **दो क्रियाविशेषणों के बीच में 'न' और 'ही' निपात रखने से**—न—कहीं-न-कहीं, कभी-न-कभी, कोई-न-कोई, कुछ-न-कुछ,; ही—इधर-ही-इधर; भीतर-ही-भीतर, अन्दर-ही-अन्दर, नीचे-ही-नीचे, ऊपर-ही-ऊपर।

(२२) **पूर्णकालिक कृदंत :** (क) धातु+कर (राम खाकर आया है); (ख) धातु+के (राम खा के आया है); (ग) धातु+कर+के (राम खाकर के आया है); (घ) धातु+धातु+कर (राम खा-पीकर आया है); (ङ) धातु+धातु+के (राम खा-पी के आया है); (च) धातु+धातु+कर+के (राम खा-पीकर के आया है)।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ खण्ड

हिन्दी भाषा की समस्याएँ

१९—हिन्दी वर्तनी
२०—हिन्दी भाषा का मानकीकरण
२१—हिन्दी की शैलियाँ और परिवर्त
२२—प्रयोजनमूलक हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय १९

हिन्दी वर्तनी

वर्तनी की समस्या किसी-न-किसी रूप में प्रायः सभी भाषाओं में होती है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि संस्कृत-जैसी सुव्यवस्थित तथा पाणिनि द्वारा मानकीकृत भाषा में भी सभी शब्दों की एक वर्तनी नहीं है। उदाहरणार्थ, कैलाश-कैलास, उषा-ऊषा, कर्म-कर्म्म, ओषधि-औषध आदि बहुत से शब्दों की दो-दो वर्तनियाँ ठीक मानी जाती हैं। अनेकानेक दृष्टियों से प्रशंसित भाषा अंग्रेजी भी इसका अपवाद नहीं है।

हिंदी वर्तनी की समस्या के दो पक्ष हैं—

(क) पहला पक्ष तो एकरूपता का है। किसी भी भाषा के मानक रूप की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उसके अधिकांश शब्दों और रूपों की सुनिश्चित वर्तनी हो और उसे ही मानक या शुद्ध माना जाए। हिन्दी में इस दृष्टि से अनेक प्रकार की अनेकरूपताएँ हैं और जब तक इनमें एकरूपता का प्रयास नहीं किया जाता, वर्तनी के स्तर पर एकरूपता आनी कठिन है।

(ख) दूसरा पक्ष उन अशुद्धियों का है जो हिंदी-लेखन में विभिन्न क्षेत्रों में सामान्यतः मिलती हैं। इनमें शुद्ध वर्तनी क्या है, इसका विवाद नहीं है। समस्या यह है कि वर्तनी के निश्चित होने के बावजूद अनेक लोग अनेक कारणों से अनेक प्रकार की ग़लतियाँ कर जाते हैं।

यहाँ क्रमशः दोनों को लिया जा रहा है।

(क)

(१) **य, व श्रुति**—हिन्दी वर्तनी में सबसे अधिक अनेकरूपताएँ य, व के वैकल्पिक प्रयोग के कारण हैं। इन्हें निम्नांकित वर्गों में रखा जा सकता है : (अ) **क्रियारूप**—कुछ क्रियारूपों को लोग अनेक प्रकार से लिखते हैं : जायेगा, जावेगा, जायगा, जाएगा; पायेगा, पावेगा, पायगा, पाएगा; जाये, जावे, जाय, जाए; पाये, पावे, पाए; आये, आवे, आए। प्रश्न है कि इनमें कौन-सा रूप ठीक है, जिसे मानक रूप में स्वीकार करें। वस्तुतः भाषा के नियम यथासाध्य भाषा से ही निकाले जाने चाहिए। हिंदी में उपर्युक्त रूपों की श्रेणी के अन्य रूपों को देखें तो यह स्पष्ट होते देर नहीं लगती कि सभी में तत्त्वतः 'ए' ही है, 'ये', 'य', 'वे' नहीं :—चलेगा (चल्+ए+गा) पढ़ेगा, देखेगा, गिरेगा; चले (चल्+ए), पढ़े, देखे, गिरे। इसका आशय यह है कि जाएगा, पाएगा, खाएगा, लाएगा, आएगा तथा जाए, पाए, खाए, लाए, आए आदि का ही प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसे ही पायी, खायी, लायी, खिलायी, आयी आदि का प्रयोग होता है, क्योंकि इसके रूप पाया, खाया, लाया, खिलाया आदि मिलते हैं। वस्तुतः 'पाया' आदि में 'य' की सत्ता व्याकरणिक स्तर पर नहीं है। व्याकरणिक स्तर पर केवल धातु+आ (पढ़ा, चला, बैठा, गिरा आदि) की सत्ता है। 'य' केवल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उच्चारण की सुविधा के लिए है। ईकारांत में मात्र 'ई' (पढ़ी, चली, बैठी, गिरी) है, अतः पाई, खाई, लाई, आई, बिलाई लिखना चाहिए। आया की तरह उच्चारण में यदि इनमें भी 'य' होता तो लिखा जाता, किन्तु इनमें 'य' का उच्चारण बिल्कुल नहीं होता; अतः उसे नहीं लाँया जा सकता। गया-गयी-गये के संबंध में भी यही बात है। 'ग+आ' में उच्चारण की सुविधा के लिए 'य' आ गया है, अतः प्रयुक्त रूप 'गया' है, किंतु ग+ई ('चल्+ई' की तरह), ग+ए ('चल्+ए' की तरह) में 'य' का उच्चारण नहीं होता, अतः गई, गए ही लिखना चाहिए। इनमें भी 'य' लाना अनावश्यक है। ऐसे ही 'लिए' न कि 'लिये', दिए' न कि 'दिये' या 'आइए' न कि 'आइये' या 'दीजिए' न कि 'दीजिये' आदि। (आ) **विशेषण**—'नया' के आधार पर 'नयी' भी अनावश्यक है। इसका उच्चारण 'नई' है, अतः इसी का प्रयोग होना चाहिए। ऐसे ही पराया-पराई-पराए आदि भी। (इ) **अव्यय**—'लिए' को कुछ लोग 'लिये' (राम के लिये) लिखते हैं। यहाँ भी 'लिए' ही होना चाहिए। (ई) **संज्ञा**—लताएँ न कि लतायें, माताएँ न कि मातायें, कन्याएं न कि कन्यायें आदि। 'य', 'व' श्रुति के लिए सीधा-सादा नियम यह है कि जहाँ भी ये (य, व) विकल्प से आते हों, इन्हें लाना अनावश्यक है।

(२) **विसर्ग**—कुछ लोग 'दुःख' में विसर्ग का प्रयोग करते हैं, किंतु कुछ लोग नहीं। ऐसे ही कुछ लोग 'छः' लिखते हैं तो कुछ 'छह' तथा कुछ 'छिः' तो कुछ 'छि'। 'दुख' हिन्दी का अपना शब्द बन गया है, और इससे 'दुखिया' जैसे हिन्दी के अपने ठेठ शब्दों का भी निर्माण हुआ है, अतः इसमें विसर्ग नहीं आना चाहिए। जहाँ तक छः–छह का तथा छिः–छि का प्रश्न है, दोनों ही काफ़ी प्रचलित हैं, अतः इनके दोनों रूपों को स्वीकार किया जा सकता है।

(३) **हल चिह्न**—इसका लिखने में प्रयोग करें या नहीं, इस दृष्टि से तीन प्रकार के मत हैं: (क) संस्कृत परंपरा के लोग उन शब्दों में हल चिह्न लगाने के पक्ष में हैं जिनमें संस्कृत में हल चिह्न लगता है। जैसे अर्थात्, पश्चात्, पृथक्, वाक्, जगत्, सम्यक्, साक्षात्, अकस्मात्, संवत्, किंचित्, बलात्, सत्, चित्, भगवत्, परिषद्, संसद्, उपनिषद्, सम्राट्, भगवान्, महान्, श्रीमान्, रूपवान्, गुणवान्, धनवान्, विद्युत् आदि। (ख) हिन्दी के अधिकांश लोगों का कहना है कि जब आप, हम, तुम, पाप आदि हज़ारों अकारांत शब्द वास्तविक उच्चारण में हलन्त हो गए हैं और उन्हें हलन्त नहीं लिखा जाता तो फिर संस्कृत के हल वाले शब्दों को 'हल' से क्यों लिखा जाए। (ग) कुछ लोग केवल संस्कृत के शब्दों में ही नहीं, सन्, एम्० ए०, एम्०काम्० आदि विदेशी शब्दों में भी हल लगाते हैं, मुख्यतः पूर्वी हिन्दी क्षेत्र के लोग। (घ) कुछ लोगों का कहना है कि उन शब्दों को जो 'हल' के साथ हिन्दी में चलते हैं, हल के साथ लिखना चाहिए, जैसे संवत्, अर्थात्, सम्यक् आदि किन्तु जो बिना हल के चल पड़े हैं (जैसे धनवान्, रूपवान् आदि), उन्हें बिना हल चिह्न के लिखना चाहिए।

सच पूछा जाए तो हिन्दी में किसी भी शब्द में हल लगाने की कोई आवश्यकता नहीं। इसके पक्ष में ये बातें मैं कहना चाहूँगा कि: (अ) यदि संस्कृत के शब्दों में हल लगाया जाए तो उन तद्भव (आप, हम, तुम, आदि), विदेशी (तमाम, खाक, खत) और देशज (झंझट, ठेठ) शब्दों में भी हल लगाना पड़ेगा, जिसमें अन्त में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र व्यंजन है, किन्तु कहना न होगा कि ऐसा करना काफ़ी असुविधाजनक होगा। (आ) यदि सभी व्यंजनांत शब्दों में हल लगाया जाए तो राम, पाप, तप, सर्व आदि हज़ारों तत्सम शब्दों में भी हल लगाना पड़ेगा, जो असुविधाजनक तो होगा ही, संस्कृत परंपरा के लोगों के लिए राम को राम्, तथा पाप को पाप् आदि देखकर बहुत ही अटपटा लगेगा। (इ) हलन्त वाले शब्दों से हमने हिन्दी में नए शब्द भी बनाए हैं। हलन्त रखें तो उनकी स्थिति अजीब हो जाएगी। जैसे महान्+ता= महान्ता, जबकि हम लिखते हैं 'महानता' और यदि 'महानता' लिखते हैं तो 'महान' ही लिखना पड़ेगा 'महान्' नहीं।

निष्कर्षतः हलन्त किसी भी प्रकार के शब्दों में न लगाना ही अधिक उचित है।

(४) **द्वित्व व्यंजन**--(क) संस्कृत में 'र्' के बाद के व्यंजन को विकल्प से द्वित्व लिखते रहते हैं। उसी आधार पर हिन्दी में कर्ता-कर्त्ता, वर्मा-वर्म्मा, वर्तमान-वर्त्तमान आदि कई शब्दों के दोनों रूप चल रहे हैं। इन्हें क्रमशः कर्ता, वर्मा, वर्तमान अर्थात् एक व्यंजन से लिखना चाहिए। (ख) बहुत से लोग गय्या, नय्या, गवय्या, हव्वा, कव्वा आदि भी लिखते हैं, किन्तु इन्हें गैया, नैया, गवैया, हौवा, कौवा या कौआ ही लिखना चाहिए। हाँ, तत्सम शब्द 'शय्या' ठीक है। इसे 'शैया' रूप में लिखना अशुद्ध है।

(५) **क़, ख़, ग़, ज़, फ़, ऑ**—कुछ लोग तो इनका प्रयोग करते हैं (क़ानून, ख़राब, ग़रीब, ज़हर, फ़ासला, डॉक्टर), किन्तु कुछ लोग इनके स्थान पर क्रमशः क, ख, ग, ज, फ, आ का ही प्रयोग करते हैं। कुछ थोड़े लोग इस मत के भी हैं कि जहाँ अर्थ में अन्तर हो, वहाँ तो क़, ख़ आदि का प्रयोग करना चाहिए (ताक-ताक़, खाना-ख़ाना, बाग-बाग़, जरा ज़रा, राज-राज़, फन-फ़न, हाल-हॉल, काफी-कॉफ़ी), किन्तु अन्य स्थानों पर ज़रूरत नहीं है। मेरे विचार में जहाँ भी इस प्रकार का उच्चारण अपेक्षित है, इनके लिखने में विन्दु (क़, ख़, ग़, ज़, फ़) तथा चन्द्र-चिह्न (ऑ) का प्रयोग करना चाहिए। इसके तीन कारण हैं: (क) हम अंग्रेजी पढ़ते हैं और अंग्रेज़ी बोलने में फ़, ज़ (सेफ्टीरेज़र) तथा ऑ (डॉक्टर) का प्रयोग करते हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि हिन्दी बोलें तो 'डाक्टर' कहें और अंग्रेज़ी बोलें तो 'डॉक्टर' कहें। ऐसे ही हिन्दी बोलें तो 'सेफ्टीरेजर' कहें और अंग्रेज़ी बोलें तो 'सेफ्टीरेज़र'। अतः यदि हम चाहते हैं कि अंग्रेज़ी बोलें और ठीक उच्चारण करें तो उन शब्दों को हिन्दी में बोलते समय भी वही उच्चारण करना पड़ेगा। और यदि वह उच्चारण करना होगा तो उसे उसी रूप में लिखना भी होगा। (ख) इन ध्वनियों का अपना ध्वन्यात्मक सौंदर्य है। यदि हम ग़ालिब का कोई शेर पढ़ें और उसमें सभी क़, ख़, ग़, ज़, फ़ को बदल कर क, ख, ग, ज, फ कर दें, तो पाएँगे कि उस शेर का सारा सौंदर्य जाता रहेगा। ऐसी स्थिति में हमें इन ध्वनियों का ठीक उच्चारण करना चाहिए और इसलिए इन्हें ठीक लिखना भी चाहिए। (ग) यदि हम यह कहें कि जिन शब्दों में अर्थ का अन्तर है, उनका ठीक उच्चारण केवल वहीं करेंगे तथा ठीक लिखेंगे, किन्तु अन्यत्र नहीं, तो यह दो तरह की बातें होंगी। इस प्रकार एकरूपता के लिए सर्वत्र ही इनको ठीक ढंग से बोलना तथा तदनुरूप 'विन्दु' और 'चन्द्रचिह्न-युक्त' लिखना उपयुक्त होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(६) **अनुनासिक (चन्द्रबिन्दु)—अनुस्वार**—इनके प्रयोग में भी कई प्रकार की अनेकरूपताएँ मिलती हैं : (क) कुछ लोग जहाँ अनुस्वार अपेक्षित होता है, वहाँ उसका प्रयोग करते हैं तथा जहाँ अनुनासिक अपेक्षित है, वहाँ अनुनासिक का। यहाँ तक कि वे 'हैं' को 'हैँ', 'में' को 'मैँ', तथा 'पढ़ीं' को 'पढ़ीँ' लिखते हैं। (ख) कुछ लोग दोनों का यथास्थान प्रयोग करते हैं, किन्तु यदि शिरोरेखा के ऊपर मात्रा हो तो अनुनासिक के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग करते हैं, बिंधना, लिखीं, में, मैं, होंठ, सौंफ़। (ग) कुछ लोग सर्वत्र केवल अनुस्वार का ही प्रयोग (सांस, ऊंट, हंसी) करते हैं। वस्तुतः टंकणयंत्र में अनुनासिक (चन्द्रबिन्दु) नहीं होता, अतः टंकित सामग्री में अनुनासिक के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ 'साँस' के लिए 'सांस' या ऊँघना' के लिए 'ऊंघना'। कई पत्र-पत्रिकाओं (जैसे धर्मयुग, सारिका आदि) में भी प्रेस की सुविधा की दृष्टि से अनुनासिक के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग होता है। इन्हीं सब के प्रभावस्वरूप बहुत से लोग अनुनासिक का प्रयोग बिल्कुल न करके, अनुस्वार का प्रयोग ही सर्वत्र करते हैं, जो ग़लत है। उदाहरण के लिए 'हँस' (हँसना का आज्ञा रूप) तथा 'हंस' (एक पक्षी) में अन्तर है। ऐसे ही वेदाँत-वेदांत में भी। इसीलिए सर्वत्र अनुस्वार का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। उन दोनों के प्रयोग के सम्बन्ध में निम्नांकित बातें ध्यान में रखने की हैं—

(क) अनुस्वार का प्रयोग जहाँ अपेक्षित है, वहाँ करना चाहिए। अर्थात् समस्थानीय पंचम अनुनासिक के स्थान पर तथा य, र, ल, व, स, श, ह के पूर्व (शंक, चंचल, पंडित, आनंद, पंप, संयंत्र, संरचना, संलाप, संवाद, संसार, संशय, संहार) या स्वयं, अहं आदि में अन्त में (आगे इसे विस्तार से दिया गया है)।

(ख) अनुनासिक के प्रयोग के सम्बन्ध में अब ऐसी परम्परा चल पड़ी है कि इसका प्रयोग केवल वहीं किया जाता है, जहाँ शिरोरेखा के ऊपर कोई मात्रा न हो। अर्थात् अँ (हँसाना), आँ (आँख, साँस), उँ (उँगली, फुँकना), ऊँ (ऊँट, फूँकना), एँ (एँड़ा-बेड़ा)। इसके विपरीत यदि शिरोरेखा के ऊपर मात्रा है तो अनुनासिक के स्थान पर भी अनुस्वार का ही प्रयोग किया जाता है। इसका कारण यह है कि मात्रा के साथ अनुनासिक देने में (टंकण, प्रेस या लेखन—इन तीनों में ही) असुविधा होती है। इसीलिए 'बिंधना' को 'बिंधना', 'ईंधन' को 'ईंधन', 'सेंकना' को 'सेंकना', 'मैं' को 'मैं', 'चोंच' को 'चोंच' तथा 'कौंधना' को 'कौंधना' लिखते हैं।

(७) **मिलाना-अलगाना**—हिंदी लेखन में शिरोरेखा लगाते हैं, अतः वर्तनी की यह भी एक समस्या है कि किन शब्दों को मिलाकर लिखें और किन्हें अलगाकर लिखें। उदाहरण के लिए 'राम ने' लिखें अथवा 'रामने', 'राज भवन' लिखें या 'राजभवन'। ऐसे पदों अथवा शब्दों के लेखन में आज हिन्दी-जगत् में एकरूपता नहीं है। इस समस्या को निम्नांकित वर्गों में रखा जा सकता है—

(i) **कारक-चिह्न**—कारक-चिह्नों को लिखने के संबंध में आजकल तीन पद्धतियाँ प्रचलित हैं : (अ) कुछ लोग (मुख्यतः बनारस में, तथा संस्कृत-परंपरा के आधार पर अन्यत्र) संज्ञा तथा सर्वनाम, दोनों ही के साथ कारक-चिह्नों को मिलाकर लिखते हैं : रामने, मैंने; मोहनको, तुमको; सीतासे, इससे। (आ) कुछ लोग (किशोरी दास वाजपेयी आदि) दोनों ही स्थितियों में कारक-चिह्नों को अलग रखते हैं : राम ने, मैं ने; मोहन को, तुम को; सीता से, इस से। (इ) सामान्यतः लोग संज्ञा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ तो इन्हें मिलाकर नहीं लिखते हैं, किंतु सर्वनाम के साथ मिलाकर लिखते हैं : राम ने, मैंने, मोहन को, तुमको; सीता से, इससे।

वस्तुतः वैज्ञानिक दृष्टि से तो संज्ञा और सर्वनाम दोनों के साथ ने, को, से, का, के, में आदि को अलग लिखना ठीक है, क्योंकि ने, को आदि की शब्द के रूप में स्वतंत्र सत्ता है और स्वतंत्र शब्दों से ये विकसित भी हैं, किंतु बहुत दिनों से परंपरा होने के कारण इन रूपों में इन्हें अलग लिखने वाले बहुत कम हैं। ऐसी स्थिति में यही उचित है कि इन्हें संज्ञा के साथ अलग तथा सर्वनाम के साथ मिलाकर लिखा जाए। इसके पक्ष में कई तर्क दिए जा सकते हैं : (क) हिंदी के अधिकांश प्रयोक्ता इन्हें इसी रूप में लिखते हैं। (ख) संज्ञा तथा सर्वनाम दोनों के साथ मिलाकर लिखना तो उपर्युक्त तीनों पद्धतियों में सबसे अवैज्ञानिक है, किंतु बहुत ही थोड़े लोग ऐसा करते हैं। अतः संज्ञा के साथ अलग तथा सर्वनाम के साथ मिलाकर लिखना कम-से-कम उतना अवैज्ञानिक न होकर मध्यम मार्ग का है। (ग) यदि कई संज्ञा शब्द साथ आएँ तो केवल अंतिम के साथ कारक-चिह्न लगता है, अतः संज्ञा शब्द के साथ कारक-चिह्न अलग लिखना आवश्यक हो जाता है (जैसे राम, मोहन और सीता ने कहा...)। यदि मिलाकर लिखें तो होगा 'रामने, मोहनने और सीताने कहा...।' कहना न होगा कि ऐसा प्रयोग अटपटा लगेगा। इसके विपरीत सर्वनाम में प्रायः सभी के साथ लगता है (जैसे उसने, तुमने और मैंने चाहा था...), अतः मिलाकर लिखा जा सकता है। (घ) संज्ञा के साथ कभी-कभी इकहरा अवतरण-चिह्न लगता है, अतः कारक-चिह्न मिलाकर नहीं लिखे जा सकते ('अज्ञेय' ने, 'हरिऔध' को, 'निराला' में, 'प्रसाद' से), किंतु सर्वनाम के साथ प्रायः ऐसा नहीं किया जाता, अतः मिलाकर लिखा जा सकता है। (ङ) सर्वनाम के कुछ कारक-रूप संयुक्त मिलते हैं (मुझे, हमें, तुम्हें, तुझे, उसे, उन्हें, इसे, इन्हें, जिसे, जिन्हें आदि), अतः को, से, में, पर, का वाले रूपों को भी संयुक्त रखना, इन (मुझे, इन्हें आदि) रूपों के अनुरूप है। किंतु संज्ञा के ऐसे रूप नहीं मिलते, अतः इसके रूपों को असंयुक्त रखना सर्वथा उचित है।

निष्कर्षतः कारक-चिह्नों को संज्ञा के साथ अलगाकर तथा सर्वनाम के साथ मिलाकर लिखना चाहिए, किंतु यदि वे एक से अधिक हों तो संज्ञा के साथ तो अलग लिखेंगे ही, सर्वनाम के साथ पहले को मिलाकर लिखेंगे तथा बाद वाले को अलग (इसमें से, उसके लिए)। यदि सर्वनाम तथा कारक-चिन्ह के बीच 'ही', 'तक' हो, तब अलग ही लिखेंगे : राम ही के लिए, मोहन तक ने।

(ii) **समस्त पद**—समस्त पदों को अलग-अलग लिखना (गृह विज्ञान, देश भक्ति, जन्म दिन) अशुद्ध है, क्योंकि ये किसी 'लंबी रचना' (गृह का विज्ञान, देश के प्रति भक्ति, जन्म का दिन) के संक्षिप्त रूप होते हैं। संक्षेप होने के कारण या तो लुप्त पद का प्रतीक योजक चिह्न इनके बीच में दिया जाना चाहिए (गृह-विज्ञान), देश-भक्ति, जन्म-दिन) अथवा इन्हें मिलाकर लिखना चाहिए (गृहविज्ञान, देशभक्ति, जन्मदिन)। दो से अधिक शब्द हों (तन-मन-धन, ज़र-ज़ोरू-ज़मीन) अथवा शब्द बड़े हों (राजनीति-विज्ञान, परिवार-नियोजन, निर्वाचन-सूचना, सरस्वता-वदना) तो योजक चिह्न देना ही अधिक उपयुक्त होता है, क्योंकि मिलाने से शब्द बहुत बड़ा (राजनीतिविज्ञान) हो जाता है। संधि करने पर तो स्पष्ट ही शब्दों को मिलाने के अतिरिक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई चारा नहीं रह जाता : शिरोरेखा, जिलाधीश, ग्रामोन्नति; वियोगावस्था, ग्रीष्मावकाश। दो अपवाद हैं : (क) द्वन्द्व समास में केवल योजक चिह्न ही देना चाहिए ('माता-पिता, भाई-बहन, हँसी-मजाक, हाथ-पैर), उन्हें मिलाना (मातापिता) नहीं चाहिए। (ख) मिलाने से यदि अर्थ में भ्रम की गुंजाइश हो तो भी शब्दों को नहीं मिलाना चाहिए। उदाहरण के लिए, 'भू-तत्व' और 'भूतत्व' में अंतर करने के लिए 'भू-तत्व' रूप में लिखना ही उचित है। ऐसे ही 'सह-अनुभूति' और 'सहानुभूति' में अंतर है।

(iii) **भी, तो, तक, भर, श्री, श्रीमती, जी**—ये सभी बिना मिलाए अलग लिखे जाने चाहिए : राम भी, रोटी तो, पानी तक नहीं दिया, सेर भर आटा, श्री गुप्त, गांधी जी।

(iv) **ही**—इसे संज्ञा के साथ अलग (राम ही, सीता ही) किंतु सर्वनाम के साथ कुछ शब्दों के साथ मिलाकर (हमीं, मुझी, तुझी, तुम्हीं, उसी, उन्हीं, इसी, इन्हीं, जिसी, जिन्हीं, किसी, किन्हीं आदि) तथा कुछ के साथ अलग (मैं ही, हम हीं, वे ही, ये ही, जो ही) आदि लिखते हैं। हम, मुझ, तुझ, उस, इस, जिस किस में जब 'ही' जोड़ते हैं, तो (हमीं, मुझी, तुझी, उसी, इसी, जिसी, किसी) 'ही' के ह का लोप हो जाता है।

(v) **कर, के**—पूर्वकालिक क्रिया में 'कर' अथवा 'के' को मिलाकर लिखना चाहिए : मैं **खाकर** आया हूँ, **रोकर, चलकर**, काम **करके** आएगा। यदि 'कर' तथा 'के' दोनों हों तो 'कर' मिलाकर लिखा जाएगा, तथा 'के' को अलग—मैं खाकर के आऊँगा। यदि दो क्रियारूप हों तो दोनों के बीच में योजक चिह्न होगा और 'कर' अथवा 'के' अंतिम के साथ मिलाया जाएगा : **खा-पीकर** आना, **रो-धोकर** थक गया, **रो-रोकर** माँग रहा है।

(vi) **क्रिया** के सभी पद (जा रहा था, दिया करता है, कहा जा सकता है, ले लिया जा सकता था) अलग लिखे जाते हैं।

(vii) **वाला**—यह विशेषण-प्रत्यय है। अन्य प्रत्ययों की तरह इसे भी मिलाकर लिखना चाहिए : करनेवाला, लालवाला, कालेवाला।

(viii) **योजक चिह्न**—इसका प्रयोग निम्नांकित स्थितियों में होता है : (१) द्वन्द्व समास में—रात-दिन, हवा-पानी, माँ-बाप, राम-सीता। (२) अन्य समासों में विकल्प से—देशभक्ति अथवा देश-भक्ति। (३) सा, से, सी, जैसा, जैसे, जैसी के साथ—फूल-सा लड़का, ज़रा-सी जान, थोड़े-से लोग, तुम-जैसा धूर्त, उस-जैसा नेता, दुग्ध-सा श्वेत। यह ध्यान देने की बात है कि यह 'से' करण तथा संप्रदान कारक के चिह्न 'से' से भिन्न है। कारक-चिह्न 'से' में वचन-लिंग के कारण परिवर्तन नहीं होता, किंतु इसके सा-से-सी रूप बनते हैं : फूल-सा लड़का, फूल-सी लड़की, फूल-से लड़के। (४) जहाँ संधि करने से अर्थ-परिवर्तित हो जाए, वहाँ भी योजक चिह्न लगाना चाहिए : सह-अनुभूति—सहानुभूति, भू-तत्व—भूतत्व। (५) जहाँ संधि करने से शब्द उच्चारण की दृष्टि से अटपटा, बड़ा अथवा अस्पष्ट हो जाए, वहाँ भी : अल्पसंख्यक और बहु-अल्पसंख्यक, उनकी अति-आदर्शवादिता। (६) 'न' के साथ—कभी-न-कभी, कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी। (७) 'व' के साथ विशेष प्रकार के पदबंधों में : कम-व-बेश, शान-व-शौकत (विकल्प से कमोबेश शानोशौकत)। (८) तुलनाबोधक 'से' के विशेष प्रकार के पदबंध में : कम-से-कम, अधिक-से-अधिक, ज्यादा-से-ज्यादा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ख)

अब उन अशुद्धियों को लिया जा रहा है, जो उन लोगों के लिखने में प्रायः हो जाती हैं, जिन्हें उच्चारण, नागरी लिपि, हिंदी-लेखन, परंपरागत वर्तनी एवं व्याकरण के नियमों आदि की ठीक जानकारी नहीं है। इन्हें कारणों के आधार पर लेना अधिक उपयुक्त होगा। इस प्रकार की अशुद्धियाँ मुख्यतः निम्नांकित कारणों से होती हैं—

(क) शुद्ध उच्चारण के ज्ञान का अभाव

मुख्यतः विद्यार्थियों तथा सामान्य लोगों द्वारा होने वाली वर्तनी की भूलों का यह बहुत बड़ा कारण है। लोग ग़लत उच्चारण करते हैं और अपने उच्चारण के अनुरूप ग़लत लिखते भी हैं। इस प्रकार की भूलों में मुख्य निम्नांकित हैं—

(१) शब्दान्त में इ के स्थान पर ई—शक्ती, भक्ती, कवी, रवी, शांती।

(२) शब्दान्त में उ के स्थान पर ऊ—गुरू, मधू, कटू, वस्तू, विन्दू।

(३) क के स्थान पर क—कायदा, कानून, कौम।

(४) ख़ के स्थान पर ख—अखबार, खराब, खबर, खाना, खैरियत।

(५) ग़ के स्थान पर ग—गरीब, बाग, गैर, गालिब।

(६) क्ष के स्थान पर शब्द के प्रारंभ में छ तथा शब्द के बीच और अंत में च्छ—छमा, छत्रिय, शिच्छा, परीच्छा, प्रतीच्छा, पच्छ।

(७) श तथा ष के स्थान पर स—सहर, साम, सब्द, सायद, सोर, सौर्य, भासा।

(८) स के स्थान पर श—नमश्कार, प्रशाद।

(९) ड के स्थान पर ड़ तथा ढ के स्थान पर ढ़—रेड़ियो, सोड़ा, ढ़क्कन, ड़ोल। यह ध्यान में रखना चाहिए कि 'ड़', 'ढ़' शब्द के आदि में कभी भी नहीं आते, साथ ही अंग्रेज़ी से आए शब्दों में 'ड़' का प्रयोग नहीं होता।

(१०) ड़, ढ़ के स्थान पर ड, ढ—घोडा, कडाह, गाडी, पढाई, गढ।

(११) ण के स्थान पर न—गुन, प्रान, वीना, प्रनाम।

(१२) न के स्थान पर ण—जाणा, आणा।

(१३) व के स्थान पर ब—बिद्यार्थी, बीणा, व्यवहार, कबि, वर्षा, बिश्व-विद्यालय।

(१४) य के स्थान पर ज—जश, जदि, जोग्य, मर्जादा, सूर्ज।

(१५) ज के स्थान पर ज—जहाज, रोज, जहर, जोर, जबरदस्ती, जरा, नाज, राज।

(१६) द्य के स्थान पर द्द या द्ध—विद्दार्थी, विद्धार्थी, विद्दालय, विद्धालय, विश्वविद्धालय।

(१७) फ़ के स्थान पर फ—फीस, फौरन, फायदा, फासला, फीता, फन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१८) **ऋ के स्थान पर र**—क्रपा, प्रथक, स्रष्टि, अनुग्रहीत ।

(१९) **ऑ के स्थान पर आ**—काफी, आनरेरी, हाल, बाल, डाक्टर, कालिज ।

(२०) **किसी ध्वनि का आगम**—

अ—राजेन्दर, सुरेन्दर, सटेशन, सनेह, बराह्मण, अस्नान ।

इ—इस्कूल, इस्टेशन, इस्नेह, इस्प्रिंग ।

य—श्याम (शाम) ।

मिश्रित—समुन्दर (समुद्र) ।

(२१) **अनुनासिकता का आगम**—काँपी, डाँक्टर, दुनियाँ, बढ़ियाँ, आँटा, हाँथ, गाँव, जौं, घाँस, आदि ।

(ख) नागरी लिपि और उसके प्रयोग विषयक समुचित जानकारी का अभाव

नागरी लिपि की कुछ अपनी कमियाँ, जटिलताएँ और विशेष नियम हैं। उनकी समुचित जानकारी न होने से भी वर्तनी की गलतियाँ हो जाती हैं—

(१) **ह्रस्व इ**—रशमि, निशचित, व्यवस्थित, पशचिम, चन्द्रिका । यह याद रखने की बात है कि इ की मात्रा संयुक्त व्यंजन के पूर्व आती है (चन्द्रिका), बीच में (चन्द्रिका) नहीं ।

(२) **रू–रु में गड़बड़ी**—रुप, रूचि, रुस, रूचिकर । 'रू' में दीर्घ 'ऊ' है, और 'रु' में ह्रस्व ।

(३) **ए-ऐ में गड़बड़ी**—ऐसा, ऐतिहासिक, ऐनक । ऐ की मात्रा ै है । इसी के प्रभाव से ऐसी ग़लती हो जाती है और एक मात्रा के स्थान पर लोग दो मात्रा दे जाते हैं ।

(४) **ड-ड़**—इन दोनों में अन्तर बहुतों को स्पष्ट नहीं है, अत: एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग होने लगा है : ड़र, ड़ाली, ड़ोल, घोडा, पहाड । ड प्राय: शब्द के आरम्भ (डाल) में आता है तथा ड़ शब्द के बीच (घोड़ा) या अन्त (पहाड़) में । हाँ, संयुक्त व्यंजनों के सदस्य रूप में (बुड्ढा, अड्डा), शब्द-सीमा पर (अडिग) तथा विदेशी शब्दों में (सोडा) 'ड' बीच में या अन्त (रोड, कोड) में भी आ सकता है ।

(५) **ढ–ढ़**—ढ़ोल, ढ़क्कन, पढना, चढाई । 'ढ' शब्द के आदि (ढाल) तथा शब्द-सीमा पर (बेढब) या संयुक्त व्यंजन के सदस्य (बुड्ढा) रूप में बीच में आता है ; किन्तु ढ़ आदि में कभी नहीं आता, केवल मध्य में (पढ़ना) तथा अन्त में (गढ़) आता है ।

(६) **ङ–ड़**—कभी-कभी इन दोनों के प्रयोग में गड़बड़ी मिलती है : घोङा, पङना, कड़्कण, जड़्घा ।

(७) **र के विभिन्न रूपों के वास्तविक उच्चारण तथा प्रयोग की जानकारी** न होने से भी प्राय: भूलें होती हैं : वर्स्त (वस्त्र), ध्रम (धर्म) । 'र' तथा उसके विभिन्न रूपों के प्रयोग के सम्बन्ध में निम्नांकित बातें ध्यान देने की हैं—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—ट, ड, छ के नीचे आता है, बाद में बोला जाता है : राष्ट्र, ड्राम, कृच्छ्र।

—अन्य सभी पाई वाले व्यंजनों के बाद आता है, बाद में बोला जाता है : ग्रहण, व्याघ्र, प्रेम, विप्र।

र—आदि में स्वर के पूर्व (राम), मध्य में स्वरों के बीच (आराम), अंत में स्वर के बाद (पार) आता है तथा बोला जाता है।

—व्यंजन के पूर्व बोला जाता है, और ऊपर आता है : धर्म, चर्चा। शिरोरेखा के ऊपर मात्रा हो तो उसके बाद ऊपर आता है—धर्मों, गर्मी।

यदि इन बातों का ध्यान रखें तो 'र'-विषयक भूलें नहीं होंगी।

(८) तथा ं—इनमें अन्तर न जानने से इनका ठीक प्रयोग नहीं हो पाता। निम्नांकित बातें ध्यान देने की हैं : (क) अनुस्वार ( ) व्यंजन है। इसका प्रयोग समस्थानीय व्यंजन (संयुक्त व्यंजन का प्रथम सदस्य; विस्तार के लिए देखिए आगे 'ग' की पहली सारिणी) रूप में होता है : गंगा—गङ्गा, पंखा—पङ्खा, चंचल—चञ्चल, झंझा—झञ्झा, आनंद—आनन्द, धंधा—धन्धा, पंप—पम्प, कुंभ—कुम्भ। ऐसे शब्दों में अनुस्वार या नासिक्य व्यंजन, किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है। य (संयुक्त), र (संरचना), ल (संलाप), स (संसार), श (संशय), ह (संहार) के पूर्व संयुक्त व्यंजन के प्रथम नासिक्य सदस्य के रूप में भी अनुस्वार ही आता है, नासिक्य व्यंजन नहीं। अर्थात् सन्सार, सन्शय आदि लिखना अशुद्ध है। व के पूर्व म या अनुस्वार में कोई भी आ सकता है : संवाद=सम्वाद, संवेदना—सम्वेदना। (ख) चन्द्रबिन्दु (ँ) स्वर या व्यंजन नहीं है। यह केवल स्वर को अनुनासिक बना देता है। सभी स्वरों का अनुनासिक रूप बनाने में यह काम आता है : अँ, आँ, इँ, ईँ, उँ, ऊँ, एँ, ऐँ, ओं, औं के प्रयोग में जब शिरोरेखा के ऊपर कोई मात्रा हो तो सुविधा के लिए चन्द्रबिन्दु के स्थान पर अनुस्वार ही लिखते हैं। जैसे—ईंट, बिंधना, मैं, में, होंठ, भौं। ऐसे शब्दों में वस्तुतः चन्द्रबिन्दु होना चाहिए, किन्तु लिखा अनुस्वार ही जाता है।

(ग) परम्परागत वर्तनी के ज्ञान का अभाव

वर्तनी हमेशा उच्चारण के अनुरूप नहीं होती। उच्चारण तो समय और क्षेत्र के साथ बदलता है, किन्तु वर्तनी को इस प्रकार बदलने नहीं दिया जा सकता। इसीलिए कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः परंपरागत, सर्वस्वीकृत या बहुस्वीकृत वर्तनी ही लेखन में अपेक्षित होती है। उदाहरण के लिए हिन्दी में शब्दान्त में 'अ' का लोप हो गया है। अर्थात् पूरे हिन्दी प्रदेश में उच्चारण आप्, हम्, तुम्, रोक्, रोग्, कान् होता है, किन्तु इनकी परम्परागत वर्तनी आप, हम, तुम, रोक, रोग, कान है, अतः इसी रूप में इन्हें लिखा जाना चाहिए। बहुत से लोग चल्ता, रुक्ता, सक्ता, आवश्यक्ता आदि लिख जाते हैं। इसका कारण यह है कि इन शब्दों में बीच में ल, क, क, क के बाद अ का लोप हो गया है, और इनका उच्चारण लगभग यही है। इस लोप के बावजूद इन्हें चलता, रुकता, सकता, आवश्यकता ही लिखा जाएगा। इसी तरह उच्चारण की दृष्टि से ठीक होने पर भी भग्वान्, लग्भग, उन्सठ, मान्सिक, हर्दम, बल्देव, किस्लय, खप्रैल, हल्वाई आदि लिखना अशुद्ध है। नर्क (शुद्ध रूप नरक), ब्राम्हण (शुद्ध रूप ब्राह्मण), चिन्ह (शुद्ध रूप चिह्न), ब्रम्ह (शुद्ध रूप ब्रह्म), वांमय (शुद्ध रूप वाङ्मय) के लेखन में भी परम्परागत वर्तनी ही शुद्ध है, उच्चारण चाहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भी हो। यों 'ब्राम्हण', 'चिन्ह', 'ब्रम्ह' आदि शब्दों का ग़लत रूप में प्रयोग इतना व्यापक हो गया है कि बहुत से लोग इन्हीं को शुद्ध मानकर इनका प्रयोग करने लगे हैं।

इसी प्रकार कुछ लोग उच्चारण के आधार पर स्थाई, चिरस्थाई, वाजपेई, साहित्तिक, चन्दवरदाई आदि लिखते हैं, किन्तु इन्हें उत्तरदायी, स्थायी, चिरस्थायी, वाजपेयी, साहित्यिक, चन्दवरदायी ही लिखना चाहिए। ऐसे ही आततायी, न्यायी, अन्यायी आदि।

(घ) संधि एवं शब्द-रचना के नियमों की जानकारी न होना

वर्तनी की अनेक भूलें इस कारण भी होती हैं। उदाहरण के लिए, बहुत से लोग अत्याधिक, रीत्यानुसार, अनाधिकार, निर्पराध या निरापराध, भगवत्भक्ति, अन्तर्कथा, बहिर्साक्ष्य, अन्तर्साक्ष्य लिखते हैं, जो ग़लत है। इन्हें अत्यधिक, रीत्यनुसार अनधिकार, निरपराध, भगवद्भक्ति, अंतःकथा, बहिःसाक्ष्य, अंतःसाक्ष्य होना चाहिए। इनके लिए संस्कृत के संधि-नियमों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। संधि-एवं शब्द-रचना का ठीक ज्ञान न होने से ही बहुत से लोग उज्वल, महत्व, सन्मुख, सन्मान लिखते हैं, जबकि इन्हें उज्ज्वल (उत्+ज्वल), महत्त्व (महत्+त्व), सम्मुख, सम्मान होना चाहिए।

'अंतर्' तथा 'अंतर' दो शब्द हैं। पहले का अर्थ है 'भीतर' तथा दूसरे का 'दूसरा' या 'अन्य'। इस आधार पर 'अन्तर-राष्ट्रीय' शब्द बनना चाहिए, पर यह चल पड़ा है 'अन्तर्राष्ट्रीय', अतः अशुद्ध होने पर भी अब यही मान्य है। 'अंतर्देशीय पत्र' में 'अंतर्देशीय' ठीक है, किन्तु 'अंतर्राज्यीय बस अड्डा' में अंतर-राज्यीय होना चाहिए, किन्तु चल पड़ा है, अतः 'अंतर्राज्यीय' ही चलाना पड़ेगा।

यह तो संस्कृत की संधियों की बात थी। हिन्दी की अपनी संधियाँ भी होती हैं और उनकी जानकारी भी शुद्ध लेखन तथा उच्चारण के लिए अनिवार्य है। उदाहरण के लिए हिन्दी संज्ञा शब्दों की कारक-रचना में : (१) अन्तिम ई के बाद कुछ जोड़ा जाय तो ई का इ हो जाता है। इस नियम की जानकारी जिनको नहीं है, वे लड़कीयाँ, (लड़की+आँ), हाथीयों, विद्यार्थीयों आदि लिखते हैं। इस नियम के अनुसार इन्हें लड़कियाँ, हाथियों, विद्यार्थियों होना चाहिए। (२) ऐसे ही ऊ के बाद कुछ जोड़ें तो ऊ का उ हो जाता है। इस नियम की जानकारी न हो तो साधूओं (साधू+ओं), भालूओं, बहूओं, डाकूओं जैसी ग़लतियाँ हो जाती हैं। (३) इ के बाद आँ, ओं, ओ आएँ तो य का आगम हो जाता है। इस नियम से अपरिचय लड़कियाँ, नारिओं, साथिओ जैसी ग़लत वर्तनी का कारण बन जाता है। इन्हें लड़कियाँ, नारियाँ, साथियो होना चाहिए।

ऐसे ही इक प्रत्यय जोड़ने पर प्रारम्भिक अक्षर का स्वर दीर्घ (अ का आ; इ, ई, ए का ऐ; उ, ऊ, ओ का औ) हो जाता है : समाज–सामाजिक, इतिहास–ऐतिहासिक, नीति–नैतिक, वेद–वैदिक, उपचार–औपचारिक, भूगोल–भौगोलिक, लोक–लौकिक। इससे अपरिचित लोग भूगोलिक, इतिहासिक, समाजिक, सप्ताहिक आदि लिखते हैं। यहाँ यह भी ध्यान देने की बात है कि श्रमिक, क्रमिक जैसे कुछ शब्द अपवाद हैं, अतः उन्हें श्रामिक, क्रामिक नहीं लिखा जा सकता। य (सौदर्य, बाहुल्य, ऐक्य) तथा व (गौरव, शैशव) जोड़ने पर भी आदि वृद्धि होती है।

यह तो संस्कृत प्रत्यय 'इक' जुड़ने पर दीर्घ होने की बात थी। इसके विपरीत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी शब्द-रचना में प्रथम अक्षर का स्वर दीर्घ हो तो ह्रस्व हो जाता है : आ–अ, ए, ई–इ, ओ, ऊ–उ । यथा--

पूजा+अरी–पुजारी	मीठा+आस–मिठास
लोहा+आर–लुहार	सोना+आर–सुनार
आम+रस–अमरस	घोड़ा+दौड़–घुड़दौड़
पानी+घाट–पनघट	एक+हरा–इकहरा
दो+हरा–दुहरा	तीन+तरफ़ा–तिनतरफ़ा
चाट (ना)+आ–चटा (ना)	लूट (ना)+आ–लुटा(ना)
जीत (ना)+आ–जिता(ना)	देख (ना)+आ–दिखा(ना)
तोड़(ना)+आ–तुड़ा (ना)	बैठ (ना)+आ–बिठाना
बूढ़ा+पा–बुढ़ापा	मोटा+पा–मुटापा
पीछा+आड़ी–पिछाड़ी	भीख+आरी–भिखारी

इसका ध्यान न रखने के कारण लोग लोहार, सोनार, घोड़ादौड़, आमरस, तीनतरफ़ा, मोटापा आदि लिख जाते हैं ।

ईत प्रत्यय लगने पर 'र' का ऋ में परिवर्तन हो जाता है : अनुग्रह-अनुगृहीत ग्रहण-गृहीत । जो इससे परिचित नहीं हैं, वे ग्रहीत, अनुग्रहीत जैसे रूप लिख जाते हैं ।

कुछ लोग 'इन्दिरा' को 'इन्द्रा' बोलते तथा लिखते हैं । इसका कारण यह है कि इन लोगों ने अज्ञानवश इसका सम्बन्ध 'इन्द्र' शब्द से मान लिया है, जब कि ऐसा है नहीं ।

(ङ) व्याकरणिक रूपों का ज्ञान न होना

लेखन का व्याकरण से भी सम्बन्ध है । व्याकरण की उचित जानकारी न होने से भी ग़लतियाँ हो जाती हैं । उदाहरण के लिए हिंदी में सम्बोधन बहुवचन के रूप ओकारांत होते हैं । इसकी जानकारी न होने से बहुत से लोग ओकारांत के स्थान पर इन्हें ओंकारान्त रूप लिखते हैं (भाइयों, बहनों, विद्यार्थियों, साथियों), जो ग़लत है । इसी तरह अन्य पुरुष एकवचन का रूप 'वह' है जिसके स्थान पर बहुत से लोग 'वो' लिखते और बोलते हैं । कुछ लोग 'चाहिए' का बहुवचन 'चाहिएँ' बनाते हैं किंतु यह दोनों वचनों में 'चाहिए' ही रहता है ।

(च) सर्वस्वीकृत रूप का अभाव

हिन्दी वर्तनी के रास्ते में सबसे बड़ा रोड़ा मानक या सर्वस्वीकृत वर्तनी का अभाव है । इसे कई वर्गों में बाँट कर यहाँ देखा जा सकता है—

(१) **संख्यावाचक शब्द**—संख्यावाचक शब्दों के प्रायः सर्वस्वीकृत रूप नहीं हैं । विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित कुछ रूप (मोटे टाइप के रूप ही प्रायः मानक माने जाते हैं) : छः–छह–छे-छै-छअ, **ग्यारह**–इगारह–एगारह, पनद्रह-**पन्द्रह**, सतरह-**सत्रह**, अठारह–**अट्ठारह**, उन्निस-**उन्नीस**, एकइस-इक्किस-**इक्कीस**, वाइस-**बाईस**, तेइस-**तेईस**, **चौबीस**-चौविस-चउबिस, **पच्चीस**-पच्चिस-पचीस, छब्बिस–**छब्बीस**, **सत्ताईस**-सत्ताइस-सताइस, अठाइस-**अट्ठाइस**-**अट्ठाईस**, उन्निस-**उन्तीस**-गुन्तिस-उनतिस, एकतिस-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकतीस–**इकतीस**, बत्तिस-**बत्तीस**, तयँतीस-**तंतीस**-तैंतिस, चौंतिस-**चौंतीस**, पैंतिस-**पैंतीस**-पयँतिस, छत्तिस-**छत्तीस**, सँयतिस-सैंतिस-**सैंतीस**, अड़तिस-अरतिस-**अड़तीस**, उनतालिस-गुनतालिस–उन्तालिस–**उन्तालीस**, चालिस-**चालीस**, एकतालिस–इकतालिस-**इकतालीस**, बयालिस–**बयालीस**, तैंतालिस–तेंतालिस–**तैंतालीस**–तिरालिस, चउवालिस-**चौवालीस**–**चौआलीस**, पैंतालिस–**पैंतालीस**–पयँतालिस, **छियालीस**–छ्यालीस–छिया-लीस-छयालिस, सैंतालिस–**सैंतालीस**–सयँतालिस, अरतालिस–अड़तालिस–**अड़तालीस**, उननचास–**उनचास**–गुनपचास–उनचस, एकावन–**इक्यावन**–इक्कावन, **तिरपन**–तिरेपन–त्रेपन–त्रेप्पन, चउअन–चौअन–**चौवन**, **पचपन**–पंचावन, **सत्तावन**–संतावन, **अट्ठावन**–अंट्ठावन–अठावन, ओनसठ–**उनसठ**, एकसठ–**इकसठ**, **तिरसठ**–तिरेसठ-त्रेसठ, **पैंसठ**–पयँसठ, छाछट–छियाछठ–**छ्यासठ**, सरसठ–**सड़सठ**, अरसठ–**अड़सठ**, **उनहत्तर**–ओनहत्तर–गुनहत्तर, एकहत्तर–**इकहत्तर**–खत्तर–कत्तर, चउहत्तर–**चौहत्तर**, **पचहत्तर**–पिचहत्तर–पछत्तर, सतत्तर–**सतहत्तर**, उनासी–**उन्यासी**–गुन्यासी, एकासी–इकासी–**इक्यासी**, **पचासी**–पिच्चासी, **छियासी**–छयासी, सतासी–**सत्तासी**, **अट्ठासी**–अठासी, नवे–**नब्बे**–नब्भे–नभ्भे, **पच्चानवे**–पंचानवे–पिच्चानवे, **छाबेन**–छियानबे, **सत्तानबे**–संतानबे, **अट्ठानबे**–अंठानबे, निरणवे–निननवे–निन्नानबे–**निन्यानबे**।

ऐसे ही अढ़ाई–**ढाई**, पहिला–**पहला**, छठा–छटा–छवाँ–छौंवाँ भी हैं।

(२) **इ-युक्त तथा अ-युक्त रूप**––**पहिला**–**पहला**, **मन्दिर**–मन्दर, **पंडित**–पंडत, **भंगिन**–भंगन, **दर्जिन**–दर्जन, **जमादारिन**–जमादारन, **महाराजिन**–महाराजन, **दरिया**–दरया, **सिर**–**सर**, **बहन**–**बहिन**, **वापिस**–**वापस**।

(३) **उ-युक्त तथा अ-युक्त या दोनों से शून्य रूप**––**साबुन**–साबन, **मरम्मत**–मुरम्मत, **यमुना**–जमना–जम्ना। कुछ के दो मानक रूप हैं: चौधरी–चौधुरी। हिन्दी प्रदेश के पूर्वी भाग में 'चौधुरी' चलता है तो पश्चिमी में चौधरी।

(४) **स-युक्त रूप तथा श-युक्त रूप**– **वसिष्ठ**–**वशिष्ठ**, **नमस्कार**–नमश्कार, **दोसा**–दोशा, **प्रसाद**–प्रशाद, **केशरी**–केसरी।

(५) **ष-युक्त रूप तथा श-युक्त**––कोष–कोश। पहले दोनों ही का प्रयोग शब्दकोश तथा खजाना, दोनों के लिए होता था। अब 'कोश' का प्रयोग शब्दकोश के लिए तथा 'कोष' का खजाने के लिए होने लगा है, यद्यपि मूलतः ऐसा कोई अन्तर नहीं है। ऐसे ही संस्कृत में वेश–वेष दोनों चलते हैं।

(६) **य-युक्त यथा ज-युक्त**––जमुना–**यमुना**, **यश**–जश, जद्यपि–**यद्यपि**।

(७) **ब-युक्त तथा ब-युक्त**––**वन**–बन, **बाह्य**–वाह्य, **विन्दु**-**बिन्दु**, **वश**–बश।

(८) **अन्य**––कुछ मिश्रित समस्याओं के शब्द भी हैं जिनके मानक रूप का संकेत यहाँ किया जा सकता है: **खींचना**–खेंचना, **चाकू**–चक्कू, **मकौड़े**–मकोड़े, **चखना**–चाखना, **प्रेस**–प्रैस, **पेन**–पैन, **टेलीफ़ोन**–टेलीफ़ून, **भूँकना**–भौंकना, एतना–**इतना**, ओतना–**उतना**, **जेतना**–जितना, केतना–**कितना**, एकलौता–**इकलौता**, काफी–**काफ़ी**–कॉफ़ी (पेय), **विषण्ण**–विषंण, अंन–**अन्न**, संयास–सन्यास–**संन्यास**, रखा–रक्खा, चक्खा–**चखा**, **जूठा**–झूठा, धड़ना–**गढ़ना**, भभ्भड़–**भब्भड़**, गठ्ठर–**गट्ठर**,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बद्रीनाथ–बदरीनाथ, बग्घी–बघ्घी, मौलवी–मोलवी, यूं–यों, पेन–पैन, प्रेस–प्रैस, शेख–शैख, पड़ोसी–पड़ौसी, पड़ोस–पड़ौस। कुछ के दोनों रूप मानक माने जाते हैं : गरदन–गर्दन, गरमी–गर्मी, बरतन–बर्तन, सरदी–सर्दी, ईमान–इमान, रोशनी–रौशनी।

(छ) लिपि की अस्पष्टता

वर्तनी की कुछ ग़लतियाँ लिपि की अस्पष्टता के कारण भी होती हैं। उदाहरण के लिए 'स्त्र' तथा 'स्र' में कम अन्तर है, अतः काफ़ी लोग 'सहस्र' को 'सहस्त्र' लिखते तथा बोलते हैं। इसी तरह 'द्य', 'ध' में अन्तर की कमी के कारण पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र के कुछ लोग विद्यार्थी तथा विद्यालय को 'विधार्थी' और 'विधालय' लिखते हैं। इस अशुद्ध वर्तनी का प्रभाव उच्चारण पर भी पड़ता है। 'विद्धार्थी' तथा 'विद्धालय' उच्चारण और लेखन इसी का परिणाम है।

अंग्रेज़ी वर्तनी का प्रभाव

कुछ शब्दों में अंग्रेज़ी वर्तनी ने भी हिन्दी वर्तनी को प्रभावित किया है। यह प्रभाव सीधे न पड़ कर उच्चारण के माध्यम से पड़ा है। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी वर्तनी (Shukla) के कारण 'शुक्ल' का उच्चारण हिन्दी में 'शुक्ला' हो गया और फिर उसी के प्रभाव से लोग 'शुक्ल' के स्थान पर 'शुक्ला' लिखने लगे। कहना न होगा कि हिन्दी में 'शुक्ला' लिखना अशुद्ध है, 'शुक्ल' ही लिखना चाहिए। ऐसे ही गुप्ता, मिश्रा, बुद्धा (दिल्ली का 'बुद्धा गार्डेन'), अशोका (दिल्ली का 'अशोका होटल') लिखना भी अशुद्ध है। अंग्रेज़ी वर्तनी ने कभी-कभी तो नए शब्द को जन्म दे दिया है। उदाहरण के लिए नामों के साथ प्रयुक्त 'सिंह' (जैसे मदन मोहन सिंह) को अंग्रेज़ी में Sinha लिखा गया और फिर इसी Sinha को गलती से 'सिनहा' पढ़ लिया गया। परिणामतः दो शब्द बन गए : सिंह और सिनहा।

(ग)

ऊपर 'क' में अनेकरूपता तथा 'ख' में वर्तनी की अशुद्धियों के कारणों को लिया गया। यहाँ 'ग' में वर्तनी के कुछ नियम तथा कुछ अशुद्धियाँ अलग से ली जा रही हैं।

पंचम नासिक्य व्यंजन और अनुस्वार का प्रयोग

इनके प्रयोग को संक्षेप में यों रखा जा सकता है—

अनुस्वार तथा नासिक्य व्यंजन में विकल्प	केवल नासिक्य व्यंजन	केवल अनुस्वार
ङ्+क, ख, ग, घ (पङ्क अथवा पंक या गङ्गा अथवा गंगा आदि)	ङ्+म (वाङ्मय, पराङ्मुख)	+ह(संहार), +ज्ञ(संज्ञा)
ञ्+च, छ, ज, झ (पञ्च अथवा पंच आदि)		+य(संयम), +श(वंश)
ण्+ट, ठ, ड, ढ (पण्डित अथवा पंडित या डण्डा अथवा डंडा आदि)	+ण (अक्षुण्ण) +म (मृण्मय) +य (पुण्य) +व (कण्व)	

कंठ, पंढरपुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न+त, थ, द, ध (अन्दर अथवा अंदर या अन्त अथवा अंत आदि)	+न (अन्न) +म (जन्म) +य (अन्य) +व (अन्वेषण) +ह (कान्ह, किन्हें)	+श (वंश) +स (संसार) +र (संरचना) +ल (संलग्न)
म+प, फ, ब, भ, व (दम्भ अथवा दंभ या पम्प अथवा पंप या सम्वेदना अथवा संवेदना आदि)	+न (निम्न) +म (सम्मान्य) +य (साम्य) +र (विनम्र) +ल (अम्ल) +ह (तुम्हें)	

ऋ-र--इन दोनों में स्पष्ट अन्तर न जानने से भी वर्तनी की भूलें हो जाती हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि 'ऋ' लेखन में एक स्वर है तथा इसकी मात्रा ृ होती है। इसके विपरीत 'र' व्यंजन है जिसके ं, ् ^ रूप होते हैं। 'ऋ', 'र' एक नहीं हैं। यह-अन्तर न जानने से कुछ लोग ग्रह के स्थान पर 'गृह' तथा 'गृह' के स्थान पर 'ग्रह' लिख और बोल जाते हैं। किन्तु तत्त्वतः ये दो शब्द हैं। 'गृह' का अर्थ है 'घर' तथा 'ग्रह' का अर्थ है सूर्य, चन्द्र आदि। ऐसे ही शब्द 'ब्रज', 'ब्रजभूमि', 'ब्रजभाषा' और 'ब्रजराज' आदि हैं; इसके स्थान पर 'बृज', 'बृजभूमि', 'बृजभाषा', 'बृजराज' आदि लिखना ग़लत है। वस्तुतः हिन्दी में 'बृज' कोई शब्द ही नहीं है। कुछ लोग, मुख्यतः दिल्ली के आसपास के 'कृष्ण' को 'क्रष्ण', 'दृष्टि' को 'द्रष्टि', 'कृपा' को 'क्रपा', 'हृदय' को 'ह्रदय', 'कृषि' को 'क्रषि', 'शृंगार' को श्रंगार', 'भृत्य' को 'भ्रत्य', 'नृत्य' को 'न्रत्य' आदि लिखते हैं, जो ग़लत है। 'शृंगार' और 'श्रंगार' दोनों ही ग़लत हैं। शुद्ध शब्द 'शृंगार' है।

ऋ-रि--आज की हिन्दी में 'ऋ' का उच्चारण 'रि' हो गया है, इसीलिए बहुत से लोग वर्तनी में इससे प्रभावित होकर भूल कर जाते हैं। 'क्रिया' को 'कृया' लिखना ग़लत है, तो 'कृपा' को 'क्रिपा' लिखना। ऐसे ही शब्द 'पृष्ठ' है 'प्रिष्ठ' नहीं, 'ऋण' है 'रिण' नहीं, 'ऋचा' है 'रिचा' नहीं। इसी प्रकार दृष्टि, तृषा, तृष्णा, पैतृक, तृतीय शुद्ध शब्द हैं, द्रिष्टि, त्रिषा, त्रिष्णा, पैत्रिक नहीं। 'मातृक' तथा 'मात्रिक' दोनों शब्द शुद्ध हैं, किन्तु दोनों के अर्थ में अन्तर है। 'मातृक' का अर्थ है 'माता-सम्बन्धी' जबकि 'मात्रिक' का अर्थ है 'मात्रा-संबंधी': जैसे 'मात्रिक छंद'। यों एक संस्कृत शब्द 'मात्रक' भी है जिसका अर्थ 'इकाई' होता है।

छ-क्ष--लेखन तथा उच्चारण दोनों ही में एक के स्थान पर कुछ लोग दूसरे का प्रयोग कर जाते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि क्षण, क्षणिक, क्षत्रिय, क्षमा, क्षय, क्षार, क्षितिज, क्षुद्र, क्षुब्ध, क्षेत्र, क्षेपक, क्षोभ आदि में 'क्ष' है 'छ' नहीं। इसके विपरीत छत्र (राजचिह्न, छतरी), क्षत्र (क्षत्रिय; तुलनीय–स्त्री० क्षत्राणी), छात्र (विद्यार्थी)–क्षात्र (क्षत्रिय–सम्बन्धी) दोनों ही शब्द शुद्ध हैं, किन्तु वर्तनी-भेद से इनके अर्थ बदल जाते हैं।

च्छ-क्ष--शब्द के आदि में जैसे छ-क्ष की ग़लती होती है, वैसे ही शब्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बीच में च्छ–क्ष की ग़लती होती है। कुछ लोग 'क्ष' के स्थान पर 'च्छ' का प्रयोग कर जाते हैं : शिक्षा–शिच्छा, वक्षस्थल–वच्छस्थल। इसके विपरीत संस्कृत बनाने या शुद्ध बोलने के प्रयास में कुछ लोग 'इच्छा' के स्थान पर 'इक्षा' या 'स्वच्छ' के स्थान पर 'स्वक्ष' का प्रयोग कर जाते हैं। 'कच्छा' (पहनने का जाँघिया) तथा 'कक्षा' (दर्जा) दोनों ही शब्द शुद्ध हैं, किन्तु दोनों के अर्थ में अन्तर है।

ब्द-द्व—'ब्द' में 'ब' के बाद (ब्+द) द है : शब्द, अब्द। 'द्व' में 'द' के बाद (द्+व) व है : द्वादशी, विद्वान्, द्वेष। बहुत से लोग यह क्रमभेद न समझ पाने के कारण 'द्वादशी' को ब्दादशी, 'विद्वान्' को 'विब्दान् आदि लिखते हैं जो ग़लत है।

लेखन में अंकों का प्रयोग

प्रस्तुत प्रकरण को बहुत वैज्ञानिक दृष्टि से वर्तनी के अन्तर्गत तो नहीं रखना चाहिए, किन्तु किसी अन्य अध्याय के अन्तर्गत सुविधापूर्वक न रख पाने तथा लेखन से सम्बद्ध होने के कारण, इसे यहीं रखा जा रहा है। इस सम्बन्ध में कई बातें ध्यान में रखने की हैं : (१) बहुत से लोग धीरे-धीरे, चलते-चलते, अपनी-अपनी जैसी द्विरुक्तियों को 'धीरे-२' या 'धीरे २' रूप में लिखते हैं, किन्तु २ की सहायता से यह लेखन-पद्धति हिंदी के मानक लेखन में स्वीकृत नहीं है। इसे धीरे-धीरे, चलते-चलते या अपनी–अपनी रूप में ही योजक चिह्न देते हुए दो बार लिखना चाहिए। (२) सामान्यतः वाक्य में यदि कोई संख्या आए तो उसे अक्षरों में लिखना चाहिए (एक आदमी जा रहा था, दो घोड़े मर गए, एक सौ लोग दब गए, तीन हज़ार रुपए ख़र्च हो गए आदि), अंकों में (१ आदमी जा रहा था, ३ हज़ार रुपए ख़र्च हो गए आदि) नहीं। गणित के वाक्य अपवाद हैं। (३) '. . . . . से . . . . . तक' रूप में दो संख्याएँ आने पर कुछ लोग '२ से चार तक' या 'दस से २० तक' रूप में लिखते हैं जो अमानक हैं। इन्हें 'दो से चार तक' या 'दस से बीस तक' रूप में लिखना चाहिए। ऐसे नहीं कि एक संख्या अक्षर में लिखें तथा दूसरी संख्या अंक में। हाँ, दोनों को ही अंकों में भी लिखा जा सकता है : १० से २० तक, १,००० से १०,००० तक। (४) संख्याओं के लेखन में कभी-कभी अस्पष्टता या द्वि-अर्थकता भी आ जाती है, जिससे बचना चाहिए। उदाहरण के लिए '५ से २० हज़ार तक' के दो अर्थ निकल सकते हैं : ५ हज़ार से २० हज़ार तक या ५ से २०,००० तक। इस प्रकार के द्वि-अर्थक लेखन से बचना चाहिए। अच्छा हो कि यदि पहली संख्या भी दूसरी की तरह 'सौ', हज़ार', 'लाख' या 'करोड़' आदि है तो दोनों के साथ 'सौ' आदि का प्रयोग करना चाहिए (१० हज़ार से २० हज़ार तक), किन्तु यदि ऐसा नहीं तो अंकों में (१० से २०,००० तक) लिखना चाहिए। (५) मानक लेखन में सौ, हज़ार, लाख, करोड़, अरब आदि का समुचित प्रयोग करना चाहिए। अंग्रेज़ी के प्रभाव से कुछ लोग एक लाख तिरपन हज़ार या १ लाख ५३ हज़ार के स्थान पर १५३ हज़ार या ४ करोड़ ८० लाख जैसे प्रयोग करते हैं, जो मानक नहीं हैं। (६) सवा, डेढ़, पौने का भी समुचित प्रयोग मानक हिन्दी का आवश्यक अंग है : जैसे सवा सौ, डेढ़ लाख, पौने दो करोड़ आदि। इन्हें १ सौ २५, १५० हज़ार, १¾ करोड़ आदि लिखना-कहना अमानक है। हाँ, १ लाख ५० हज़ार या १ करोड़ ७५ लाख जैसे प्रयोग भी चल पड़े हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूलतः अशुद्ध किन्तु अब शुद्ध माने गए शब्द

कुछ शब्द संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हैं, किन्तु हिन्दी में उन्हें शुद्ध मान लिया गया है, अतः उनका प्रयोग करना प्रायः अमानक नहीं माना जाता : स्त्रियोपयोगी (शुद्ध है स्त्युपयोगी), अन्तर्राष्ट्रीय (किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार शुद्ध है अंताराष्ट्रीय; ठीक शब्द अंतरराष्ट्रीय), उपरोक्त (उपर्युक्त), अनुवादित (अनूदित) सृजन (सर्जन), सम्बन्धित (संबद्ध), उच्चरित (उच्चारित), महानता (महत्ता), सविस्तार (सविस्तर)। कोष्ठक में शुद्ध रूप दिए गए हैं। अंतर्कथा तथा मनोकामना भी अशुद्ध हैं पर अब शुद्ध मान लिए गए हैं।

कुछ अंग्रेजी शब्दों की वर्तनी

ट, ड के पूर्व हिन्दी में अनुस्वार या ण् का प्रयोग चलता है : कंटक–कण्टक, पंडित–पण्डित। अंग्रेज़ी-लेखन में प्रायः लोग 'न' का प्रयोग करते हैं जो ग़लत है। अनुस्वार का प्रयोग ही होना चाहिए : कैंटीन, टेंडर। ऐसे ही च, ज के पूर्व भी न या ञ का प्रयोग न करके अनुस्वार का ही प्रयोग होना चाहिए : इंच, इंजन, इंजीनियर, इंचार्ज।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय २०

हिंदी भाषा का मानकीकरण

हिन्दी राजस्थान, हरियाणा, मध्यप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, तथा बिहार की सामान्य भाषा और राजभाषा तो है ही, पूरे भारत की भी घोषित राजभाषा है। शिक्षा का माध्यम, राजकाज आदि के अतिरिक्त राजनय के स्तर पर भी अपनी भाषा के रूप में भारत इसी का प्रयोग कर रहा है। ऐसी स्थिति में इसका एक सर्वस्वीकृत मानक रूप अनिवार्यतः आवश्यक है। यों तो कहा जाता है कि भाषा की मानकता एक कल्पना है। भाषा बहुत ही लचीली होती है और लाख प्रयास करके भी उसका कोई मानक रूप स्थिर किया जाए, किंतु उसका प्रयोक्ता जाने-अनजाने नित नए प्रयोग, नई ग़लतियाँ करता रहता है और इसी कारण भाषा समय के साथ-साथ बदलती, विकसित होती और आगे बढ़ती रहती है। यह ठीक है, किंतु इसके बावजूद उसका एक सर्वस्वीकृत न सही तो बहुस्वीकृत एक मानक रूप होता है और प्रायः उस भाषा का शिक्षित प्रयोक्ता उससे थोड़ा-बहुत हटने के बावजूद उसी के इर्द-गिर्द घूमता रहता है।

किसी भाषा के मानक रूप का अर्थ है, उस भाषा का वह रूप जो उच्चारण, रूप-रचना, वाक्य-रचना, शब्द और शब्द-रचना, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, प्रयोग तथा लेखन आदि की दृष्टि से, उस भाषा के सभी नहीं तो अधिकांश सुशिक्षित लोगों द्वारा शुद्ध माना जाता है। मानकता अनेकता में एकता की खोज है। अर्थात् यदि किसी लेखन या भाषिक इकाई में विकल्प न हो तब तो वही मानक होगा, किन्तु यदि विकल्प हों तो अपवादों की बात छोड़ दें तो कोई एक मानक होता है। यह एक वह होता है जिसका प्रयोग उस भाषा के अधिकांश शिष्ट लोग करते हैं। किसी भाषा का मानक रूप ही प्रतिष्ठित माना जाता है तथा बोली और अमानक रूपों की तुलना में इसका प्रयोग क्षेत्र व्यापक होता है। यह रूप उस भाषा के पूरे क्षेत्र में प्रयुक्त होता है।

दूसरों शब्दों में, मानक भाषा में रूप (लिपि, वर्तनी, उच्चारण, शब्द, रूप, वाक्य-रचना, अर्थ आदि) के स्तर पर न्यूनतम विकल्प न (Variation) होता है तो प्रकार्य (Function) के स्तर पर अधिकतम।

हिन्दी का भी इस प्रकार का एक रूप है, यद्यपि वह थोड़ा धुंधला है और पूरी तरह उभर नहीं पाया है। यदि हिन्दी के एक मानक रूप की संकल्पना न होती तो पश्चिमी हिन्दी क्षेत्र के अनेक भागों में प्रयुक्त वाक्य 'मैंने जाना है' तथा पूर्वी हिन्दी क्षेत्र के अनेक भागों में प्रयुक्त वाक्य 'हम पानी तो पी लिया है' सभी क्षेत्रों के शिक्षितों द्वारा अशुद्ध न माना जाता। कहने का आशय यह है कि मानकता की दिशा में हिन्दी काफ़ी कुछ आगे बढ़ी है, जिसमें महावीरप्रसाद द्विवेदी, कामताप्रसाद गुरु तथा किशोरीदास वाजपेयी का बहुत बड़ा हाथ रहा है। यों अभी भी कुछ दृष्टियों से उसके वास्तविक मानक रूप का निर्माण, उसकी पहचान तथा उसकी स्वीकृति मिलनी शेष है।

सबसे पहले उच्चारण की बात लें। यों तो अनेक क्षेत्रों में श को स (शहर–सहर, भाषा–भासा, शायद–सायद), क्ष को छ (क्षमा–छमा, क्षेत्र–छेत्र) या च्छ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शिक्षा–सिच्छा, भिक्षा–भिच्छा), च्छ को क्ष (स्वच्छ, स्वक्ष), य को ज (यज्ञ–जज्ञ, यदि–जदि) तथा व को ब (विद्यार्थी–बिद्यार्थी, व्यस्त को ब्यस्त) बोलने और लिखने की गलती लोग कर जाते हैं, किन्तु इस संबंध में दो राय नहीं है कि हिन्दी में क्रमशः श, क्ष, य, व आदि ही बोला और लिखा जाना चाहिए, इनके स्थान पर स, छ, ज, ब आदि नहीं।

एक वास्तविक समस्या छः विदेशी ध्वनियों (ऑ, क़, ख़, ग़, ज़, फ़) की है। इनमें 'ज़' और 'फ़' का प्रयोग तो काफ़ी लोग करते हैं, किन्तु अन्यों का कम लोग करते हैं, हालाँकि आकाशवाणी से जो समाचार आता है, उसमें इन छओं का ठीक प्रयोग होता है। मेरे विचार में इन छओं का प्रयोग होना चाहिए। इनके पक्ष में ये बातें कही जा सकती हैं : (क) पुरानी पीढ़ी के सुशिक्षित इनका प्रयोग करते रहे हैं और कर रहे हैं; (ख) हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा की दो शैलियाँ हैं और उर्दू वाले क़, ख़, ग़, ज़, फ़ का ठीक प्रयोग करते हैं; (ग) हिन्दी में भी इनके कारण कई शब्दों में अर्थभेद है : राज–राज़, जरा–ज़रा, खाना–ख़ाना, बाग–बाग़, फन–फ़न। हाँ, क–क़ (ताक–ताक़) का अन्तर कम लोग करते हैं; (घ) इन ध्वनियों का अपना सौंदर्य है। किसी उर्दू के शेर के सभी क़, ख़, ग़, ज़, फ़ को क, ख, ग, ज, फ करके यदि पढ़ा जाय तो उसका सारा सौंदर्य नष्ट हो जाएगा; (ङ) हिन्दी में भी ऐसे शब्दों का प्रयोग काफ़ी होता है जिनमें ये ध्वनियाँ हैं (पूरी सूची के लिए देखिए प्रस्तुत लेखक की पुस्तक 'हिन्दी ध्वनियाँ और उनका उच्चारण' का परिशिष्ट)।

हिन्दी के मानक रूप के निर्धारण में ध्वनि के स्तर पर बलाघात, अनुतान, संहिता (संगम), आदि अन्य दृष्टियों से कोई ख़ास समस्या नहीं है। अनुनासिकता की ग़लती कुछ लोग (काँपी, डॉक्टर, घाँस, हाँथ, आँटा, बढ़ियाँ आदि) करते हैं, किंतु उन्हें भी पता है कि इन शब्दों के ये उच्चारण मानक नहीं हैं।

हिन्दी रूप-रचना में अमानक तत्त्व बहुत ही कम हैं। व्याकरणिक भागों (पार्ट्स आफ़ स्पीच) की दृष्टि से संज्ञा में अमानक प्रयोग प्रायः नहीं के बराबर है। पंजाबी के प्रभाव से 'मामे के' ('मामा के घर' के स्थान पर 'मामे के घर') 'लाले से', 'चाचे का' जैसे कुछ प्रयोग कभी-कभार सुनाई पड़ जाते हैं, किन्तु उनके अमानक होने के विषय में कोई विवाद नहीं है। बिहार में 'के कारण' के स्थान पर 'के चलते' (राम के चलते–राम के कारण) का प्रयोग खूब चल पड़ा है, अतः उसे क्षेत्रीय मानकता प्रदान करने के सिवा और कोई चारा नहीं है, क्योंकि उतने बड़े क्षेत्र में इस बहुप्रचलित प्रयोग को अमानक मानकर निकालना कठिन ही नहीं, असंभव-सा है। बिहार से प्रकाशित साहित्य में भी इसका प्रयोग खूब है और इस प्रकार इसकी जड़ें साहित्य में जम चुकी हैं।

सर्वनाम के रूपों में 'मेरे', 'तेरे' (मेरे को, तेरे से, मेरे पर, तेरे में आदि) से बनने वाले कारकीय रूप बड़े व्यापक रूप से बोलचाल तथा साहित्य में घुसते चले आ रहे हैं, किन्तु उन्हें अभी तक मानकता नहीं मिली है। मानक भाषा में इनके प्रयोग से बचना चाहिए।

विशेषण के क्षेत्र में मुख्य समस्या कुछ उन आकारांत विशेषणों की है जिन्हें जनता अन्य आकारांत विशेषणों के सादृश्य के आधार पर परिवर्तित कर रही है (ताज़ी सब्ज़ी, ताज़े फल), किन्तु मानक हिन्दी में ताज़ा ख़बर, ताज़ा सब्ज़ी, ताज़ा फल जैसे प्रयोग ही चलते हैं, अर्थात् इसमें परिवर्तन नहीं होना चाहिए। ऐसे ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'सुनहरी' शब्द मानक है तथा यह अपरिवर्तित (सुनहरी मौक़ा) है, किंतु सामान्य जनता इसे 'सुनहरा मौक़ा' रूप में परिवर्तनीय विशेषणों के अन्तर्गत रख रही है। वस्तुतः परिवर्तनीय आकारांत विशेषणों का दबाव इतना अधिक है कि 'ताज़ा' तथा 'सुनहरी' को अपरिवर्तनीय रख पाना कठिन हो रहा है। अतः मानक हिन्दी उनकी परिवर्तनीयता को बहुत दिनों तक अमानक घोषित करने की स्थिति में नहीं रह सकेगी, यद्यपि फिल्मों में इनके मानक रूप ही ('आज की ताज़ा खबर' अथवा 'सुनहरी मौक़ा') सुनाई पड़ते हैं।

क्रियारूपों में 'करिए' (शुद्ध रूप 'कीजिए'), 'करिएगा' (शुद्ध रूप 'कीजिएगा'), 'करा' (शुद्ध रूप 'किया') तथा चाहिएँ (शुद्ध रूप 'चाहिए', बहुवचन तथा एकवचन दोनों में यह 'चाहिए' ही रहता है)—ये चार ही अमानक रूप सुनाई पड़ते हैं। इनमें 'करा' को कोई भी मानक नहीं मानता और लिखने में इसका प्रयोग प्रायः नहीं मिलता। 'चाहिएँ' का प्रयोग कुछ लोग करते हैं, किन्तु शिक्षित समाज में कम लोग हैं, जो उसे मानक मानेंगे। हाँ 'करिए' तथा 'करिएगा' अमानक होने के बावजूद बहुत अधिक प्रयोग में हैं तथा इन्हें रोक पाना कठिन हो रहा है। लगता है कि निकट भविष्य में इनको मानक मानना ही पड़ेगा।

वाक्य-रचना में क्रम तथा अन्वय की दृष्टि से भी कोई ऐसा अमानक प्रयोग प्रचार में बहुत अधिक नहीं है, जिसे समस्या माना जा सके। इस प्रकार व्याकरणिक स्तर पर हिन्दी का मानक रूप एक सीमा तक विकसित हो चुका है।

हिन्दी भाषा में लिंग की समस्या थोड़ी जटिल है, किन्तु वास्तविक प्रयोग में २०-२५ से अधिक शब्द ऐसे नहीं हैं जिनके लिंग को लेकर (दही, तकिया, तौलिया, गिलास, कोट, रूमाल, खेल, क़लम, पैंट आदि) विवाद हो। यों यदि ऐसे शब्द पचास भी हों तो लाख-डेढ़ लाख शब्दों में पचास की लिंगीय अनिश्चितता किसी बहुत बड़ी चिंता का कारण नहीं मानी जा सकती।

हिन्दी प्रदेश बहुत बड़ा है, अतः इसके मानक स्वरूप के निर्धारण में सबसे बड़ी समस्या 'शब्द' और 'अर्थ' की है। एक क्षेत्र में चिट्ठी गेरी (मेरठ आदि) जाती है, एक में छोड़ी (पूरब में) जाती है तो एक में डाली (पश्चिम में) जाती है। कहीं 'कीड़ी' सामान्य शब्द है तो कहीं इसका अर्थ चींटी (हरियाणा) है। हिन्दी के बहुप्रचलित शब्द 'चींटा' के लिए हरियाणवी में 'मकौड़ा' चलता है। दिल्ली की 'तोरी' इलाहाबाद-बनारस में 'नेनुवाँ' है तो बलिया में 'घेवड़ा'। 'कद्दू' का दिल्ली में एक अर्थ है, तो पूरब में दूसरा। इस प्रकार के शब्द और अर्थ के अंतर क्षेत्र बड़ा होने के कारण हिन्दी में बहुत हैं, किन्तु विश्व की हर विशालक्षेत्री भाषा में ऐसा ही होता है। उदाहरणार्थ, अमरीका का 'बिल' इंग्लैंड में 'चेक' है। चीनी भाषा में भी ऐसे अन्तर खूब हैं। ऐसी स्थिति में इस प्रकार के अन्तर भी मानकता की दृष्टि से चिन्ताजनक नहीं कहे जा सकते। हाँ, पारिभाषिक शब्दावली की दृष्टि से हिन्दी में बहुत अव्यवस्था है। एक ही शब्द के लिए दो-दो, तीन-तीन शब्दों का चलना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं ठहराया जा सकता। इसका एक सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ है कि कभी-कभी हिन्दी में कही गई कुछ बातों को न समझने के कारण सुशिक्षित व्यक्ति अशिक्षित की कोटि में आ जाता है। सच पूछा जाए तो पारिभाषिक शब्दावली में एकरूपता लाने की दिशा में ही हिन्दी को सबसे अधिक प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तनी में भी कुछ थोड़े ही रूपों (गयी–गई, जाएगा–जायेगा–जायगा–जावेगा, नई–नयी आदि) में अनेकरूपता है। संख्यावाचक शब्दों में ३९, ४३, ४९, ५३, ६३, ७५, ७९, ८३, ८५, ८९, ९५, ९९ आदि कुछ ही के उच्चारण तथा वर्तनी की दृष्टि से एकाधिक रूप प्रयोग में हैं। पीछे वर्तनी के अध्याय में इनके मानक रूपों का संकेत किया गया है।

समवेततः मानकता की दृष्टि से पारिभाषिक शब्दों को छोड़कर हिन्दी के सामने कोई बहुत बड़ी और भयावह समस्या नहीं है, और जिस गति से हिन्दी-भाषियों में भाषा के प्रति जागरूपक्ष बढ़ी है, लगता है कि ये छोटी-मोटी अनेक-रूपताएं या तो मिट जाएँगी या मानकता के लचीलेपन का अंग बन जाएँगी।

मानक भाषा एक प्रकार से सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक होती है। उसका सम्बन्ध भाषा की संरचना से न होकर सामाजिक स्वीकृति से होता है। कहने का आशय यह है कि यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक प्रकार की संरचना की भाषा मानक होती है। किसी भी प्रकार की संरचना की भाषा यदि उसे सामाजिक स्वीकृति मिल चुकी है तो वह मानक है। सच पूछा जाए तो मानकता का सम्बन्ध शुद्धता से भी नहीं होता। 'महानता' अशुद्ध है किन्तु हिन्दी में मानक है, किन्तु 'महान्‌ता' शुद्ध है किन्तु मानक नहीं है। 'स्त्रियोपयोगी' भी संधि की दृष्टि से अशुद्ध होने के बावजूद मानक है। संस्कृत के दीनानाथ, विश्वामित्र जैसे शब्द भी मूलतः अशुद्ध थे, किन्तु मानक मान लिए जाने पर वैयाकरणों ने उन्हें शुद्ध सिद्ध करने के लिए नियम बनाए।

मानक भाषा को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि समाज में एक वर्ग मानक होता है जो अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, तथा समाज में उसी का बोलना-लिखना, उसी का खाना-पीना, उसी के रीति-रिवाज अनुकरणीय माने जाते हैं। मानक भाषा मूलतः उसी वर्ग की भाषा होती है।

मानकीकरण की प्रक्रिया चार चरणों में पूरी होती है : (क) **चयन**—किसी भाषा के विविध क्षेत्रीय या सामाजिक रूपों में किसी एक का, सबसे पहले मानक भाषा के रूप में चयन होता है। इस चयन का आधार उस रूप का देश की राजधानी के समीप बोला जाना या धर्म, राजनीति, साहित्य आदि के कारण उसका महत्त्व होता है। मानक हिन्दी, मानक चीनी, मानक अंग्रेजी आदि सभी का चयन प्रायः इन्हीं या इन्हीं में किसी एक या अधिक के आधार पर हुआ है। मानक फ्रांसीसी मूलतः पेरिस की शिष्ट भाषा है तो फ़िनलैंड की मानक भाषा मूलतः एक बोली है तथा इसराइल की क्लासिकल हिब्रू है। (ख) **प्रसार**, (ग) **प्रयोग**—चयन होते ही वह मानक रूप अपने क्षेत्र के बाहर प्रसार पाने लगता है और धीरे-धीरे उस भाषा की सभी बोलियों, उपबोलियों, सामाजिक बोलियों पर छा जाता है और साहित्य, शिक्षा, प्रशासन, समाचार-पत्र आदि में प्रयुक्त होने लगता है। इस प्रकार मूलतः विशेष क्षेत्र का होने पर भी वह सर्वक्षेत्रीय हो जाता है। खड़ीबोली हिन्दी इसी प्रकार पंजाब से बंगाल की सीमा तक और नेपाल से महाराष्ट्र, गुजरात तथा उड़ीसा की सीमा तक फैल गई है। (घ) **स्वीकृति**—इस तरह किसी सीमित क्षेत्र, सीमित प्रयोग और सीमित वर्ग की भाषा या बोली को भाषा-विशेष के सभी लोगों द्वारा स्वीकृति मिल जाती है।

इस तरह चयन, प्रसार, प्रयोग तथा स्वीकृति के द्वारा कोई भाषा या बोली मानक भाषा बन जाती है।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय २१

हिन्दी की शैलियाँ और परिवर्त

[एक]

विश्व में कोई भी भाषा ऐसी नहीं होगी जिसका प्रयोग उसके पूरे क्षेत्र में सभी स्तरों पर एक प्रकार का हो। तत्त्वतः भाषा की एकरूपता या उसके मानकीकरण अथवा एकरूपीकरण की बात सैद्धांतिक ही अधिक है, व्यावहारिक नहीं। वास्तविकता यह है कि एक ही भाषा के स्थान तथा प्रयोग-क्षेत्र आदि के आधार पर अनेकानेक रूप ही नहीं, परिनिष्ठित या मानक रूप भी होते हैं। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी की ही बात लें। उसका सामान्य मानक रूप इंग्लैंड, अमेरिका और आस्ट्रेलिया में एक नहीं है और न ही साहित्य, व्यवसाय, विज्ञान, विधि, दफ्तर, विज्ञापन में प्रयुक्त अंग्रेज़ी का मानक रूप एक है। व्यक्ति, प्रयोजन आदि के आधार पर अतिरिक्त मानक रूपों की सत्ता अस्वीकार नहीं की जा सकती।

वस्तुतः जिस भाषा का क्षेत्र जितना ही विस्तृत होगा, उसके रूप या उसकी शैलियाँ भी उतनी ही अधिक होंगी। चीनी तथा अंग्रेज़ी के बाद हिन्दी इस दृष्टि से विश्व की तीसरी भाषा है। भारत के बाहर, मॉरिशस, फ़ीजी, सूरीनाम आदि में प्रयुक्त हिन्दी की बात छोड़ भी दें तो भारत में ही पंजाब का कुछ भाग, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार आदि मिलकर हिन्दी क्षेत्र को काफ़ी बड़ा विस्तार दे देते हैं। इस क्षेत्र में हिन्दी की हरियाणवी, पश्चिमी पहाड़ी, गढ़वाली, कुमायुंनी, मारवाड़ी, मेवाती, अहीरवाटी, जयपुरी, मालवी, बुंदेली, ब्रजभाषा, खड़ीबोली, अवधी, छत्तीसगढ़ी, भोजपुरी, मगही, मैथिली आदि बोलियाँ आती हैं। अपवादों की बात छोड़ दें तो अधिकांश हिन्दीभाषी घर पर अपनी मातृबोली के रूप में इन्हीं में से कोई-न-कोई बोली बोलते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि ये लोग जब हिन्दी के मानक रूप का प्रयोग करते हैं तो मानक हिन्दी का इनके द्वारा प्रयुक्त रूप इनकी अपनी-अपनी बोलियों से व्यतिक्रमित होता है और ध्वनियों का उच्चारण, शब्दों का प्रयोग, वाक्य-रचना आदि में प्रत्यक्षतः या परोक्षतः संबद्ध बोलियों से प्रभावित होता है। इस तरह आदर्श रूप में हिन्दी का एक मानक रूप भले ही हो, वास्तविक प्रयोग में उसके उतने ही मानक रूप बन जाते हैं, जितनी कि उसकी मुख्य बोलियाँ हैं। इन्हें हम हिन्दी की क्षेत्रीय शैलियाँ कह सकते हैं।

भाषा का प्रयोग विभिन्न कार्यों में होता है और इन सभी में प्रयुक्त भाषा की अपनी विशेषताएँ होती हैं। उदाहरण के लिए, सरकारी कामों में प्रयुक्त हिन्दी एक प्रकार की है, तो बोलचाल की हिन्दी दूसरे प्रकार की; कानून में प्रयुक्त हिन्दी तीसरे प्रकार की है, तो व्यापार में प्रयुक्त हिन्दी चौथे प्रकार की; विज्ञापन में प्रयुक्त हिन्दी पाँचवें प्रकार की तथा साहित्य में प्रयुक्त हिन्दी छठे प्रकार की; आदि।

फिर साहित्य में प्रयुक्त हिन्दी भी, वैयक्तिक विशेषताओं की बात छोड़ भी दें, तो तीन प्रकार होती है जिसे प्रायः हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी नाम से अभिहित किया जाता है। इस पर विस्तार से अध्याय के अंत [दो] में विचार किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपर्युक्त सभी हिन्दी की शैलियाँ हैं जिन्हें मोटे रूप से **क्षेत्रीय शैलियाँ, प्रयोजनी शैलियाँ** तथा **साहित्यिक शैलियाँ** कहा जा सकता है। इन शैलियों में अंतर समवेततः ध्वनि, शब्द, रूप-रचना, वाक्य-रचना, अर्थ, मुहावरे तथा लोकोक्तियों आदि के स्तर पर होता है। अंतर की इकाइयाँ ही परिवर्त (variants) हैं। इस प्रकार किसी भी भाषा की शैलियों का अंतर विभिन्न स्तरों में प्राप्त परिवर्तों से जाना जा सकता है। यों तो इस विषय पर काफ़ी विस्तार से लिखने की गुंजाइश है, किन्तु प्रस्तुत लेख की सीमा में वैसा संभव नहीं है। यहाँ संक्षेप में कुछ बातें ली जा रही हैं।

सबसे पहले 'ध्वनि' या उच्चारण की बात लें। उच्चारण में स्वरों का उच्चारण, व्यंजनों का उच्चारण, अनुनासिकता, दीर्घता, अक्षर-विभाजन, बलाघात आदि मुख्य हैं। इनमें कुछ की कुछ बातें क्रमशः ली जा रही हैं—

'अ' का उच्चारण हिन्दी-प्रदेश में दो रूपों में होता है। शब्द के मध्य में 'ह' के पूर्व इसका उच्चारण तब 'ए' से मिलता-जुलता होता है जब 'ह' के बाद 'अ' (जैसे शहर, नहर) हो, या उच्चारण में कहना, रहना, सहना जैसे शब्दों के ढाँचे में व्यंजन हो, या अन्त में कोई व्यंजनादि न हो (जैसे कह, रह)। अन्य स्थितियों में इसका उच्चारण सामान्य (अर्धविवृत मध्य स्वर) होता है। किन्तु ऐसी स्थिति प्रायः केवल पश्चिमी हिन्दी-प्रदेश में मिलती है। पूर्वी हिन्दी-प्रदेश में सभी स्थितियों में यह सामान्य (अर्धविवृत, मध्य स्वर) होता है, बल्कि उसमें ओष्ठ की थोड़ी वर्तुलता भी जुड़ जाती है (जैसे कॅहना, रॅह, शॅहर)।

हिन्दी में कुछ स्थितियों में मध्य 'अ' का उच्चारण नहीं होता : लड़का, अपना, कपड़ा आदि। किन्तु ऐसी स्थितियों में 'इ', 'उ' के उच्चारण में पूरे हिन्दी क्षेत्र में एकरूपता नहीं है। कुछ ब्रज तथा बुंदेली क्षेत्रों के हिन्दीभाषी ऐसी स्थितियों में 'इ', 'उ' का भी लोप अपने उच्चारण में कर देते हैं; सरिता–सर्ता, कविता–कव्ता, जमुना–जम्ना, सुविधा–सुव्धा। अन्य क्षेत्रों में अपवादस्वरूप कुछ व्यक्तियों तथा शब्दों की बात छोड़ दें, तो यह प्रवृत्ति नहीं मिलती।

शब्द के अन्त में इ, उ ध्वनि हिन्दी के अपने शब्दों में प्रायः नहीं आतीं। जिन शब्दों में ये ध्वनियाँ अन्त में हैं, वे हिन्दी में गृहीत शब्द (लोन वर्ड) हैं : कवि, भक्ति, शक्ति इत्यादि, वस्तु, वायु, कटु, कि, बल्कि। यही कारण है कि इस स्थिति में इनका ठीक उच्चारण कम लोग कर पाते हैं तथा प्रायः लोग इन्हें कभी लुप्त कर देते हैं तो कभी दीर्घ। यों सामान्यतः हिन्दी प्रदेश के पूर्वी भाग में सुशिक्षित लोगों के हिन्दी उच्चारण में इसकी ह्रस्वता इतनी बढ़ जाती है कि वह लोप के निकट पहुँच जाती है तथा पश्चिमी भाग के उच्चारण में वह लगभग दीर्घ हो जाती है। इसीलिए पश्चिमी क्षेत्र के व्यक्ति को पूर्वी क्षेत्र के ऐसे उच्चारण में लोप सुनाई पड़ता है तथा पूर्वी क्षेत्र के व्यक्ति को पश्चिमी क्षेत्र के उच्चारण में प्रायः स्पष्ट दीर्घता सुनाई पड़ती है।

ऐ, औ पश्चिमी क्षेत्र के मूल स्वर हैं, अर्थात् इनके उच्चारण में जीभ एक निश्चित स्थिति में रहती है। पूर्वी क्षेत्र में इन दोनों के उच्चारण में जीभ एक स्वर-स्थिति से दूसरी स्वर-स्थिति की ओर जाती है, अर्थात् ये श्रुति हैं। 'ऐ' को प्रायः लोग 'अए' और पूरब में 'अय' बोलते हैं तथा औ को 'अओ' तथा और पूर्व में 'अव'। संस्कृत-परंपरा के लोग दोनों ही क्षेत्रों में इन्हें क्रमशः 'अइ', 'अउ' रूप में संयुक्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर करके बोलते हैं। इस प्रकार 'नैतिक' के विभिन्न औच्चारणिक परिवर्त हैं : नैतिक (मूल स्वर), नएतिक, नयतिक, नइतिक। इसी प्रकार गौरव के हैं : गौरव (मूल स्वर), गओरव, गवरव, गउरव। हाँ य के पूर्व ऐ (जैसे वैयाकरण) तथा व के पूर्व औ (जैसे कौवा) में सर्वत्र उच्चारण 'अइ', 'अउ' होता है।

हिन्दी में दस स्वर हैं : अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। सामान्यतः यह समझा जाता है कि इन दसों के दस अनुनासिक रूप भी प्रयुक्त होते हैं : हसना–हंसना, सास–सांस, विधि–बिंधना, ईट–ईंट, कुमार–कुंवर, पूछ–पूँछ, मेल-में, है–हैं, हो–हों, धौंकनी–धौंसा। किन्तु पूरे हिन्दी-प्रदेश में यह स्थिति नहीं है। पश्चिमी क्षेत्र में, मुख्यतः ब्रज-क्षेत्र में आठ ही अनुनासिक स्वर हैं : अँ, आँ, इँ, ईं, उँ, ऊँ, एँ, औं। अर्थात् एँ, ओं नहीं हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि ब्रज प्रदेश के अनेक क्षेत्रों में 'में' तथा 'मैं' का उच्चारण एक ही प्रकार से होता है। यही स्थिति 'हों', 'हौं' की भी है। वे दोनों स्थानों पर केवल 'मैं' तथा 'हौं' ही बोलते हैं। हिन्दी-प्रदेश में अन्यत्र दसों मौखिक स्वरों के दसों अनुनासिक रूप उपलब्ध हैं।

हिन्दी के कुछ शब्दों में स्वरों की अनुनासिकता सकारण होती है (जैसे कंपन –काँपना, चंद्र–चाँद), किन्तु कुछ शब्दों में वह अकारण होती है (जैसे सर्प–साँप, उष्ट्र–ऊँट, अश्रु–आँसू)। इस प्रकार की अकारण या स्वतः अनुनासिकता की दृष्टि से भी कुछ शब्दों के क्षेत्रीय परिवर्त उल्लेख्य हैं। अनेक हिन्दी-क्षेत्रों में (जैसे दिल्ली में जामा मस्जिद, भोजपुरी-भाषी क्षेत्र आदि) हाथ को हाँथ, जौ को जौं (यह पंजाबी में भी है), गाय को गाँय, घास को घाँस, कापी की काँपी, आटा को आँटा, आगे को आंगे (बुंदेली में), डाक्टर को डाँक्टर, तथा सोचना को सोंचना कहते हैं। इस प्रकार के शब्दों की सूची काफ़ी बड़ी हो सकती है। पूरे हिन्दी-प्रदेश में सामान्यतः अधिकांश लोग (अनपढ़ तथा ग्रामीण तो सारे, और काफ़ी पढ़े-लिखे भी) क़, ख़, ग़, ज़ फ़ के स्थान पर क, ख, ग, ज, फ बोलते हैं। ऐसा प्रायः अरबी, फ़ारसी, तुर्की और पश्तो से आए शब्दों के उच्चारण में होता है। अंग्रेजी शब्दों के उच्चारण में केवल फ़, तथा ज आते हैं। जो लोग अंग्रेजी पढ़े-लिखे नहीं हैं, वे प्रायः फ़ ज के स्थान पर अंग्रेजी शब्दों में भी फ, ज बोलते हैं। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग फ़, ज तो ठीक बोलते हैं किन्तु उर्दू-अरबी-फ़ारसी-दाँ लोगों को छोड़कर शेष लोग क़, ख़, ग़ के स्थान पर प्रायः क, ख, ग बोलते हैं। इनमें भी ख, ग़ के स्थान पर ख, ग बोलने वालों की तुलना में 'क़' के स्थान पर 'क' बोलने वालों की संख्या अधिक है। ऐसे ही अंग्रेजी शब्दों में प्रयुक्त ऑ (कॉलेज, डॉक्टर) का भी हिन्दी बोलने में अधिकांश लोग 'आ' उच्चारण करते हैं।

अन्य क्षेत्रों के लोगों की हिन्दी में अनेक स्थितियों में जहाँ ल है, वहाँ हरियाणा तथा कुछ आसपास के लोगों की हिन्दी में ळ है : काला–काळा, माली–माळी, ताला–ताळा, वाला–वाळा।

'इ' के बाद 'आ' आए तो 'य' श्रुति-रूप में पूरे हिन्दी-प्रदेश में आ जाता है : दिया, लिया, जिया, सिया। किन्तु 'उ' के बाद 'आ' आए तो प्रायः पश्चिमी क्षेत्र में 'उआ' (हुआ, दुआ, जुआ) रहता है, किन्तु पूर्वी क्षेत्र में काफ़ी लोगों के उच्चारण में 'उआ' के स्थान पर 'उवा' (हुवा, दुवा, जुवा) हो जाता है। 'औ' के बाद भी प्रायः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी ही स्थिति है। पश्चिमी क्षेत्र में 'पौआ', 'कौआ' कहेंगे तो पूर्वी में 'पाँवा', 'कौवा', 'झौवा', 'नौवा' आदि।

'ड़–र', 'ढ़–र्ह' पर आधारित परिवर्त भी हिन्दी में क्षेत्रीय दृष्टि से एक सीमा तक वर्तमान हैं। भोजपुरी तथा मगही क्षेत्र में तो कम, किन्तु मैथिली क्षेत्र में प्रायः 'ड़' के स्थान पर 'र' तथा 'ढ़' के स्थान पर 'र्ह' बोला जाता है: घोड़ा–घोरा, लड़का–लरका, काढ़ा–कार्हा, गाढ़ा–गार्ह या गार्हा। मिथिला तथा आसपास के लोग 'ड़' को बड़ा 'र' कहते हैं, जिनके पीछे भी यही परिवर्त-संबंध ज्ञात होता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त व–ब (विद्यार्थी–बिद्यार्थी, व्यापार–ब्यापार, व्यवसाय-ब्यवसाय, व्यर्थ-ब्यर्थ), य–ज (यज्ञ-जज्ञ, यमुना-जमुना, यश-जश), श-स (शहर-सहर, शादी-सादी, नमस्कार-नमश्कार, दोसा-दोशा), च्छ-क्ष (स्वच्छ-स्वक्ष), द-ड (दाढ़ी-डाढ़ी), ड-ढ (ठंडा-ठंढा), प-ब-म (निपटना-निबटना-निमटना), ड़-र (पटड़ी-पटरी, तिवाड़ी-तिवारी, कटड़ा-कटरा, साड़ी-सारी, कचड़ा-कचरा), ल–र (सलहज-सरहज) आदि की दृष्टि से भी काफ़ी अन्य परिवर्त उपलब्ध हैं जिन्हें स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं लिया जा रहा है।

'स' से प्रारंभ होने वाले संयुक्त व्यंजन में यदि दूसरा सदस्य स्पर्श हो तथा यह संयुक्त व्यंजन शब्द की आदि स्थिति में हो तो काफ़ी लोग (अपढ़ या ग्रामीण तो सभी, और पूर्वी क्षेत्र में अधिकांश सुशिक्षित लोग भी) प्रारंभ में अ अथवा इ स्वर उच्चारित करके इस आदि संयुक्त व्यंजन को मध्य संयुक्त व्यंजन बना देते हैं: स्टेशन–इस्टेशन, स्थान–अस्थान, स्प्रिंग–इस्प्रिंग, स्टूल–इस्टूल, स्नेह–इस्नेह। कभी-कभी तो इससे अर्थ में भी गड़बड़ी हो जाती है: जैसे 'स्पष्ट' के स्थान पर 'अस्पष्ट' बोलने पर। कहना न होगा कि पंजाबी लोगों द्वारा प्रयुक्त हिन्दी में इस वर्ग के कुछ शब्दों में मध्य स्वरागम हो जाता है: सटेशन, सपष्ट, सटोर, सकूल, सप्रिंग।

'क्ष' हिन्दी की अपनी प्रकृति का संयुक्त व्यंजन नहीं है। यह केवल संस्कृत से गृहीत कुछ सौ शब्दों में प्रयुक्त होता है। यही कारण है कि हिन्दी की विभिन्न शैलियों में इसके परिवर्त 'छ', 'च्छ' मिलते हैं। भोजपुरी, अवधी, राजस्थानी, हरियाणवी, छत्तीसगढ़ी आदि अनेक क्षेत्रों के लोग शब्द के आरंभ में इसके स्थान पर छ बोलते हैं: क्षत्रिय-छत्रिय, क्षेत्र-छेत्र, क्षमा-छमा आदि। शिवानी की पुस्तक 'कृष्णिए छिमा' में इसका एक और परिवर्त आया है। शब्द के बीच में यह 'च्छ' हो जाता है: शिक्षक-सिच्छक-शिच्छक, कक्षा-कच्छा, प्रत्यक्ष-प्रत्यच्छ आदि।

'ज्ञ' भी संस्कृत से गृहीत संयुक्त व्यंजन है और केवल संस्कृत से आए तथाकथित तत्सम शब्दों में ही प्रयुक्त होता है। सामान्यतः हिन्दी-प्रदेश के पश्चिमी क्षेत्र में इसका उच्चारण 'ग्य' होता है, तथा पूर्वी क्षेत्र में ग्यँ। आर्यसमाजी तथा संस्कृत परंपरा के लोग इसके मूल घटकों (ज्+ञ) को दृष्टि में रखते हुए इसका उच्चारण ज्यँ करते हैं। मराठी सीमा के पास के हिन्दीभाषी इसे 'द्नँ' भी कह लेते हैं। इस तरह 'ज्ञान' शब्द ग्यान, ग्याँन, ज्याँन, द्नाँन आदि रूपों में बोला जाता है। यज्ञ, विज्ञ, सर्वज्ञ, आज्ञा आदि अन्य शब्दों के भी इसी प्रकार के विभिन्न परिवर्त प्राप्त होते हैं।

उच्चारण की दृष्टि से संख्यावाचक शब्दों के अनेक परिवर्त हिन्दी-प्रदेश में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध हैं। ब्रज-क्षेत्र के कई भागों (जैसे एटा आदि) के निवासी परिनिष्ठित हिन्दी बोलने में भी नब्बे के स्थान पर नब्भे कहते हैं। कुछ क्षेत्रों में लोग नब्बे भी कहते हैं। भोजपुरी क्षेत्र में परिनिष्ठित हिन्दी में भी 'छियासठ' या 'छयासठ' को 'छाछट' या 'छाछठ' कहते हैं। परिनिष्ठित हिन्दी के उन्नीस, इक्कीस, बाईस, तेईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, इकतीस, बत्तीस, तैंतीस, चौंतीस, पैंतीस, छत्तीस, सैंतीस, अड़तीस, उनतालीस, चालीस के उच्चारण में पूर्वी हिन्दी प्रदेश में दीर्घ "ई" के स्थान पर ह्रस्व कर देते हैं। जैसे—उन्निस, इक्किस, सताइस, अठइस, इकतिस, छत्तिस आदि। कुछ अन्य परिवर्त एकइस, सताइस, अठाइस आदि भी हैं। इ-ए (इक्कीस-एकइस, इकसठ-एकसठ, इक्यासी-एकासी, इक्यानबे-एकानबे) तथा उ-ओ (उन्नीस-ओनइस, उनतीस-ओनतिस, उनतालीस-ओनतालिस, उनचास-ओनचास, उनसठ-ओनसठ आदि) की दृष्टि से पश्चिमी तथा पूर्वी क्षेत्र में स्पष्ट अंतर है। पूरब वाले ए-ओ वाले रूपों को शुद्ध मानते हैं तो पश्चिम वाले इ-उ वाले रूपों को।

ध्वन्यात्मक अंतर अन्य अनेक शब्दों में भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ छीछालेदर-छीछालेदार; ज़ूठा-झूटा, धोखा-धोका (उर्दू में), भूख-भूक (उर्दू में)।

अक्षर-विभाजन तथा बलाघात की दृष्टि से अनेक रूपांतर मिलते हैं। कुछ लोग 'आमदनी' को 'आ-मद-नी' कहते हैं तो कुछ 'आम-द-नी'। इसी प्रकार 'छिपकली' कुछ लोगों के लिए 'छिप-क-ली' है तो कुछ लोगों के लिए 'छिपक-ली'। बलाघात के परिवर्त भी पूरे हिन्दी-प्रदेश में मिलते हैं। कामताप्रसाद गुरु[1], आर्येन्द्र शर्मा[2], भोलानाथ तिवारी[3] तथा अशोक केलकर[4] के नियमों के अंतर में ये अंतर काफ़ी स्पष्ट हैं।

शब्दों के स्तर पर परिवर्त अगणनीय हैं। यहाँ उदारहण के लिए कुछ थोड़े लिए जा रहे हैं—

जहाँ तक हिन्दी की क्षेत्रीय शैलियों में शब्द-परिवर्त का प्रश्न है, दो बातें मिलती हैं। कुछ शब्द तो ऐसे हैं जिनके अर्थ अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग हैं, तथा कुछ संकल्पनाएँ ऐसी हैं जिनके लिए अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग शब्द हैं। यहाँ दोनों ही के थोड़े उदाहरणों की बानगी दी जा रही है।

दिल्ली में तथा आसपास 'जुराब' शब्द विशेष रूप से चलता है। अब तो नहीं, किन्तु २५–३० वर्ष पहले भोजपुरी क्षेत्र में तथा आसपास 'जुराब' का अर्थ वह नहीं था जो आज दिल्ली में है, अपितु कपड़े की जूते जैसी चीज़ को कहते थे जो मोज़े की रक्षा के लिए मोज़े के ऊपर पहनी जाती है और इस तरह जो मोजे और जूते के बीच में रहती है। आज दिल्ली में प्रायः जिस चीज़ के लिए 'जुराब' शब्द चलता है, उसके लिए पूरब में 'मोजा' चलता है। यों रीतिकाल में 'मोज़ा' जूते को कहते थे। भूषण में आता है—"पग मचकंती मोजड़ी"। अलीगढ़ ज़िले में ग्रामीण लोग 'मोजा' को 'मोचे' कहते हैं तो पढ़े-लिखे लोग 'जुराब'। कुरुक्षेत्र, रोहतक आदि में कपड़े के जूते को 'मोच्चे' कहते हैं।

---

१. हिन्दी व्याकरण, संशोधित संस्करण, पृ० ५२।

२. ए बेसिक ग्रामर आफ़ माडर्न हिन्दी, १९६२, पृ० १६।

३. हिन्दी भाषा, १९६२, पृ० ४८२।

४. स्टडीज़ इन हिन्दी-उर्दू, १९६८, पृ० २६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी भाषा के पश्चिमी क्षेत्र में 'मरम्मत' शब्द का प्रयोग केवल एक अर्थ में होता है : मकान की मरम्मत करवानी है, मरम्मत कर देने पर यह जूता अभी दो-चार महीने चल जाएगा। भोजपुरी आदि पूर्वी क्षेत्रों में इसके अतिरिक्त इसका एक और अर्थ में भी प्रयोग चलता है। जैसे 'इस सामान को सँभाल कर रख दो' के लिए 'इस सामान को मरम्मत से रख दो' अर्थात् 'मरम्मत से' का अर्थ हुआ 'सँभाल कर'।

'चलता-पुरजा' का प्रयोग पूरे हिन्दी प्रदेश में चलता है, किन्तु पूर्वी क्षेत्र में यह शुद्ध प्रशंसासूचक है तो पश्चिमी क्षेत्र, मुख्यतः दिल्ली के आसपास प्रशंसा-अप्रशंसा की सीमारेखा पर अप्रशंसा की ओर झुका है और इसमें 'बहुत चालाक' का भाव है। पूरब में यह मात्र व्यवहार-कुशल तथा अपना काम निकालने वाला आदि ही है। वहाँ इसमें केवल उतनी चालाकी है जो अप्रशंसा की सीमा में नहीं आती। यों 'चालाक' के पूर्वी तथा पश्चिमी प्रयोग में भी एक सीमा तक प्रायः यही अंतर है।

पूरब में 'कुछ दिन हुए', 'बहुत दिन हुए' के प्रयोग चलते हैं। स्पष्ट ही 'कुछ दिन' 'थोड़े दिन' है तथा 'बहुत दिन' 'ज्यादा दिन'। पश्चिम में 'कई दिन हुए' का प्रयोग अधिक चलता है जो दोनों की सीमारेखा पर है, किन्तु जो प्रायः दोनों ही सीमाओं में घुस-पैठ करता रहता है। पूरब में 'कई दिन हुए' का प्रयोग प्रायः नहीं चलता।

'उसिनना' पूरब में 'उबालना' का समानार्थी है : 'आलू उसिन दो।' आगरा आदि में इसका अर्थ गूँधना होता है : 'चून उसिन लो'।

भोजपुरी क्षेत्र का हिन्दीभाषी 'मथानी' या 'मथनी' शब्द का प्रयोग 'दही मथने के डंडे' के लिए करता है। ब्रजभाषी उसके लिए 'रई' का प्रयोग करता है और 'मथानी' का प्रयोग उस बर्तन के लिए करता है जिसमें दही बिलोया जाता है। ऐसे ही 'पिसान' पूर्वी क्षेत्र में 'पिसा हुआ अन्न' है, तो ब्रज-क्षेत्र में 'पीसने के लिए दिया जाने वाला अन्न' है। पूरब में जिसे 'पिसान' या 'आटा' कहते हैं, उसे ब्रज में 'चून' अथवा 'आटा' कहते हैं। सहारपुर में 'आटा' को 'पीसना' कहते हैं।

'कद्दू' पूरब में लौकी अथवा घीया को कहते हैं, किन्तु पश्चिम में प्रायः सीताफल, काशीफल या कोंहड़ा को कहते हैं।

भोजपुरी क्षेत्र के ग़ाजीपुर जिले में भैंस के बच्चे को 'पाड़ा' कहते हैं तथा बच्ची को 'पाड़ी', तो ब्रज-क्षेत्र के अलीगढ़ जिले में 'पड्डा'-'पड़िया', कनौजी के फ़रुखाबाद जिले में 'पड़रा'-'पड़िया' और हरियाणवी के गुड़गाँवा आदि में 'काटड़ा'–'काटड़ी' तथा बुलंदशहर में 'कटरा'–'कटिया'। ऐसे ही गाय के बच्चे-बच्ची के लिए 'बाछा-बाछी' (ग़ाजीपुर), 'बछरा-बछिया' (अलीगढ़), 'बछड़ा-बछिया' (फरुखाबाद) आदि चलते हैं।

कुछ पूर्वी क्षेत्रों के हिन्दीभाषी उँगली को 'पुटकाते' हैं, परंतु पश्चिमी क्षेत्र के 'चटकाते' हैं।

भोजपुरी क्षेत्र में 'नाती' का अर्थ है लड़की का लड़का तथा 'पोता' का अर्थ है लड़के का लड़का। ब्रज-क्षेत्र (आगरा) में नाती तथा पोता दोनों ही का अर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है लड़के का लड़का, तथा लड़की के लड़के को 'धेवता' कहते हैं। मेरठ की खड़ीबोली में 'नाती' का प्रयोग अपेक्षाकृत कम होता है। वहाँ लड़की के लड़के के लिए 'धेवता' तथा लड़के के लड़के के लिए 'पोता' शब्द चलता है। इसके विपरीत, लड़के के लड़के की पत्नी तथा लड़की के लड़के की पत्नी को भोजपुरी क्षेत्र में 'नतिन-पतोहू' कहते हैं, किन्तु मेरठ में प्रथम को 'पोत बहू' तथा दूसरे को 'धेवत बहू' कहते हैं। ब्रज-क्षेत्र में दोनों को 'नतबउ' कहते हैं। हिन्दी-प्रदेश में स्त्रियाँ बाल 'बनाती हैं', 'सँवारती हैं', किन्तु पश्चिमी क्षेत्र के लोग दो अन्य शब्दों का भी काफ़ी प्रयोग करते हैं जो पूर्वी क्षेत्र के लोगों के लिए पूर्णतः अपरिचित हैं। ये शब्द हैं 'बाना' (हरियाणा का पूर्वी भाग, दिल्ली तथा मेरठ) तथा 'ऐंछना' (आगरा आदि)। बुंदेली में 'बाल खींचना' इसी अर्थ में चलता है। कदाचित् अन्य क्षेत्रों में यह प्रयोग बिल्कुल नहीं चलता। दही मथना के लिए पूरब में प्रायः 'महना' शब्द चलता है जो 'मथवा' का ही विकास है, किन्तु ब्रज आदि पश्चिमी क्षेत्रों में 'दही बिलोना' चलता है। यों 'दही मथना' दोनों क्षेत्रों में न्यूनाधिक रूप से चलता है।

पूर्वी क्षेत्र में चिट्ठी प्रायः 'छोड़ी' और 'छोड़वाई' जाती है, जबकि पश्चिमी क्षेत्र में 'डाली' और 'डलवाई' जाती है। यों हरियाणा में तथा आसपास चिट्ठी 'छोड़ी' नहीं जाती है, 'डाली' भी कम जाती है, 'गेरी' अधिक जाती है।

स्त्रियों की 'ओढ़नी' को हरियाणा तथा आसपास के क्षेत्रों में ओढ़ना कहते हैं। भोजपुरी में ओढ़ना रजाई, दुलाई, कंबल, चद्दर आदि ओढ़ने की चीजों को कहते हैं। भोजपुरी में चद्दर बड़ी ओढ़नी को भी कहते हैं, जिसे हरियाणा में ओढ़ना कहा जाएगा तथा सहारनपुर में 'ओना' या 'ओन्ना'।

पश्चिमी क्षेत्र में जिस सब्जी को 'तोरी' या 'तोरई' कहते हैं, उसे पूरब में 'नेनुवाँ' (ग़ाजीपुर, बनारस तथा आसपास) या घेवड़ा (बलिया आदि) कहते हैं।

हिन्दी-प्रदेश में 'आटा गूँधना' के लिए 'आटा गूँथना', 'आटा सानना', 'आटा माँड़ना', 'आटा गलाना' आदि कहते हैं। उनमें अंतिम का प्रयोग केवल बुंदेलखंड के कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित है।

हिन्दी की साहित्यिक शैलियों—हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी—में शब्दों का अंतर सर्वविदित है : शुभ नामं, इस्मशरीफ़, नाम; शुभ स्थान, दौलतखाना, घर; स्थान, गरीबखाना, घर; तथा पिता, वालिद, बाप आदि।

बोलचाल की भाषा तथा तकनीकी विषयों की भाषा में भी शब्द के परिवर्त मिलते हैं। बोलचाल का 'नमक', रसायनशास्त्र में 'लवण' है, भाषाशास्त्र का 'स्वन' सामान्य बोलचाल में 'ध्वनि' है।

'चमकार' हिन्दी का बहुप्रचलित शब्द नहीं है। अब तक तो कवि, साहित्यकार, विज्ञानवेत्ता आवश्यकता पड़ने पर नए शब्द गढ़ लेते थे, अब विज्ञापन-लेखक भी विशिष्ट प्रभाव के लिए शब्द गढ़ने लगा है। रेडियो पर रिन के विज्ञापन में सुनाई पड़ता है—

सफ़ेदी की चमकार,
बार-बार,
लगातार।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह 'चमकार' हिन्दी विज्ञापन की शैली में प्रयुक्त परिवर्त है जो इसी भाषा की अन्य शैलियों में 'चमक' से व्यक्त होता है।

रूप-रचना के स्तर पर भाषा के विभिन्न रूपों या उसकी शैलियों में विशेष अंतर प्रायः नहीं मिलता। हिन्दी भी इस दृष्टि से अपवाद नहीं है। कुछ सीमित परिवर्त जो मिलते हैं, नीचे दिए जा रहे हैं। आज्ञा के आज़ के प्रचलित रूप हिन्दी में छः हैं: तू बैठ, तुम बैठो, आप बैठिए, आप बैठें, तुम बैठना, आप बैठिएगा। अपवादतः दिल्ली में तथा आसपास कुछ अन्य स्थानों पर भी तुम आइयो, तुम जइयो, जैसे विशिष्ट रूप भी आना, जाना के परिवर्त-रूप में प्रचलित हैं। बिहार में आदर के लिए 'बैठिए' जैसे रूपों के स्थान पर बैठा जाय, खाया जाय, चला जाय, जैसे प्रयोग हैं जो रूप-रचना के स्तर के न होकर वाक्य-रचना के स्तर के हैं। इसी प्रकार बनारस में तथा कुछ स्थलों पर भी 'तुम जाओ' या 'आप जाइए' न कहकर दोनों को मिलकर 'आप जाओ', 'आप आना' जैसे प्रयोग चलते हैं। इनमें कदाचित् एक तरफ़ 'आप' का आदर और औपचारिकता है तो दूसरी तरफ़ 'तुम' का नैकट्य। कहना न होगा कि यह भी वाक्य-रचना के स्तर की बात है, केवल आज्ञा से संबद्ध होने के कारण इसे यहाँ ले लिया गया है! 'कर' धातु के भी कुछ रूप दो प्रकार के मिलते हैं। अनेक लोग 'किया' के स्थान पर 'करा' बोलते हैं जो अपरिनिष्ठित हैं, किन्तु 'कर' के ही दूसरे रूप 'कीजिए' के स्थान पर अब 'करिए' या 'कीजिएगा' के स्थान पर 'करिएगा' रूप भी चल रहे हैं और जो एक सीमा तक परिनिष्ठित प्रयोग के अंग भी मान लिए गए हैं।

लिंग की दृष्टि से भी हिन्दी के क्षेत्रीय रूप अलग-अलग हैं। भोजपुरी में 'हाथी' स्त्रीलिंग है, अतः वहाँ के लोग प्रायः परिनिष्ठित हिन्दी बोलने में भी 'हाथी आ रही है' बोल जाते हैं। वहाँ 'हाथी' का पुल्लिग 'हत्था' है। इसके विपरीत पश्चिमी क्षेत्र में तथा हिन्दी के मानक रूप में 'हाथी' पुल्लिग है, तथा 'हथिनी' स्त्रीलिंग है। इसी प्रकार तकिया, रुमाल, तौलिया, दही आदि कई अन्य शब्द भी पूर्वी क्षेत्र में स्त्रीलिंग हैं तथा पश्चिमी में पुल्लिग। यों 'दही' के बारे में यह अनियमितता और भी अधिक है। दिल्ली के भी अनेक लोगों को मैंने 'दही' का प्रयोग स्त्रीलिंग में करते सुना है। इसी तरह दिल्ली में 'क्लास' स्त्रीलिंग है तो बनारस, इलाहाबाद आदि में पुल्लिग। जामुन, जाड़ा, मोती, तकिया, गिलास, तौलिया, दर्द, कलम, शरीर, कालर आदि अन्य अनेक शब्दों के लिंग भी पूरे हिन्दी-प्रदेश में एक नहीं हैं।

हिन्दी-उर्दू शैली में रूप-रचना के स्तर पर बहुवचन के रूपों में काफ़ी अन्तर हैं। उर्दू में प्रायः आन (साहबान, मालिकान, मेम्बरान) तथा आत (मकानात, काग़जात, जवाहरात, ख़यालात, हालात) का प्रयोग होता है तो हिन्दी में शून्य (वे काग़ज़ कहाँ हैं) अथवा ओं (उन काग़जों को मंगाओ) का। ऐसे ही हिन्दीवाले कहेंगे 'मैंने बार-बार मना किया' तो उर्दू वाले कहेंगे 'मैंने बारहा मना किया'।

वाक्य-रचना के स्तर पर मुख्य परिवर्त पद-क्रम, फ़रसर्ग-प्रयोग, सहायक क्रिया-प्रयोग आदि पर आधारित हैं। हिन्दी का सामान्य प्रयोग है 'जाऊँगा तो, लेकिन आज नहीं'। हरियाणा वाले कहेंगे 'जाऊँ तो गा लेकिन आज नहीं'। सामान्य प्रयोग है 'कानपुर ही जाना है', कुछ क्षेत्रों में प्रयोग है 'कान ही पुर जाना है'। 'मुझे जाना है' या 'मुझको जाना है' के स्थान पर हरियाणा आदि में बोलते हैं 'मैंने जाना है'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंजाबियों के प्रभाव से दिल्ली की नई पीढ़ी में भी यह प्रवृत्ति मिलती है। मानक हिन्दी में प्रयोग है 'राम के दो बेटे हैं', किन्तु पूरब में कहा जाता है 'राम को दो बेटे हैं'। हिन्दी का सामान्य प्रयोग है : 'मेरे पास पैसे नहीं हैं'; ब्रज वाले मानक हिन्दी बोलने में भी बोलते हैं 'मुझ पै पैसे नहीं हैं'। पश्चिम वाले 'नहाना', 'खाँसना' आदि के साथ 'ने' का प्रयोग नहीं करते, किन्तु पूरब वाले खूब करते हैं।

हिन्दी का सामान्य प्रयोग है 'मैं खा चुका'; दिल्ली में 'मैं खा बैठा' भी सुनाई पड़ जाता है। पूरबी का सामान्य प्रयोग है 'उसने नहीं बताया'। पश्चिम का 'उसने बताकर नहीं दिया' इसी का समानार्थी है। पूरब वालों को यह हास्यास्पद लगेगा।

उर्दू में भी कुछ दृष्टियों से दो शैलियाँ हैं। लखनऊ शैली वाले बोलेंगे 'चिट्ठी लिखना है', 'ख़त लिखना है', तो दिल्ली शैली में 'चिट्ठी लिखनी है', 'ख़त लिखना है'। हिन्दी शैली में भी दिल्ली वाले प्रयोग ही चलते हैं: 'चिट्ठी लिखनी है', 'पत्र लिखना है'।

फ़ारसी के प्रभाव से संबंध-रचना में उर्दू में क्रम उलटा हो जाता है; सिर का दर्द (हिन्दी)—दर्द-ए-सर (उर्दू), परगने का हाकिम (हिन्दी)—हाकिम-ए-परगना या हाकिम-परगना (उर्दू)। अब उर्दू के प्रभाव से हिन्दी में भी 'हाकिम-परगना' कहने लगे हैं। 'कलक्टर मेरठ', 'एस० पी० सहारनपुर' जैसे प्रयोग भी इसी श्रेणी के हैं।

प्रयोगों, लोकोक्तियों तथा मुहावरों में शैलीय परिवर्त बहुत अधिक है। हिन्दी में प्रयोग चलता है 'उनका स्वर्गवास हो गया' तो उर्दू में चलता है 'वे स्वर्गवास हो गए'। हिन्दी का सामान्य प्रयोग है 'बुरा मानना', किन्तु दिल्ली में अनेक लोग (जिनमें पंजाबीभाषी भी शामिल हैं, किन्तु काफ़ी हिन्दीभाषी भी) 'बुरा मानना' के अर्थ में 'बुरा मनाना' कहते हैं। पंजाब व हरियाणा में 'मच्छर लड़ते हैं' जब कि अन्य हिन्दी क्षेत्रों में 'मच्छर काटते हैं'। वहाँ साँप, बिच्छू भी लड़ते हैं, काटते नहीं। राजस्थानी में 'पधारिए', 'आइए' या 'जाइए' के लिए आवश्यकतानुसार प्रयोग होता है, पूरब में 'आइए' या 'बैठिए' के लिए। पूरब में चलता है 'कहाँ राजा भोज कहाँ गंगवा तेली' तो पश्चिमी क्षेत्रों में चलता है 'कहाँ राजा भोज कहाँ गंगू (अथवा गांगला) तेली'। पश्चिम वाले कहते हैं 'कहने से कुम्हार गधे पर नहीं चढ़ता', तो पूरब वाले कहते हैं 'कहने से धोबी गदहे पर नहीं चढ़ता'। पूरब में 'किसी पर जान देना' मुहावरा ही चलता है तो पश्चिम में 'किसी पर जान छिड़कना' भी खूब चलता है।

विभिन्न प्रकार के प्रयोगों में हिन्दी की विभिन्न शैलियों का संकेत ऊपर दिया जा चुका है। किसी एक शैली को समवेततः देखने के लिए यहाँ कार्यालयी शैली की बात लें। यह शैली, हिन्दी की सामान्य शैली से शब्दावली, सहप्रयोग तथा वाक्य-रचना इन तीनों स्तरों पर अलग है। इसकी अपनी विशिष्ट शब्दावली है जिसका प्रयोग अन्य शैलियों में या तो बिल्कुल नहीं होता, या बहुत कम होता है। उदाहरण के लिए मसौदा, अनुदेश, हस्ताक्षर, प्रभाग, अनुभाग आदि। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनका अर्थ हिन्दी की सामान्य शैली में एक है तो कार्यालयी शैली में दूसरा। जैसे 'टिप्पणी'। सहप्रयोग से मेरा आशय है—किस शब्द के साथ किस शब्द का प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो। सामान्यतः हिन्दी में संस्कृत शब्दों के साथ संस्कृत का तथा फ़ारसी के साथ अरबी-फ़ारसी आदि का प्रयोग करते हैं। किन्तु कार्यालयी शैली में मिश्रित सहप्रयोग भी खूब मिलता है जो हमारी सामाजिक संस्कृति की देन है। उदाहरण के लिए 'आवश्यक फ़ाइल प्रस्तुत करें,' 'अपेक्षित दस्तावेज', 'जरूरी पत्र' आदि। जहाँ तक वाक्य-रचना का प्रश्न है, एक बात जो सबसे मुख्य है, वह है इस शैली की भाषा का स्पष्टतः अनुवाद की भाषा होना, जिसके परिणामस्वरूप अधिकांश वाक्य अपनी गठन में हिन्दी की मूल प्रकृति के अनकूल न होकर उस भाषा की प्रकृति के अनुकूल होते हैं जिनसे अनुवाद हुआ है। मध्यकाल में कचहरियों की भाषा फ़ारसी थी। अतः परंपरागत रूप से कुछ तो उसका प्रभाव है, और इधर कचहरियों की भाषा अंग्रेज़ी रही है, अतः उसका प्रभाव है, और यही प्रभाव अधिक है। वाक्य-रचना की एक अन्य विशेषता है वाक्यों का अव्यक्तिक (impersonal) होना। जैसे 'आदेश दिया जाता है' (ऊपर के लोग नीचें के लोगों को लिखेंगे), 'अनुमति दे दी जाय' (नीचें के लोग ऊपर के लोगों को लिखेंगे)। इसी तरह 'ऐसा कर दिया जा सकता है' न कि 'ऐसा करो' या 'ऐसा कीजिए'। साथ ही वाक्य प्रायः छोटे होते हैं और कभी-कभी तो केवल एक शब्द के, यथा : आवश्यक=यह फ़ाइल आवश्यक है; अत्यावश्यक=यह फ़ाइल अत्यावश्यक है। ऐसे ही अग्रेषित या (अग्रप्रेषित =फ़ारवर्डिड), संस्तुत, तुरत इत्यादि।

[दो]

प्रायः हिन्दी की तीन शैलियों की चर्चा की जाती है—हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी। सामान्यतः शिक्षित हिन्दीभाषी औपचारिक स्तर पर (भाषण, कक्षा में पढ़ाते समय, लेख में तथा रेडियो पर वार्ता आदि में) हिन्दी या उर्दू शैली का प्रयोग करते है, और अनौपचारिक स्तर पर (बाजार में, या दोस्तों से गपशप आदि में) प्रायः हिन्दुस्तानी का। यों मेरे अपने विचार में हिन्दुस्तानी के भी दो रूप हैं—एक तो वह हिन्दुस्तानी, जिसमें अंग्रेजी के केवल वें शब्द प्रयुक्त होते हैं, जो हिन्दी में ग्रहण कर लिए गए हैं, और दूसरी वह हिन्दुस्तानी जिसमें अगृहीत अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त होते हैं।

उदाहरणार्ण—

क कल **प्रातः** एक **सभा** में मुझे **भाषण** देना है। (हिन्दी)

ख. कल **सुबह** एक **जलसे** में मुझे **तकरीर** करनी है। (उर्दू)

ग. १–कल सवेरे एक सभा में मुझे बोलना है। (हिन्दुस्तानी)

ग. २–कल **मार्निंग** में एक **मीटिंग** में मुझे **लेक्चर** देना है। (अंग्रेजी-मिश्रित हिन्दुस्तानी)

अर्थात् हिन्दुस्तानी इन सभी का आधार है जिसमें सरल, बहुप्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है। 'हिन्दी', 'उर्दू' तथा 'अंग्रेजी-मिश्रित हिन्दुस्तानी' में व्याकरण तो सामान्य हिन्दुस्तानी का ही रहता है, सर्वनाम, कारकचिह्न क्रिया-रूप भी वही होते हैं, मुख्य अन्तर संज्ञा शब्दों तथा विशेषणों में आता है। हिन्दी संस्कृत की सहायता लेती है तो उर्दू अरबी, फारसी की तथा अंग्रेजी-मिश्रित हिन्दुस्तानी अंग्रेजी की। अधिकांश शिक्षित हिन्दीभाषी औपचारिक स्तर पर हिन्दी का प्रयोग करते हैं, तो काफी उर्दू माध्यम से तालीमयाफ्ता लोग उर्दू का प्रयोग करते हैं तथा सुशिक्षित डाक्टर, वकील, इंजीनियर तथा उच्च अधिकारी अनौपचारिक स्तर पर अंग्रेजी-मिश्रित हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते है, तो औपचारिक स्तर पर प्रायः अंग्रेजी का। इसे चित्र रूप में यों दिखाया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ध्यान देने की बात है कि हिन्दुस्तानी तीनों में समाहित है।

एक प्रश्न यह उठता है कि जब हिन्दुस्तानी ही इन तीनों का आधार है तो इसे हिन्दुस्तानी क्यों न कहें ? वस्तुतः जब व्याकरणिक दृष्टि से ये सभी एक भाषा की ही तीन शैलियाँ हैं तो प्राचीनतम प्रयुक्त नाम ही इसका उचित नाम हो सकता है। हम जानते हैं कि हिन्दी नाम का प्रयोग १५ वीं सदी के पूर्वार्द्ध में, 'हिन्दुस्तानी' का १५ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में और उर्दू का १७०० के आस-पास चला, अतः इसे हिन्दी कहना ही ठीक है। अन्य नाम पूरी भाषा का प्रतिनिधित्व नहीं करते। चाहें तो हिन्दी की शैलीय स्थिति को इस रूप में भी रख सकते हैं—

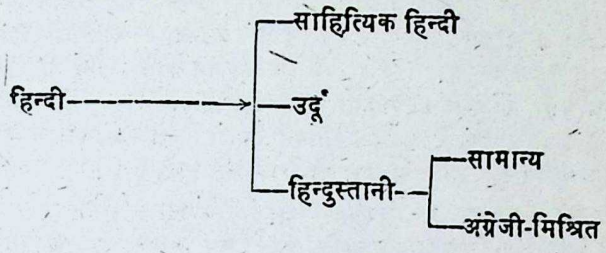

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्याय २२

प्रयोजनमूलक हिन्दी

भाषा, व्यक्ति के स्तर पर, बाह्यतः मुखोच्चरित यादृच्छिक ध्वनि-प्रतीकों की वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से वह अपने को व्यक्त करता है; अंतरतः वह व्यवस्था है जिसके माध्यम से व्यक्ति सोचता है; और समाज के स्तर पर वह व्यवस्था है जिससे समाज नियंत्रित होता है। इस प्रकार भाषा विचार-संप्रेषण, चिन्तन तथा सामाजिक नियंत्रण का साधन है। यों चिन्तन की बात छोड़ दें, तो मूलतः और मुख्यतः इस प्रसंग में भाषिक प्रक्रिया (linguistic activity) और सामाजिक प्रक्रिया (social activity) एक है, क्योंकि व्यक्ति इसका प्रयोग समाज में ही करता है और ये व्यक्तिक प्रयोग ही अंततः समाज को नियंत्रित करते हैं।

भाषा के दो पक्ष हैं : संरचना-पक्ष, प्रयोग-पक्ष। संरचना से आशय है भाषा की अपनी आंतरिक संरचना जो ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ के स्तर पर होती है, और संरचनात्मक भाषाविज्ञान जिसका अध्ययन करता है। प्रयोग से आशय है समाज द्वारा उसका प्रयोग, जो विभिन्न सांस्कृतिक, प्रशासनिक, तकनीकी तथा पारिस्थितिक आदि संदर्भों में होता है और जो ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ की दृष्टि से भाषा को अनेकानेक रूप प्रदान करता है। भाषा के इस पक्ष का अध्ययन समाज-भाषाविज्ञान के क्षेत्र में आता है। यों कुछ लोगों ने मनोभाषाविज्ञान को भी यहाँ तक खींच लाने का यत्न किया है। भाषाविज्ञान अथवा संरचनात्मक भाषाविज्ञान भाषा की व्यवस्था का अध्ययन इस दृष्टि से करता है कि भाषा कैसे कार्य करती है, जबकि समाज-भाषाविज्ञान भाषा की व्यवस्था का अध्ययन इस दृष्टि से करता है कि इस व्यवस्था का कैसे प्रयोग किया जाता है--विभिन्न सामाजिक संदर्भों में; अथवा भाषा कैसे समाज के नियंत्रण का साधन है। इस तरह भाषा के अध्ययन में समाज-भाषाविज्ञान का दृष्टिकोण प्रयोजनमूलक होता है--विभिन्न प्रयोजनों के लिए भाषा के प्रयोग तथा उनसे संबद्ध एवं उद्भूत परिवर्तों (variants) का विश्लेषण और निश्चयन।

पहला प्रश्न यह उठता है कि भाषा की प्रयोजनमूलकता से क्या आशय है। वस्तुतः वास्तविक प्रयोगों से सर्वथा अलग भाषा के किसी एक मानक रूप की सत्ता मात्र मानसिक होती है। इसकी स्थिति 'इम' (eme), स्वनिम, रूपिम जैसी है, जिसकी न तो भौतिक सत्ता होती है और न जिसका वास्तविक भाषा में प्रयोग होता है। जैसे ध्वनि के स्तर पर स्वनिम का प्रयोग न होकर उपस्वनों या स्वन-परिवर्तों का प्रयोग होता है, रूप के स्तर पर रूपिम का प्रयोग न होकर उपरूपों अथवा रूप-परिवर्तों प्रयोग होता है, ठीक उसी प्रकार अपवादों की बात छोड़ दें, तो समवेत रूप से भाषा के किसी मानक, एक रूप (अथवा होमोजिनियस भाषा) का प्रयोग नहीं किया जा सकता, प्रयोग उसके परिवर्तों (variants) का होता है जो उपस्वन (allophone) तथा उपरूप (allomorph) की तरह ही प्रयोग की दृष्टि से प्रतिबंधित होते हैं। एक सामाजिक संदर्भ में एक का प्रयोग होता है तो दूसरे दूसरे में का, तीसरे में तीसरे का ...। इस तरह 'इम' (eme) और उप (allo) का सिद्धांत 'भाषा के समवेत रूप' (जिसमें ध्वनि, शब्द, रूप, वाक्य, अर्थ सभी समाहित हैं) पर भी लागू होता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, और जैसे ध्वनीय या रूपीय परिवर्तों का वितरण भाषा की आंतरिक संरचना से प्रतिबंधित होता है, ठीक उसी प्रकार भाषा के ये प्रयोजनमूलक परिवर्त सामाजिक प्रयोगों से प्रतिबंधित होते हैं।

भाषा का प्रयोग समाज में होता है, किन्तु समाज के संदर्भ हमेशा एक नहीं होते। मानसिक, प्रायोजनिक, पारंपरिक तथा आभिव्यक्तिक दृष्टि से समाज के भी परिवर्त होते हैं। बैंक का समाज एक है, तो किसी प्रशासनिक कार्यालय का समाज दूसरा, किसी वैज्ञानिक प्रयोगशाला का समाज तीसरा, तो किसी विशेष स्थान पर लगे सब्ज़ियों के प्रातःकालीन बाज़ार का समाज चौथा। और इसी प्रकार हर भाषा-भाषी वर्ग (व्यापारिक, साहित्यिक, वकीली, डाक्टरी, इंजीनियरी आदि-इत्यादि) का अपना सीमित समाज अलग-अलग होता है। समाज के इन परिवर्तों के विषय अलग-अलग होते हैं, अतः इनकी आभिव्यक्तिक आवश्यकताएँ भी अलग-अलग होती हैं। इस अलगाव के लिए विषय के अतिरिक्त लोगों का मानसिक स्तर, उस तरह के समाज की परंपरा, मुख्यतः आभिव्यक्तिक परंपरा, उनका भूगोल, इतिहास, उनकी सभ्यता और संस्कृति आदि अनगिनत वे बातें जिम्मेदार हैं जिनसे उस समाज के अपने निजी व्यक्तित्व का निर्माण होता है। वस्तुतः जैसे हर व्यक्ति की अपनी भाषा होती है, ठीक उसी प्रकार हर विशिष्ट समाज (जो वृहत्तर समाज का किसी स्तर पर एक खंड है) की भी 'अपनी' भाषा' होती है, और इस 'उस सीमित समाज' की 'अपनी भाषा' का अपना व्यक्तित्व—उस समाज के व्यक्तित्व के अनुरूप ही—भी अलग होता है। अर्थात् एक बृहत्तर समाज के भीतर विभिन्न प्रयोजनों से जितने भी विभिन्न छोटे-छोटे समाज गठित होते हैं, उन सबकी अपनी भाषा भी एक सीमा तक अलग-अलग होती है, जो प्रयोग के विशिष्ट प्रयोजन के कारण उस भाषा के सर्वसामान्य रूप के परिवर्त (variants) कहे जा सकते हैं। किसी भी भाषा के ये विभिन्न परिवर्त, उस प्रयोजन पर ही आधृत होंगे, जिसके लिए उनके अलग-अलग प्रयोग होंगे—विभिन्न प्रयोजनों के लिए गठित समाज-खंडों के द्वारा। किसी भाषा के ये विभिन्न रूप या परिवर्त ही उस भाषा के प्रयोजनमूलक विभिन्न रूप हैं। दुनिया की हर भाषा में इस प्रकार के रूप होते हैं। यों जो समाज जितना ही कम विकसित तथा विभिन्न क्षेत्रों में कम विशेषज्ञीकृत (specialized) होगा, उसकी भाषा के प्रयोजनमूलक रूप भी उतने ही कम होंगे। इसके विपरीत जो समाज जितना ही अधिक विकसित और विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञीकृत होगा, उसकी भाषा के ये प्रयोजनमूलक रूप भी उतने ही अधिक होंगे। इस तरह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में किसी समाज की विशेषज्ञता जितनी ही बढ़ती जाती है, इन प्रयोजनमूलक भाषारूपों की संख्या भी बढ़ती जाती है।

हिन्दी का जन्म जब १००० ई० के आसपास हुआ तो वह केवल बोलचाल की भाषा थी। सामान्य जीवन तथा उससे संबद्ध खेती, व्यापार, लुहारी, बढ़ईगिरी, कुम्हारी, सिलाईगिरी आदि जीवन के तत्कालीन आवश्यक क्षेत्रों में इसका प्रयोग होता था और इनसे संबद्ध उसके थोड़े-बहुत विशेषीकृत रूप थे। हाँ, हिन्दी के भौगोलिक परिवर्त काफ़ी थे, क्योंकि उसका क्षेत्र काफ़ी विस्तृत था और है भी। धीरे-धीरे हिन्दी जनता जैसे-जैसे धर्म, ज्योतिष, साहित्य आदि अन्य विशिष्ट क्षेत्रों में अपनी भाषा का प्रयोग करती गई, इसके प्रयोजनमूलक विभिन्न नए रूप भी विकसित होते गए। मध्यकाल में प्रशासनिक, क़लईगिरी, वस्त्र-उद्योग आदि कई दृष्टियों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दीभाषी जनता की नई विशेषज्ञताएँ बढ़ीं, अतः हिन्दी के प्रयोजनमूलक नए रूप भी अस्तित्व में आए। अंग्रेज़ी शासन में यूरोपीय संपर्क से हमारा सामाजिक, आर्थिक और प्रशासनिक ढाँचा काफ़ी बदला, धीरे-धीरे हमारे जीवन में कई विशेषज्ञताएँ (जैसे पत्रकारिता, इंजीनियरी, बैंक आदि) पनपीं और तदनुकूल हिन्दी के नए प्रयोजनमूलक भाषिक रूप भी उभरे। स्वतंत्रता के बाद हिन्दी भाषा के प्रयोग का क्षेत्र बहुत बढ़ा है, और बढ़ता जा रहा है, और तदनुकूल उसके प्रयोजनमूलक रूप भी बढ़े हैं और बढ़ते जा रहे हैं। भारत के अतिरिक्त मारिशस, सूरीनाम, फ़िजी, दक्षिणी अफ्रीका, पाकिस्तान (हिन्दी की एक शैली उर्दू) तथा इंग्लैंड (यहाँ भी हिन्दी-उर्दू भाषी काफ़ी हैं, तथा अब तो उनकी अपनी पत्रिकाएँ भी निकलने लगी हैं) आदि कई देशों में भी हिन्दी है, अतः इन सबमें प्रयुक्त हिन्दी के सहयोग से हिन्दी के एक ऐसे स्वरूप के विकसित होने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता, जिसे किसी एक देश से ऊपर विश्वजनीन कहा जा सके। भारत में अखिल भारतवर्षीय संपर्क-भाषा के रूप में हिन्दी के एक स्वरूप के विकास का यत्न प्रशासनिक तथा अन्य स्तरों पर हो रहा है, जिसकी ओर संकेत हमारे संविधान की ३५१वीं धारा में किया गया है। सरकारी या कार्यालयी भाषा के रूप में हिन्दी का एक रूप, स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद लगभग पच्चीस वर्षों में काफ़ी कुछ विकसित हुआ है, संविधान की ३४३वीं धारा में जिसका संकेत है। यों इसमें संदेह नहीं कि इस स्तर पर तालमेल का अभी अभाव है, इसी कारण केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में जिस हिन्दी का थोड़ा-बहुत प्रयोग हो रहा है, वह पूरी तरह से वही हिन्दी नहीं है, जिसका उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान आदि विभिन्न हिन्दी-प्रदेशों की सरकारें कर रही हैं। वस्तुतः इसके लिए काफ़ी प्रभावी 'कोआर्डिनेशन' की आवश्यकता है। कार्यालय भी विभिन्न क्षेत्रों में और स्तरों पर कई प्रकार के (कचहरी, बैंक, ऊपर से नीचे तक के प्रशासनिक स्तर के कमिश्नरी, कलक्टरी, तहसील, परगना आदि) हैं और उन सभी की अपनी अलग-अलग अभिव्यक्तिक आवश्यकताएँ और परंपराएँ हैं, अतः इन सभी में हिन्दी के जो रूप हैं, और जो विकसित हो रहे हैं, किसी-न-किसी रूप में एक-दूसरे से अलग हैं, और ये सभी हिन्दी के प्रयोजनमूलक परिवर्त या उपरूप हैं। साहित्य और उनमें भी विभिन्न साहित्यिक विधाओं (जैसे काव्य, नाटक, कथा-साहित्य, आलोचना), संगीत, आभूषणों के बाजारों, कपड़े के बाज़ारों, विभिन्न प्रकार के सट्टा बाज़ारों, समाचार-पत्रों, धातुओं आदि के क्रय-विक्रय की दुनिया-(जिसकी एक झाँकी किसी भी दैनिक पत्र के संबद्ध पृष्ठ से ली जा सकती है), फ़िल्मों, चिकित्सा-व्यवसाय, खेतों-खलिहानों, विभिन्न शिल्पों और कलाओं, विभिन्न कसरतों-खेलों (के अखाड़ों, कोर्टों, और मैदानों या उनकी मेज़ों आदि-इत्यादि) में प्रयुक्त हिन्दी पूर्णतः एक नहीं है। ध्वनि, शब्द (कभी-कभी), रूप-रचना, वाक्य-रचना, मुहावरों आदि की दृष्टि से उनमें कभी थोड़ा, कभी अधिक स्पष्ट अंतर है, और ये सारे हिन्दी के ही अलग-अलग प्रयोजनमूलक रूप हैं।

कुछ उदाहरणों द्वारा उपर्युक्त बात स्पष्ट की जा सकती है। 'शेयरों में सुधार', 'सटोरियों की पटान', 'सटोरियों की विकवाली', 'चीनी में तेजड़ियों की पकड़ ढीली', 'दस्ती डेलिवरी वायदा शेयर', 'चाँदी में गिरावट', 'सोना उछला', 'चाँदी लुढ़की', 'स्टैंडर्ड सोना खामोशी के साथ ५१४ पर खुला', 'दिसावर के मंदे समाचारों से चना-चावल नरम', 'चाँदी लुढ़की', जैसे प्रयोगों से युक्त हिन्दी का प्रयोग मंडियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शेयर बाज़ारों में होता है, तो सामान्य भाषा का प्रयोग 'आप कृपया इसे बैंक में जमा कर दें', बैंक के कागजों पर 'जमा कर दें' रह जाता है, जिसमें कर्ता और कर्म ग़ायब हैं। बोलचाल की सामान्य हिन्दी कर्ता-प्रधान है, किन्तु कार्यालयी हिन्दी में कर्ता का लोप कर दिया जाता है। वहाँ 'अधिकारी आम जनता को सूचित करते हैं' के स्थान पर 'आम जनता को सूचित किया जाता है', 'आप वहाँ बिल्डिग बनवा दें' के स्थान पर 'वहाँ बिल्डिग बनवा दी जाय' आदि। वस्तुतः वहाँ व्यक्ति शासन-तंत्र का अंग है, अतः आज्ञा या सूचना शासन-तंत्र की ओर से आती है, व्यक्ति की ओर से नहीं; इसी कारण वह महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाता। ऐसे प्रयोगों की जड़ में कदाचित् यही मनोविज्ञान हैं। फ़ाइलों पर 'तुरत', 'आवश्यक', 'अत्यंत आवश्यक', 'अतितुरंत' पूरे वाक्य का अर्थ देते हैं; जैसे—'वह पत्र अत्यंत आवश्यक है' का 'अत्यंत आवश्यक' आदि। बोलचाल की भाषा, नाटकों, कथासाहित्य के कथनोपकथन में वाक्य में अनेक शब्दों का लोप करके उसे एक या दो शब्दों का कर लेते हैं। 'आपका नाम ?' ('आप का नाम क्या है' के स्थान पर) 'तिवारी' ('मेरा नाम तिवारी है' के स्थान पर)। ऐसे ही 'अवश्य', 'जरूर-जरूर', 'हाँ', 'हाँ-हाँ' 'बखुशी', 'ज़हे-किस्मत', 'अहोभाग्य', 'वाह', 'क्या कहने', टेलीफोन पर 'जी' आदि। हिन्दी में बोलचाल में संज्ञा, क्रिया की पुनरुक्तियों का प्रयोग बहुत अधिक होता है: 'कुछ चाय-वाय मँगावो', 'तुम्हें चलना-वलना तो है नहीं...', किन्तु आलोचना, कविता या शास्त्रीय विवेचन में यह बात नहीं मिलेगी। ये अंतर मुख्यतः शब्द-प्रयोग, सहप्रयोग तथा वाक्य-रचना के स्तर पर मिलते हैं, किन्तु कभी-कभी ध्वनि, रूप-रचना तथा अर्थ के स्तर पर भी अंतर होता है। शब्द-प्रयोग के अंतर से मेरा आशय है विशिष्ट क्षेत्रों में एक ही अर्थ में विशिष्ट शब्दों के प्रयोग से। उदाहरण के लिए, सामान्य भाषा में जिस चीज़ के लिए 'नमक' शब्द का प्रयोग होता है, रसायनशास्त्र में उसे 'लवण' कहते हैं। सहप्रयोग से आशय है दो या अधिक शब्दों का साथ-साथ प्रयोग। मंडियों की भाषा में चाँदी और सोना के साथ 'लुढ़कना' और 'उछलना' क्रिया का प्रयोग होता है, किन्तु हिन्दी के अन्य रूपों में इन संज्ञा शब्दों के साथ इन क्रियाओं का सहप्रयोग नहीं मिलेगा। वाक्य-रचना-विषयक रूपांतर बहुत अधिक मिलते हैं—संज्ञीकरण, विशेषणीकरण, सर्वनामीकरण, कर्मवाच्यीकरण, भाववाच्यीकरण, लोपीकरण अथवा संक्षेपीकरण आदि। ध्वनि की दृष्टि से—अंतर जैसा कि उपर संकेत है—कम मिलते हैं, किन्तु मिलते हैं। मंत्र-मंतर, यंत्र-जंतर, मीन-मेख–मीन-मेष के प्रयोग-क्षेत्र कई स्तरों पर एक सीमा तक अलगाए जा सकते हैं। अर्थ की अभिव्यक्ति में शास्त्रीय अथवा दफ्तरी भाषा में अभिधा पर बल रहता है तो सर्जनात्मक साहित्य में लक्षणा-व्यंजना पर। ऐसे ही सामान्य भाषा में 'टीका लगाना' तिलक लगाना है, किन्तु चिकित्सा से संबद्ध भाषा में 'सुई लगाना'। काव्यशास्त्र में 'व्युत्पत्ति' का एक अर्थ है तो भाषाशास्त्र में दूसरा; संगीत में 'संगत करना' का एक अर्थ है तो सामान्य भाषा में दूसरा। अंतरों की यह सूची काफ़ी बढ़ाई जा सकती है। वस्तुतः इस दिशा में अभी काम करने की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समवेततः हिन्दी के मुख्य प्रयोजनमूलक रूप सात हैं। आगे इनके उपरूप भी हो सकते हैं, जिसका संकेत कोष्ठकों में है : (१) बोलचालीय हिन्दी; (२) व्यापारी हिन्दी (इसमें भी मंडियों की भाषा, सर्राफ़े के दलालों की भाषा, सट्टाबाज़ार की भाषा आदि कई उपरूप हैं); (३) कार्यालयी हिन्दी (कार्यालय भी कई प्रकार के होते हैं और उनमें भी भाषा के स्तर पर कुछ अंतर है), (४) शास्त्रीय हिन्दी (विभिन्न शास्त्रों में प्रयुक्त भाषाएँ भी शब्द के स्तर पर कुछ अलग हैं। इसमें संगीतशास्त्र, काव्यशास्त्र, भाषाशास्त्र, दर्शनशास्त्र, योगशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, विधिशास्त्र आदि की भाषाएँ हैं); (५) तकनीकी हिन्दी (इंजिनियरी, बढ़ईगिरी, लुहारी, प्रेस, फैक्टरी, मिल आदि की तकनीकी भाषा); (६) समाजी हिन्दी इसका प्रयोग सामाजिक कार्यकर्ता करते हैं); तथा (७) साहित्यिक हिन्दी (इसमें कविता, कलासाहित्य तथा नाटक की भाषा आदि में अंतर होता है)।

———

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

STOCK VERIFY
2020
G.K.V. Library

मूल्य : रु० १८.००

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

STOCK VERIFY
2020
G.K.V. Library

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Compiled
1999-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Digitized by eGangotri